श्रीः ।

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यप्रणीता

वाराही (बृहत्) संहिता

पंडितसुखानन्दमिश्रात्मज, मुरादाबाद-निवासी
पंडितवर बलदेवप्रसादजी मिश्रकृत-
भाषानुवादसहित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



समर्पण.

सर्वगुणागार, विद्याभाण्डार, वैद्यकशास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रम, विविधग्रंथोद्धारक, देशोपकारक, परममाननीय वैद्यवर श्रीमान्

लालाशालिग्रामजी समीपेषु.

महोदय !

आप सदाही मेरे ऊपर कृपादृष्टिकी वृष्टि किया करते हैं। आपका प्रेम सर्वदाही हम तीनों भ्राताओंको आनंद किया करता है। जब कभी संसारी झगडोंसे घबडाकर व्याकुल हुआ करता हूँ, जब कभी सांघातिक रोगोंसे शरीर अवसन्न होता है, जब कभी मर्म वेदनासे हृदयपिंड उत्पाटित होना चाहता है, तब २ आपही समझा बुझाकर, गोदीमें बिठलाकर प्यारसे पुचकारकर व सर्व प्रकारसे चिकित्सा करके मुझको आरोग्य किया करते हैं। गतवर्ष आपहीके अनुग्रहसे प्राणदान पाया, आप मुझपर पुत्रसे भी अधिक स्नेह करते हैं, सहस्रों रोगियोंको विना मूल्यके औषधि वितरित करके व आरोग्यकरके वास्तवमें आप संसारका महोपकार साधन कर रहे हैं। अतएव उपरोक्त कृतज्ञताके वशीभूत हो यह "वाराहीसंहिता" नामक बृहद्ग्रंथ भाषानुवादसमेत आपके करकमलमें समर्पित है। कृपापूर्वक अंगीकार करके मेरा परिश्रम सफल कीजिये।

अकिञ्चन,

भाद्रपद शुक्ल १० }
संवत् १९४९ }

बलदेवप्रसाद मिश्र.
मुरादाबाद.

भूमिका।

राहीसंहिता ज्योतिषका प्रधान ग्रंथ है। इसके रचयिता वराहमिहिराचार्य
त्थदासके पुत्र थे जो कि अवन्तीनिवासी थे। वराहमिहिराचार्यने अपने
े समस्त शास्त्रको पढकर कपित्थनगरमें जाकर सूर्यभगवान्‌की तपस्या की
वर पाया। जो कुछ भी हो हमको इस ग्रन्थकी भूमिकामें वराहमिहिर और
द्धान्तके बनानेवाले समयका निर्णय करना है। क्योंकि इन लोगोंके समयका
ण हो जानेसे और भी अनेक ज्योतिर्विदूगणोंके समयका निरूपण हो जायगा
मिहिराचार्यने अपने पंचसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थमें लिखा है:-

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरायणं रवेर्धनिष्ठाद्यात्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥ १॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटाद्यान्मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥ २॥
दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति॥ ३॥
अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरान् याम्यान्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरान् सैन्द्रीम्॥ ४॥
उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमस्य वृद्धिकरः।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतिगतिर्भयकृदुष्णांशुः॥ ५॥

ाश्लेषाके शेषार्द्धमें दक्षिणायन और धनिष्ठाकी आदिमें रविका उत्तरायण
किसी कालमें आरम्भ होता था क्योंकि पूर्व शास्त्रमें इसी प्रकारका लेख है
॥ सम्प्रति रविका दक्षिणायन कर्कटकी आदिमें और उत्तरायण मकरकी
मिें आरम्भ होता है, अतएव प्राचीन अयनके अभावमें उसका परिवर्तन
भांति मालूम होता है॥ २॥ (अयनके बदलको जाननेकी विधि) सूर्यके
व अस्तके समय दूरके चिह्न. (नक्षत्रादि) से यह जाने, अथवा बृहन्मंडलकी
द्रस्थ कीलककी) छायाके नियत चिह्नोंसे प्रवेश और निर्गम करके जाने॥३॥
ायणमें मकरतक न जाकरके लौट आनेपर दक्षिण पश्चिमदिशा और दक्षिणाय
कर्कटतक न जाकर लौटनेसे उत्तर पूर्व दिशा नष्ट होती है॥ ४॥ मकरकी
में गमन करके लौट आनेसे सूर्य मंगलदायक होता है और यही उसकी
गति है, इससे विकृति गति हो तो सूर्य अमंगलदायक होता है॥ ५॥

वराहमिहिराचार्यके पहले दो श्लोकोंसे हमको दो ज्योतिषियोंके समय सहायता मिलती है। प्रथम पूर्वशास्त्रकारी और दूसरे स्वयं वराहमिहिराचा टीकाकार भट्टोत्पलने पूर्वशास्त्रके अर्थमें पराशरीसंहिताको लिखा है। इ शास्त्रसे ऋतुके अवस्थाविषयक वचनोंकोभी टीकामें उद्धृत किया है।

यथा,-"धनिष्ठाद्यात् पौष्णार्द्धान्तं चरः शिशिरः। वसन्तः पौष्णार्द्धा न्तम्। सौम्याद्दाश्लेषार्द्धान्तं ग्रीष्मः। प्रावृडाश्लेषार्द्धात् हस्तान्तम्। चित्राद र्द्धान्त शरत्। हेमन्तो ज्येष्ठार्द्धात् श्रवणान्तम्।

धनिष्ठाकी आदिसे रेवतीके पूर्वार्द्धतक शिशिर काल है। रेवतीके शेष णीके शेषतक वसन्तकाल है। मृगशिराकी आदिसे आश्लेषाके पूर्वार्द्धतक है। आश्लेषाके शेषार्द्धसे हस्तके शेषतक वर्षाकाल है। चित्राकी आदि पूर्वार्द्धतक शरत्काल है। ज्येष्ठाके शेषार्द्धसे श्रवणके शेषपर्यन्त होता है।

राशिचक्रके सत्ताईस भाग हैं। प्रत्येक भागमें एक एक नक्षत्र Const रहता है, अतएव प्रत्येक नक्षत्रका व्याप्तिस्थान राशिचक्रके १३ अंश कलाको आधे कम कर रहा है। वसन्तकालमें राशिचक्रके जिस स्थान हैं तब दिनरात समान होता है। उसहीको मेषराशिकी आदि मानो स्थानमें हमारे ज्योतिषका योगतारा रेवती और पश्चिमी ज्योतिषका स्थित है. सूर्यसिद्धान्तके मतसे योगतारा रेवती राशिचक्रकी ३५९०- रहता है। परन्तु ब्रह्मगुप्तादिक मतसे रेवती ३६० अंशमें अर्थात् आदिमें रहता है। ज्योतिषियोंके निरूपित किये नक्षत्रोंके ध्रुवक अक्षांश स्थानमें प्रकाशित किये जायँगे।

नीचे लिखी हुई सूचीके देखनेसे प्रकाशित हो जायगा कि पराशरक की हुई समस्त ऋतुएँ राशिचक्रके किस २ स्थानको अधिकार किये हु

आरंभ				शेष			ऋतु.
२८३.	अंश	२०'	कलासे	३५३.	२०'	तक	शिशिर
३५३.	,,	२०'	,,	५३.	२०'	,,	वसन्त
५३.	,,	२०'	,,	११३.	२०'	,,	ग्रीष्म
११३.	,,	२०'	,,	१७३.	२०'	,,	वर्षा
१७३.	,,	२०'	,,	२३३.	२०'	,,	शरत्
२३३.	,,	२०'	,,	२९३.	२०'	,,	हेमन्त

वराहमिहिरके समयमें सब ऋतु राशिकी आदिमें आरम्भ होती थ राशिचक्रके २७० अंशतक होनेपर उनके समयमें शिशिरऋतुका हुआ था। अर्थात् पराशरसंहिताके लिखनेवालेके समयसे वराह

क अयन (२९३. २०-२७०) =२३ अंश २० कला पहले अग्रसर हुआ है। सका अर्थ यह है कि संहिताकारके समय ऋतुका जो बदल होता था, वराहका मय उसकी अपेक्षा ऋतुके २३-२० पहले बदल रहा है। इस गतिको अंग्रेजीमें मरात्रिदिवाबिन्दु या क्रान्तिपातके पूर्वमें अग्रसरण कहते हैं। अंग्रेजी गणितके तसे क्रांन्तिपातकी वात्सरिकगति ५०१ विकला है, अतएव २३-२० विकला गिसे १६७६ वर्ष बीतते हैं इस कारण अंग्रेजी गणितके मतसे दोनों ज्योति षयोंके बीचमें इतने वर्षकी संख्याका अन्तर दिखाई देता है। वराहमिहिराचार्यका मय भलीभांतिसे निश्चय होनेपर जाना जायगा कि पराशर किस समय हुए थे।

अब यह देखना चाहिये कि वराहमिहिराचार्यके समयसे वर्त्तमानकालतक अयन कतने अंश पूर्वमें आगे बढा है। वंगदेशकी पंजिकाओंके देखनेसे ज्ञात होता है कि शकशब्द १८१९ के प्रारंभमें अयन-२०-५४-३६ विकला पूर्वमें आगे बढा है अर्थात् वर्त्तमानसमयमें समस्त ऋतु वराहके समयमें उक्त अंशपूर्वमें आरम्भ होती हैं। वर्त्तमान राशियोंके निर्णीत हो जानेसे राशि और मासका परस्परमें सम्बन्ध हो गया है। अतएव अयनांशको राशियोंमें योग करनेसे वर्त्तमान समयका सूर्य स्पष्ट सिद्ध होता है।

वंगदेशकी पंजिका-साधित ऋतु इस प्रकारसे प्रकाश की जा सकती हैं।

मास.	आरम्भ.	ऋतु	मन्तव्य
१० पौष	मकर	शिशिर	Winter Solstice.
१० माघ	कुम्भ		उत्तरायण.
१० फाल्गुण	मीन	वसंत	
१० चैत्र	मेष		क्रान्तिपात Vernal Equinor
१० वैशाख	वृष	ग्रीष्म	Summe Solstice.
१० ज्येष्ठ	मिथुन		
१० आषाढ	कर्क	वर्षा	
१० श्रावण	सिंह		दक्षिणायन.
१० भाद्रपद	कन्या	शरत्	क्रान्तिपात Autumnal
१० आश्विन	तुला		
१० कार्तिक	वृश्चिक	हेमंत	Equinox.
१० मार्गशिर	धन		

अतएव वात्सरिकगति ५४ विकला रखनेसे बंगाली पत्रोंमें लिखे हुए अंश अग्रसरसे अयनके १३९४ वर्ष बीतते हैं, अतएव उपरोक्त पत्रोंके मतसे वराह और सूर्यसिद्धांतलेखकका समय ४२१ शकाब्द ज्ञात होता है। हमारे देशके पत्रा।

भिन्न २ अयनांश दिये हैं। उनमेंसे किसीके मतसे वर्त्तमान वत्सरके अ
२२-५३ हैं। किसीके मतसे २२-३९ हैं। किसीका मत बंगाली पत्रोंसे
है। बापूदेवशास्त्रीका पत्रा सब पत्रोंकी अपेक्षा शुद्ध है। इसके देखनेसे जान
है कि वर्त्तमान वत्सरमें अयनांश २२-९-२४ विकला प्रवहमान हैं। अब
पातकी वात्सरिकगति ५०।१ विकला स्थिर करके गणित करनेसे ज्ञात हुअ
है कि वर्त्तमान समयसे प्रायः १५९२ वर्ष पहले वराहमिहिराचार्य हुए. उप
समर्थन करनेके लिये मैं विलायतके और मिसरदेशके विख्यात ज्योतिषी
र्कसका गगनदर्शन फल प्रकाशित करता हूँ।

हिपार्कसने लिखा है कि मेरे समयमें चित्रानक्षत्र क्रान्तिपातविन्दुके
पश्चिममें था और हार्सेल साहबने लिखा है कि १७५० ई. के आरंभमें उक्त
क्रान्तिपातके २० अंश २४ कला पूर्वमें अग्रसर हुआ है। अतएव हिप
समयसे हार्सेलके समयतक क्रान्तिपातविन्दु २६ अंश २४ कला पूर्वमें अग्रसर
है। अतएव सूक्ष्म गणितके मतसे जाना जाता है कि हिपार्कसने हार्सेलसे
वर्ष पहले अर्थात् १४७ ई० सनसे पहिले आकाशका दर्शन किया था। हिप
समयमें चित्रानक्षत्र राशिचक्रके १७४ अंशमें स्थित था। परन्तु सूर्यसिद्धांतके
और वराहके समयमें वह ६ अंश पूर्वमें अग्रसर हुआ है अर्थात् क्रान्तिपात
चित्रानक्षत्र राशिचक्रके एकस्थानमें अथवा १८० अंशमें स्थित था।
अयनकी वात्सरिकगति ५०.१ विकला स्थिर करके गणित करनेसे जाना
है कि, सूर्यसिद्धान्तलेखक और वराह हिपार्कसके ४३१ वर्ष पीछे अर्था
२८४ ई० में उत्पन्न हुए। पहलेही कहा जा चुका है कि पराशरीलेखकने
१६७६ वर्ष पहलेही ऋतुके अवस्थानको प्रकाशित किया अतएव वह सन
१३९२ वर्ष पहले हुआ है।

अब यह प्रकाश किया जाता है कि सूर्यसिद्धान्तको आदित्यदासने लि
नहीं। वराहमिहिराचार्यने वाराहीसंहिता और बृहज्जातकमें अपने पिताका
आदित्यदास लिखा है। बृहज्जातकके अंतमें यह श्लोक है:-

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतानवलोक्य सम्यग्
होरां वराहमिहिरो रुचिरं चकार ॥ ९ ॥
दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेद
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥

वन्तीनिवासी वेदमें लब्धज्ञान आदित्यदासके पुत्र वाराहमिहिरने कापित्थ में सूर्यभगवान्के अनुग्रहको प्राप्त होकर ज्ञानियोंके मतको भली भांतिसे विचार र होराशास्त्रको बनाया। सूर्य मुनि और गुरुचरणमें प्रणाम करनेसे जो ग्रह उत्पन्न हुआ है, वही शास्त्रके संग्रहमें मुख्य कारण है, अतएव उनको शार नमस्कार है।

सूर्यसिद्धान्तमें जो उस कालका नक्षत्रावस्थान दिया गया है उसके देखनेसे ा जाता है कि वह वराहके समकालमें बनाया गया। अब हम इन सिद्धान्तों- उपस्थित होते हैं-१ कदाचित् वराहजी स्वयंसिद्धान्तको बनाकर अपने पिताके सूर्यके नामसे स्वयं उसका नामकरण करते हैं, अथवा २ उनके पितानेही को बनाया उसका नामभी अपने आपही सूर्यसिद्धान्त रक्खा। वराहजीने ने पंचसिद्धान्तिका ग्रन्थमें पंचसिद्धान्तके अन्तर्गत सौरसिद्धान्तका नाम लिखा इस कारण भलीभांतिसे प्रकाशित होता है कि सूर्यसिद्धान्त उनका बनाया ा नहीं है, अतएव यह जान पडता है कि उक्त ग्रंथ उनके पिता आदित्यदास- का बनाया हुआ है। पाठकगणोंके अवलोकनार्थ सूर्यसिद्धान्तका और ग्रगुप्तका लिखा हुआ नक्षत्रावस्थान प्रकाशित किया जाता है।

नक्षत्र×	कल्पित आकार	सूर्यसिद्धान्तलिखित ध्रुवक पूर्वपश्चिम	ब्रह्मगुप्तलिखित ध्रुवक.	क्षेपांश उत्तर वा दक्षिण	प्रत्येक नक्षत्रके आरंभसे योगतारेकी दूरता १	प्रत्येक नक्षत्रमें नक्षत्रसंख्या	संख्या एकादि क्रमसे.
श्वनी	तुरंगमुख	८०	८	१० उ.	४८ उ.	३	१
णी	योनि	२०	२०	१२ उ.	४० द.	३	२
त्तिका	क्षुर	३७-३०	३७.२८.	४०-३० उ.	६५ द.	६	३
हिणी	शकट	४९-३०	४९.२८.	४०-३० द.	५७ पू.	५	४
शिर	हरिणमुख	६३	६३	१० द.	५८ उ.	३	५
र्द्रा	रत्न	६७-२०	६७	११ द.	मध्य ४	१	६
र्वसु	गृह	९३.	९३	६ उ.	७८ द.	४	७

×नक्षत्रोंके अंगरेजी नाम क्रमानुसार,-आल्फा, बेटा, ओनामा, आरिएटाआइ, मुस्काएपसाइलनटराई पीयेतिस, आलफाटराई वा आलडेबोरन, लामडा, ओराइनिस, आल, फाओराइओनिस, बेटाजोमिनोरम, डाकोनसेराई, आल्फालेयोनिस वा रेगुलेस; डेल्टा लेंयोनिस, बेटालेयोनिस, गामाबान्सेराइ, आल्फामार्जि- न वा स्पाइका, आल्फाबुटिस वा आर्कुटरेस, आल्फासिरियाइ, डेल्टास्कर्पिओनिस, आल्फास्कर्पिओनिस, स्कर्पिओनि, सडेल्टासाजिटेरियाइ, आल्फालाइरी, आल्फाआकुइली, आल्काडेल्फिनि, लामडाआकोयारि, ल्फापेगेसाइ, आल्फाएन्ड्रोमेडी, जिटापाइसिकम्॥

१ अंशके छः भागमें लिखा है।

पुष्य	बाण	१०६	१०६	उत्तर	७६ मध्य	७
आश्लेषा	चक्र	१०९	१०८	७. द.	१४ पू.	५
मघा	गृह	१२९	१२९	०. ड.	५४ द.	४
पूर्वाफाल्गुनी	शय्या	१४४	१४७	१२. उ.	४६ उ.	२
उत्तराफाल्गुनी	शय्या	१५५	१५५	१३. ड.	५० उ.	२
हस्त	हस्त	१७०	१७०	११. द.	६०	५
चित्रा	मुक्ता व प्रदीप	१८०	१०३	२०. द.	४०	१
स्वाती	प्रवाल	१९९	१९९	३७. उ.	७४	१
विशाखा	तोरण	२१३	२१२.५	१३०. उ.	७८ उ.	४
अनुराधा	बलि	२२४	२२४.५	१-४४.द.	६४ मध्य	४
ज्येष्ठा	कुन्तल	२२९.	२२९.५	४'–द. ३-३०द.	१४ मध्य	३
मूल	क्रोधित केशरी	२४१	२४१	८'–३०'द.	६ पु.	११
पूर्वाषाढा	शय्या	२५४	२५४	५०–३० द.	४३	४
उत्तराषाढा	हस्तविलास	२६०	२६०'	५ द.	पूर्वाषाढका मध्यनक्षत्र उ.	२
अभिजित	त्रिकोण	२६६.४०–	२६५	६०'उ. ६२'उ.	पूर्वाषाढा शेषउज्ज्वल	३
श्रवण	त्रिविक्रम	२८०	२७८	३० उ.	उत्तराषाढके शेषमध्यमें	३
धनिष्ठा	मृदंग	२९०	२९०	३६ उ.	श्रवणका शेषपाद पश्चिम	४
शतभिषा	वृत्त	३२०	३२०	० ०–३०'द. ० ०–१८.द. ० ०–२०'द.	८० उज्ज्वल	१०० १००
पूर्वभाद्रपदा	यमल	३२६°	३२६	२४० उ.	३६ उत्तर	२
उत्तरभाद्रपद	शय्या	३३७	३३७	२६° उ.	२२ उत्तर	२
रेवती	मुरज	८५९. ५०	३६०	३०	७९ द.	३२

और २ प्रधान नक्षत्रोंके ध्रुवक व अक्षांश.

नक्षत्र	अंग्रेजी नाम.	सूर्यसिद्धान्तके मतसे ध्रुवक ब्रह्मगुप्तके मतसे	सिद्धान्तसार्वभौमके मतसे ध्रुवक.	महल्लाधवके मतसे ध्रुवक.	अक्षांक १ मतसे दक्षिण उत्तर.	अक्षांश २ मतसे द. वा उ.
अगस्त	Conopus	९० ८७	८५–५	८०	८० द. ८७	७७०–६ द.
लुब्धक	Sirius	८०	८४'७६	८०	४० द.	४०'०'५द.
अग्नि	बेटा Tauri	५२	५७–४	४३	८ उ.	८–१४
ब्रह्महृदय	Capella	५२	५८'३६	५६	३० उ.	३०,४९.
प्रजापति	डेल्टा Aurigi	५७	५६–५३	६१	३७ उ.	३८,३०
आपस्वसे आपः	डेल्टा Virginis	१८०	१८०	१८३	३ ९	३

क्रतु	५५ उ.	शाकल्यसंहिताके मतसे
पुलह	५० उ.	
अत्रि	५६ उ.	
अंगिरस	५७ उ.	
वशिष्ठ	६० उ.	
मरीचि	६० उ.	
पुलस्त्य	५० उ.	

ब्रह्मगुप्तके समयमें चित्रानक्षत्र १८३ अंशमें स्थित था अर्थात् सूर्यसिद्धान्त-खक और वराहके समयसे चित्रानक्षत्र तीन अंश पूवम अग्रसर हुआ है। अतएव ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिराचार्यसे २१९ वर्ष पीछे अर्थात् शके ४२१ में त्पन्न हुआ।

ऐसा कहते हैं कि पारसके शाह नौशेखांके यहां " बुजुर्गुचेमेहर " नामक क वजीर था। इस शाहने सन ५३४ ई० से लेकर सन ५९० ई० तक राज्य किया। इस नामके साथ वराहमिहिरके नामका कुछ २ मिलान होनेसे कोई २ अनुमान कर सकते हैं कि यह इस शाह नौशेखांके सभासद थे। यदि ऐसे आदमी स बातको जान जायं तो उनकी यह धारणा दूर हो जायगी कि इसही मंत्रीकी आज्ञासे विष्णुशर्माके पंचतंत्रका फारसी भाषामें अनुवाद किया गया। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि विष्णुशर्माजीने पंचतंत्रमें वराहमिहिराचा-र्यका नाम लिखा है फिर भला वराहमिहिराचार्य किस प्रकार नौशेखांके समयके हो सकते हैं।

वराहमिहिराचार्यने बृहज्जातकमें ऐसे बहुतसे ज्योतिर्विदोंका नाम लिखा है जो कि उनसे पहले हो गये थे। जैसे,– मय, यवन, माणित्थ, शक्ति, सत्य, बली, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, जीवशर्म्मा, पृथुयशा इत्यादि। वराहजीने भी मान लिया है कि ज्योतिषशास्त्रमें यवनोंको Ionians, Greeks विशेष दक्षता थी वह कहते हैं:—

" म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदंस्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥ "

म्लेच्छ (कदाचारी) यवनोंके मध्यमें इस शास्त्र (फलितज्योतिष) की विशेष आलोचना है. इस कारण वे भी ऋषितुल्य पूजनीय हैं, शास्त्रका जानने वाला ब्राह्मण हो तब तो बातही क्या है? इस वचनको देखकर अनुमान किया जाता है कि वराहजीसे मिसरनिवासी ज्योतिषियोंका भी मेल था।

आर्यभट्टका समय निश्चय करनेसे पहले अयनांशके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक है। जिस प्रकार वर्षके परिमाण विषयम हमारे ज्योतिषिगण एकमत

नहीं हैं, वैसेही अयनांशके विषयमें उनका विचार एकसा नहीं है । पराशरीले आदि मुख्य २ प्राचीन ज्योतिषिगणोंने भी अयनांशकी अवस्थाको दोदुल्य माना है । परंतु वाशिष्ठसिद्धान्तके लेखक विष्णुचन्द्रनेही सबसे पहले क्रांति पा परिधिवत् परिभ्रमण प्रकाश किया ।

आर्यभट्टके मतसे एक कल्पमें अर्थात् ४३२०००००००० वर्षमें १५८२२ ५०००००० नक्षत्रोंका उदय होता है अतएव इतने वर्षोंमें १५७७९१७५००० दिन होते हैं । आर्यभट्टोंके निरूपण किये हुए वर्षोंके परिमाणको बहुतसे ज्योतिषियोंने जो पीछे हुए हैं, अपनी २ पुस्तकोंमें व्यवहार किया है ब्रह्म द्धान्तके लेखकने एक कल्पमें "परिवर्ताखचतुष्टयशराब्धिररसगुणयमद्विवसुतिथयः अर्थात् १५८२२३६४५०००० नक्षत्रोंका उदय लिखा है । ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तले ब्रह्मगुप्तनेभी यही लिखा है । यथाः-

ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम् ।
अभिधीयते स्फुटं तत् जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥
येऽज्ञानपटलारुद्धदृशोऽन्यद्ब्राह्माद्वदन्ति सिद्धान्तात् ।
तेषां युगादिभेदाद्ये दोषास्तान् प्रवक्ष्यामि ॥
चत्वारि शून्यानि पञ्चवेद रसाग्नि यमपक्षाष्ट-
शरेन्दवः कल्पेन प्रति नक्षत्रोदयात् ॥

ब्रह्मकी बनाई हुई उक्त ग्रहगणना, प्राचीन होनेसे निकम्मी हो गई, इस का जिष्णुपुत्र ब्रह्मगुप्त उसका स्फुट लिखते हैं जो अज्ञानीलोग ब्रह्मसिद्धान्तसे अ होकर बात कहते हैं उनके युगादिभेदमें जो दोष है सो कहते हैं । एक कल्प १५८२२३६४५०००० नक्षत्रोंका उदय होता है ।

ब्रह्मगुप्तका अत्यन्त मान करनेवाले भास्कराचार्यनेभी ब्रह्मगुप्तके निरूपण कि हुए वर्ष परिमाण और नक्षत्रावस्थानको अपनी शिरोमणिमें प्रकाश किया है ।

सूर्यसिद्धान्तके लेखक व और मुख्य २ ज्योतिषियोंने अयनकी चपल अ स्थाको कल्पना की है । परन्तु भास्करने इस मतको खंडन करनेके इस लिये स नाभाष्यमें लिखा है,—"यद्येवमनुपलब्धोऽपि सौरसिद्धान्तैः स्वागमप्रामाण्येन भ परिधिवत् कथं तैर्नोक्तः ।" अर्थात् यदि सूर्यसिद्धान्तादिका समय अयनां समस्तही था तो आगममें नर (वासिष्ठसिद्धान्त) के मतानुसार नक्षत्रचक्रके प धिवत् भ्रमण करनेके मतको क्यों उन्होंने प्रकाश नहीं किया । परन्तु इस कारण यथार्थरूपसे विना जानेही भास्कराचार्यने इस प्रकारके मतको प्रकाश कि है सो पीछे लिखा जायगा सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है ।

त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते॥
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा।

एक महायुगमें नक्षत्रचक्र ६०० (३०×२०) वार पूर्वमें अग्रसर होता है। ाभिलषित दिन (अहर्गण) या वर्षोंको ६०० से गुणित करके युगके भूदिन या ःसरसे हरण करके जो प्राप्त हो उसका भुज करके तीनसे गुणित करके दशसे ्ण करनेपर अयनांश प्राप्त होंगे। इस श्लोकका लेख और अर्थ दोनों अत्यन्त टिल हैं। मूल बात यह है कि, सुगम वस्तुके प्रकाश करनेमें इतना प्रयास क्यों ्या जाय। अंकशास्त्रमें यह रीति प्रार्थनीय नहीं है, भास्कराचार्यने जो इसका ीर अर्थ समझा है सो पीछे लिखेंगे।

ज्योतिषके एक और ग्रथम भी अयनांशनिरूपक श्लोकके शेष चरणका अर्थ टिल हुआ है। यथाः-

युगे षट्शतकृत्वो हि भचक्रं प्राक् विलम्बते।
तद्गुणो भूदिनैर्भक्तो द्युगणोऽयनखेचरः॥

यहांपर "द्युगुण" शब्दका अर्थ अर्हगण न किया जाय तो किसी प्रकारसे र्व श्लोकके साथ सामंजस्य नहीं होता। डेमिस साहबने भी इस श्लोकका अर्थ ीक नहीं किया। उन्होंने लिखा है,-Multiply Ahargan (Number Of mean olar qays for which calculation in made)by 600 and divide the prodnct y saven days in a yug, of quotient take sine and multipfy 3 and ivide by 10 to get ayanansha.

जो कुछभी हो, पहले श्लोकसे अवगत हुआ जाता है कि सूर्यसिद्धान्तके मतसे यनका वात्सरिक गति ५४ विकला है।

पराशरका मत है कि; एक कल्पमें नक्षत्रचक्र ५८१७०९ वार चलायमान होता , आर्यभट्टके मतसे ५७८१५९ वार चलता है अतएव इन दोनोंके मतसे क्रमानु- ार प्रतिवत्सर अयन ५२-३ और ५२-१ विकला पूर्वमें अग्रसर होता है। ाशरीसंहिताही आर्यभट्टके सिद्धान्तकी मूलभीत है, उनकी पुस्तकके उद्धृतांशसे ्साही अनुमान होता है। अयनकी चलायमान अवस्थाका प्रथम प्रवर्त्तक पराश- ंका लिखनेवाला है। उसके मतसे अयनचक्र मेषराशिके २७ अंश पूर्वमें और ्श्चिममें इन दोनों बिन्दुओंके मध्यमें डोलता है। पराशरीमें लिखे हुए गगनदर्श- के साथ आर्यभट्टने अपने बनाये हुए गगनदर्शनको मिलाया था व और २ ातोंमें भी अपनी बुद्धिको चलाया था। आर्याष्टशतिका ग्रंथमें उन्होंने अयनके

विषयमें एक भिन्न मत लिखा है—उनके मतसे " चतुर्विंशत्यंशैश्चक्रमुभयतो गच्
अर्थात् अयनचक्र दोनों ओर २४ अंश करके गमन करता है । उसने
परवर्ती ग्रन्थ दशगीतिकामें उक्त मतका निराकरण करके प्राचीन मतको ही
वान् रक्खा है । इसने जो दो मत प्रकाशित किये इससे अनुमान किया जा
कि उसने २४ अंश लिखकर अपने समयमें अनुमानसे अयनकी सीमाका
किया है । अतएव जाना जाता है कि जब अयनचक्र पश्चिमबिन्दुसे २४
अग्रसर हुआ है तब वह उत्पन्न हुए । वराह और सूर्यसिद्धान्तके लेखकके स
अयनचक्र पश्चिमबिन्दुसे २७ अंश अग्रसर हुआ था अतएव आर्यभट्टके स
अयनचक्र मेषके ३ अंश पश्चिममें था इस कारण वह वराहजीसे २१९ वर्ष
अर्थात् शकाब्दसे ९ वर्ष पहिले उत्पन्न हुए । बाबू अपूर्वचन्द्र कहते हैं कि
भट्ट युधिष्ठिरसे १६ शताब्दी पीछे हुए. कोलब्रुकसाहिबका मत है कि, ग्र
बीजगणितके आविष्कारक डिओफानटुसके समयमें आर्यभट्ट वर्त्तमान थे । ि
फानटुस सन् ३१९ ई० के आगे पीछे किसी समयमें उत्पन्न हुआ था ।
निवासी श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक महोदयने 'orion' (मृगशिरा, आर्द्रा)
ग्रन्थ प्रकाश करके वेदके प्रमाण देकर दिखाया है कि अयनकी चला
अवस्था गणितके मतसे अशुद्ध है ।

गर्गसंहिताभी ज्योतिषका एक प्राचीन ग्रन्थ है । वराहजीने वारंवार बृहत्सं
इस ग्रन्थका नाम लिखा है । बृहत्संहिताका अंगरेजी अनुवाद करनेवाले अध
कार्णने गर्गसंहितासे वचन उद्धृत करके लिखा है कि सन् ईसवीसे ४४ वर्ष
गर्गसंहिता बना है । वह वचन यह हैः—

ततः साकेतमाक्रम्य पंचालान् मथुरांस्तथा ।
यवना दुष्टविक्रान्ता प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम् ॥
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते ।
अकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः ॥

दुष्टयवनगण साकेत, पंचाल और मथुराको आक्रमण करके पाटलिपुत्र (
में जायँगे । कुसुमपुरमें जाकर उसको लूटेंगे और तहस नहस कर डालेंगे ।
साहब कहते हैं कि ब्याक्ट्रीयरराजा मिनाण्डरके समयमें इसवी सनसे १४
पहिले साकेतपर चढाई हुई थी । अतएव इस चढाईसे पीछेही गर्गसंहिताका ि
वाला हुआ । गर्गजीने अयनके विषयमें जो कुछ लिखा है उससे जाना जा
कि उन्होंने यह विषय पराशरीसे लिया । क्योंकि अयनका शुभाशुभ फल
करनेमें दोनोंने एक ही मत प्रकाशित किया है ।

यथा, पराशरः—

यदा प्राप्तो वैष्णवान्तमुदङ्मार्गे प्रपद्यते ।
दक्षिणेऽश्लेषां वा महाभयाय ॥

गर्गजी लिखते हैं—

यदा निवर्त्तते प्राप्तः श्रविष्ठामुत्तरायणे ।
आश्लेषां दक्षिणोऽप्राप्तस्तावद्विद्यान्महद्भयम् ॥

दोनों श्लोकका एकही अर्थ है, धनिष्ठाके शेषतक गमन करनेसे सूर्यका उत्तरायण होता है और अश्लेषातक गमन करके दाक्षिणायन आरम्भ होनेपर महाभय की शंका करनी चाहिये । पराशरजीके लेखकी प्राचीनता उनके छंदसे ही प्रगट हो रही है ।

क्रांतिपातका परिधिवत् परिभ्रमण हिन्दुज्योतिषियोंके मध्यमें सबसे पहले वासिष्ठसिद्धान्तके लेखक विष्णुचन्द्रने प्रकट किया, उनका मत है कि क्रांतिपात एक कल्पमें १८९४११ वार परिभ्रमण करता है, अतएव जाना जाता है यह उनके मतसे अयन प्रतिवर्ष ६०.०६ विकला करके पूर्वमें अग्रसर होता है कि यह मत ग्रीसवाले हिपार्कस और टेलिमी इन दो ज्योतिषियोंकी पुस्तकसे लिया गया है, अथवा स्वयम् आर्यज्योतिषियोंका प्रकाश किया हुआ है, इस बातको हम भली भांति निर्णय नहीं कर सकते हैं । परन्तु दोनों ज्योतिषियोंकी निरूपण की हुई अयनकी वात्सरिक गतिको निहारकर जाना जाता है कि इसका विष्णुचन्द्रने निरपेक्षभावसे प्रगट किया । हिपार्कसके मतसे क्रान्तिपात प्रायः ८९ वर्षमें एक अंश और टेलिमीके मतसे १०० वर्षमें एक अंश आगे बढता है ।

भास्करने लिखा है,–शिरोमणिका ६ अध्याय ।

विषुवत्क्रान्तिवलययोः सम्पातः क्रान्तिपातः स्यात् ।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे ॥ १७ ॥
अयनचलनं तदुक्तं मुञ्जलाद्यैः स एवायम् ।
तत्पक्षे तद्भगणः कल्पे गोङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः ॥ १८ ॥

विषुव और क्रांतिमंडलके मिलनेको क्रान्तिपात कहते हैं । सूर्यसिद्धान्तके मतसे एक कल्पमें उसका भगण तीस हजार होता है । अयनचलन और क्रान्तिपात एकही बात है । मुंजलादिके मतसे एक कल्पमें अयनके १९९६६९ भगण होते हैं । शिरोमणिकी व्याख्या करनेवाले मुनीश्वरने सूर्यसिद्धान्तके साथ मेल करनेके लिये "व्यस्ता" का अर्थ–वि=विंशति+अस्ता गुणिता अर्थात् (२०×३००००) ६००००० छः लाख किया है, मुंजलादिके मतसे अयनकी वात्सरिकगति ५९.०९ विकला है ।

किसी २ ज्योतिषीके मतसे ४४४ शकाब्दमें अयनांशका आरम्भ ज्योतिषियोंका मत है कि अयन ६० वर्षमें एक अंश आगे बढ़ संकेत यह है:—

शको वेदाब्धिवेदोनः षष्ठिभक्तोऽयनांशकः।
देयास्ते तु रवौ स्पष्टे चरलग्नादिसिद्धये॥

शकाब्दसे ४४४ घटाकर ६० से भाग करो तो अयनांश प्राप्त हो रविमें उसको मिलानेसे सायन रविका चर और लग्नभी पाई जायगी किया जाता है कि भास्कराचार्यके करणकुतूहलसे पिछले ज्योतिषि भ्रान्त मतको पाया है। करणकुतूहल ११०५ शाकमें लिखा गया है (११) अयनांश लिखे हैं। अतएव ६० वर्षमें एक अंश हुआ इ मतसे ११ अंशके ६६० वर्ष होते हैं। परवर्त्ती ज्योतिषी लोगोंने ११ ६६० घटाकर अयनके आरम्भको पाया है। परन्तु भास्कराचार्य समीचीन नहीं समझते। भास्करने लिखा है:—

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्नः कृतः स्फुटः।
स्थित्यर्द्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि॥
नक्षत्राणां स्फुटा एव स्थिरत्वात् पठिताः शराः
दृक्कर्मणायनेनैषां संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः।

अयनांशके बहुत थोडा होनेसे ब्रह्मगुप्तादि ज्योतिषियोंने स्फुटशर ग्रहणके स्थित्यर्द्ध और परिलेख आदिमें गणित करके स्फुट पाया जा स्थिर रहता है (चलता नहीं) इसलिये नक्षत्रोंके स्पष्ट शरही पठित है दृक्कर्म और अयन (Declination) संस्कृत नक्षत्रोंके स्फुट ध्रुवक अतएव जान पडता है कि भास्करके दृक्कर्मकी (Odservation) ल ११ अंशका भ्रम हुआ होगा। भास्करसे पहले बहुतसे ज्योतिषी ह हंटरसाहबको उज्जयिनीके पंडितोंने जो कई एक ज्योतिषियोंका सम वह नीचे लिखा जाता है।

वराहमिहिराचार्य	१२२
* दूसरा	४२१
ब्रह्मगुप्त	५५०

* यह इस शकाब्दमें उत्पन्न हुआ। उसका प्रमाण बृहत्संहिताकी व्याख्या देखनेसे है। व्याख्या पुस्तकके शेषमें देखिये। यथा—"फाल्गुनस्य द्वितीयायामसितायां गुरो दि शाके कृतेयं विवृतिर्मया"॥

भट्टोत्पल	८९०	शकाब्द.
श्वेतोत्पल	९३९	„
वरुणभट्ट	९६२	„
भोजराज	९६४	„
भास्कर	१०७२	„
कल्याणचन्द्र	११०१	„

भोजराजकी एक शिलालिपिमें ९१९ संवत् और ७८४ शकाब्द लिखा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्षमें कई एक भोजराज हुए हैं। इस कारण स्थिर दृष्टि रखकर प्रत्येक कार्यको करना चाहिये

शतानंदने १०२१ शकाब्दमें भास्वतीनामक पुस्तकको बनाया। यह एक क्षुद्र करण ग्रंथ है इसमें सूर्यसिद्धान्त और वराहजीका निरूपण किया हुआ गणित चुम्बकभावसे लिखा हुआ है।

यथाः—"नत्वा मुरारेश्चरणारविन्दं श्रीमान् शतानन्द इति प्रसिद्धः।
तां भास्वतीं शिष्यहितार्थमाह शाके विहीने शशिपक्षखैके॥
शाको नवाद्रीन्दुकृशानुयुक्तः कलेर्भवत्यब्दगणो व्यतीतः।
वियत्नभोलोचनवेदहीनः शास्त्राब्दपिण्डः कथितः स एव॥
कृतयुगाम्बरवह्निभिरुज्झितो गतकलिःकिलविक्रमवत्सराः।
शरहुताशनचंद्रवियोजिता भवति शाक इह क्षितिमण्डले॥
अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्तसमं समासात्।
शास्त्राब्दपिण्डस्वरशून्यदिग्घ्नस्तानाग्नियुक्तोऽष्टशतैर्विभक्तः॥

पुस्तकके शेषमें लिखा है—

ये खाशिववेदाब्दगते युगाब्दे दिव्योक्तितः श्रीपुरुषोत्तमस्य।
श्रीमान् शतानन्द इमां चकार सरस्वतीशंकरयोस्तनूजः॥

शतानंदके लिखे हुए "मिहिरोपदेशात्" वाक्यको देखकर श्रीयुक्त वेंटलि साहबने सिद्धान्त किया है कि वराहमिहिरजो शतानन्दके गुरु थे इस कारण वह १०६० सन इसवीमें हुए, परंतु पाठकगण! आप भलीभांतिसे याद रक्खें कि वेन्टलिने इसका अर्थ नहीं समझा।

केशव सांवत्सरके पुत्र गणेश दैवज्ञने शकाब्द १४४२ में ग्रहलाघव वा सिद्धान्तरहस्यको बनाया। इन महाशयका लेख अत्यन्त जटिल है।

यहांतक ज्योतिषियोंका समय निरूपण किया गया। यद्यपि हमको वर
राचार्यजीकाही समय निरूपण करता था, परंतु प्रसंग आपडनेसे कई
समालोचना हो गई। बृहत्संहिता नामक ग्रंथ ऐसा है कि जिसके
मनुष्य सब कार्योंमें कुशल हो जाता है, ऐसे उत्तमोत्तम ग्रंथकी भाषाटी
होना और बंबईमें न छपना एक आश्चर्यकी बात थी, परंतु अब देश
विचार करके इस ग्रंथका सरल भाषाटीका अत्यन्त परिश्रमके साथ कि
जिसको तत्काल हमारे परम हितकारी विष्णुभक्त सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णद
अपने लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर यंत्रालयमें मुद्रित कर प्रकाशित किया। उक्त सेठजी
भाषानुवादका संपूर्ण स्वत्व समर्पण किया गया है इस कारण कोई सज्जन
अनुवादमेंसे काटने छाटनेका प्रयत्न न करें। हमारे पूजनीय अग्रज
विद्वद्वर विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रने इस ग्रंथको आदिसे अंत
किया है इस कारण वारंवार उनको हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है।

इसके अनुवादकार्यमें कई पुस्तकोंसे सहायता मिली है जिनका उल्ले
किया जाता है यथाः—भट्टोत्पलकी संस्कृतटीका, वंगवासीकार्यालयसे प्र
पंचाननतर्करत्नकी टीका, तथा, -द्रविडदेशसे प्रकाशित अरुणोदय टीका
प्रकाशक और अनुवादकोंकोभी वारंवार धन्यवाद हुआ है। इस टीकाको
यदि एक भी व्यक्तिके हृदयमें ज्ञानका संचार हुआ तो मैं अपने परिश्रमक
समझूंगा। मैं सहृदय पाठकगणोंसे निवेदन करता हूँ कि इस ग्रन्थके अ
कृपादृष्टिसे निहार जाइये। इसके अतिरिक्त छिद्रान्वेषी गण तो सब अंग
देखेंगे ही। गोसाईं तुलसीदासजीने सत्यही लिखा है,-

जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत उनके मन मा
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमउपल कृषी द
हरिहरयश राकेश राहुसे। पर अकाज लगि सहसबा

जहां कहीं कुछ अशुद्धि रह गई हो वहां पाठकगणोंको शुद्ध कर
चाहिये।

विनीत निवेदन—

बलदेवप्रसादमिश्र

मुहल्ला दीनदार

मुरादाबाद.

श्रीः ।

वाराहीसंहिताकी विषयानुक्रमणिका ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीः ।

अथ विद्वद्वरवराहमिहिराचार्यविरचिता

वाराहीसंहिता

भाषाटीकासहिता ।

प्रथमोऽध्यायः ।

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः । द्रुतकन-
कसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥ १ ॥ प्रथममुनिकथि-
तमवितथमवलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् । नातिलघुविपुलरचनाभि-
रुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥ २ ॥ मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं
साधु न मनुजग्रथितम् । तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः
॥ ३ ॥ क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति यदि पितामहप्रोक्ते ।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृते ॥ ४ ॥ आब्र-
ह्मादि विनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः । क्रियमाणकमेवै-

जो सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं, जो सम्पूर्ण जगत्के आत्मारूप हैं, जो आकाशके स्वाभाविक आभूषणस्वरूप हैं, उन गलाये हुए सुवर्णके समान किरणोंकी माला करके शोभायमान श्रीसूर्यनारायण सर्वोत्कर्ष करके वर्त्तमान हों ॥ १ ॥ प्रथम मुनि (ब्रह्माजी) करके विस्तारपूर्वक वर्णन किये हुए सत्यरूप शास्त्रको अवलोकन करके उसको ही अतिसंक्षेप और अतिविस्ताररहित रचनाके द्वारा स्पष्ट रीतिसे वर्णन करनेके निमित्त मैं वराहमिहिराचार्य उद्यत हुआ हूँ ॥ २ ॥ यदि कहो कि जो मुनि (ब्रह्मादि) विरचित और प्राचीन हैं वे ही शास्त्र उत्तम हैं, और जो मनुष्यविरचित है वह शास्त्र उत्तम नहीं हो सकता,—तहां कहते हैं कि मंत्रसे भिन्न मुनि (ब्रह्मादि) के वाक्यसे मनुष्यरचित शास्त्रके अर्थकी तुल्यता होय और अक्षरमात्रका भेद होय तो मनुष्यरचित वाक्यसे प्राचीन मुनि (ब्रह्मादि) रचित वाक्यमें क्या विशेषता हो सकती है ? जिस प्रकार ब्रह्माजीके रचना किये हुए ग्रन्थमें यह लिखा है, कि—"क्षितितनयवासरो न शुभकृत—मंगलवार शुभकारक नहीं है" और मनुष्यकृत ग्रन्थमें यह लिखा है, कि—"कुजादिनमनिष्टम्—मंगलवार अनिष्टकारक है" यहां पाठभेदके सिवाय मुनिकृतमें मनुष्यकृतसे क्या विशेषता

तत् समासतोऽतो ममोत्साहः ॥ ५ ॥ आसीत्तमः किलेदं तत्रा
तैजसेऽभवद्धैमे । स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः॥
कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य । कालं क
णमेके स्वभावमपरे जगुः कर्म ॥ ७ ॥ तदलमतिविस्तरेण प्रस
वादार्थनिर्णयोऽतिमहान् । ज्योतिःशास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयो
मया ॥ ८ ॥ ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधि
तत्कार्त्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता । स्कन्
ऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ होरान्योऽङ्ग
निश्चयश्च कथितःस्कन्धस्तृतीयोऽपरः ॥ ९ ॥ वक्रानुवक्रास्तम
दयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः । होरागतं विस्तरतश्च ज

है ! अर्थात् कुछ नहीं. ब्रह्मा आदिके रचना किये हुए सम्पूर्ण शास्त्रोंमें अतिवि
देखकर क्रमसे और संक्षेपरूपसे इस शास्त्रको प्रकाश करनेके निमित्त मेरा उ
है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिस समय कुछ सृष्टि नहीं थी उस समय यह सम्पूर्ण
अन्धकारमय था उस अन्धकारके विषे ही जलमें एक तेजयुक्त सुवर्णका अंडा उ
हुआ उसके स्वर्ग और पृथिवीरूप दो टुकडे हुए । उन टुकडोंमेंसे ही सूर्य और च
हैं नेत्र जिनके ऐसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ जगत्की उत्पत्ति होनेके विषयमें
योंके अनेक प्रकारके मतभेद देखनेमें आते हैं, कपिल कहते हैं, कि प्रधान अ
मूलप्रकृतिही विश्वका कारण है, कणाद मुनि कहते हैं कि द्रव्य आदि पदा
जगत्की उत्पत्तिका कारण है, कोई कालको कारण कहते हैं, और अपर (
स्वभावको कारण कहते हैं और मीमांसक कहते हैं कि कर्मही जगत्का का
॥ ७ ॥ जगत्की उत्पत्तिका वर्णन करनेके विषयमें अधिक विस्तार करनेकी
श्यकता नहीं है. इस प्रसंगका निर्णय करनेमें अनेक पदार्थोंका वर्णन करना
और वह विषय भी थोडा नहीं इस कारण इसका विचार छोडकर हमको यहाँ
ज्योतिषशास्त्रोंके अंगोंका निर्णय करना है ॥ ८ ॥ अनेक प्रकारके भे
ज्योतिषशास्त्र तीन भागोंमें बँटा हुआ है, संहिता, तंत्र और होरा । जिसमें
ज्योतिषशास्त्रके विषयोंका वर्णन होय उसको संहितास्कन्ध कहते हैं
जिसमें गणितसे ग्रहोंकी गति वर्णन की जाती हो उसको तंत्रस्कन्ध क
और जिसमें अंगोंका निर्णय अर्थात् यात्रा विवाह आदिका वर्णन है उस
स्कन्ध कहते हैं ॥ ९ ॥ मने अपने रचे हुए पञ्चसिद्धान्तिकानाम करण
तारा (भौमादि पञ्च) ग्रहोंके वक्र, मार्ग, अस्त और उदय आदि वर्णन वि
और बृहज्जातक तथा बृहद्विवाहपटल आदि ग्रन्थोंके विषे जन्म, यात्रा,

निबाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥ १० ॥ प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान्
गोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च । संत्यज्य फल्गूनि च सारभूतं
र्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुपनयनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः ।

त्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसू-
समः सुसंहतोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखन-
चिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्त-
। प्रायः शरीराकारानुवर्त्तिनो हि गुणाश्च दोषाश्च भवन्ति
॥ तत्र गुणाः—शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्ग्मी प्रतिभानवान् देश-

विस्तारपूर्वक प्रथम ही वर्णन कर दिये हैं ॥१०॥ अब गर्ग आदि मुनियोंके
ए प्रतिशास्त्रोंके आरम्भमें शिष्योंके किये हुए प्रश्न और गर्ग आदि मुनियोंके
ए उत्तर और अनेक प्रकारके कथा प्रसङ्ग तथा सूर्यादि ग्रहोंकी उत्पत्ति आदि
: वार्ताओंको और गोलविरुद्ध जो प्राचीन वार्त्ता प्राचीन संहिताग्रन्थोंमें वर्णन
उनका भी कार्य बहुत कम पडता है,इस कारण उन सब निःसार वार्ताओंको
कर साररूप और भूतार्थ पदार्थोंको इस ग्रन्थमें वर्णन करता हूँ ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

हां प्रथम सांवत्सर अर्थात् ज्योतिषीका यह लक्षण कहा है—कि सुन्दर कुलमें
हो, देखनेमें प्रिय हो, विनीतवेष हो, सत्यवादी हो, औरोंके गुणोंमें दोष
कालता हो, और सर्वाङ्गसुन्दर हो, अङ्गहीन न हो और उसके हाथ, पैर,
नेत्र, ठोडी, दन्त, कान, मस्तक, भौं और शिर यह सब अंग श्रेष्ठ लक्षणों—
युक्त हों, शरीर स्थूल और रमणीय हो, गम्भीर शब्द बोलनेवाला हो वह
षी नामका पूरा अधिकारी होता है, क्योंकि प्रायः गुण और दोष सब शरीर
आकारके अनुसार होते हैं ॥ १ ॥ पवित्र, चतुर, प्रगल्भ अर्थात् सभामें
बोलनेवाला, वार्त्ता करनेमें चतुर, तुरतबुद्धि, देशकालका जाननेवाला, चित्त

कालवित्सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनी
लोऽव्यसनीशान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबु
तोपवासनिरतःस्वतन्त्राश्चर्योत्पादितज्ञानप्रभावः पृष्टाभिध
त्रदैवात्ययाद्ग्रहगणितसंहिताहोराग्रन्थार्थवेत्ता ॥ २ ॥ तः
णिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु ि
युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहुर्त्तनाडीविनाडीप्राणत्रु
वयवाद्यस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता ॥ ३ ॥ चतुर्णां च
सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च
भिज्ञः ॥ ४ ॥ षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्र
च्छेदवित् । सौरादीनाञ्च मानानां सदृशासदृशयोग्यायोग
पादनपटुः । सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सम
खासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानाञ्च छायाजलयन्त्रदृग्गणि

कपट न रखनेवाला, सभामें भयभीत न होनेवाला, सहाध्यायियोंसे ति
न होनेवाला, चतुर और सब प्रकारके व्यसनोंसे रहित, शान्ति
अभिचार और स्नान (आदि) विद्याके विषयोंको जाननेवाला,
और उपवास करनेमें तत्पर, अपने किये हुए ग्रहगणिसे आश्चर्य उ
प्रतापको फैलानेवाला, प्रश्न करनेपर फल कहनेवाला, अनेक प्रकारके
उत्पन्न होनेवाले अशुभरूप दैवात्ययको निवारण करनेके लिये विना पूछे
आदिका बतलानेवाला,ग्रहगणित, संहिता और होरा आदि सम्पूर्ण ग्रन
जाननेवाला ज्योतिषी होना चाहिये ॥२॥ ग्रहगणित अर्थात् पौलिश, रो
सौर और पैतामह इन पांचों सिद्धान्त शास्त्रोंके विषे जो युग, वर्ष,
मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घडी, पल, प्राण, त्रुटि और त्रु
आदि कालको जाननेवाला, तथा कला, विकला, अंश और राशि क्षे
वाला ज्योतिषी होना चाहिये ॥ ३ ॥ सौर, सावन, नक्षत्र और चा
प्रकारके मास, अधिमास और क्षयमास आदिके कारणोंको जाननेवा
होना चाहिये ॥ ४ ॥ साठ जो प्रभव, विभवादिक संवत्सर हैं, उ
युग ' युगं भवेद्वत्सरपञ्चकेन ' होते हैं मास, दिन, होरा इन्होंके स
पत्ति विच्छेद (होने न होने) को जो जानता हो । सौर, चान्द्रा
प्रमाण जो शास्त्रमें भिन्न भिन्न लिखे हैं उनमें कौन ठीक है और कौ
इसके विचारमें पटु हो । यदि सिद्धान्तग्रन्थोंमें सौरादि मानमें भेद दे
(याम्यायन, सौम्यायन) बदलते समय प्रत्यक्ष सममण्डल (पूर्वा

पादनकुशलः । सूर्यादीनाञ्च ग्रहाणां ...
नीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः । सूर्यचंद्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमो-
कालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्ण देशानामनागतग्रहसमागमयुद्धा-
मादेष्टा । प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्षाप्रमाणप्रतिविषययोजनपरि
च्छेदकुशलो भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्ज्यासचरदल-
लराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकालकरणेष्वभिज्ञो
नाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसंतापाभिनिवेशै
शुद्धस्य कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्य वक्ता तन्त्रज्ञो
ति । उक्तञ्च । न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि
ः । निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ञेयः ॥ * ॥
ोऽन्यथान्यथार्यः करणं यच्चान्यथा करोत्यबुधः । स पितामह-
गम्य स्तौति नरो वैशिकोऽनार्याम् ॥ * ॥ तन्त्रे सुपरिज्ञाते लग्ने
याम्बुयन्त्रसंविदिते । होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या
* ॥ उक्तश्चार्यविष्णुगुप्तेन । अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचि-
सादयेदनिलवेगवशेन पारम् । न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्य

धासे जितने अंशपर उपलब्ध हो उसको छाया, जलयंत्रसे दृग्गणित (गणित
ा प्रत्यक्ष) करनेमें कुशल हो । तथा सूर्यादि ग्रहोंके शीघ्रगति, मन्दगति,
ेणगति, उत्तरगति नीच और उच्च गतिके कारणको जानता हो । सूर्य और
द्रमाके ग्रहणमें स्पर्श, मोक्षकाल और स्पर्श, मोक्षकी दिशा, ग्रहणकी स्थिति
र्द (स्पार्शिक विमर्द और मौक्षिक विमर्द) वर्ण, देश और आगामी ग्रह
ागम तथा ग्रहयुद्धको बतानेवाला हो । प्रत्येक ग्रहोंके भ्रमण करनेकी योजना
रत्वादी, अक्षांश, लम्बांश द्युज्या, चरखण्डकाल, राशियोंके उदय मान,
या, नाडी, करण आदिमें क्षेत्र, काल, कारणको जानता हो । नाना प्रकारके
ोत्तर कहनेमें सत्यवाक् हो । कसौटीसे घिसे, अग्निसे तपाये और शाणद्वारा
 सुवर्ण सदृश स्वच्छ शास्त्रका वक्ता तन्त्रज्ञ हो सकता है । कहा भी है कि जो
श्चित अर्थ नहीं कह सके, प्रश्न पूछनेपर उत्तर न देसके, और विद्यार्थीको भी
 न सके वह शास्त्र जानता है यह कैसा समझा जाय । जो अज्ञ पुरुष ग्रंथ
कुछ है और अर्थ कुछ करता है, और करण ग्रंथको उलट पलट करता है
लम्पट मनुष्य मानो ब्रह्माजीके समीप जाकर वेश्याकी स्तुति करता है । जो

गच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ * ॥ होराशास्त्रेऽपि
होराद्रेक्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो
दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणंप्रकृतिधातुद्र
तिचेष्टादिपरिग्रहोनिषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्यादेशसद्योमर
[illegible] द्रयोगद्वि ग्रहादियोगानां
सादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्य
तात्कालिकप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहादीनाञ्च
करणम् । यात्रायां च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्तविलग्नयं
स्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गि
प्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्यापायमंगलामंगलशकुनसैन्यनिवेश
ग्निवर्णामन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः
लम्भोपायाश्चेत्युक्तं चाचार्यैः। जगति प्रसारितमिवालिखितमि

तन्त्रको जानता हो, छाया, जल, यन्त्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता
होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषकी वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो
आर्य विष्णुगुप्तने कहाभी है कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार ह
तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परन्तु यह कालपुरुषका रूप जो
शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिभिन्न मनुष्य मनसेभी पार नहीं हो सकता
शास्त्रमें भी राशि, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश और बलाबल
स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्द्धारण है
धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निषेक, जन्मकाल,
प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा,
राजयोग, चन्द्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभसादि सब योगोंका फल,
भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनूकादि व तिस कालके सब प्रश्नोंक
कारण, सबही विवाहादि कर्म समूहोंका हेतु यात्राका वर्णन तिथि, दिव
नक्षत्र मुहूर्त्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फडकना, स्वप्न, विजय, स्नान
गणयात्रा, अग्निलिंग, हाथी घोडेके संकेत, सेना प्रवादकी चेष्टा इत्यादि
उपाय, मंगल अमंगलके शकुन, सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नि
मंत्री, चर, दूत और वनचारियोंका कालानुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भ
सब यात्राओंका हेतु स्वरूप, यह सब बातें होराशास्त्रोंमें कही हैं । आच
है, जगत्में प्रचार हुएके समान, बुद्धिमें लिखे हुएके समान, हृदयमें
समान भगणसहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो

स्तमिव हृदये । शास्त्रं यस्य समग्रणं नादेशा निष्फलास्त-
॥ ९ ॥ संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति । यत्रैते संहिता-
र्थाः । दिनकरादीनांग्रहाणां चारास्तेषु च [illegible]
वर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गांतर वक्रानुवक्रर्क्ष-
मागमचारादिभिः फलानिनक्षत्रकूर्मविभागेनदेशेष्वगस्ति-
सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमा-
ग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुम-
परिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसंध्यारागगं-
गररजोनिर्घातार्घकांडसस्य [illegible]
घवायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्र [illegible]
लक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखञ्जनोत्पातशां-
यूरचित्रकघृतकम्बलखङ्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रील-
न्यंतःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डश-
सनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानिशुभाशु-

ा है, उसका आदेश कभी निष्फल नहीं होता है ॥ ९ ॥ ज्योतिषशास्त्रकी
ाओंमें चतुर पुरुषही दैवज्ञ हो सकते हैं । क्योंकि संहिताओंमें इन सब
का निरूपण होता है, यथा,—सूर्यादिग्रहकी चाल, तिनमें सूर्यादि सब ग्रहोंका
व, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक्
वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह, व समागमादिसे कालका निरूपण करना,
विभाग और कूर्मविभागसे सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी चाल, सप्त-
की चाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृंगाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण,
ा फल, गर्भलक्षण, रोहिणीयोग, स्वातीयोग, आषाढीयोग, शीघ्र वर्षाका
, कुसुम, लता, परिधि (घेरा), परिवेष, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह,
ल, संध्याका फूलना, गन्धर्वनगर, धूरि, निर्घात, वस्तुओंका महँगा हो जाना,
का उत्पन्न होना, इन्द्रध्वज, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगीरी थवई आदि)
वेद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण,
ालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदगार्गल, नीरांजन (विस-
), खंजन, उत्पातशान्ति, मयूरचित्रक, घृतलक्षण, कम्बललक्षण, खड्गलक्षण,
क्षण, कृकवाकु (कुक्कुट) लक्षण, कूर्मलक्षण, गोलक्षण, अजालक्षण, कुत्
ता) लक्षण, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण, अन्तःपुर-
ा, पिटक (वेदादिसे बना हुआ पिटारा) लक्षण, मोतीके लक्षण, वस्त्रच्छेद-
ा, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शय्यालक्षण, आसनलक्षण, रत्नपरीक्षा, दीप-

भानि निमित्तानिसामान्यानिच जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे
क्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि । नचै
शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि । तस्मात् सुभृते
नान्ये तद्विदश्चत्वारो भर्तव्याः । तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च
कयितव्या । याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या
चेति । यस्मादुल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमुपगच्छ
तेषां चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षाभिघातादिभिः फला
न्ति ॥ ६ ॥ उक्तञ्च गर्गेण महर्षिणा । कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुश
गणितनैष्ठिकम् । यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति
वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः । अपि ते
न्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ ८ ॥ अप्रदीपा यथा रा
र्यं यथा नभः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्व
मुहूर्त्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा । सर्वाण्येवाकुला
स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ १० ॥

लक्षण और दन्तकाष्ठादि आश्रित समस्त शुभाशुभनिमित्त इस संहिता
जाते हैं । दैवज्ञलोगोंको उचित है कि दूसरे कार्योंमें मन न लगाकर सं
प्रत्येक पुरुषके लिये समस्त पार्थिव बातोंमें साधारण, असाधारण,
शुभको सर्वदा विचारें । परन्तु दिनरात इन बातोंका शुभाशुभ निर्णय क
आदमीका काम नहीं है, अत एव सुभृत दैवज्ञके साथ इस प्रकारके श
वाले और भी चार आदमियोंको राजा नियत करे । तिनमेंसे एक अ
और अग्निकोणकी बातें देखनी चाहिये । दूसरेको दक्षिण और नैर्ऋत
पश्चिम और वायुकोणकी, चौथेको उत्तर और ईशाणकोणकी बातें दे
कि जिससे उल्कापातादि निमित्त शीघ्र मालूम हो जाय । क्योंकि इ
तादिका फल आकार, वर्ण, स्नेहप्रमाणादि और ग्रह नक्षत्र व अभिघा
तहीं होता है । गर्गाचार्यने कहा है-साङ्गोपांग कुशल, होरा और
चतुर दैवज्ञको जो राजा नहीं पुजता है वह शीघ्रही नाशको प्राप्त
॥ ६ ॥ ७ ॥ वनवासी, ममताहीन और कुछ न ग्रहण करनेवाले पुरु
क्षत्रादिकी गति जाननेवाले पंडितोंसे सब बातें पूंछा करते हैं ॥ ८ ॥
रात्रि और सूर्यहीन आकाशके समान दैवज्ञहीन राजा भी शोभायमान
वरन् वह अन्धेके समान कुपंथमें घूमा करता है ॥ ९ ॥ विना दैवज्ञके

ज्ञाभिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः । जयं यशः श्रियं
श्रेयश्च समभीप्सता ॥ ११ ॥ नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं
च्छता । चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥ १२ ॥
त्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते । ब्रह्मलोकप्रतिष्ठाञ्च लभते
तकः ॥ १३ ॥ ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत् कृत्स्नं जानाति यो
अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः ॥ १४ ॥
हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् । ऋषिवत्तेऽपि
किं पुनर्दैवविद्द्विजः ॥ १५ ॥ कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रु-
भैः । कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ॥ १६ ॥
त्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पंक्तिदूषकः पापो
क्षत्रसूचकः ॥ १७ ॥ नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः
त्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडंबिना ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टस्य

ऋतु और अयनादि सब उलट पलट हो जायँ ॥ १० ॥ इस कारण
, श्री, भोग और मंगलार्थी राजाको विद्वान् और अग्रणी दैवज्ञके निकट
र्थात् सब कुछ जान लेना उचित है ॥ ११ ॥ जिस देशमें दैवज्ञ न रहता
देशमें वास करना उचित नहीं है, क्योंकि सब बातोंका नेत्ररूप दैवज्ञ
करता है वहां पर कोई भी पाप नहीं रहता है ॥ १२ ॥ दैवज्ञके
नेसे या दैवज्ञको पढानेसे नरकमें नहीं जाना पडता, वरन् दैवचिन्तक
ह्मलोकमें प्रतिष्ठा मिलती है ॥ १३ ॥ जो ब्राह्मण इस विषयको ग्रंथके
वा अर्थ के अनुसार भलीभांति जान लेते हैं, वह श्राद्धमें प्रथम
करनेवाले और पंक्तिपावन होकर सब जगह पूजे जाते हैं ॥ १४ ॥
रा यवनके पासभी जो यह शास्त्र हो तो ऋषिलोगोंके समान उनकी
करना चाहिये, फिर दैवचिन्तक ब्राह्मणके लिये इससे अधिक
क्या कहा जाय ॥ १५ ॥ किसी प्रकारसे कुहक (माया धोखा,
ी) गर्वसे ढका हुआ अथवा कानोंसे श्रवण करनेके हेतु विशिष्ट अर्थात्
जन होनेपर दैवज्ञसे कोई बात न पूछे और दैवज्ञ भी न कहे ॥ १६ ॥ जो
ना शास्त्रके जाने हुए दैवज्ञ हो जाय, उस पंक्तिदूषक पापात्माको "नक्षत्र
(पडिया) जाने ॥ १७ ॥ नक्षत्रसूचकके उपदेश किये हुए उपवासा-
ो पुरुष करता है, वह आदमी उस नक्षत्रसूचकके साथ अंधतामिस्र नामक
डता है ॥ १८ ॥ नगरद्वारलोष्टकी प्रार्थनाके (षष्ठीशालग्रामादि होनेके

यद्वत् स्यादुपयाचितम् । आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स नि
गद्यते ॥ १९ ॥ सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रिय
मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ् महीक्षिता ॥ २० ॥
सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः । अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण
कर्तव्यो जयैषिणा ॥ २१ ॥ न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा
गुणम् । करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥ २२ ॥ दु
ष्टदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । क्षिप्रं प्रयान्ति
शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥ २३ ॥ न तथेच्छति भूपतेः
जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत् । स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा
मात्तः सबलस्य दैववित् ॥ २४ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सरसूत्रं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २

तृतीयोऽध्यायः ।

आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम् । नूनं कदाचि
सीद् येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कट

अभिलाषके) समान, अज्ञानी पुरुषका आदेश कभी सत्य भी हो जाता है ॥
सम्पत्तियुक्त अर्थात् अनेक प्रकारके अर्थको बतानेवाले, अथवा सम्पत्तिहीन
जिसको अत्यन्त प्यारी हो और थोड़ेसेही ज्ञानसे मतवाले होनेवाले है
राजा त्याग देवे ॥ २० ॥ होरा, गणित और संहितामें उत्तम ज्ञान रखनेवाले
ज्ञको जीतकी इच्छा करनेवाला राजा लोग पूजें और उसको अंगीकार करें
एक देशकालका जाननेवाला दैवचिंतक जो काम करनेका सामर्थ्य रखता है
कार्यको हजार हाथी या चार हजार घोड़े नहीं कर सकते ॥ २२ ॥ दैवज्ञके
चन्द्रका नक्षत्रसंवाद श्रवण करनेसे बुरे स्वप्न, बुरे देखे हुए और बुरे कर्म
शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ २३ ॥ दैवज्ञलोग अपना यश बढानेके अर्थ
राजाका इस प्रकार हित करते हैं कि जिस प्रकार उस राजाके पिता, माता,
और भाई बन्धुभी नहीं कर सकते ॥ २४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबा
स्तव्यपण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥

निश्चयही किसी समयमें आश्लेषा नक्षत्रके अर्द्धभागसे दक्षिणायन औ
ष्ठाके प्रथमसे उत्तरायण प्रचलित था, नहीं तो पहिले शास्त्रोंमें इसका वर्ण

गादित्थश्चान्यत् । उक्ता भावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः
२ ॥ ... वा सहस्रांशोः । छाया-
वेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥ अप्राप्य मकरमर्को
निवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् । कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्त-
त्तरां सैन्द्रीम् ॥४॥ उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धि-
ः । प्रकृतिस्थश्चाप्येयं विकृतगतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥ ५ ॥ सत-
र्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते । स निहन्ति सप्त
पान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ॥ ६ ॥ तामसकीलसंज्ञा राहुसुताः
तवस्त्रयस्त्रिंशत् । वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ॥७॥
चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चान्द्रमण्डले सौम्याः । ध्वाङ्क्षक-
न्धप्रहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि ॥ ८ ॥ तेषामुदये रूपाण्य-
ः कलुषं रजोवृतं व्योम । नगतरुशिखरविमर्दी सशर्करो मारु-
चण्डः ॥ ९ ॥ ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां
हः । निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र चोत्पाताः ॥ १० ॥ न

ा ? परन्तु सूर्यका जो अयन इस समयमें प्रचलित है वह कर्कटकी आदि
र मकरके प्रथमसे ही आरम्भ होता है इस विषयके अभावकोही विकृति कहते
प्रत्यक्ष परीक्षा करनेसे जो ठीक होगा उसकोही प्रकाशित किया जायगा ॥ १ ॥ २ ॥
के उदय वा अस्तकालमें महामंडलकी दूरीके चिह्नोंके वेधसे अथवा महामण्ड-
ें छायाके प्रवेश और छायाके निकलनेके चिह्नोंसे अयनकी परीक्षा होती
। ३ ॥ सूर्य विना मकरराशिमें गये यदि लौट आवें तो दक्षिण-पश्चिम दिशाका
ा करते हैं, और जो विना कर्कराशितक गये लौट आवें तो पूर्व-उत्तर दिशाको
करते हैं, यदि उत्तरायणको लांघकर लौट आवें तो मंगल होता है, धान्यकी
द्धि होती है, इसको ही प्रकृतिस्थ सूर्य कहते हैं, सूर्यकी गति विकृत होनेसे भय
ा है ॥ ४ ॥ ५ ॥ यदि विना पर्वकालके सूर्य अपने मंडलको राहुयुक्त करे तब
त राजाओंकी मृत्यु होगी और शस्त्र अग्नि वा दुर्भिक्ष आदिसे मनुष्योंका
श होगा ॥ ६ ॥ तामस और कीलकादि नामवाले राहुके पुत्र केतु तेतीस
ारके हैं, वर्ण स्थान और आकारादिसे सूर्यमंडलमें उनको देखकर फल निर्णय
ना चाहिये ॥ ७ ॥ वह यदि सूर्यमंडलमें जाय तो अमंगलकारक है, परन्तु
द्रमंडलमें जाय तो शुभफलको देते हैं, जो यह चन्द्रमंडलमें काक, कबन्ध या
त्रके रूपसे प्रकाशित होवें तो अमंगलदायक हैं ॥ ८ ॥ इन केतुओंका उदय
ेसे सबहीमें उथल पुथल हो जाती हैं, जल मलीन हो जाता है, आकाशमें
ी छा जाती है, पर्वत और वृक्षोंके शिखरको मर्दन करनेवाला प्रचण्ड पवन चला

पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि । तदुद
रणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ यस्मिन् यस्मिन्
दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बसस्थाः । तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं म
तीनां परिज्ञेयम् ॥ १२ ॥ क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टध
चरिताः । निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेणायान्ति परदेशान् ॥ १
तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः । सन्तः
शरीराः शोकोद्भवबाष्परुद्धदृशः ॥ १४ ॥ क्षामा जुगुप्स
स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः । स्वनृपतिचरितं कर्म च प
प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥ १५ ॥ गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न
वारिमुचः।सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित् क्वचिज्जायते सस्यम् ॥
दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने।ध्वाङ्क्षे च
रभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥१७॥ राजोपकरणरूपैश्छत्रध्व

करती है, वृक्ष ऋतुसे विपरीत हो जाते हैं, मृग और पक्षी इत्यादि प्रदीप्त
ओंकी ओर दौडते या शब्द करते हैं, दिग्दाह, निर्घात और भौंचाल आदि
उत्पात होते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ इन राहुके पुत्रोंमें यदि बाण या खम्भादि
राहुको दर्शन होय तो पहिलेके समान फल कहना चाहिये, इस प्रकार
उदयका कारण और केतु आदिका फलाफल निर्णय करे ॥ ११ ॥ सूर्यबि
केतु जिन जिन देशोंमें दिखाई दे, उन्हीं २ देशोंके राजाका अमंगल होगा
इनके उदय होनेसे मुनिलोगभी भूंखसे थकित देहवाले और स्वधर्म व श्रेष्ठ
हीन होकर मांसहीन बालकोंको हाथमें लेकर अतिकष्टसे दूसरे देशोंमें जायँगे
साधुओंके वित्तको तस्कर चुरा लेंगे, इस कारण वह लम्बे लम्बे सांस छो
नेत्रोंसे आंसू बहाते व्याकुल देहसे शोकके मारे गद्गद कंठ होकर रहेंगे ।
तिस कालमें मनुष्य अपने राजा या दूसरे राजचक्रसे अत्यन्त दुबले होकर
कारी हो जायँगे, कोई स्वदेशीय राजाके चरित्र या पराकृत कर्म भी निन्द
॥ १५ ॥ मेघ गर्भयुक्त होकरही रहेंगे, बहुतसा जल नहीं देंगे, नदियें कम
हो जायँगी, धान कहीं कहीं उत्पन्न होगा ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डलमें द
केतु दिखाई देनेसे राजाका मरण होता है, कबन्ध दिखलाई देनेसे व
भय उत्पन्न होता है, ध्वांक्षाकार दिखलाई देनेसे चोरभय और
आकार दीखनेसे अकाल होता है ॥ १७ ॥ राजाके उपकरणरू

---

१ दीप्ता इत्यादि दिशाओंका वर्णन शकुनाध्यायमें करेंगे ।

मरादिभिर्विद्धः । [illegible] ॥ १८ ॥
एकोदुर्भिक्षकरो द्व्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय । सितरक्तपीतकृष्णै
स्तैर्विद्धोऽर्कोऽनुवर्णघ्नः ॥ १९ ॥ दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बसंस्थो
त्थिता महोत्पाताः । आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥ २० ॥
ऊर्ध्वकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनाशयति । पीतो नरेन्द्रपुः
श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥ २१ ॥ चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मि
र्व्याकुलां करोति महीम् । तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु
पातयति ॥ २२ ॥ ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिरे हरिकुंकुमच्छ
विश्च मधौ । आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥ २३ ॥
शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः । प्रावृट्काले
स्निग्धः सर्वर्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥ रूक्षः श्वेतो विप्रान्
रक्ताभः क्षत्रियान्विनाशयति । पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान्
शुभकरः स्निग्धः ॥ २५ ॥ ग्रीष्मे रक्तोभयकृद्वर्षास्वसितःकरोत्य

ध्वज, चामरादि चिह्न यदि सूर्यमण्डलमें विधे हुए हों तो राज्यकी बदली होती है और चिनगारी या धूमादिसे ढक जानेपर सब मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ १८ ॥ पूर्वश्लोकोक्त छत्रादि एक चिह्नके सूर्य विद्ध होवे तो दुर्भिक्ष होता है, दो आदिसे विद्ध होवे तो राजाका नाश होता है, सपेद, लाल, पीला और काला इन वर्णवाले पूर्वोक्त चिह्नसे विद्ध होनेपर क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका नाश होता है ॥ १९ ॥ उत्पन्न हुए यह महाउत्पात रविबिम्बमें जहां कहीं दिखाई देंगे, उस देशके रहनेवाले सब लोगोंको भय होगा ॥ २० ॥ सूर्यके ऊपर भागकी किरण जो ताम्ररंगकी हो तो सेनापतिका नाश होता है, पीतरंगकी हो तो राजपुत्रका और श्वेतवर्णकी हो तो राजपुरोहितका नाश होता है ॥ २१ ॥ सूर्यका किरणमण्डल यदि अनेक रंगोंसे रंगा हुआ होय अथवा धूम्रवर्ण होय, यदि शीघ्र वर्षा न हो तो चोरोंसे या शस्त्रनिपातादिसे समस्त पृथिवी व्याकुल होगी ॥ २२ ॥ सूर्यमण्डल शिशिरकालमें ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसन्तकालमें हरित कुमकुमके समान ग्रीष्मकालमें कुछ एक पाण्डुवर्ण (श्वेत और पीत मिला हुआ) और स्वर्णके समान, वर्षाकालमें शुक्लवर्ण, शरदकालमें कमलके गर्भकी छबिके समान और हेमन्तकालमें रक्तवर्ण होनेपर शुभकारक है, परन्तु वर्षाकालमें स्निग्ध होनेपर अशुभ होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ रूखा या श्वेतवर्ण होनेसे ब्राह्मणोंका नाश होता है रक्तकी आभायुक्त होनेपर क्षत्रीका नाश, पीतवर्णसे वैश्यका और काला वर्ण होनेसे शूद्रका नाश होता है, सूर्यके इन सब रंगोंमें चमक हो तो शुभ होता है ॥ २५ ॥

नावृष्टिम् । हेमन्ते पीतोऽर्कःकरोत्यचिरेण रोगभयम् ॥ ॰
सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः । प्रावृट्काले
करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥ २७ ॥ वर्षाकाले वृष्टिं करोति
शिरीषपुष्पाभः । शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशा॰
॥ २८ ॥ श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परच॰
यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ॥ २९ ॥ शश॰
निभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति संग्रामाः । शशिसदृशे नृप॰
क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ॥ ३० ॥ क्षुन्मारकृद्घटनिभः
नृपहा विदीधितिर्भयदः । तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशन॰
॥ ३१ ॥ ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे
कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति नृपं ततः सचिवः ॥

ग्रीष्मकालमें सूर्यका मण्डल लाल होवे तो प्राणियोंको भय होता है, वष॰
कृष्णवर्ण हो तो अनावृष्टि होती है और हेमन्तकालमें पीतवर्ण हो तो
रोगभय होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्यमण्डल वर्षाके समय इन्द्रका चाप सन्मु॰
पडनेसे खण्डित देहवाला दिखाई दे तो राजाओंमें विरोध होता है, यदि
किरणवाला दीखे तो शीघ्र ही वृष्टि होती है ॥ २७ ॥ यदि वर्षाकालमें सू॰
शिरीषके फूलके समान आभावाला ज्ञात हो तो शीघ्र वर्षा होगी, परन्तु
पूंछके समान आभादार दिखाई दे तो बारह वर्षतक अनावृष्टि होगी ॥
सूर्यका बिम्ब श्यामवर्णवाला हो तो (देशमें) कीटभय, राखके समान
हो तो परराष्ट्रसे भय होता है और जिस राजाके जन्मनक्षत्रमें वि॰
सूर्यमें छिद्र दिखाई दे तो उस राजाका नाश हो जाता है ॥
जो सूर्यका रंग खरहेके रंगके समान शोणित हो तो युद्ध होता है और ॰
समान रंगवाला दिखाई दे तो शीघ्र ही उस देशके राजाका नाश होक॰
राजा हो जाता है ॥ ३० ॥ जो सूर्यमण्डल घडेके आकारसा दिखाई दे तो
गण) क्षुधाकी ज्वालासे प्राण छोडें, खण्डाकार होनेपर राजाका नाश ॰
किरणहीन होनेपर भय होता है, तोरण (फाटक) रूप होनेपर नगर॰
होता है, छत्राकार होनेपर देशविनाश होता है ॥ ३१ ॥ जो सूर्यका बिम्ब॰
समान रूखा अथवा धनुष या ध्वजके समान हो तो संग्राम होता है, यदि
ण्डलमें काली रेखा दिखाई दे तो मन्त्रीसे राजाका नाश होता है ॥ ३२ ॥
वज्र या बिजली जो उदयकालमें सूर्यको टक्कर दे तो वर्तमान राजाका ना॰

...यदा हन्युः । ...
यात् तदान्यराजप्रतिष्ठां च ॥ ३३ ॥ ...
रवेर्यी सन्ध्ययोर्द्वयोरथवा । रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं
रोत्यन्यम् ॥ ३४ ॥ प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः सन्ध्याद्वयेऽपि
ाकारी । मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥ ३५ ॥
नकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम् । भवति च
धाच्छुद्धं कनकमिव हुताशपरितापात् ॥ ३६ ॥ दिवसकृतः
तेसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् । उभयस्थः सलिल-
यं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३७ ॥ रुधिरनिभो वियत्स्थ-
नेपान्तयरो न चिरात् । परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत्
३८ ॥ असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः । खगमृगभैरव-
रुतैश्च निशाद्यमुखे ॥ ३९ ॥ अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटवि-

रे राजाकी प्रतिष्ठा होती है ॥ ३३ ॥ जिस देशमें सूर्यदेव प्रतिदिन प्रातःकालमें
र सन्ध्यकालमें परिधिवाले (पीषयुक्त) होते हैं अथवा लाल रंगको धारण करके
य होते और छिपते हैं उस देशमें निश्चयही दूसरा राजा होता है ॥ ३४ ॥
ई प्रातःकाल और सन्ध्याकालमें सूर्यबिम्ब शस्त्रके समान आकारवाले बादलोंसे
र जाय तो युद्ध होगा और मृग, महिष, पक्षी, गधे और हाथीके समान मेघोंसे
: जाय तो अत्यन्त भय होगा ॥ ३५ ॥ जैसे अग्निके तापसे सुवर्ण अत्यन्त
ड़ाको प्राप्त होकर पीछेसे शुद्ध हो जाता है, वैसेही समस्त नक्षत्र सूर्यकी किरणोंके
तापसे कष्ट पाकर फिर शुद्ध होते हैं ॥ ३६ ॥ सूर्यदेवकी उत्तर दिशामें यदि
तेसूर्य दिखाई दे तो वृष्टि होगी, दक्षिणदिशामें दिखाई देनेसे आंधी तूफान
ा, सूर्यकी दोनों ओर दिखाई देनेसे जलभय, नीचे दीखनेसे लोकविनाश और
र दीखनेसे राजाका विनाश होता है ॥ ३७ ॥ यदि आकाशके ऊपर भागमें
लालरंगका दिखलाई दे, या भयंकर धूरीकी राशिसे लाल वर्णका दिखलाई दे
शीघ्रही राजाकी मृत्यु होती है ॥ ३८ ॥ जो सूर्यका बिम्ब कृष्णवर्ण, विचित्रवर्ण
था नीलवर्ण होकर भयंकर आकार धारण करे और जो सन्ध्याकालमें पक्षी
र मृगोंका शब्द गधेके शब्दके समान भयंकर हो तो सब लोगोंका विनाश हो
ा है ॥ ३९ ॥ जो सूर्य निर्मल देहवाला, गोलमण्डलवाला, साफ २ अत्यन्त
लि दीर्घ किरणवाला हो और उसकी देह विकाररहित हो रंगभी विकार रहित

१ सूर्यके उदयकालमें जो रक्तवर्ण सूर्यके समान पदार्थ दीखता है उसको ही प्रतिसूर्य कहते हैं ।

पुलामलदीर्घदीधितिः। अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शि
दिवाकरः ॥ ४० ॥ इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामादि
त्यचारस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम्। स्वच्छायय
न्यदसितं कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥ सलिलमये शशि
रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्। क्षपयन्ति दर्पणोदरनिह
इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥ त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादव
म्बते यथा शौक्ल्यम्। दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधःप्रभृ
दयः ॥३॥ प्रतिदिवसमेवमर्कात् स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धि
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ४ ॥ ऐन्द्रस्य शी
किरणो मूलाषाढाद्वयस्य वा यातः। याम्येन बीजजलचरकानन

हो व सूर्यमण्डलमें यदि किसी प्रकारका चिह्न न हो तो सूर्य भगवान् जगत
मङ्गल करनेवाले होते हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

एक घडेको सूर्यकी धूपमें रख देनेसे जैसे उसका वह अर्ध भाग जो स
सम्मुख रहता है सूर्यकी किरणसे धौला हो जाता है और दूसरा आधा भाग
अपनी छायासे काला रहता है, तैसे ही सूर्यके निचले भागमें विराजित चन्द्रम
आधा भाग प्रतिदिन सूर्यकी किरणसे प्रकाशित होता है और आधा भाग अ
छायासेही कृष्णवर्ण रहता है ॥ १ ॥ जैसे दर्पणके ऊपर सूर्यकी किरण
आत्मा गिरकर अँधियारे घरके भीतर घुसकर अपने प्रतिबिंबसे घरके भीत
अंधकार नाश करता है वैसेही जलमय चन्द्रमाके ऊपर सूर्यकी किरणें गि
रात्रिके अन्धकारसमूहका नाश करती हैं ॥ २ ॥ सूर्यका निचला भाग छोड
चंद्रमाका पश्चिमभाग सूर्यके किरणके वशसे जितनी शुक्लवर्णता धारण कर
नीचे आदिमें वह उतना २ ही प्रकाशित होता जाता है ॥ ३ ॥ इसही
प्रतिदिन स्थानविशेषके वशसे तीसरे प्रहरके समय घडेके समान पिछले
सूर्य करके चंद्रमाकी शुक्लता बढा करती है ॥ ४ ॥ ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा व

हे भयदश्च ॥ ५ ॥ दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी विशाखानुराधयोः
पः । मध्येन तु प्रशस्तः पित्र्यस्य विशाखयोश्चापि ॥ ६ ॥
ऽनागतानि पौष्णाद् द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि । ज्येष्ठाद्यानि
क्षाण्युडुपतिनातीत्य युज्यन्ते ॥ ७ ॥ उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने
शालता चोक्ता । नाविकपीडा तस्मिन् भवति शिवं सर्वलोकस्य
८ ॥ अर्द्धोन्नते च लांगलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन् ।
तिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च ॥ ९ ॥ दक्षिणविषा-
मर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलांगलाख्यं तत । पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृद्यो-
करं बलनां च ॥ १० समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिव
सदृशाः स्युः । दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥११॥
र्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम् । स्थानं युग
ति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय ॥ १२ ॥ युगमेव याम्यकोट्यां

ाखा नक्षत्रके दाहिने भागमें जब चंद्रमा जाता है तब बीज, जल व वनकी
नि होती है और अग्निभय उपस्थित होता है ॥ ५ ॥ जब विशाखा और अनु-
रा नक्षत्रके दांये भागमें चंद्रमा चला जाता है तब उसको पापचंद्रमा कहते हैं
तु विशाखा अनुराधा और मघा नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके रहनेसे शुभफल
ता है ॥ ६ ॥ रेवतीसे लेकर मृगशिरतक छः नक्षत्र अनागत होकर चंद्रमाके
थ मिलते हैं, आर्द्रासे लेकर अनुराधातक बारह नक्षत्र मध्यभागमें चंद्रमाके साथमें
लते हैं और ज्येष्ठासे लेकर उत्तराभाद्रपदतक नव तारे अतिक्रान्त होकर चंद्रमाके
थ मिलते हैं ॥ ७ ॥ यदि चंद्रमाका शृङ्ग कुछेक ऊंचा होकर नावके समान
शालताको प्राप्त हो तो नाविक लोगोंको पीडा हो और सब लोगोंका
ता है ॥ ८ ॥ आधे उठे हुए चंद्रमाके शृंगको लांगल कहते हैं, उससे हल
ुष्योंको पीडा होती है, राजालोग बिना कारणके भी हर्षित रहते हैं
भिक्ष होता है ॥९॥ जो चंद्रमाका दक्षिण शृङ्ग आधा ऊंचा उठा हुआ हो
ाको दुष्टलांगल शृङ्ग कहते हैं, इस चंद्रमाका यह फल है कि पांड्यदेशके रा
ा अपने राजाके मारनेका यत्न करे ॥ १० ॥ जो समानभावसे चंद्रमा
तो पहले दिनकी नांई सुभिक्ष, मंगल और वर्षा होती है, दंडके समान चं
य होनेपर गाय बैलोंको पीडा होती है और राजालोग उग्र दण्डधारी
१॥ जो धनुषके आकारका चंद्रमा उदय हो तो युद्ध होता है परन्तु जिस
धनुषकी मौर्वी रहती है उस देशकी जय होती है, जो यह शृङ्ग दक्षिण
रम फैला हुआ हो तो उसको स्थान वा युग कहते हैं, इससे भौंचाल होता

किञ्चित्तुंगं स पार्श्वशायीति । विनिहन्ति सार्थवाहान् विनिग्रहं कुर्यात् ॥ १३ ॥ अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनो मुखं भवेच्छृंगम् । आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद्गोधनस्यापि अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम् । अस्मि ण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥ १५ ॥ प्रोक्तस्था नादुत्तरतुङ्गः सस्यवृद्धिवृष्टिकरः । दक्षिणतुंगश्चन्द्रो दुर्भिक्ष निर्दिष्टः ॥ १६ ॥ शृंगेणैकेनेन्दुं विलीनमथवाप्यवाङ्मुखम् सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रश्येत् ॥ १७ ॥ संस्थान कथितो रूपाण्यस्माद्भवन्ति चन्द्रमसः । स्वल्पो दुर्भिक्षकरो सुभिक्षावहः प्रोक्तः ॥ १८ ॥ मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः संभ्र राज्ञां च । चन्द्रो मृदंगरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति ॥ १९ ॥ शालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चंद्रः स्थूलः सुभिक्षकारी प्रियः

है ॥ १२ ॥ यही 'युग' नामक शृङ्ग जो दक्षिण ओरका कुछेक ऊँचा इसको 'पार्श्वशायी' शृङ्ग कहते हैं, उससे वणिक अर्थात् वनज व्यापार वालोंका नाश होता है और वर्षा नहीं होती ॥ १३ ॥ बाडके कारणसे जो चंद्र कोई शृङ्ग नीचेको मुखवाला हो तो उसको 'आवर्जित' शृङ्ग कहते हैं, गाय ढोरोंके लिये दुर्भिक्ष होता है, अर्थात् घास आदि नहीं उपजती ॥ जो चंद्रमण्डलके चारों ओर आच्छिन्न (अखण्डित) गोलाकार रेखा (ल दिखलाई दे तो 'कुण्ड' नामक शृङ्ग होता है, उससे द्वादशमंडलके राजा स्थान छूट जाता है ॥ १५ ॥ पहले कहे हुए स्थानोंके न होनेसे जो चंद्र शृंग उत्तरदिशाको कुछेक ऊंचा हो तो धान्यकी वृद्धि होती है, वर्षा भली ह दक्षिणकी ओरको कुछेक ऊंचा हो तो दुर्भिक्ष होता है ॥ १६ ॥ एक शृङ्ग नीचेको मुखवाला, शृङ्गहीन अथवा सम्पूर्ण नये प्रकारका चंद्रमा दीखनेसे वालोंमेंसे एककी मृत्यु होती है ॥ १७ ॥ चंद्रमाकी देहका संस्थान कहा इससेही चंद्रमाके अनेक प्रकार रूप होते हैं, छोटा चंद्रमा हो तो दुर्भिक्ष और हो तो सुभिक्ष होता है ॥ १८ ॥ मध्यम (अर्थात् न बहुत बडा न बहुत छो चंद्रमाके उदित होनेसे उसको वज्र कहा जाता है, इससे प्राणियोंको क्षुधा लगे और राजालोगोंमें खलबली मचे मृदङ्गरूपी चंद्रमाके उदय होनेसे और सुभिक्ष होता है ॥ १९ ॥ जो चंद्रमाकी मूर्ति अत्यंत विशाल हो तो लोगोंके यहाँ लक्ष्मी बढती है, स्थूल हो तो सुभिक्ष होता है, रमणीय

तनुमूर्तिः ॥ २० ॥ प्रत्यन्तान् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतेः शृंगे
हते शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत्। श्रेष्ठान्
नृपान्महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान् शुक्ले याप्यमिदं
ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥ २१ ॥ भिन्नः सितेन मगधा-
न् पुलिन्दान् नेपालभृंगिमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान्। पाञ्चाल-
कुलूतकपूरुषादान् हन्यादुशीनरजनानपि सप्त मासान्॥२२॥
रसौवीरकसिन्धुकीरान् धान्यानि शैलान्द्रविडाधिपांश्च।
मासान् दश शीतरश्मिः सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः
॥ उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान्मालवान् कौलि-
गणपुंगवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान्। हन्यात् कौर-
मत्स्यशुक्रत्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनु-
मासमर्यादया ॥ २४ ॥ यौधेयान् सचिवान् सकौरवान्
नथ चार्जुनायनान्। हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः शीतांशुर्द-
पीडया ॥ २५ ॥ मगधान्मथुरां च पीडयेद् वेणायाश्चतटं-

य होता है ॥ २० ॥ जो नक्षत्रपति चन्द्रमाके शृंग को मंगलग्रह ताडना
तो म्लेच्छदेशके कुत्सित राजाओंका नाश होता है, जो चन्द्रमाका शृंग
द्वारा आहत होता हो तो शस्त्रभय और क्षुधाका भय होता है, बुधसे
शृंग भिन्न होता हो तो अनावृष्टि और दुर्भिक्ष होता है, बृहस्पतिसे होता
राजाओंका नाश और शुक्रसे होता हो तो साधारण राजाओंका नाश
परन्तु शुक्लपक्षमें ग्रहसे चंद्रमाका शृंग भिन्न होता हो तो भी थोडासा
होता है और कृष्णपक्षका फल नीचे कहा जाता है ॥ २१ ॥ जो
चंद्रमाका शृंग शुक्रसे पीडित हो तो मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल
कच्छ, सूरत, मद्रास, पंजाब, काश्मीर, कुलूत, पुरुषाद और उशीनर
महीनेतक मरी पडती है ॥ २२ ॥ जो बृहस्पतिसे चंद्रमाका शृंग भिन्न
गान्धार (कन्धार), सौवीरिक, सिन्ध, कीर, द्राविड, पहाडी देशके
और तिस देशके समस्त धान्य दशमासतक सन्तापित होते हैं ॥ २३ ॥
की देह मंगलसे भिदती हो तो वाहनोंके सहित उद्योगी, त्रिगर्त, मालव,
गणपति, शिबि और अयोध्यादेशके श्रेष्ठ राजाओंको और कुरु मत्स्य
के श्रेष्ठ क्षत्रियोंको छः मासतक पीडित करके नाश करता है ॥ २४ ॥
का मण्डल शनैश्चरसे भिदता हो तो पूर्वदेशके रहनेवाले अर्जुनवंशीय
िय राजाओंको उनके मंत्रियोंको योधाओंके साथ दशमासतक पीडित

शशाङ्कजः । अपरत्र कृतं युगं वदेद् यदि भित्त्वा शशिनं
गतः ॥ २६ ॥ क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना
भिन्नः । कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च ।
॥ २७ ॥ उल्कया यदा शशी अस्त एव हन्यते तदा नृपो
जन्मनि स्थितः ॥ २८ ॥ भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः शी
किरणैः परिहीणः । श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुत्स
यचौरभयाय ॥ २९ ॥ प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकावदातो य
वाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः । उच्चैः कृतो निशि भविष्य
शिवाय यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय ॥ ३० ॥
कुमुदमृणालाहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्धते वा ।
कृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः
शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च ।
हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्यायः

करके नाश कर देता है ॥ २५ ॥ जो बुध ग्रह चन्द्रमाको भेद करके नि
तो मगध, मथुरा और वेणा नदीके किनारे बसे हुए देशोंको पीडित कर
पश्चिम देशमें सतयुगकी उत्पत्ति होती है ॥ २६ ॥ जो केतुसे चन्द्रम
होता हो तो अमंगल, व्याधि, दुर्भिक्ष व शस्त्रसे जीविका करनेवालोंका
है और तस्कर लोगोंको अत्यन्त पीडा होती है ॥ २७ ॥ राहु या के
चन्द्रमाके ऊपर उल्का गिरे तो जिस राजाके जन्मनक्षत्र पर चन्द्रम
राजाकी मृत्यु होती है ॥ २८ ॥ जो चन्द्रमाका देह भस्मतुल्य रूखा,
किरणहीन, श्यामवर्ण, फूटा हुआ अथवा कम्पमान दिखाई दे तो क्षुध
रोग अथवा चोरोंका भय होता है ॥ २९ ॥ मानो कि रात्रिकालमें हमारे
अत्यन्त सुखदायक होगा इस विचारसे हिमाचलसुता पार्वतीजीके द्वारा
मार्जित होकर बढनेसे जो चन्द्रमा हिमकण, कुन्दपुष्प, कुमुदकुसु
स्फटिक (बिल्लौर) के समान शुभ्रवर्णवाला होता है, वह चन्द्रमाई
शुभदायी है ॥ ३० ॥ जो शीतरश्मि चन्द्रमा कुमुद, मृणाल या हा
शुभ्रवर्णवाला होकर तिथिके नियमानुसार घटता बढता है, जिसके मण्ड
नहीं आता, जो गति और किरणोंसे युक्त होता है, उससे सब मनुष्य
होती है ॥ ३१ ॥ शुक्लपक्षमें किसी तिथिके बढ जानेसे पक्ष बढ जाय अ

पञ्चमोऽध्यायः ।

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् । प्राणै-
रपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ १ ॥ इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसि-
तत्वात् किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद् वरप्रदानात्
कमलयोनेः॥२॥ मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥३॥ यदि मूर्तो भवि-
चारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः । भगणार्धेनान्तरितो
गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥ अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः
संख्यया कथं तस्य । पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न
गृह्णाति ॥ ५ ॥ अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा
स गृह्णाति । मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम्

अतिशय वृद्धिको प्राप्त हो तो ब्राह्मण, क्षत्री और प्रजागण अत्यन्त बढते हैं, जो ऐसे
चन्द्रमा हीन हो सबकी हानि होतीहै, सम हो तो सबको समता प्राप्त होती है.
परन्तु कृष्णपक्षमें हो तो इसका फल विपरीत होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

कोई २ पण्डित कहते हैं कि राहुनामक असुरका यह मस्तक कट जानेपर भी
अमृत पीनेके विशेष हेतुकरके प्राणहीन न होकर (राहुरूप) ग्रहपनको प्राप्त हुआ
, परन्तु सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलके समान आकृतिवाला राहु कृष्णवर्ण होनेसे
ब्रह्माजीके वरदान हेतुकरके ग्रहण समयके अतिरिक्त और किसी समय आकाशमें
दिखाई नहीं देता ॥ १ ॥ २ ॥ कोई २ पंडित कहते हैं कि यह राहु मुँह और पूंछ
वाला सर्पाकारसा है, और पंडित कहते हैं कि इस राहुका कोई भी आकार नहीं है
वरन् यह अंधकारमय है ॥ ३ ॥ यह आकाशमें घूमनेवाला राहु जो शरीरधारी या
मस्तकाकार अथवा मंडलमय होता तो यह नियत गतिवाला राहु भगणार्ध अर्थात्
छः राशिके अंतरपर होकर भी किस प्रकारसे ग्रहण करता है ॥ ४ ॥ यदि राहुकी
गतिमें किसी प्रकारकी स्थिरता न होती तो गणितके द्वारा किस प्रकारसे उसका
ज्ञान हो सकता और यदि यह मुखपूंछवाले आकारका होता तो अमावस्या या
पूर्णिमाके सिवाय और समय ग्रहण क्यों नहीं होता ॥ ५ ॥ जो इसका आकार

॥ ६ ॥ राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे
मगतिनान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥ भूच्छायां
भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः । प्रग्रहणमतःपश्चान्नेन्दोर्भानो
र्घात् ॥ ८ ॥ वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वेन भवति दीर्घ
निशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥ ९ ॥ सूर्यात् स
यदि चोदग्दक्षिणे न नातिगतः । चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छ
तदाविशति ॥ १० ॥ चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति रविमम्बु
गतः पश्चात् । प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम्
आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः । स्वल्
तोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥१२॥ एवमुपरागकारण
दिव्यदृग्भिराचार्यैः । राहुः कारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्
॥ १३ ॥ योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणायमाज्ञप्तः ।

सर्पके समान होता तो कभी मुखसे और कभी पूंछसे भी ग्रहण हो जा
और कभी मध्यस्थलद्वाराभी ग्रहणकी सम्भावना हुआ करती ॥ ६ ॥
कहें कि दो राहु हैं, तो एक राहुसे चन्द्रमा ग्रस्त होता, उदय होता,
जाता, तब यह दिखाई देता कि उसके समान चलनेवाले दूसरे राहुसे सू
हो गया है ॥ ७ ॥ जो कुछभी हो, चंद्रग्रहणके समय चंद्रमा पृथ्वीकी छा
करता है और सूर्यग्रहणके समय सूर्यमंडलमें प्रवेश करता है, यही का
पश्चिम दिशासे चंद्रग्रहण और पूर्व दिशासे सूर्यग्रहणका आरम्भ नहीं ह
जिस प्रकार किसी एक वृक्षकी छाया सूर्यका आवरण करके एक ओरहे
है, वैसेही सूर्यके आवरण होनेके कारण पृथ्वीकी छायाभी प्रतिदिन दी
॥९॥ जिस समय चंद्रमा सूर्यकी सातवीं राशिमें रहकर उत्तर दक्षिणको
नहीं गमन करता, तब चंद्रमा पूर्वमुखमें आगमन करके पृथ्वीकी छायामें
है ॥१०॥ (सूर्यग्रहणके समय) सूर्यके नीचे स्थित हुआ चन्द्रमा, पश्चि
आकर मेघके समान सूर्यबिंबको ढक लेता है, यही कारण है कि सूर्यका
वश होकर प्रतिदेशमें अनेक प्रकारसे होता है ॥११॥ इस प्रकार चन्द्रमाके
अधिक होनेसे अर्द्धग्रस्त चन्द्रमाका शृंग अतिशय कुंठित होता है और सू
रण बहुतही कम होता है, इसी कारणसे सूर्यका शृंग अत्यन्त तीक्ष्ण होत
दिव्य दृष्टिवाले आचार्य लोगोंने इस प्रकारसे ग्रहणका कारण बताया है,
होनेके विषयमें राहुको कारण कहना शास्त्रका सद्भाव मात्र है ॥१३॥ राहु

नमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ॥ १४ ॥ तस्मिन् काले
न्निध्यमस्य तेनापचर्यते राहुः । याम्योत्तरा शशिगतिर्गणिते-
युपचर्यते तेन ॥ १५ ॥ न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते
मित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ॥ १६॥
ञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति । तैलञ्च जले-
ष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥ १७ ॥ अवनत्यार्के ग्रासो
ग् ज्ञेया वलनयावनत्या च । तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथि-
ानि तानि मया ॥ १८ ॥ षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः
मशः । ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥ १९ ॥
ह्मे द्विजपशुवृद्धिक्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च । तद्वत्सौम्ये तस्मिन्
ीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २० ॥ ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो
च क्षेमम् । कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ॥ २१ ॥

को ब्रह्माजीने ऐसा वर दिया था कि " लोग ग्रहणके समय जो होम
रेंगे उसकेही अंशसे तुम तृप्त होगे " ॥ १४ ॥ इसी कारणसे ग्रहणके
मय राहुका सान्निध्य होता है और इसीसे गणितमें चन्द्रमाकी गतिभी
त्तरदक्षिणमें होती है, बस, और किसी समयमें ग्रहण नहीं हो सकता ।
दि और किसी समयमें ग्रहणका लक्षण निरूपित किया जाय तो वह
त्पातका रूप गिना जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ पांच ग्रहोंके इकट्ठे मेलसे भी ग्रहण
हीं हो सकता और अष्टमीके दिन जलमें तेल डालना. जो शास्त्रमें लिखा है इस
ेखका भी पंडित लोगोंको विश्वास न करना चाहिये ॥ १७ ॥ अवनतिके द्वारा
र्यका ग्रास और वलन व अवनतिके द्वारा दिक् और तिथिके अवसानानुसार
मयका जिस प्रकार निरूपण करना चाहिये सो हम अपने बनाये करण ग्रन्थमें
ह आये हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम ये सात
वता षण्मासोत्तर वृद्धिके अनुसार ग्रहणके मालिक हैं ॥ १९ ॥ जिस ग्रहणमें
ह्मा मालिक है उस समयमें द्विज और पशुओंकी वृद्धि होती है, मंगल आरोग्य
ौर धान्यसम्पत्ति होती है । चन्द्रमाके समयमें भी ऐसा ही होता है और पंडितोंको
ीडा व अनावृष्टि होती है ॥ २० ॥ ग्रहणमें इन्द्रके मालिक होनेके समय राजाओंमें
िरोध होता है, शरदऋतुके धान्यका नाश होता है, अमंगल होता है, कुबेरके

१ शास्त्रमें लिखा है कि अष्टमीके दिन पानीमें तेल डालनेसे वह तेल जिस दिशामें न फैले उसी दिशामें ग्रहणकी मुक्ति होगी, तिसकी विपरीत दिशामें ग्रास होगा । तथा च गर्गः—" तत्राष्टम्यां जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत् " इत्यादि ।

वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् । आग्नेयं मि॰
सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥२२॥ याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं स॰
च सस्यानाम् । यदतः परं तदशुभं क्षुन्माराावृष्टिदं पर्व ॥ २॰
वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुम॰
क्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ २४ ॥ हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं॰
शास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि ना॰
भवति ॥२५॥ यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षि॰
स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ २६ ग्रस्ताउदित॰
मितौ शारद धान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षम॰
पापसंदृष्टौ २७ ॥ अर्धोदितोपरोक्तो नैकृतिकान् हन्ति सर्व॰
श्च । अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणोऽयुगाभ्युदितः ॥ २॰

समय धनियोंके धनका नाश होता और सुभिक्ष होता है ॥ २१ ॥ वरुणके॰
यमें राजाओंका अशुभ होता है, लोगोंका मंगल होता है, धान्यकी वृद्धि हो॰
अग्निके स्वामी होनेको मित्र कहते हैं. इसके समयमें धान्य, आरोग्य, अभय॰
श्रेष्ठ वर्षा होती है ॥ २२ ॥ जिस समयमें ग्रहणका मालिक यम होता है॰
समयमें ग्रहण होनेसे अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और धान्यकी हानि होती है. इसके॰
रिक्त और समयमें ग्रहण होनेसे क्षुधा, महामारी और अनावृष्टि होती है ॥॰
वेलाहीन अर्थात् गणितके बताये हुए कालके पहले ग्रहण होनेसे गर्भों॰
होता है शस्त्रोंका कोप होता है और अतिवेला अर्थात् गणितके नियत किये॰
पीछे ग्रहण होनेसे फलपुष्पोंका नाश, भय और धान्यका नाश होता है ॥॰
हीन अथवा अतिरिक्त कालमें ग्रहणका फल पहले शास्त्रोंको देखकर इस॰
निरूपित हुआ, परन्तु स्पष्ट गणितका जाननेवाला जो समय बतावे॰
किसी प्रकारसे झूठ नहीं हो सकता ॥ २५ ॥ यदि एक महीनेमें सूर्य॰
दोनोंका ग्रहण हो तो राजा लोग अपनी सेनामें हलचली मच जानेसेही॰
प्राप्त होते हैं और शस्त्रकोप अत्यन्तही होता है ॥ २६ ॥ जो सूर्य॰
पापग्रहसे देखे जाते हुए ग्रस्त अवस्थामें उदय हो या अस्त हो॰
तो शरदृतुके धान्य और राजाका नाश होता है और ऐसेही पाप॰
देखे जाते हुए सर्व ग्राससे ग्रसित होनेपर दुर्भिक्ष और मरी पडती है ॥॰
जो सूर्य या चन्द्रमा आधा उदय होते हुए राहुसे ग्रहण हो जाय तो॰
(अतिकष्टसे किये हुए वा निषाददेशीय) समस्त यज्ञोंका नाश करता है

षकपाषण्डवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयेऽशे । कारुकशूद्र-
ेच्छान् खतृतीयांशे समन्त्रिजनान् ॥ २९ ॥ मध्याह्ने नरपति-
ध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः । तृणभुगमात्यान्तः पुरवैश्यघ्नः
श्चमे खांशे ॥३०॥ स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहास्तमयकाले ।
स्मिन् खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति ॥ ३१ ॥ द्विजनृप-
ेनुदगयने विट्छूद्रान् दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रद-
ेणं हन्ति विप्रादीन् ॥ ३२ ॥ म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायि-
श्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च । सलिलचरदन्तिघातो याम्येनोदग्ग-
ामशुभः ॥ ३३ ॥ पूर्वेण सलिल पूर्णां करोति वसुधां समागतो
त्यः । पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः ॥ ३४ ॥

दि अयुग्म १ । ३ । ५ । ७ आकाशांशमें ग्रहणका आरम्भ हो जाय तो अग्निसे
ीविका करनेवाले सुनार भुरजी आदि, गुणाधिक ब्राह्मण और आश्रममें रहनेवा-
ोंका नाश करता है ॥ २८ ॥ जो आकाशके दूसरे अंशमें ग्रहणका आरम्भ हो
ाय तो किसान, पाखण्डी, वणिक, क्षत्री और सेनाके स्वामीका नाश हो जाता
, जो आकाशके तीसरे अंशमें ग्रासका आरम्भ हो तो कारुक (शिल्पसे
ीविका करनेवाले), शूद्र, म्लेच्छ और मंत्रियोंका नाश हो जाता है ॥ २९ ॥
ो आकाशके बीच भागमें अर्थात् मध्याह्न कालमें ग्रहण आरम्भ हो तो राजाका
ध्यदेश नष्ट होता है, धान्यका मूल्य सुहाता हुआ होता है । आकाशके पंचम भागमें
ग्रहणका आरम्भ होनेसे तृणभोजन करनेवाले, मंत्री, अन्तःपुर और वैश्योंका
ाश होता है ॥ ३० ॥ आकाशके छठे भागमें ग्रहण होनेसे स्त्री, शूद्र और सप्तम
ागमें अर्थात् अस्तकालमें ग्रहणका आरंभ होनेसे चोर और गह्वर आदि म्लेच्छ-
शवासियोंका नाश होता है परन्तु आकाशके जिस अंशमें मोक्ष अर्थात् ग्रहणका
ष होता है, उस २ भागके कहे हुए देशोंका और वहांके प्राणियोंका शुभ होता
॥ ३१ ॥ उत्तरायणमें ग्रहण होनेसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी हानि होती है,
क्षिणायनमें होनेसे वैश्य और शूद्रोंकी हानि होती है और उत्तर, पूर्व, दक्षिण
ौर पश्चिम इन चारों दिशाओंमेंसे जो किसी दिशामें राहु दिखाई दे तो दक्षिण
यथाक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रजातिकी हानि है ॥ ३२ ॥ ईशानको-
में दिखाई दे तो म्लेच्छ जाति, आग्निकोणमें दिखाई दे तो पथिक, दक्षिणमें जल-
र और हस्ती, उत्तरमें गायढोरोंका अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ राहु पूर्व-

१ग्रहण होनेके दिनके रात्रिमान या दिनमानके सात भाग करनेसे जो हो वही रात्री वा दिनका सातवां
ाग और आकाशका सातवां भाग है ।

पञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजौड्रकिरातशस्त्रवार्ताः जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ॥ ३५ ॥ गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः। पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ॥ ३६ ॥ मिथुने प्रवराङ्गना नृप नृपमात्रा बलिनः कलाविदः। यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्या सुह्मजनैः समन्विताः ॥ ३७ ॥ आभीराञ्छबरान् सपह्लवान्मल्ला मत्स्यकुरूञ्छकानपि । पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ॥ ३८ ॥ सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान राजोपमान् नरपतीन् बनगोचरांश्च। षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेय सक्तान् हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ॥ ३९ ॥ तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान्मरुकच्छपांश्च। अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ॥ ४० ॥ धन्वि

दिशासे आवे तो पृथ्वी जलसे पूर्ण हो जाय, पश्चिम दिशासे आवे तो किसा सेवक और बीजोंका नाश होता है ॥ ३४ ॥ यदि मेषराशिमें राहुका दर्शन हो तं पंजाब, कालिंग, शूरसेन, काम्बोज, औड्र, किरात और शस्त्रवार्त (शस्त्रधारी आदि समस्त देश और जो अग्निसे आजीविका करनेवाले हैं वे सबही अत्यन्त पीडित होते हैं ॥ ३५ ॥ सूर्य चंद्रमा जो वृषराशिमें राहुसे ग्रसे जायँ तो गो पशु, अधिक करके गायढोर पालनेवाले लोक और अत्यन्त गुणी लोग अत्यन्तह पीडित होवें ॥ ३६ ॥ मिथुनराशिमें ग्रहण हो जाय तो श्रेष्ठ रमणी (स्त्री राजा, साधारण राजा (जमींदार), बलवान् आदमी, नाचने गाने और बजाने वाले, यमुनाके किनारेपर रहनेवाले और बाह्लीकदेश, मत्स्यदेश और सुह्म देशवास मनुष्योंको पीडा होती है ॥ ३७ ॥ जो कर्कटराशिमें चंद्रमा या सूर्यका ग्रहण ह तो आभीर, शबर जातिके पुरुष और पह्लव, मल्ल, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चा और विकलदेश पीडित हों, अन्नोंका नाश हो ॥ ३८ ॥ सिंहराशिमें ग्रह होनेसे पुलिन्दगण, मेकल, बलि राजा, राजाके समान पुरुष और वन चारियोंका नाश होता है. कन्याराशिमें ग्रहण हो तो कवि, लेखक, गी गाकर आजीविका करनेवालोंका नाश होता है, धान्य नष्ट होते हैं और अश्मक त्रिपुर व शालि इन प्रधान देशोंका ध्वंस होता है ॥ ३९ ॥ जो तुलाराशिमें सू या चन्द्रमाका ग्रहण हो तो अवन्ती देश, पश्चिम समुद्रके निकटका देश, दशा देश; साधु पुरुष, वणिक्‌ और मच्छकच्छदेशके राजाका नाश हो, वृश्चिकराशि ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चौलदेशके आदमी, वृक्ष, श्रेष्ठ योधा और वि

ग्रमात्यवरवाजिविदेहमल्लान् पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान्। न्यान्मृगे तु झषमंत्रिकुलानि नीचान् मंत्रौषधीषु कुशलान् स्थ-रायुधीयान् ॥ ४१ ॥ कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिमजनान् रोद्वहांस्तस्करान् आभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्ब-न्। मीनेसागरकूलसागरजलद्रव्याणिमान्यान् जनान् प्राज्ञा-र्यायुपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥४२॥ सव्यापसव्यले-ग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः। आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते-श ग्रासाः ॥ ४३ ॥ सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदि-मभयञ्च। अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दः प्रजानाशः ॥ ४४ ॥ ह्वेव लेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः। प्रमुदितस-स्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ॥ ४५ ॥ ग्रसनमिति यदा शः पादो वा गृह्यतेऽथवाप्यर्द्धम्। स्फीतनृपवित्तहानिःपीडा च ीत देशानाम् ॥ ४६ ॥ पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं

वाले आदमियोंका नाश हो जाता है ॥ ४० ॥ धनराशिमें ग्रहण होवे तो मंत्री अश्व, विदेह, मल्ल, और पांचाल देश, वैद्य, वणिक् और विषम अस्त्रोंके जान-ले पुरुषोंका नाश हो जाता है। मकरराशिमें सूर्य ग्रहण होनेसे मत्स्य, मंत्रि-, नीच. सलाह व औषधि जानने या बनानेमें निपुण और वृद्ध अस्त्रधारी षोंका नाश होता है ॥ ४१ ॥ कुम्भराशिमें ग्रहण होवे तो पहाडी आदमी त्य, बोझा ढोनेवाले, तस्कर, अहीर और दरद, आर्य और सिंहनगर तथा र देशके लोगोंका नाश हो जाता है। मीनराशिमें ग्रहण होनेसे समुद्रतीरके और द्रजलसे उत्पन्न हुए द्रव्य, मान्यपुरुष, पंडित और जलसे आजीविका करनेवाला छीमार, मल्लाहादिकोंका नाश हो जाता है। इस प्रकार कूर्मोपदेशके वशसे अर्थात् संस्थानके अनुसारसे ग्रहणका फल कहा जाता है। ॥ ४२ ॥ चन्द्रसूर्यके ग्रह- दश प्रकारके ग्रास हैं यथाः—१ सव्य, २ अपसव्य, ३ लेह, ४ ग्रसन, ५ रोध; ६ अवमर्द, ७ आरोह, ८ अघ्रात, ९ मध्यतम और १० तमोन्त्य हैं ॥ ४३ ॥ राहु सव्यमें गमन करे अर्थात् सव्य नामक ग्रहण हो तो संसार जलसे पूर्ण हो य; हर्षित होकर भयहीन हो. अपसव्यग्रासमें राजा या चोरोंको पीडा देनेसे का नाश हो ॥ ४४ ॥ यदि राहु जीभके समान चन्द्रमण्डलको चाटे तो उस णको लेह कहते हैं. इस ग्रहणके होनेसे पृथ्वीके प्राणिगण हर्षित होते हैं और वीपर बहुतसा जल वर्षता है ॥ ४५ ॥ जब ग्रहमण्डलका एकपाद, अर्द्धभाग त्रिपाद ग्रस्त हो जाता है तब उसको ग्रसन कहते हैं इससे गर्वित राजाके

तमस्तिष्ठेत् । स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम्॥ ४
अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत् । हन्
प्रधानदेशान् प्रधान्भूपांश्च तिमिरमयः ॥ ४८ ॥ वृत्ते ग्रहे
तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः । आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्द
यकरं राज्ञाम् ॥ ४९ ॥ दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिःश्वासमा
पहतः । दृश्येताघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥ ५० ॥
तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः । तन्मध्यदेश
करोति कुक्ष्यामयभयं च ॥ ५१ ॥ पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं
तमस्तमोऽन्त्याख्ये । सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्करण
॥ ५२ ॥ श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ । अ
भयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥५३॥ हरिते रोगोल्ब

धनका नाश होता है और गर्वित देशोंको पीडा होती है ॥ ४६ ॥ सूर्य वा च
मण्डलतक देश अर्थात् पिछली सीमातक ग्रस करके जो राहु मध्यस्थानमें पि
कारके समान विराजमान हो तो उसको निरोध कहते हैं इससे समस्तही प्रा
योंको हर्ष होता है ॥ ४७ ॥ जो राहुबिम्ब मण्डलको भलीभांति पूर्णतासे ढ
अधिक कालतक विराजमान रहे तो उसको अवमर्दन कहते हैं, इससे प्रधान
और प्रधान व प्रधानराजाका नाश होता है और अंधकारका भय होता है ॥
जो गोलाकार ग्रहमण्डलको राहु ढककर अर्थात् ग्रहण होकर जो राहु
तत्काल दिखाई दे तो उसको आरोहण कहते हैं, इससे राजाओंको परस्पर यु
अत्यन्त भय होता है ॥ ४९ ॥ बाफयुक्त सांसकी पवनसे जिस प्रकार द
मलीन हो जाता है वैसेही यदि राहुसे चन्द्र या सूर्यका मंडल एक ओरको म
दीख पडे तो उस ग्रासको आघात कहते हैं, इससे जगत्में सुवृष्टि होती है
सब जगत्की वृद्धि होती है ॥ ५० ॥ यदि चन्द्रमाके बिचले भागमें राहु प्रवेश
आवे और चन्द्रमण्डलके चारों ओर यदि निर्मल रहे तो इस ग्रासको मध्यतम क
हैं; यह मध्यदेश नाशक और कोखके रोगोंको करनेवाला है ॥ ५१ ॥ जो च
मण्डलकी पिछली सीमामें राहु अत्यन्त बहुतायतसे और बीचके भागमें थोड
ज्ञात हो तो इसको तमोऽन्त्यनामक ग्रास कहते हैं, इससे धान्योंको ईति करनेव
भय होता है और चारोंका भय होता है ॥ ५२ ॥ राहु श्वेतवर्ण हो तो
सुभिक्ष और ब्राह्मणोंको पीडा होती है, अग्निवर्ण होनेसे अग्निभय और आ
जीविका करनेवाले लुहारादिको पीडा होती है ॥ ५३ ॥ हरे रंगका राहु होवे

सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः। कपिले शीघ्रगमसत्त्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ५४ ॥ अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा। आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ५५ ॥ कपोतारुणकपिलश्यावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम्। कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ॥ ५६ ॥ विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसो भवेत् सुभिक्षाय। सार्चिष्मत्याग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि ॥ ५७ ॥ दूर्वाकाण्डश्यामेहारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम्। अशनिभयसम्प्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः ॥ ५८ ॥ पांशुविलोहितः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च। बालरविकमलसुरचापरूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५९ ॥ पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च। भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ॥ ६० ॥ शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम्। रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ॥ ६१ ॥ यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति

रोगकी अधिकाई और नाजका ईतिसे नाश होता है। कपिलवर्णका राहु हो तो शीघ्र चलनेवाले प्राणी, म्लेच्छोंका नाश और दुर्भिक्ष होगा ॥ ५४ ॥ राहुका वर्ण अरुण दिखाई दे तो दुर्भिक्ष, अवृष्टि और पक्षियोंको पीडा होती है। कुछेक धूमकेसा वर्ण हो तो मंगल, सुभिक्ष और वृष्टि कम होती है ॥ ५५ ॥ कपोत, अरुण, कपिल वा कपिश वर्णका राहु दिखाई दे तो क्षुधाका भय होता है और कबूतरके वर्णका या काले रंगका हो तो शूद्रोंको पीडा होती है ॥ ५६ ॥ जो राहु निर्मलमणिके समान पीत वर्ण हो तो वैश्योंका नाश और सुभिक्ष होता है, अग्निकी शिखाके समान हो तो अग्निभय और गेरूके समान दिखाई दे तो युद्ध होता है ॥ ५७ ॥ दूर्वादलके समान श्यामवर्ण या हलदीके समान राहु दिखाई दे तो मरी पडती है। पाटलफूलके समान राहुका रंग होवे तो वज्र गिरनेका डर रहता है ॥ ५८ ॥ धूरिके समान या लाल वर्णका दिखाई दे तो वर्षा होती है और क्षत्रियोंका नाश होता है। प्रभात कालीन सूर्यके समान, कमल या इन्द्रधनुषके समान राहुका वर्ण हो तो शस्त्रकोप होता है ॥ ५९ ॥ अब दृष्टिफल कहते हैं-ग्रस्तग्रहमडलमें बुधकी दृष्टि हो तो घी, शहद, तेल मँहगे हों और राजाओंका भय होता है। मंगलकी दृष्टि हो तो युद्धमें मर्दन- अग्निकोप और चारोंका भय होता है ॥ ६० ॥ शुक्रकी दृष्टि हो तो पृथ्वीमें धान्योंका नाश होता है, अनेक प्रकारके उपद्रव होते हैं। शनिकी दृष्टि होवे तो दुर्भिक्ष, अवृष्टि और चोरभय होता है ॥ ६१ ॥ ग्रहणके आरम्भसमयमें या मोक्षसमयमें दर्शनादिके द्वारा जो अशुभफल कहे गये

जलरिवाग्निरिद्धः ॥ ६२ ॥ ग्रस्ते क्रान्तिमनिमित्तैः पुनर्ग्रहो मास
कपरिवृद्ध्या । पवनोल्कापातरजःक्षितिकम्पतमोऽशनिपातैः ॥६
आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः । दृप्ताश्च मनुज
तयः पीडयन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४ ॥ अन्तर्वेदीं सरयूं नेप
पूर्वसागरं शोणम् । स्त्रीनृपयोधकुमारान् सह विद्वद्भिर्बुधो ह
॥ ६५ ॥ ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिगजहयध्वंसः । सि
वासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥ ६६ ॥ भृगुतनये राहु
दसेरकाः केकयाः सयौधेयाः । आर्यावर्त्ताः शिवयः स्त्रीसचिव
णाश्च पीडयन्ते ॥ ६७ ॥ सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रा धाव
ऽर्बुदान्त्यजनाः । गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥६
कार्तिक्यामानलोपजीविमगधान् प्राच्याधिपान् कोशल
कल्माषानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत् । हन्
च्चाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो दृष्टं क्षत्रि
तापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥ ६९ ॥ काश्मीरव

वे समस्त बृहस्पतिकी दृष्टिसे इस तरह शान्त हो जाते हैं जैसे जलराशिसे बढी
आग ॥ ६२ ॥ वायु, उल्कापात, धूरि वर्षना, भोंचाल, अंधकार और वज्र
निमित्तद्वारा बहुधा छः मासके पीछे ग्रहण होता है ॥ ६३ ॥ मंगलका ग्र
हो तो अवन्ती देश, कावेरी और नर्मदाके निकटके देश और सब गर्वित रा
ओंका नाश होता है ॥ ६४ ॥ जो बुधग्रहमें राहुका ग्रहण हो तो अन्त
सरयू, नेपाल, पूर्वसागर और शोणादिदेशोंकी स्त्रियें राजा, योद्धा, पंडित और
कोंका नाश होता है ॥ ६५ ॥ बृहस्पतिका ग्रहण होवे तो विद्वान्, राजमंत्री, ह
और घोडोंका नाश होता है, सिन्धुनदीके निकट रहनेवाले या उत्तरदिशाके रहने
पुरुषोंका नाश होता है ॥ ६६ ॥ शुक्रका ग्रहण हो तो दासेरक, काश
यौधेय, आर्यावर्त, शिवि आदि देशको व स्त्रियों और मंत्रियोंको पीडा होत
॥ ६७ ॥ जो शनिग्रह राहुसे ग्रस्त तो मरुभाव पुष्कर, सौराष्ट्र आदि दे
लोग, पैदल, अर्बुदादि अन्त्यजाति, गोमन्त और पारियात्रा पहाडके रहनेवाले
नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६८ ॥ जो राहु कार्तिक महीनेमें दिखाई दे तो अ
आजीविका करनेवाले पुरुष अर्थात् सुनार, लुहार और मगध, कोशल, कल्म
शूरसेन व काशिआदि देशोंके रहनेवाले प्राणि पिडित होते हैं और इस प्रकार क्ष
योंको ताप देनेवाले राहुके दिखाई देनेपर मंत्री और नौकर चाकरोंके साथ कलि
देशके राजाका नाश हो जाता है और मंगल व सुभिक्ष होता है ॥ ६९ ॥ अग्र

रालकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च। ये सोमपा-
श्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च ॥ ७० ॥ पौषे
क्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः। ध्वंसं व्रजन्त-
च मन्दवृष्टिं भयं च विद्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥ ७१ ॥ माघे तु
तृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान् स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान्।
ाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनानुमतां करोति
७२ ॥ पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तकमेकला-
[। नृत्तज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्करक्षत्रतपस्विनां च ॥ ७३ ॥
तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान् रूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण-
। पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च तापः स्पृशत्यवरपोऽत्र
चैत्रवर्षी ॥ ७४ ॥ वैशाखमासे ग्रहणे विनाशमायान्ति कापी-
ेलाः समुद्गः। इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपद्रवाः किन्तु
क्षमस्मिन् ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि

ाहीनेमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, कोशल, पुण्ड्र आदि देश, पश्चिम और दक्षिण
 मृग और समस्त सोम पीनेवालोंका नाश हो जाता है और अच्छी वर्षा
 और सुभिक्ष भी होता है ॥ ७० ॥ पौष मासमें ग्रहण हो तो ब्राह्मण और
योंमें उपद्रव हो. सैन्धव,कुकुर और विदेहदेशके रहनेवालोंका ध्वंस होता है और
ल पडता है ॥७१॥ माघमासमें ग्रहण होवे तो वसिष्ठगोत्रमें उत्पन्न हुए माता-
की भक्ति करनेवाले लोग, स्वाध्याय और अपने धर्म कर्मको करनेवाले लोग,
ही ऊंचे हाथी और बंगाल, अंग और काशी आदि देशमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको
होता है, परन्तु वर्षा किसानोंकी मनमानी होती है ॥ ७२ ॥ फाल्गुनमासमें
 होवे तो बंगाल, अश्मक, अवन्ती और मेकलादि देशोंके लोगोंको पीडा होती
ाचनेवाली उत्तम धान्य तथा उत्तम स्त्री धनुषधारी क्षत्रिय और तपस्वियोंको
होती है ॥७३॥ चैत्रमासमें ग्रहण होवे तो चित्रकार (मुसौविर), लेखक,
ें आसक्त, रूपोपजीवी (वेश्या आदि) और निगम (शास्त्र) को जाननेवाले
, सुवर्णादि व्यापारके द्रव्य और पौण्ड, ओड्र, अश्मक व काश्मीरादि देशके
मी अत्यन्त दुःखी होते हैं, वर्षा अच्छी होती है ॥७४॥ जो वैशाखमासमें ग्रहण
तो कपास, तिल और मूंगका नाश होता है इक्ष्वाकु, यौधेय, शक और कलिं-
में उपद्रव होता है, परन्तु इससे सुभिक्ष होता है ॥७५॥ ज्येष्ठमासमें ग्रहण होवे

वृष्टिश्च महागणाश्च । प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः साल्व
समेताश्च निषादसंघाः ॥ ७६ ॥ आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवा
हान् फलमूलवार्त्तान् । गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान् हत
वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ॥ ७७ ॥ काश्मीरान् सपुलिन्दचीनय
नान् हन्यात् कुरुक्षेत्रकान् गान्धारानपि मध्यदेशसहितान् ह
ग्रहः श्रावणे । काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तान्
मानन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥ ७८ ॥ कलि
वङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान् म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाञ्छकांश्च
स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति सुभिक्षकृद्भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥ ७९
काम्बोजचीनयवनान् सह शल्य हृद्भिर्बाह्लीकसिन्धुतटवासि
नांश्च हन्यात् । आनर्तपौण्ड्रभिषजांश्च तथा किरातान् दृष्टोऽसु
ऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥ ८० ॥ हनुकुक्षिपायुभेदाद्वि
सञ्छर्दनं च जरणं च । मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशि
सूर्ययोर्मोक्षाः ॥ ८१ ॥ आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदंसंज्ञि

तो रानी, ब्राह्मणी, नाज, वर्षा, महागण अर्थात् महासमुद्र, सुन्दरपुरुष, शाल्वदेश
रहनेवाले मनुष्य और निषाद लोगोंका नाश होता है ॥ ७६ ॥ जो आषाढ मा
ग्रहण होवे तो कूवा, वापी, नदीप्रवाह, फलमूलसे आजीविका करनेवाले पुरुष अ
माली, बागवान् और गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द, चीनादि देशोंका नाश हो ज
है और देवराज इन्द्र मण्डलपर वर्षा करता है ॥७७॥ श्रावण मासमें ग्रहण होवे
काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र और मध्यदेशका नाश होता है
काम्बोज, एकशफ, शारद व पहिले कहे हुए देशोंके सिवाय और देशोंके लोग
तसे अन्नको पाकर हर्षित हो समस्त पृथ्वीको ढक लेते हैं ॥७८॥ भाद्रपद मा
ग्रहण होवे तो कलिङ्ग, बंगाल, मगध, सूरत, म्लेच्छ, सुवीर, दरद और शकदेशो
नाश होता है, स्त्रियोंके गर्भोंका नाश होता है और सुभिक्ष होता है ॥७९॥ आ
मासमें ग्रहण होवे तो काम्बोज, चीन, यवन, धान्यके चुरानेवाले, बाह्लीक
सिन्धुनदके किनारे रहनेवाले पुरुष और आनर्त व पौण्ड्रदेशके रहनेवाले वैद्य
किरात लोगोंका नाश होता है और अत्यन्त सुभिक्ष होता है ॥८०॥ चन्द्र
सूर्यके ग्रहणमें मोक्ष दश प्रकारका होता है, यथा,-(१-२) द्विविध हनुभेद, (३-
द्विविध कुक्षिभेद (५-६) द्विविध वायुभेद (७) संछर्दन (८) जरण (९) मध्यविदा
और (१०) अन्तविदारण ॥ ८१ ॥ जो चन्द्रग्रहण अग्निकोणसे मोक्ष होवे

शशिनः । सस्यविमर्दो मुख रुग्न् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च॥८२॥ पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी । मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विद्यात् सुभिक्षं च ॥ ८३ ॥ दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः । पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणारिपवः ॥ ८४ ॥ वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः । स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥ नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ। गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥ ८६ ॥ पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत । सञ्छर्दनमिति तत् क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥ ८७ ॥ प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्। क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्नाः क्व शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥ ८८ ॥ मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम । अन्तःकोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥ ८९ ॥ पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्तदरणाख्ये । मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ९० ॥ एते सर्वे

उसको दक्षिणहनुभेद नामक मोक्ष कहते हैं, इससे धान्यनाश, मुखरोग, राजपीडा और अच्छी वर्षा होती है ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरकोणसे मोक्ष होनेपर वाम हनुभेद मोक्ष होता है, इससे राजा और राजकुमारोंको भय, मुखरोग, शस्त्रभय और सुभिक्ष होता है ॥ ८३ ॥ दक्षिण ओरसे मोक्ष होनेपर दक्षिणकुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है जिससे राजकुमारोंको पीडा और दक्षिणके शत्रुओंमें झगडा होता है ॥ ८४ ॥ जो राहु उत्तरपक्षमें स्थापित होवे तो वामकुक्षिभेद मोक्ष होता है, इससे स्त्रियोंके गर्भको विपत्ति और धान्य मध्यम होता है ॥ ८५ ॥ नैर्ऋत्य कोणसे मोक्ष होवे तो उसको दक्षिणवायुभेद कहते हैं, यह दोनों प्रकारकी मोक्ष साधारण गुह्यपीडा और सुवृष्टि करती है और वामवायुभेदसे रानीकी क्षय होती है ॥ ८६ ॥ राहु यदि ग्राह्य मंडलमें पूर्वभागसे ग्रास करना आरम्भ करके पूर्व दिशाकोही चला आवे तो उसको संछर्दन नामक मोक्ष कहते हैं, इससे संसारका मंगल और धान्यसुख होता है ॥ ८७ ॥ जिसमें पूर्वदिशासे ग्रहणका आरंभ होकर पश्चिम देशोंमें मोक्ष होवे उसको जरण नामक मोक्ष कहते हैं, जरण नामक मोक्ष होनेसे मनुष्य क्षुधा और शस्त्रभयसे घबडाकर न जाने,कहां जाकर शरण प्राप्त होते हैं ? ॥ ८८ ॥ मध्यस्थल प्रथमही प्रकाशित होनेपर उसको मध्यविदारण नामक मोक्ष कहते हैं, यह प्राणियोंको मानसिक कोप करानेवाली और सुभिक्षदायक होनेपर भी श्रेष्ठ वर्षा इसमें नहीं होती, जिसमें खलबलाहट मचती है ॥ ८९ ॥ यदि चन्द्रग्रहणमें बिंबके चारों ओर निर्मलता हो व मध्यमें गाढी श्यामलता रहे तो वह अन्तदरण नामक मोक्ष होता

मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किन्त्वत्र । पूर्वा दिक् शशिनि य
तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ९१ ॥ मुक्ते सप्ताहान्तः पांसुनि
तोऽन्नसङ्क्षयं कुरुते । नीहारो रोगभयं भूकंपः प्रवरनृपमृत्यु
॥ ९२ ॥ उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्
स्तनितंगर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ९३ ॥ परिवे
रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम् । रूक्षो वायुः प्रब
श्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥ ९४ ॥ निर्घातःसुरचापं दण्डश्च क्षुद्
सपरचक्रम् । ग्रहयुद्धं नृपयुद्धं केतुश्च तदेव संदृष्टः ॥ ९५
अविकृतसलिलनिपाते सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् । यच्चाशु
ग्रहणजं तत् सर्वं नाशमुपयाति ॥ ९६ ॥ सोमग्रहे निवृत्ते पक्षा
यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य । तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्य
॥ ९७ ॥ अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्रा
नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥ ९८ ॥ इ
श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राहुचारः पंचमोऽध्यायः ॥५

है, इससे मध्यदेश और शरदऋतुकी खेतीका नाश होता है ॥ ९० ॥ यह सम्
चन्द्रग्रहणकी मोक्ष कही है, इन सबके विषयको सूर्यग्रहणमेंभी कल्पना कर
उचित है परन्तु जिस प्रकार चन्द्रग्रहणमें जहां पूर्वदिशा कही, उस जगहपर स
ग्रहणमें पश्चिमदिशाका लगाना ठीक है ॥ ९१ ॥ मोक्ष होनेके उपरान्त यदि स
दिनके भीतर धूरि वर्षे तो अन्नका नाश हो, कुहर हो जाय तो रोगका भय हो
भूकंप होनेसे श्रेष्ठ राजाकी मृत्यु होती है, उल्कापात मंत्रीका नाश करता है अ
वर्णवर्णके मेघ संध्याकालके विना दिखाई दें तो महाभय होता है, मेघगर्जन, ग
नाशक कारण होता है, विद्युत्पात राजा, डाढवाले सर्प शूकर आदि लोगों
पीडादायक होता है, परिवेष होनेसे रोगकी पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राज
और अग्निभय होता है, अतिप्रचण्ड तथा रूक्ष पवनके चलनेसे चोरभय होता
निर्घात शब्द होनेसे और इन्द्रधनुषके दिखाई देने तथा पवनका संघात होनेसे दुर्भि
और दूसरे राजाकी सेनासे भय होता है, ग्रहयुद्ध होनेसे राजाओंका परस्पर यु
होता है. केतुके दर्शनसेभी युद्ध होता है, ग्रहणमोक्ष होनेके पश्चात् सात दिन
भीतर यदि विना विकारके भलीभांति वर्षा हो जाय तो सुभिक्ष होता है और ग्र
णका सम्पूर्ण अशुभफलभी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५
॥ ९६ ॥ चन्द्रग्रहणके पीछे यदि बहुत दिनके भीतर सूर्यग्रहण हो जाय तो प्रजा
दुर्नय होता है और स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर वैरभाव होता है ॥ ९७ ॥ और यदि स

अथ षष्ठोऽध्यायः

भौमचारः ।

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु । तद्वक्रमुष्णमुदये पी-
करमग्निवार्त्तानाम् ॥१॥ द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रु-
म् । दूषयति रसानुदये करोति रोगानवृष्टिञ्च ॥ २ ॥ व्यालं
दशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यतेऽस्तमये । दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः
ति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ रुधिराननमिति वक्रं पञ्चदशात्
शाच्च विनिवृत्ते । तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमावहति
॥ असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे । दस्युग-
यः पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयम् ॥५॥ भाग्यार्यमोदितो यदि

से एक पक्ष परे चन्द्रग्रहण हो तो ब्राह्मणगण अनेक यज्ञोंका फल पावें और
हुत यज्ञोंको करते हैं, प्रजा हर्षित होती है ॥ ९८ ॥

ति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
स्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिस नक्षत्रमें मंगलग्रहका उदय होता है, उस उदय नक्षत्रके सप्तम, अष्टम वा
नक्षत्रमें मंगलग्रह यदि वक्री हो तो उस वक्रको ' उष्ण ' कहते हैं, इस उष्ण
के उदयकालमें अग्निसे आजीविका करनेवाले लोगोंको पीडा होती है ॥ १ ॥
नक्षत्रके दशम, एकादश अथवा द्वादश नक्षत्रसे मंगल यदि वक्री हो तो उस
को ' अश्रुमुख ' वक्र कहते हैं, इसके उदय होनेके समयमें समस्त रस दूषित
होते हैं और रोग व अनावृष्टि होती है ॥ २॥ ऐसेही जिस नक्षत्रमें मंगल अस्त
हाय, उस अस्त होते हुए नक्षत्रके तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें यदि मंगलका विपाक
त वक्र हो तो इस वक्रका नाम ' व्याल ' है, इसमें दंष्ट्री, व्याल और मृगसे
होती है और सुभिक्ष होता है ॥३॥ अस्तमन नक्षत्रके पंचदश या षोडश नक्ष-
मंगलका वक्र हो तो ' रुधिरानन ' नामक वक्र होता है, उस समयमें लोगोंको
रोग और भय होता है और सुभिक्ष हुआ करता है ॥४॥ अस्त होते हुए नक्षत्रके
वें या अठारहवें नक्षत्रसे मंगलका अनुवक्र हो तो 'असिमुशल' नामक वक्र होता
इससे चोरभय,शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है ॥५॥ यदि मंगलग्रह पूर्वाफाल्गुनी
उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढा नक्षत्रमें निवृत्त अर्थात् वक्री

निवर्त्तते वैश्वदैवते भौमः । प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोका
पीडयति ॥ ६ ॥ श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्धाभिषि
पीडाकृत् । यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति ॥ ७
मध्येन यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः पाण्ड्यो नृ
विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः ॥ ८ ॥ भित्त्वा मघां विशा
भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम् । मरकं करोति घोरं यदि भित्त्
रोहिणीं याति ॥९॥ दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन् महीजोऽर्घवृष्टि
ग्रहकृत् । धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्था
॥ १० ॥ प्राजापत्येश्रवणे मूले तिसृषूत्तरासु शाक्रे च । विच
घननिवहानामुपघातकरः क्ष्मातनयः ॥११॥ चारोदयाः प्रशस्त
श्रवणमघादित्यमूलहस्तेषु । एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येसु
कुजस्य ॥ १२ ॥ विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः स्फुट
चिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः । विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनी
शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भौमचारः षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

होकर रोहिणी नक्षत्रमें अस्त हो तो स्वर्ग, मृत्यु पाताल इन तीन लोकोंको भी पी
होती है ॥६॥मंगल श्रवण नक्षत्रसे उदित होकर यदि पुष्य नक्षत्रमें वक्री हो तो मूर्द्धा
भिषिक्त (क्षत्रीजाति) को पीडा होती है,और नक्षत्रमें उदय हो और वह नक्षत्र जि
दिशामें हो उस दिशाके रहनेवाले लोगोंका नाश हो जाता है॥७॥ जो मघा नक्षत्र
भी मंगलका आवागमन हो तो पाण्ड्यराजाका विनाश, शस्त्रभय और अवृष्टि हो
है ॥ ८ ॥ मंगल मघा नक्षत्रको भेदकर यदि विशाखा नक्षत्रका भेद करे तो दुर्भि
होता है और रोहिणीको भेद करके गमन करे तो अत्यन्त मरी पडती है । जो पृथ
पुत्र मंगल रोहिणी नक्षत्रके पार्श्वमें विचरण करे तो महंगी होती है और वृष्टि
नाश होता है । और यदि धूमसे ढके हुएके समान शिखायुक्त मा
पडे तो पारियात्र पूर्वके रहवासियोंका नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ १० ॥ रोहिण
श्रवण, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा या ज्येष्ठानक्ष
मंगलका विचरण हो तो मेघोंका नाश होता है ॥ ११ ॥ श्रवण, मघा, पुनर्व
मूल, हस्त, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी, विशाखा और रोहिणी नक्षत्रमें मंगलका वि
ना वा उदय होना अच्छा है ॥ १२ ॥ बडा और निर्मल मूर्तिवाला, टेसू

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

बुधचारः ।

नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम् । जलदहनपवनभयकृद्धान्यार्घक्षयविवृद्धयै वा ॥ १ ॥ विचरञ्छ्रावणधनिष्ठाप्राजापत्येन्दुविश्वदैवानि । मृद्नन् हिमकरतनयः करोत्यवृष्टिं गरोगभयाम् ॥ २ ॥ रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजेप्रजापीडा । शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः ॥ ३ ॥ हस्तादीनि विचरन् षडृक्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः । स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम् ॥ ४ ॥ आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशं च । चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसंक्षयकृत् ॥ ५ ॥ आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुतः । पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकरः ॥ ६ ॥ पूर्वात्रृक्षत्रितयादेकम-

---

अशोकफूलके समान रंगवाला, स्वच्छ मनोहर किरणवाला, तपाये हुए तांबेके समान कान्तिवाला मंगलग्रह जो उत्तर पथ (उत्तर क्रांति) में विचरे तो राजाओंको शुभ और प्रजाओंको सुख होता है ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

चन्द्रकुमार बुध उत्पातरहित होकर उदित नहीं होता है. बुधका उदय होनेके समय धान्यादिका मोल कमती या बढती करनेके लियेही बहुधा जल, अग्नि या आंधी आती है ॥ १ ॥ श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा वा उत्तराषाढा नक्षत्रोंको मर्दित करके बुधके विचरनेसे रोगभय और अनावृष्टि होती है ॥ २ ॥ आर्द्रासे लेकर मघातक जिस किसी नक्षत्रमें बुध होगा; उसमेंही शस्त्रपात, भूख, भय, रोग, अनावृष्टि और संतापसे पुरुषोंको पीडा होगी ॥ ३ ॥ हस्तसे लेकर ज्येष्ठातक छः नक्षत्रमें जो चन्द्रका पुत्र बुध विचरण करे तो ढोरोंको पीडा. तैलादिकोंका मूल्य बढता है और अनेक प्रकारके द्रव्योंसे पृथ्वी पूर्ण होती है ॥ ४ ॥ उत्तराफाल्गुनी, कृत्तिका, उत्तराभाद्रपदा और भरणी नक्षत्र बुधद्वारा निहत हो तो प्राणियोंकी धातुका क्षय होता है ॥ ५ ॥ यदि चन्द्रमाका पुत्र बुध अश्विनी, शतभिषा, मूल और रेवती नक्षत्रको भेदे तो बाजारू पदार्थ, वैद्य, नौकाजीवी, जलजपदार्थ और घोडोंके लिये उपद्रव होता है ॥ ६ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा

पीन्दोः सुतोऽभिमृद्गीयात् । क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी
जगतः ॥ ७ ॥ प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपाप
सप्त पराशरतन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तिता गतयः ॥ ८ ॥ प्राकृतसंज्ञा
व्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च । मिश्रा गतिः प्रतिष्ठा शशि
पितृभुजगदैवानि ॥ ९ ॥ संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गु
चेति । तीक्ष्णायां भाद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥
योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गतिः सुतस्येन्दोः । घोरा
स्त्वाष्ट्रं वसुदेवं वारुणं चैव ॥ ११ ॥ पापाख्यं सावित्रं मैत्र
ग्निदैवतं चेति।उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणंप्राह॥१२॥
रिंशत्त्रिंशद् द्विसमेता विंशतिर्द्विनवकं च । नव मासार्द्धं दश
युताःप्राकृताद्यानाम्॥१३॥प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्ध
मम्। संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमेतदन्यासु विपरीतम्॥१४॥ऋज्व्यो

इन तीन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रको भेद कर जो बुधग्रह विचरण करे तो
क्षुधा, शस्त्र, तस्कर रोग और भय होता है ॥ ७ ॥ पराशर मुनिके रचे हुए
षीय तंत्रशास्त्रमें नक्षत्रके द्वारा बुधकी सात प्रकारकी गति कही है यथा- १
२ विमिश्र, ३ संक्षिप्त, ४ तीक्ष्ण, ५ योगान्त, ६ घोर, ७ पाप ॥ ८ ॥
भरणी, रोहिणी और कृत्तिका नक्षत्रमें बुध हो तो इस गतिको प्राकृत क
मृगशिरा, आर्द्रा, मघा और अश्लेषा नक्षत्रीय बुधकी गतिको मिश्रा कहते
पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें संक्षिप्ता और पूर्वाभ
उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवतीमें बुधकी गतिको तीक्ष्णा व
॥ १० ॥ मूल, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें जो बुधकी गति होती है,
योगान्तिका कहते हैं और श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषामें जो गति
उसको घोरा कहते हैं ॥ ११ ॥ जब बुध हस्त, अनुराधा या ज्येष्ठा
रहता है तब उसकी गतिका नाम पापा है, इस प्रकार पराशर मुनिने उ
अस्तादिवसके द्वारा बुधकी गति व लक्षणोंका निरूपण किया है ॥ १२ ॥
तगति ४० दिन, मिश्रा ३० दिन, संक्षिप्ता २२ दिन, तीक्ष्णा १८ दिन, य
९ दिन, घोरा १५ दिन और पापा गति ११ दिन तक रहती है ॥ १३ ॥
प्राकृत गतिमें आरोग्य, वृष्टि, धान्यकी वृद्धि और मंगल होता है, संक्षिप्त
मिश्रा गतिमें मिश्रफल अर्थात् न बहुत अच्छा न बहुत बुरा फल होता है
दूसरी गतियोंमें विपरीत फल होता है ॥ १४ ॥ देवलके मतसे बुधकी गा

क्रा विकला च मतेन देवलस्यैताः। पञ्चचतुर्द्व्येकाहा ऋज्व्या-
दीनां षडभ्यस्ताः ॥ १५ ॥ ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्रार्थं गति-
र्विनाशयति। शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी॥१६॥
पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु। दृष्टो भयाय जगतः
शुभफलकृत् प्रोषितस्तेषु ॥ १७ ॥ कार्त्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे
दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः। शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि
च तदा विदधाति ॥ १८ ॥ रुद्धानि सौम्येऽस्तमिते पुराणि या-
न्युद्गते तान्युपयांति मोक्षम्। अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः
पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥ हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्य-
केन मणिना सदृशो वा। स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न
शुभकृच्छशिपुत्रः ॥ २० ॥ इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहिता-
यां बुधचारः सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

कारकी है, यथा–ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा और विकला इन सब गतियोंका यथा-
क्रमसे विद्यमान काल ३० दिन, २४ दिन, १२ दिन और केवल ६ दिनतक है
॥ १५ ॥ ऋज्वीगति प्रजाओंको हितकारी है, अतिवक्रा गति धनका नाश करने-
वाली है, वक्रगतिमें शस्त्रभय और विकलामें भय व रोग होता है ॥ १६ ॥ पौष,
आषाढ, श्रावण, वैशाख वा माघमासमें जो बुध ग्रह दिखाई दे तो संसारको भय
और यदि इस समयमें अस्त होवे तो शुभ होता है ॥ १७ ॥ जो चंद्रमाका पुत्र
बुध कार्तिक या आश्विन मासमें दिखाई दे तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग जल और
क्षुधाका भय होता है ॥ १८ ॥ बुधके चारमें भलीभांति सब कुछ जाने हुए
पंडित लोग कहते है कि, बुधके अस्तकालमें जो नगर रुक जाते हैं, फिर बुधके
उदय होनेके समयमें वह सब नगर छट जाते हैं, कोई कोई कहते हैं कि, पश्चिम
दिशामें बुध उदय हो तो उस ओरके सब पुर लाभवाले होते हैं ॥ १९ ॥
जब कि चंद्रमाके पुत्र बुधका रंग सुवर्णके समान या तोतेपक्षीके समान अथवा
सस्यकमणिके समान हो और जब बुध निर्मल मूर्त्ति और बडा हो तब सबकाही
मंगल होता है, ऐसा न होनेपर अशुभही होता है ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः ।

बृहस्पतिचारः ।

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री । तत्संज्ञं व- व्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ १ ॥ वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वया योगीनि । क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥ २ शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च । वृद्धिस्तु रक्तप- तककुसुमानां कार्त्तिके वर्षे ॥ ३ ॥ सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशल भाण्डजैश्च सस्यवधः । व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैर ॥ ४ ॥ शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः । द्वि- गुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च ॥ ५ ॥ पितृपूजापरिवृद्धि- र्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम् । आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मि- लाभश्च ॥ ६ ॥ फाल्गुनवर्षे विद्यात् क्वचित् क्वचित् क्षेमवृद्धिर

इन्द्रके मंत्री अर्थात् बृहस्पति जिस मासके जिस नक्षत्रमें उदय होवे, उ नक्षत्रके अनुसार ही महीनेके नामकी नांई वह वर्ष कहलाता है ॥ १ ॥ बा- मास होनेसे इस प्रकार कुल बारह वर्ष होंगे, उनमें कृत्तिका नक्षत्रसे आरंभ कर दो दो नक्षत्रोंमें कार्तिकादि वर्ष होगा, परंतु इन बारह वर्षोंके मध्यमें पञ्च- एकादश और द्वादश वर्ष तीन २ नक्षत्रोंका होगा, जैसे कृत्तिका वा रोहि- नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय होनेपर कार्तिक नामक वर्ष होगा ॥ २ ॥ (१) कार्ति- नामक वर्ष होवे तो शकटद्वारा आजीविका करनेवाले बनजारे इत्यादि, अग्नि- आजीविका करनेवाले लोगोंको और गायढोरोंको पीडा होती है, लोगोंके ऊप व्याधि और शस्त्रका कोप होता है, लाल और पीले रंगके फूल बढते हैं ॥ ३ (२) सौम्य नामक वर्ष हो तो अनावृष्टि होती है और मृग, चूहे, शलभ (टीड व पक्षी आदि अंडज जन्तुओंसे नाजकी हानी होती है. मनुष्योंको व्याधिभ- होता है और मित्रोंके संगभी राजाओंकी शत्रुता हो जाती है ॥ ४ ॥ (३) पौ- नामक वर्षमें जगत्का शुभ होता है, राजा लोग आपसका वैरभाव छोड देते धान्यका मूल्य दुगुना वा तिगुना हो जाता है और पौष्टिक कार्यकी वृद्धि होती ॥ ५ ॥ (४ माघ नामक वर्षमें पितृलोगोंकी पूजा बढ़ती है, सब प्राणियोंक मंगल होता है, आरोग्य, सुवृष्टि, धान्यका मोल नीका, श्रेष्ठ सम्पत्ति और मित्रला- होता है ॥ ६ ॥ (५) फाल्गुन नामवाले वर्षमें किसी स्थानके बीच मंगल होत है वह नाज बढता है, स्त्रियोंका कुभाग्य, चोरोंकी प्रबलता और राजाओंमें उग्रत

। दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चोग्राः ॥ ७ ॥ चैत्रे मन्दा
ययमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः । वृद्धिस्तु कोशधान्यस्य भवति
। रूपवतान् ॥ ८ ॥ वैशाखे धर्मपरा विगतभयाः प्रमुदिताः
नृपाः । यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९ ॥
तिकुलाधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः। पीडयन्ते धान्यानि
। कंगुं शमीजातिम् ॥ १० ॥ आषाढे जायन्ते सस्यानि
ष्टिरन्यत्र । योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः
। श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति । क्षुद्रा
डाः पीडयन्ते ये च तद्भक्ताः ॥ १२ ॥ भाद्रपदे वल्लीजं
याति पूर्वसस्यं च । न भवत्यपरं सस्यं क्वचित् सुभिक्षं
भयम् ॥ १३ ॥ आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः
मम् । प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ॥ १४ ॥
यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानम् । याम्ये तद्विप-
येन तु मध्यफलदायी ॥ १५ ॥ विचरन् भद्वयमिष्टस्त-

॥ ७ ॥ (६) चैत्र नामक वर्षमें साधारण वृष्टि होती है, प्रिय अन्नका
है, राजाओंमें मीठापन, कोष और धान्यकी वृद्धि व रूपवान् आदमि-
होती है ॥ ८ ॥ (७) वैशाख नामक वर्षमें राजा प्रजा दोनोंही धर्ममें
हैं, भयशून्य और हर्षित रहते हैं, यज्ञ करते हैं और समस्त धान्य भली-
ते हैं ॥ ९ ॥ (८) ज्येष्ठ नामक वर्षमें राजालोग धर्मज्ञ पुरुषोंके साथ
, धन और श्रेणीमें श्रेष्ठ मानकर गिने जाते हैं, और कंगनी वा शमीजा-
र सब धान्य पीडित होते हैं ॥१०॥ (९) आषाढ नामक वर्षमें समस्त
ते हैं, परन्तु किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है, योगक्षेम (अलब्ध वस्तुका
लब्धकी रक्षा) मध्यम और राजालोग अत्यन्त व्यग्र होते हैं ॥ ११ ॥
वण नामक वर्षमें धान्य आनन्दसे पक जाते हैं, परन्तु साधारण पाखण्डी
र उनके भक्त मनुष्य अत्यन्त पीडित होते हैं ॥ १२ ॥ (११) भाद्रपद
लताजातीय समस्त पूर्व धान्य भलीभांति पक जाते हैं, और धान्य नहीं
हीं सुभिक्ष होता है और कहीं भय होता है ॥ १३ ॥ (१२) आश्वयुज
श्विन नामक वर्षमें अत्यन्त जल गिरता है, प्रजा हर्षित होती है, प्राणि-
सुखमें रहते हैं और सबके पास बहुतसा अन्न रहता है ॥ १४ ॥ जब
 नक्षत्रोंके उत्तरमें घूमता है तब सबके लिये आरोग्य, सुवृष्टि और

स्तत्सार्धवत्सरेण मध्यफलः । सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं य
कदाचित् ॥ १६ ॥ अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणाग
श्यामे । हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७
धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे । विपुलेऽमले सुत
रात्रौ दृष्टे प्रजाः स्वस्थाः ॥ १८ ॥ रोहिण्योऽनलभं च वत्सरत
र्नाभिस्त्वषाढद्वयं सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं
फलम् । देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं पु
मूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ गता
वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः । नवाष्टपञ्चाष्ट
तानि कृत्वा विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ॥ २० ॥ फलेन यु
शकभूपकालं संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य । युगानि नाराय
पूर्वकाणि लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥ २१ ॥ एकैक

मंगल होता है, दक्षिण दिशामें बृहस्पति हो तो कहे हुए फलसे विपरीत फल हो
है, मध्यभागमें विचरण करता हो तो मध्यम फल हुआ करता है ॥ १५ ॥ य
बृहस्पति एक वर्षमें दो नक्षत्रोंके मध्य विचरण करे तो शुभकारक हैं, ढाई नक्ष
विचरण करे तो मध्यम फल होता है और यदि संवत्सरमें तिससे अधिक नक्ष
कभी विचरण करे तो धान्यका नाश होता है ॥ १६ ॥ जो बृहस्पतिका रंग अग्नि
समान हो तो अग्निका भय होता है, पीतवर्ण हो तो व्याधि, श्यामवर्ण हो तो यु
होगा, हरा होनेसे चोरोंके द्वारा पीडा होगा, लाल होनेसे शस्त्रभय और धूपका रं
होनेसे अनावृष्टि होती है, दिनमें बृहस्पति दिखाई दे तो मनुष्योंका नाश होता
जो सुन्दर तारेके समान बडा और निर्मल रात्रिकालमें दिखाई दे तो प्रजाको सु
होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र वर्षकी देह है, पूर्वाषाढा औ
उत्तराषाढा नक्षत्र वर्षकी नाभि है, आश्लेषा हृदय और मघा नक्षत्र वर्षका कुसु
है, यह शुद्ध होवें तो शुभ फल होता है, (बृहस्पतिके अवस्थाकालमें) संवत्सरक
देहनक्षत्र यदि पापग्रहसे पीडित होवें तो अग्नि और पवनसे भय होता है. नाभि
नक्षत्र पीडित हो तो क्षुधाका भय होता है, पुष्यनक्षत्रमें मूल अर्थात् मूली आ
और फलोंका क्षय होता है, और हृदयनक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो निश्चय
धान्यका नाश होता है ॥ १९ ॥ शकादित्य (शालिवाहन) राजाके समय
जितने वर्ष बीते हैं, उनको दो स्थानोंमें रखकर एक स्थानके अंकोंको ११ संख्या
गुणा करे, तदुपरान्त इस गुणनफलको फिर चार संख्यासे गुणा करे, फिर इ

ैषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग्द्वादशकं क्रमेण। हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेव-

गफलके साथ ८५८९ को मिलावे। इस योगज फलको ३७५० से भाग देवे+ र दूसरे स्थानके शकवर्षीय अंकोंके साथ इस भागफलको मिलावे, इस योग लमें ६० का भाग देय (जो शेष रहे तिनसे प्रभवादि वत्सर जाने जायँगे) । बचे उसमें ५ का भाग देना उचित है, इस भाग करनेसे जो कुछ प्राप्त हो, ा लब्धांक संख्यामें नारायण (विष्णु) आदि युग और हुए बचे अंकोंसे उस ानुवर्ती उतनी संख्याके वर्ष चलते हैं यह जानना ॥ २० ॥ २१ ॥ क वत्सरोंकी संख्याको १२ से भाग करे. भागफल इस नवगुणित अंकमें मिला- र ४ का भाग करनेपर जो लब्ध हो, उतनी संख्याके नक्षत्रमें बृहस्पतिकी स्थिा-

+ इस भागके लब्ध वर्ष और जो कुछ बचेगा, उसको १२ से गुणा करके ३७५० का भाग देनेसे ा प्राप्त होंगे, फिर बाकीको तीससे गुणा करे, गुणफलमें पूर्वोक्त भाजक ३७५० का भाग करनेपर दिन ा होंगे फिर अवशिष्टको ६० से गुणा करनेपर यह भाजकको ३७५० से भाग करनेपर दण्ड प्राप्त होंगे र लब्धशेषको फिर ६० से गुणा करके उसमें ३७५० का भाग देनेपर पलादि प्राप्त होंगे, इस प्रकारसे तक निश्शेष न हो जाय तबतक ६० गुणे और ३७५० भाजकसे भाग करता जाय यह सब नियमपूर्वक ापन करके फिर दूसरे स्थानके अंकोके साथ मिला दे।

$$\frac{(\text{शक} \times ११ \times ४) + ८५८९}{३७५०} + \text{शक} \div ६० \text{ बार्हस्पत्यवर्षादिफल।}$$

क्रिया यथा–शक–शक–१८१३ सौरवर्षमें–

$$\frac{(१८१३ \times ११ \times ४) \times ८५८९}{३७५०} + \text{शक} \div ६० \text{ बार्हस्पत्यवर्षादिफल।}$$

१८१३×११×४=७९७७२ । ७९७७२+८५८९=८८३६१।८८३६१÷३७५०=वर्षादि २३ । ६ । २२ । ९ । २१ । ३६ । १८१३+२३।६।२२।२९।२१।३६=१८३६। ६ । २२ । २९ । २१ । ३६ ॥ १८३६ । । २२ २९ । २१ । ३६ ÷ ६०=३० (अवशिष्ट–बार्हस्पत्यवर्ष) अवशिष्ट । ३६ । ६ । २२ । २९ । । ३६, इसको पांचसे भाग करनेपर ७ (लब्धभागफल–युग) इससे जाना गया कि, प्रभवादि ६० त्सरके ३६ नं. वष गत होकर ३७ नं. वर्षके ६ मास, २२ दिन, २९ दण्ड, २१ पल, ३६ विपल बीते और पञ्च लब्धफल ७ हैं, इसमें विष्णुआदि युगके ७ नं. युग बीतकर ८ नं. युग वर्त्तमान और यही युगके । ६ । २२ । २९ । २१ । ३६ । वर्षादि बीते हैं। यह १८१३ शाकेमें वैशाखके प्रारम्भका गणित हैं ॥

ताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ॥ २२ ॥ विष्णुः सुरेज्यो ब भिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च । क्रमाद्युगेशाः पितृवि सोमाः शक्रानलाख्याश्विभगाः प्रतिष्ठाः ॥ २३ ॥ संवत्सरोऽ परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली । प्रजापतिश्चाप्यनु त्सरः शैलसुतापतिश्च ॥ २४ ॥ वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वित प्रभूततोया कथिता तृतीये । पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्प

मानता जानो, परन्तु गणनाके समय २४ वें नक्षत्रसे गणना करे * अर्थात् १ ल होनेसे समझना पडेगा कि २५ वां नक्षत्र अर्थात् पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र है, २ होवे २६ वां उत्तराभाद्रपदा इत्यादि ॥ २२ ॥ प्रभवादि षाष्टि संवत्सरमें सब समेत १२ होते हैं, बस पांच २ वर्षका एक एक युग होता है । इस द्वादश युगोंके यथाक्रम अधिपति, १ विष्णु, २ सुरेज्य, ३ बलभित, ४ अग्नि, ५ त्वष्टा, ६ उत्तरप्रोष्ठपद, पितृगण, ८ विश्व, ९ सोम, १० शक्रानल, ११ अश्वि और १२ भग । इन युगा पतियोंके नामानुसारही इन युगोंका नाम होता है, यथा-नारायण, बृहस्पति, इ अग्नि इत्यादि ॥ २३ ॥ यह युग सबके अन्तर्वर्ती पांच २ वर्षमें ।फिर पांच संज्ञान्तर्यु पांच वर्ष हैं + यह साठ संवत्सरके अन्तर्गत नहीं है) उनके नामान्तर और उन अधिपतियोंके नाम यथा;-१ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्स ४ अनवत्सर ५ इद्वत्सर । अधिपति १ अग्नि, २ सूर्य, ३ चन्द्र, प्रजापति, ५ महादेव ॥ २४ ॥ यह जो संवत्सरादि पांच वर्षका वर्णन कि

$$* \frac{\text{षष्ट्यब्द} \times ५ \times (\text{षष्ट्यब्द} + १२)}{४} = \text{बृहस्पतिका भोग्यमान नक्षत्र ।}$$

क्रिया यथा-३६ । ६ । २२ । २९ । २१ । ३६ । बार्हस्पत्य षष्ट्यब्दादि ।

$$\frac{३६\times५+(३६\div१२)}{४} = ३६+५=३२४।३६\div१२=३।३२४+३।३२७।३२७\div४=८१\tfrac{३}{४}$$

२७ नक्षत्रमें भचक्र होनेसे २७+८१ अवशिष्ट ३ हैं बस जाना गया कि, इस समय बृहस्पति २४ नक्षत्रमें वर्त्तमान हैं और लब्ध ८१ होकर ३ बचे थे इस कारण २४ वें नक्षत्रके तीसरे पादमें उत्तीर्ण हो चौथे चरणमें वर्त्तमान हैं यह स्थूल है, कभी २ इसमें साधारण अन्तर लक्षित होगा उसकी सूक्ष्मता प सिद्धान्तिकामें देखनी चाहिये. विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा ॥

+वराहमिहिरके मतसे युगारम्भसेही यह वत्सरारम्भ होता है. प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दनभट्टाचार्यके मत वैशाखमासके प्रारम्भसे ही यह वर्ष आरम्भ होता है. उनके मतसे इन वर्षोंमें तिलादिका दान करना चाहि " संवत्सरे तथा दानं " इत्यादि मलमासतत्त्व बल्लालसेनप्रणीत दानसागर ग्रन्थका यही मत है ॥

पञ्चममब्दमुक्तम् ॥ २५ ॥ चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां
ष्णवन्द्रजीवानलदैवतानि । चत्वारि मध्यानि च मध्यमा
चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात् ॥ २६ ॥ आद्यं
ष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः । षष्ठ्यब्दपूर्वः
ः स नाम्ना प्रवर्त्तते भूतहितस्तदाब्दः ॥ २७ ॥ क्वचित्त्ववृष्टिः
ाग्निकोपः सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः । संवत्सरेऽस्मिन्
प्रवृत्ते न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥२८॥ तस्माद् द्वितीयो
वः प्रदिष्टःशुक्रस्तृतीयःपरतःप्रमोदः । प्रजापतिश्चेति यथोत्त-
शस्तानि वर्षाणि फलानि चैषाम् ॥ २९ ॥ निष्पन्नशालीक्षु-
दिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम् । संहृष्टलोकां कलिदोष-
क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ॥ ३० ॥ आद्योऽङ्गिराः
स्वभावसाह्वौ युवाथ धातेति युगे द्वितीये । वर्षाणि पञ्चैव
क्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ॥ ३१ ॥ त्रिष्वङ्गिराद्येषु

इसके प्रथम वर्षमें वृष्टि होती है, दूसरे वर्षके आरम्भमें वृष्टि होती है, तीसरे
अतिवृष्टि होती है, चतुर्थके शेषमें वृष्टि होती है, पञ्चम वर्षमें साधारण वृष्टि
है ॥२५॥ पहिले जो बारह युगका वर्णन कर आये हैं,इसके मध्यमें जो प्रथम
युग हैं जिनके पति विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि हैं यह चार युग सबसे
हैं। तिसके पिछेके अर्थात् बीचके चार युग मध्यम हैं और अन्तके चार
मध्यम फल जानना ॥२६॥ जिस समय बृहस्पति धनिष्ठा नक्षत्रके प्रथमांशमें
होकर माघमासमें उदित होंगे तिस कालही षष्टि संवत्सरके प्रथम प्रभवनामक
आरम्भ होगा। यह वर्ष प्राणियोंका हितकारक है ॥२७॥ प्रभवनामक वर्षके
न होनेपर यद्यपि किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है किसी २ स्थानमें वायु वा
का कोप होता है, किसी स्थानमें ईतिभय और किसी स्थानमें श्लेष्माकी पीडा
है,तथापि इस वर्षमें प्राणियोंको विशेष दुःख नहीं होता ॥२८॥ दूसरे वर्षका नाम
है, तीसरा शुक्ल, चौथा प्रमोद और पञ्चम वत्सरका नाम प्रजापति है। यह
वर्ष उत्तरोत्तर शुभफलके देनेवाले हैं । इन वर्षोंमें राजालोग इस प्रकारसे
का पालन करते हैं कि, उनके शासनके गुणसे पृथ्वी धान्य, ईख और यवादि
ी फलनेवाली और भयशून्य शत्रुताहीन और हर्षित मनुष्योंसे युक्त हो कलि-
दोषोंसे छूट जाती है ॥ २९॥३० ॥ दूसरे युगमें (बृहस्पति युगमें) जो पांच

निकामवर्षी देवो निरातंकभयाश्च लोकाः । अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ॥ ३२ ॥ शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः । प्रमाथिनं विक्रममप्यतोऽन्य द्वृषं च विद्याद्गुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥ आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतः प्रजानाम् । पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानुं कथयन्ति वर्षम् । मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥ ३५ ॥ तारणं तदनुभू रिवारिदं सस्यवृद्धिमुदितं च पार्थिवम् । पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी । तस्माद्विरोधी विकृतः स्वरश्च शस्तो द्वितीयाऽत्र भयाय शेषाः ॥ ३७ ॥ नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च दुर्मुखः । कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥ ३८ ॥ हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बि

वत्सर हैं उनके नाम- अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता । तिनमें प्रथमके तीन वर्ष कुछ एक अच्छे हैं और दो समभाववाले हैं ॥ ३१ ॥ अंगिरा आदि तीन वर्षोंमें देवतालोग भली भांति जल वर्षाते हैं और आदमी निरातंक व निर्भय होते हैं, पिछले दो वर्षमें यद्यपि कृषि समभावसे होती है परन्तु रोग और समर होना है॥३२॥ बृहस्पतिके विचरणसे ऐन्द्रनामक जो तीसरा युग होता है उसके प्रथम वर्षका नाम १ईश्वर २बहुधान, ३ प्रमाथी, ४विक्रम और पांचवेंका नाम वृष है ॥३३॥ इसमें पहला और दूसरा वर्ष शुभदायी है,वरन प्रजाके लोगोंको तो मानो सतयुगही हो जाता है। प्रमाथी वर्ष अत्यन्त पापदायक है । विक्रम और वृष नामक दो वर्ष सुभिक्षदायक तो हैं परन्तु रोग और भयके करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ चतुर्थ (हुताश नामक) युगका प्रथम वर्ष जिसका नाम चित्रभानु है, अत्युत्तम फलको देनेवाला है । दूसरा वर्ष सुभानु मध्यमफली है अर्थात् रोगदायी है । परन्तु मृत्युदायक नहीं है। पांचवें वर्षका नाम तारण है (किसी किसीके मतसे दारुण) इसमें अत्यन्त वृष्टि होती है । चौथे वर्षका नाम पार्थिव है, इसमें धान्य बढनेसे हर्ष होता है । पांचवें वर्षका नाम व्यय है, इस वर्षमें प्राणियोंको काम उद्दीप्त होता है, वह उत्सवयुक्त होकर शोभायमान होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ त्वाष्ट्र नामक पञ्चम युगके प्रथम वर्षका नाम सर्वजित् २ सर्वधारी, ३ विरोधी, ४ विकृत, ५ स्वर इन पांच वर्षोंमें दूसरा वर्ष मंगलकारी है और शेष भयके कारण हैं ॥ ३७ ॥ प्रोष्ठपद नामक छठे युगमें प्रथम वर्षका नाम नन्दन है, २ विजय, ३ जय, ४ मन्मथ और पांचवां दुर्मुख हैं । इन पांच

रतो विकारि च। शर्वरीति तदनु प्लवः स्मृतो वत्सरो गुरुवशेन
क्रमः ॥ ३९ ॥ ईतिप्रायः प्रचुरपवनाः वृष्टिरब्दे तु पूर्वे मन्दं
स्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये। अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः
स्यात्तृतीयश्चतुर्थो दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः
४० ॥ वैश्वे युगे क्षोभकृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद्द्वितीयः।
धी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेति पराभवश्च ॥ ४१ ॥
र्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषदोऽब्दः। अन्त्यौ
मौ किन्तु पराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्त्तिर्द्विजगोभयञ्च ॥ ४२ ॥
द्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः स्यात्कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः।
धारणो रोधकृदित्यथाब्दः शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ॥ ४३ ॥
ष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च। यः
ञ्चमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत्॥ ४४ ॥
न्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत् तत्राद्यमब्दं परिधाविसंज्ञम्। प्रमाद्य-
नन्दमतः परं यत् स्याद्राक्षसं चानलसंज्ञितं च ॥ ४५ ॥ प-

ोंमें प्रथमसे लेकर तीन मनोहर हैं, मन्मथ वत्सर समफली और पञ्चम वत्सर
त्यन्त अधम हैं ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिकी गतिके वशसे सप्तम (पितृ) युगका प्रथम
हेमलम्ब, २ विलम्बी, ३ विकारी ४ शर्वरी, ५ प्लव है। इसके प्रथम वर्षमें
तिभय और झंझावायुका भय होता है, झंझावायुके साथमें पानीभी बर्षता है तदुप-
न्त दूसरे वर्षमें धान्य और वृष्टिकी अलपता होती है। तीसरे वर्षमें अत्यन्त घब-
हट और अत्यन्त वर्षा होती है. चौथे वर्षमें दुर्भिक्षका भय और प्लव वर्षमें अत्यन्त
वृष्टि व शुभ होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वैश्व युगमें प्रथम वर्षका नाम क्षोभकृत, २
भकृत्, ३ क्रोधी, ४ विश्वावसु, ५ पराभव इसका प्रथम और दूसरा वर्ष प्रजा-
ओंको प्रसन्न करनेवाला है. तीसरा वर्ष बहुत दोषोंका देनेवाला है और शेष दो
वत्सर समफली है, परन्तु पराभव वर्षमें अग्नि, शस्त्र, रोग पीडा और गौब्राह्म
णोंको पीडा होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ नवम (सौम्य) युगमें प्रथम वर्षका नाम
प्लवंग, २ कीलक. ३ सौम्य, ४ साधारण, पञ्चम रोधकृत् है. तिसमें कीलक और
सौम्य वत्सर अत्यन्त शुभदाई हैं ॥ ४३ ॥ प्लवंग वर्षमें प्रजाओंको अत्यन्त कष्ट होता
साधारण वत्सरमें साधारण वृष्टि और ईतिभय होता है। और पञ्चम वर्ष जिसका
म रोधकृत् है, इसमें सुन्दर वृष्टि और धान्यकी सम्पत्ति होती है ॥ ४४ ॥ शक्रा-

धाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः । अलसस्
जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥ ४६ ॥ तत्परः सव
लोकनन्दनो राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा । ग्रीष्मधान्यजननोऽ
राक्षसो वह्निकोपनरकप्रदोऽनलः ॥ ४७ ॥ एकादशे पिङ्गलकालयु
क्तसिद्धार्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ॥ आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौरा श्वास
हनूकम्पयुतश्च कासः ॥ ४८ ॥ यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं सिद्धा
र्थसंज्ञे बहवो गुणाश्च । रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत्प्रदिष्टो यो दुर्मतिम
ध्यमवृष्टिकृत्सः ॥ ४९ ॥ भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं सस्यस
वृद्धिं महतीं करोति । उद्गारिसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषम
च वृष्टिः ॥ ५० ॥ रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं यस्मि
भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च । क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्रा
शून्यीकुरुते विरोधः ॥ ५१ ॥ क्षयमिति युगस्यान्त्यं बहु
क्षयकारकं जनयति भयं तद्विप्राणां कृषीवलवृद्धिदम् । उपचयक
विट्छूद्राणां परस्वहृतां तथा कथितमखिलं षष्ट्यब्दे यत्तदत्र समा

मिदैवत जो दशम युग है, तिसके प्रथम वर्षका नाम परिधावी, दूसरा प्रमादी,
आनन्द, ४ राक्षस, ५ अनल है, तिसमें परिधावी नामक वत्सरमें मध्यदेशका नाश
राजाकी हानि, साधारण वृष्टि और अग्निका भय होता है, प्रमादी वर्षमें लो
अत्यन्त आलसी होते हैं. उलट पुलट होता है. लालवर्णके फुलोंके बीजका ना
हो जाता है, आनन्दवर्ष आनन्दका देनेवाला और राक्षस वा अनल वत्सरमें क्ष
होती है, परन्तु विशेषता यह है कि राक्षस वर्षमें ग्रीष्मकालके धान्य उत्पन्न होते
और अनलवर्ष अग्निकोपका दाता और नरकदाई है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ एक
दश (आश्वि) युगमें १ पिंगल, २ कालयुक्त, ३ सिद्धार्थ, ४ रौद्र, ५ दुर्मति ये पां
वर्ष होते हैं; इनमेंसे पहिले वर्षमें अत्यन्त वर्षा, चोरभय, श्वास और ठोडीको कम्प
यमान करनेवाली खांसी होती है । कालयुक्त वर्ष अत्यन्त दोषकारी है । सिद्धार्थवर्ष
अनेकगुण होते हैं । रौद्रवर्ष अत्यन्त रौद्र और क्षयकारी है । और दुर्मतिवर्ष मध्य
वृष्टिका करनेवाला है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ भगाधिदैवत बारहवें युगमें प्रथम वर्षका ना
दुंदुभि है, यह धान्यका अत्यन्त बढानेवाला है । तदुपरान्त दूसरा उद्गारी नामक व
(दूसरे मतसे रुधिरोद्गारी) राजाका क्षय और असमान वृष्टि होती है । तीसरे वर्षक
नाम रक्ताक्ष है, इस वर्षमें डसनेका भय और रोग होता है । चौथे अब्दक
नाम क्रोध है । यह क्रोधकारी है और झगडे कराकर जनपदोंक
शून्य कर देता है । इस बारहवें युगके पिछले वर्षका नाम क्ष

रतः ॥ ५२ ॥ अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्त्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फ-
टिकाभः। ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्त्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजा-
नाम् ॥ ५३ ॥

ति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बृहस्पतिचारोऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः।

शुक्रचारः।

नागगजैरावतवृषगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः। अश्विन्याद्याः
श्वित् त्रिभाः क्रमाद्वीथयः कथिताः ॥ १ ॥ नागा तु पवनयाम्या-
लानि पैतामहात्त्रिभात्तिस्रः। गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि
द्रपदे ॥ २ ॥ जारद्गव्यां श्रवणात्त्रिभं च मैत्राद्यम्। हस्तविशा-

यह क्षयकारक है, ब्राह्मणोंको भयदायी, खेतीके बलको बढानेवाले, पराये धनके
नेवाले, वैश्य और शूद्रोंकी वृद्धि करता है. इस प्रकार संक्षेपसे साठ संवत्सरका
स्त फल कहा गया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ देवताओंके गुरु बृहस्पतिजी जो
र्मल किरणवाले हों, स्थूलमूर्ति, कुमुद, कुन्दपुष्प, वा बिल्लौरे पत्थरके समान
न्तिवाले हों किसी ग्रहसे भेदित न होकर श्रेष्ठ मार्गमें चलते हों तो मनुष्योंको
तकारी होते हैं ॥ ५३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कोई कोई पंडित कहते हैं कि अश्विनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक वीथि
ती है. यह वीथिमें नौ भागोंमें बांटी गई है, यथा– १ नाग, २ गज, ३ ऐरावत,
वृषभ, ५ गौ, ६ जरद्गव, ७ मृग, ८ अज और ९ दहन है ॥१॥ किसीके मतसे
ती, भरणी और कृतिका नक्षत्रमें नागवीथि होती है. गज, ऐरावत और वृषभ
क जो तीन वीथि हैं, यह रोहिणीसे उत्तराफाल्गुनी तक तीन तीन नक्षत्रमें हुआ
ती हैं और अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें गोवीथि
ा करती है ॥२॥ श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जारद्गवी वीथि होती है,
राधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें मृगवीथि होती है; हस्त, विशाखा और चित्रा

। गतिके अनुसार पन्थविशेषका नाम वीथि है।

स्वात्वाष्ट्राण्ये जेत्यषाढाद्वयं दहना ॥ ३ ॥ तिस्रस्तिस्रस्तासां त्र
दुदङ्मध्ययाम्यमार्गस्थाः । तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणावस्थितैः
॥ ४ ॥ वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथा स्थिता भमार्गस्य ।
त्राणां तारा याम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ॥ ५ ॥ उत्तरमार्गो याम्य
निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्यः । दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चि
कृता मार्गाः ॥६॥ ज्योतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्य
कम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥७॥ उ
वीथिषु शुक्रः सुभक्षशिवकृद्गतोऽस्तमुदयं वा मध्यासु मध्यफ
कष्टफलो दक्षिणस्थासु ॥ ८ ॥ अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनम
कष्टफलम् । कष्टतमं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ॥९॥ भ
पूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम् । वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिकक

नक्षत्रमें अजवीथि और पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें दहना वीथि हुआ क
॥३॥ इस प्रकार सताईस नक्षत्रमें नौ वीथि होनेपर प्रत्येक वीथिही तीन बार ह
इस कारण इन सब वीथियोंमें तीन तीन वीथि सूर्यमार्गके उत्तर, मध्य और
मार्गमें विराजमान हैं, फिर उनमें एक एक यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षि
विराजमान हैं, जैसे तीन नागवीथि हैं, तिनमें उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्थ
तीसरी दक्षिणमार्गमें स्थित है ॥ ४ ॥ कोई कोई महात्मा कहते हैं कि सब न
नक्षत्र मार्गवर्ती योग तारागण उत्तर, मध्य और दक्षिणभागमें जैसे विराजमा
समस्त वीथिमार्गभी वैसेही विराजमान हैं ॥५॥ किसी किसी पंडितके मतसे अ
उत्तरमार्ग, पूर्वाफाल्गुनीसे मध्यममार्ग और पूर्वाषाढासे दक्षिणमार्गका आरम्भ
है ॥ ६ ॥ ज्योतिष आगमशास्त्र अर्थात् सन्देहपूर्वक किसी बातकी मीमांसा
मेरी (मुझ सरीखे आदमीके) सामर्थ्यसे बाहर है, इस कारण (ऋषि
किसीके मतको दोष देकर या किसीके मतकी पोषकता न करके) बहुतोंके
प्रकट करूँगा ॥ ७ ॥ जिस समय शुक्राचार्य उत्तरवीथिमें विराजमान होक
या अस्त होंगे तबही सुभिक्ष या मंगल होगा, मध्यवीथिमें होनेसे मध्य
और दक्षिणवीथिमें होनेसे कष्टकारी फल होता है ॥ ८ ॥ आर्द्रा नक्षत्रसे
करके मृगशिरातक जो नौ वीथियें हैं तिनमें शुक्रका उदय या अस्त होने
क्रमसे अत्युत्तम, उत्तम, ऊन, सम, मध्य, न्यून, अधम, कष्ट और कष्टत
उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ भरणीसे लेकर चार नक्षत्रमें जो मंडल; अर्थात् व

---

१ किस नक्षत्रमें कितने योगतारे हैं सो नक्षत्रगुणाध्यायमें कहेंगे।

देशेषु भयजननम् ॥ १० ॥ अत्रोदितमारोहेद्ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात्। भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान् ॥ ११ ॥ भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै। विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥ १२ ॥ अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकाश्वजीविगोमन्तान्। गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥ १३ ॥ विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः। क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसंकरकरश्च ॥ १४ ॥ पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्ये नाविकाञ्छबरशूद्रान्। पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १५ ॥ स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम्। ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥१६॥ अत्रा-

---

इसकी प्रथम वीथिमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे सुभिक्ष होता है, परन्तु अंग, वंग, माहिष बाह्लिक और कलिंग देशमें भय होता है ॥ १० ॥ इस प्रथम मण्डलमें उदित शुक्राचार्यके ऊपर जो कोई ग्रह हो तो भद्राश्व,शूरसेनक,यौधेयक और कोटिवर्ष देशके राजाका नाश होता है ॥११॥ आर्द्रासे लेकर जो चार नक्षत्र हैं उनको दूसरा मंडल कहते हैं. (इनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे) इससे बहुतसा जल बर्षता है और यह धान्य सम्पत्तिका निमित्त है. परन्तु ब्राह्मणोंको अशुभ होता है, विशेष करके जो लोग क्रूर चेष्टावाले हैं उनकी विशेष हानि है॥१२॥दूसरे मंडलवाले शुक्रको यदि कोई आक्रमण करे तो म्लेच्छ, आटाविका, अश्वजीवी अर्थात् बनजारे इत्यादि, गोमन्त (कुत्तोंसे आजीविका रखनेवाले), बहुतसी गायें रखनेवाले नीच शूद्र और विदेहदेशके रहनेवालोंको अनीति स्पर्श करती है१३मघासे लेकर चित्रातक पांच नक्षत्रमें घूमतेश्यदि शुक्राचार्य उदय होवें तो समस्त धान्यका नाश होता है.क्षुधाभय और चोरभय होता है.नीचोंकी उन्नति और वर्णसंकरजातिकी उत्पत्ति होती है॥१४॥ इन मघादि तीसरे मंडलके दैत्यगुरु यदि और किसी ग्रहसे रुक जांय तो पेडोंके समूह शबर, शूद्र, पुण्ड्र,पश्चिमकी सीमाका अन्त, शूलिक,वनवासी, द्रविड,समुद्रके पुरुषोंका नाश हो जाता है॥१५॥स्वाती,विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें चौथा मण्डल होता है. इसमें शुक्राचार्यके प्रयाण करनेसे अभय होता है, ब्राह्मण और क्षत्रीजातिके लिये सुभिक्ष होता है, परन्तु मित्रोंमें परस्पर भेद हो जाता है॥१६॥ यह चौथा मंडल आक्रान्त हो जाय तो किरातराजाकी मृत्यु होती है और इक्ष्वाकुवंशवाले और प्रत्यन्त वा अवन्तिदेशके रहनेवाले, पुलिन्द, तंगण और शूरसेनवासी लोग

क्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून् । प्रत्यन्तावन्तिपु
न्दृतङ्गणाञ्छूरसेनांश्च ॥ १७ ॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्करारो
प्रबाधयते । काश्मीराश्मकमत्स्यान् सचारुदेवीमवन्तींश्च ॥ १
आरोहेऽत्राभीरान् द्रविडाम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान् । नाशयति सि
सौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥ १९ ॥ षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभं
न्मण्डलं धनिष्ठाद्यम् । भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्व
सभयम् ॥ २० ॥ अत्रारोहे शूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्य
वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ॥ २१ ॥ अपर
स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम् । पित्र्याद्यं पूर्व
शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥ २२ ॥ दृष्टोऽनस्तगतेऽर्के भय
क्षुद्रोगकृत् समस्तमहः । अर्धदिवसं च सेन्दुर्नृपबलपुर
कृच्छुक्रः ॥ २३ ॥ भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवा
हाभिः । अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥ २

पोषित होते हैं ॥ १७ ॥ ज्येष्ठासे लेकर श्रवणतक जो पांच नक्षत्र हैं
पांचवां मण्डल है, इसमें क्षुधा, चोर, और रोगकी बाधा होती है, जो भृगु
इसमें आरोहण करें तो काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी और अवन्ती
रहनेवाले मनुष्य, आभीरजाति, द्रविड, अम्बष्ठ,त्रिगर्त्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और
देशके पुरुष और काश्मीरके राजाका विनाश होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ ध
लेकर अश्विनीतक जो छः नक्षत्र हैं उनको छठा मंडल कहते हैं, ये शुभ
हैं. इसमें समस्त लोग बहुतसे धन धान्य और गायढोरोंसे युक्त होकर
सुखी होते हैं परन्तु कोई स्थान सभय होता है, इसमें शुक्रका आरोहण
शूलिक, गान्धार और अवन्तीके रहनेवाले लोग पीडित होते हैं; विदेह नरप
नाश और प्रत्यन्तदेशके यवन, शक और दासलोगोंकी वृद्धि होती है ॥२०
जिन छः मण्डलोंका वर्णन किया गया उनमें स्वाती नक्षत्रादि और ज्येष्ठ
त्रादि जो दो मण्डल होते हैं, यह दोनों मण्डल पश्चिमदिशामें होनेसे शुभका
और मघानक्षत्रादि जो एक मण्डल है वह पूर्व दिशामें होनेपर अत्यन्त शु
हैं । शेष मण्डल यथोक्त फलके देनेवाले हैं ॥ २२ ॥ सूर्य अस्त होनेके
शुक्रके दृष्टि आनेसे भय होता है, सारे दिन दिखाई देनेसे क्षुधा और रोग ह
आधे दिन दिखाई देनेसे वा चन्द्रमाके साथ दिखाई देनेसे राजालोगोंका, से
और नगरका भेद होता है ॥ २३ ॥ कृत्तिकानक्षत्र भेदकरके शुक्राचार्य गम
तो कुलातिक्रान्त जलराशिवाहिनी नदियोंके द्वारा पृथ्वीके ऊंचे नीचे स्थान
काशित होकर समान हो जाते हैं अर्थात् बडी भारी बाढ आती है ॥

ाजापत्ये शकटे भिन्नेकृत्वेव पातकं वसुधा । केशास्थिशकल-
ला कापालमिवव्रतं धत्ते ॥ २५ ॥ सौम्योपगतो रससस्यहन्ता-
ायोशना समुद्दिष्टः । आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनि-
रकरः ॥ २६ ॥ अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः ।
ष्पे पुष्टा वृष्टिर्विद्याधरगणविमर्दश्च ॥ २७ ॥ आश्लेषासु भुजङ्ग-
दारुणपीडावहश्चरञ्छुक्रः । भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद्भूरि-
ष्टिकरः ॥ २८ ॥ भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमो-
ाय । आर्यम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी ॥ २९ ॥
ारवचित्रकराणां हस्ते पीडाजलस्य च निरोधः । कूपकृदण्डजा-
डा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥ ३० ॥ स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणि-
ाविकान् स्पृशत्यनयः । ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं

ासे रोहिणी नक्षत्र वा शकट भिन्न हो (पापी लोग जिस प्रकार पापका प्राय-
त करनेके लिये कापालिक व्रत धारण करते हैं तैसेही) तो पृथ्वी केश और
स्थियोंके टुकडोंसे अनेक रंगोंको धारण करके मानो पाप करनेके उपरान्त
ाल व्रत धारण करती अर्थात् अत्यन्त मरी पडती है ॥ २५ ॥ उशना मृगशिरा
त्रमें आवे तो जल और धान्यका नाश हो । आर्द्रा नक्षत्रमें गमन करे तो कोशल
(कालिंग देशका नाश होता है । परन्तु वृष्टि बहुत होती है ॥ २६ ॥ पुनर्वसु
त्रमें शुक्राचार्यके गमन करने पर अश्मक और विदर्भ देशके रहनेवाले मनुष्योंमें
यन्त अनीति आती है । पुष्य नक्षत्रमें गमन करनेपर अनेक वृष्टि होती है। परंतु
ाधरोंमें विमर्द हुआ करता है ॥ २७ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें सूर्यके गमन करनेसे
ाय और अत्यन्त पीडा होती है । मघानक्षत्र भेद करनेपर हस्तिपक लोगोंसे
करता है और अत्यन्त वृष्टि होती है ॥ २८ ॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र शुक्रसे भिन्न
ो शबर पुलिन्दगण नाशको प्राप्त होते हैं । वृष्टि बहुत होती है, उत्तराफाल्गुनी
हो तो वर्षा होती है और कुरुजांगल व पांचालदेशका नाश होजाता है ॥ २९ ॥
हस्त नक्षत्र शुक्रसे भिन्न हो तो कौरव और चित्रकारोंको पीड़ा होती है, जल
वर्षता । चित्रा नक्षत्र शुक्रसे भिन्न हो तो कूपकारक और अण्डजोंको पीडा
है; वृष्टि शोभती हुई होती है ॥ ३० ॥ स्वाती नक्षत्रमें शुक्र आवे तो वर्षा हो और
वणिक् और नाविक लोगोंको अत्यन्त अनीति स्पर्श करे । विशाखामें शुक्र हो

"वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात् । विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद् रोहिण्याः शकटं तु सः ।
द्धांते नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारे ॥

विजानीयात् ॥३१॥ मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्ता
मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥ अ
सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति । श्रवणे श्रवणव्य
पाषण्डिभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥ शतभिषजि शौण्डिकानां
कपे द्यूतजीविनां पीडा । कुरुपाञ्चालानामपि करोति चारि
सितः सलिलम् ॥ ३४ ॥ अहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्या
च रेवत्याम् । अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवना
॥ ३५ ॥ चतुर्दशे पञ्चदशे तथाष्टमे तमिस्रपक्षस्य
भृगोः सुतः । यदा व्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा तदा मही व
मयीव लक्ष्यते ॥ ३६ ॥ गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं स
राशिगौ यदा । तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्य
पुरन्दरोज्झितम् ॥ ३७ ॥ यदास्थिता जीवबुधारसूर्यजाः सि
सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः । नृनागविद्याधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वा
समुच्छ्रितान्तकाः ॥ ३८ ॥ न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थि
क्रियासु सम्यङ्न रता द्विजातयः न चाल्पमप्यम्बु द
वासवो भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम् ॥ ३९ ॥ श

तो सुवृष्टि और बनियोंको भय होता है ॥३१॥ अनुराधामें क्षत्रीवध, ज्येष्ठामें
क्षत्रियोंको संताप, मूलमें प्रधान वैद्योंको पीडा होती है, और जितने दिनतक इ
नक्षत्रोंमें शुक्र रहता है तबतक अनावृष्टि होती है ॥ ३२ ॥ जो पूर्वाषाढा न
शुक्र गमन करे तो जलसे उत्पन्न हुए जीवोंको पीडा होती है, उत्तराषाढामें व
श्रवणमें कर्णपीडा और धनिष्ठामें पाखण्डियोंको भय होता है, ॥ ३३ ॥ श
नक्षत्रमें शुक्रका गमन हो तो कलवार लोगोंको पीडा होती है, पूर्वाभाद्र
ज्वारियोंको, कुरुपांचालोंको पीडा और वृष्टि होती है ॥ ३४ ॥ उत्तराभाद्र
फल और मूल, रेवतीमें पदातिक, अश्विनीमें अश्वपालक और भरणीमें किर
यवन लोगोंको ताप होता है ॥ ३५ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी पञ्चदशी वा
तिथिमें जो शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है ।
यदि गुरु और शुक्र पूर्वपश्चिममें परस्पर सातवीं राशिमें गति हो तो रोग
भयसे प्रजागण अत्यन्त पीडित होती है, वृष्टि नहीं होती है ॥ ३७ ॥ बृ
बुध, मंगल और शनि यह सब ग्रह यदि शुक्रके आगेके मार्गमें र
मनुष्य, नाग और विद्याधरोंमें युद्ध होता है, और वायुसे विनाश होता है,

ेच्छबिडालकुञ्जराःखरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः । पुलिन्द्-
द्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्भवैः ॥ ४० ॥
हन्ति शुक्रःक्षितिजेऽग्रतःप्रजा हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः चरा-
रं व्यक्रमथोत्तरापथं दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत् ॥ ४१ ॥
स्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान् ।
शं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम्
४२ ॥ सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थिततोयकृद्
ान् पित्तजकामलां च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकम् । हन्यात्
जिताग्निहोत्रिकभिषग्ङ्गोपजीव्यान् हयान् वैश्यान् गाः सह
हनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम् ॥ ४३ ॥ शिखिभयमनलाभे
त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये । हरितकपि-
रूपे श्वासकासप्रकोपः पतति न सलिलं खाद्भस्मरूक्षामिताभे

ा परस्पर मित्रभाव नहीं रखते, द्विजाति लोग अपनी क्रियाको छोड देते हैं,
साधारण जलभी नहीं वर्षता वरन वज्र गिराकर पर्वतोंके मस्तक फोड देता
। ३८ ॥ ३९ ॥ जब शनैश्चर शुक्रके आगे चले तो म्लेच्छजाति, बिलावजाति
ी, गधा, भैंस, काले धान, शूकर, पुलिन्द जाति, शूद्रगण और दक्षिणदेश
और वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंसे नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥ यदि शुक्रके
ो मगल गमन करता हो तो अग्नि, शस्त्र क्षुधा, अवृष्टि और तस्करोंसे समस्त
ाको पीडा होती है, उत्तरदिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, और अग्नि, बिजली
धूरिसे सब दिशा पीडित होती हैं ॥ ४१ ॥ शुक्रके आगे मार्गमें जो बृहस्प-
ा गमन हो सो समस्त मधुर पदार्थ, ब्राह्मण, ढोर, देवताओंके स्थान और
दिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, मेघ ओले बरसाते हैं, सब लोगोंके गलेमें पीडा
ी है और शारदीय समस्त धान्य उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ शुक्रके उदय या अस्त-
में शुक्रके आगेके मार्गमें जब बुध रहता है तब वर्षा और रोग होते हैं, परन्तु
में पित्तसे उत्पन्न हुए रोग तथा कामला रोग अधिक होता है, ग्रीष्म ऋतुमें
न होनेवाले सब द्रव्य अधिकाईसे उत्पन्न होते हैं, संन्यासी, अग्निहोत्री, वैद्य
से आजीविका करनेवाले, अश्व, वैश्य, गौ वाहनोंके साथ राजा, पीले वर्णके
र्थोंका और पश्चिम दिशाका नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥ जिस समय अग्निके
न शुक्रका वर्ण हो तब अग्निभय, रक्तवर्ण हो तो शस्त्रकोप और कसौटीपर घिसे
सुवर्णकी रेखाकी नांई गौरवर्ण हो तो व्याधि होती है, यदि शुक्र हरित

॥ ४४ ॥ दधिकुमुदशशांककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः॥सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ॥४५॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शुक्रचारो नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः ।

शनैश्चरचारः ।

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्या । प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥ १ ॥ अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चातिजलम् । क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपिवक्ष्ये ॥ २ ॥ तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः । याम्ये नर्त्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनौकृतिकान् ।३। बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च।रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपांचालशाकटिकाः।४।

और कपिलवर्ण हो तो दमा और खांसीका रोग होता है, और भस्मके समान रूखा या काला रंग हो तो आकाशसे वर्षा नहीं होती है ॥ ४४ ॥ दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य जब दही, कुमुद या चन्द्रमाके समान कान्तिवाले हों, कांति स्वच्छरूपसे झलकती हो, किरणें फैली हुई हों उत्तम गतिवाला, विकाररहित और जययुक्त हो तो सब प्राणियोंके लिये मानो सतयुगही आ जाता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जो सूर्यका पुत्र शनि श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें विराजमान होकर मनोहर वर्णवाला हो तो पृथ्वीपर बहुतही जल बर्षता है ॥ १ ॥ आश्लेषा, शतभिषा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें शनि विचरण करे तो सुमंगल होता है, अत्यन्त वर्षा नहीं होती । मूल नक्षत्रमें विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है। यह तो साधारण फल कहा गया । अब प्रत्येक नक्षत्रमें शनिके विचरण करनेसे जो फल होता है वह कहा जाता है ॥ २ ॥ शनि अश्विनी नक्षत्रमें विचरण करे तो अश्व, अश्वसादी, कवि, वैद्य और मंत्रियोंकी हानि होती है भरणी नक्षत्रमें विचरण करे तो नाचनेवाले, बजानेवाले, गानेवाले और छोटी नावोंसे जीविका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंकी हानि होती है ॥ ३ ॥ कृत्तिका नक्षत्रमें शनि हो तो अग्निसे आजीविका करनेवालोंको और राजालोगोंको पीडा होती है

गशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च । रौद्रस्थे पार-
रामठतैलिकर जकचौराश्च ॥ ५ ॥ आदित्ये पञ्चनदप्रत्यन्तसु-
ाष्ट्रसिन्धुसौवीराः । पुष्ये घाण्टिकघोषिकयवनवणिक्कितवकुसु-
ानि ॥ ६ ॥ सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्लीकचीनगान्धाराः ।
ूलिकपारतवेश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ ७ ॥ भाग्ये
सविक्रयिणः पण्यास्त्री कन्यका महाराष्ट्राः । आर्यम्णे नृपगुड-
वणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला ॥ ८ ॥ हस्ते नापितचाक्रिकचौर
नषक्सूचिकद्विपग्राहाः । बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च
डच्यन्ते ॥ ९ ॥ चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि ।
ातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ॥ १० ॥ ऐन्द्राग्नाख्ये
गर्तचीनकौलतकुङ्कुमं लाक्षा । सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुंभं च

हिणी नक्षत्रमें शनि विराजमान हो तो कोशल, मद्र, काशी, पांचालदेश और
कडोंसे जीविकाका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ मृगशिरा
त्रमें शनि हो तो वत्सदेश, याजक, यजमान, आर्यपुरुष और मध्य देशके
गोंको पीडा होती है । आर्द्रा नक्षत्रमें शनि हो तो रामठदेश, तेली, धोबी, रंगरेज
र चोर अत्यन्त पीडित होती हैं ॥ ५ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शनि हो तो पंजाब,
यन्त, सुराष्ट्र, सिन्धु और सौवीर देशको अत्यन्त पीडा होती है । पुष्य नक्षत्रमें
निका सहवास हो तो घंटा बजानेवाले, घोषिक (ढंढेरा फेरनेवाले) यवन, वणिक्
ठ और सब पुष्पोंको पीडा होती है ॥ ६ ॥ आश्लेषा नक्षत्रमें शनि हो तो पद्म
र सर्पोंको, मघा नक्षत्रमें हो तो बाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिका, पारत, वैश्य,
ागार और बनियोंके लिये विघ्न होता है ॥७॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि रहता
तो रस बेचनेवाले लोग, वेश्या, कन्या और महाराष्ट्रदेशको विघ्न होता है । उत्तरा-
ल्गुनी नक्षत्रमें शनि हो तो राजा, गुड, लवण भिक्षु जल और तक्षशिला नगरीको
। होता है ॥ ८ ॥ हस्त नक्षत्रमें शनि हो तो नाई, चाक्रिक (चक्राशिल्पी), चोर
, दर्जी, द्विपग्राह (हाथी पकडनेवाले), बन्धकी, कौशली और माला बनाने-
ोंको पीडा होती है ॥ ९ ॥ यदि शनि चित्रा नक्षत्रमें हो तो स्त्री, लेखक, चित्र-
ाको जाननेवालों (मुसौविर को और अनेक प्रकारके द्रव्य पीडाको प्राप्त होता
यदि स्वाती नक्षत्रमें शनि हो तो मागध, दूत, चर, सारथि, नावपर चलनेवाले
। नटादिकोंको पीडा होती है ॥ १० ॥ जो विशाखा नक्षत्रमें शनि विचरण
ा हो तो त्रिगर्त्त, चीन और कुलूत देश, कुमकुम, लाख, धान्य, मजीठ और

क्षयं यान्ति ॥ ११ ॥ मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रि
कचराः । उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राण
॥ १२ ॥ ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः । म
तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः ॥ १३ ॥ आप्येऽङ्गव
कौशलगिरिव्रजमागधपुंड्रमिथिलाश्च । उपतापं यांति जना वस
ये ताम्रलिप्त्यां च ॥ १४ ॥ विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन्दशार्णान्निह
यवनांश्च । उज्जयनीं शबरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥ १
श्रवणे राजाधिकृतान्विप्राग्र्यभिषक्सपुरोहितकलिङ्गान् व
मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम् ॥ १६ ॥ साजे शतभिष
भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवार्त्तानाम् । आहिर्बुध्न्ये नद्यो य
कराः स्त्री हिरण्यं च ॥ १७ ॥ रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपा
ताः शरत्सस्यम् । शबराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे च

कुसुम्भ क्षयको प्राप्त होते हैं ॥ ११ अनुराधा नक्षत्रमें शनि हो तो कुलूत, तंगण
और काश्मीर देशके, घंटा बजानेवाले, मंत्री, चक्रचर अर्थात् तेली कुम्हारादि
चोरलोगोंको संताप होता है, मित्रोंमें भेद हो जाता है ॥ १२ ॥ ज्येष्ठा न
शनि हो तो राजपुरोहित, राजासे आदर पाया हुआ शूर और गणकुल
(संन्यासीके मठ) को पीडा होती है । मूल नक्षत्रमें शनि हो तो क
कोशल और पांचाल देशके फल, औषधी और योद्धा लोगोंको विघ्न
है ॥ १३ ॥ पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शनि हो तो अंग, वंग, कोशल, गिरि
मगध, पुण्ड्र, मिथिला और ताम्रलिपी देश रहनेवाले संतापित हो
॥ १४ ॥ उत्तराषाढा नक्षत्रमें शनि विचरण करता हो तो उज्जयनी, प
त्रिक और कुन्तिभोज देशके रहनेवाले लोग वा यवन, शबरजातिके लोग
पित होते हैं ॥ १५ ॥ यदि शनि श्रवण नक्षत्रमें हो तो राजाके अधि
ब्राह्मण, श्रेष्ठ वैद्य, पुरोहित और कलिङ्ग देशके लोगोंको अत्यन्त सन्ताप
है, धनिष्ठा नक्षत्रमें शनि हो तो मगधेश्वरकी जय और धनाधिकारीकी वृद्धि,
है ॥ १६ ॥ शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें जो शनि विचरण करता ह
वैद्य, कवि, कलवार (मद्य बेचनेवाला), पण्यजीवी और नीतिकुशल आदि
लिये विघ्न होता है, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें शनि विचरण करता हो त
सवारी बनानेवाले, स्त्री सुवर्णका नाश होता है ॥ १७ ॥ जब शनि रेवती
विचरण करे तो राजसेवक, क्रौंचद्वीपके रहनेवाले मनुष्य, शरदृतुका धान्य

८ ॥ यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः ।
प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम् ॥ १९ ॥
डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः । शस्त्रभ-
च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥ २० ॥ वैडूर्यका-
मलः शुभदः प्रजानां बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः ।
पि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान् सूर्यात्मजः क्षपयतीति
प्रवादः ॥ २१ ॥

श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शनैश्वरचारो दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ।

केतुचारः ।

ार्गीयं शिखिचारं पराशरमसितदेवलकृतं च । अन्यांश्च बहू-
क्रियतेऽयमनाकलश्चारः ॥ १ ॥ दर्शनमस्तमयो वा न गणि-

के पुरुषगण और यवनलोग पीडाको प्राप्त होते हैं ॥१८॥ जिस समय बृहस्पति
ा नक्षत्रमें हो उस समय शनि यदि कृत्तिकामे हो तो प्रजाओंमें अत्यन्त
ी होती है और जो दोनोंही एक नक्षत्रमें हों तो सब नगरोंका भेद हो जाता
१९ ॥ यदि शनिका वर्ण अनेक रंगवाला दिखाई दे तो अंडज प्राणियोंका
ोता है । पीतवर्ण होनेसे क्षुधा और भय होता है । रक्तवर्ण होनेपर शस्त्रभय
स्मके समान रंग होनेसे अत्यन्त शुभता होती है ॥ २० ॥ मुनिलोग कह गये
शनि यदि वैडूर्यमणिके समान कान्तिमान् और निर्मल हो तो प्रजाओंको
शुभ होता है । बाणपुष्प या अतसीकुसुमके समान कान्ति हो तो अच्छा
त, रक्त, पीत, कृष्ण और नानावर्ण हो इन पांच रंगोंमें शनि जिस रंगवाला
त हो तो उसके समान रंगका अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र और वर्ण-
जातिके समस्त पुरुषोंका नाश होगा ॥ २१ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
ास्यपण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ाचार्य, पराशर, असित, देवलमुनि वा और भी पंडितगण केतुचारके वि-
जो कह गये हैं, उन सबको देखकर यह निश्चित केतुचार कहा जाता है
केतुओंका उदय वा अस्त गणितके द्वारा किसी प्रकार नहीं जाना जा

तविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम् । दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्
केतवो यस्मात् ॥ २ ॥ अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत् केतुरूपमे
क्रम् । खद्योतपिशाचालयमसिरत्नादीन् परित्यज्य ॥ ३
ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते । दिव्य नक्षत्रस्
भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ ४ ॥ शतमेकाधिकमेके सह
मपरे वदन्ति केतूनाम् । बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः के
॥ ५ ॥ यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम्
उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ॥ ६ ॥ यावन्त्यहा
दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः । मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथम
त्पक्षत्रयात् परतः ॥ ७ ॥ ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरुचि
संस्थितः शुक्लः उदितो वाप्यभिदृष्टः सुभिक्षसौख्याव
केतुः ॥ ८ ॥ उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमके
रुत्पन्नः । इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥ ९

सक्ता, क्योंकि दिव्य अन्तरिक्ष और भौमनामके केतु तीन प्रकारके हैं ॥२॥ खद्
पिशाचालय, मसि (रोशनाई) और रत्नादिके सिवाय जो पदार्थ अग्निके स
चमकदार नहीं हैं, उन सब पदार्थोंका अग्निके समान रूप हो जानाही केतुरूप का
है ॥३॥ ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, अश्व और हस्ती आदिमें जो केतुरूपका दर्शन ह
है, सो अन्तरिक्ष केतु हैं. और नक्षत्रोंमें जो दिखाई देता है, उसको दिव्य केतु क
हैं, और तिसके सिवाय सबही भौमकेतु हैं॥४॥कोई कोई पण्डित कहते हैं कि के
संख्या १०१ है, कोई कहते हैं एक सहस्र हैं । नारदजी केवल एक केतु बताते
और कहते हैं यह एकही बहुरूपी है ॥५॥ एक केतु हो, या अनेक हों, इ
कुछ नहीं आता जाता, परन्तु इनका उदय, अस्त, अवस्थान, स्पर्श और कुछ
धूम्रता इत्यादि वर्णभेदसे जो समस्त फल होते हैं, उनकोही सब प्रकारसे व
उचित है ॥६॥ यह केतु जितने दिनतक दिखाई देगा,उतने मासतक उसके फ
परिपाक होगा किन्तु ४५ दिनके पश्चात् केतुका फल होना आरम्भ होता है अ
उदयसे अस्ततक जितने दिनतक वह दिखाई दे तिसके बाद ४५ दिनकी विल
फल होना आरम्भ होगा ॥७॥ जो केतु छोटा, निर्मल, चिकना, सरल, रुचिर
शुक्लवर्ण होकर उदित या दिखाई देगा वह अत्यन्त सुभिक्षदायी और सुखदाय ह
॥८॥ इससे विपरीत रूपवाले केतु शुभदायी नहीं होते,परन्तु उनका नाम धूमकेतु
है । विशेष करके इन्द्रधनुषके समान अनेक रंगवाले अथवा दो या तीन चोटीवाले

रमणिहेमरूपाः किरणाख्याःपञ्चविंशतिःसशिखाः । प्रागपरदि-
दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ।१०।शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षा
रजोपमा हुताशसुताः । आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखि-
प्रदाः ॥ ११ ॥ वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि
वन्तः । दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्तेच ॥ १२ ॥ दर्प-
वृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः । क्षुद्भयदा द्वाविं-
तिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ॥ १३ ॥ शशिकिरणरजतहिमकुमु-
कुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः । उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभि-
वहाः शिखिनः ॥१४॥ ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभि-
ान्तरकरः । अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः
१५ ॥ शतमभिहितमेकसमेतदेकेन विरहितान्यस्मात् । कथ-
ष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥ १६ ॥ सौम्यैशान्यो-

भकारक होते हैं ॥ ९ ॥ हार मणि या सुवर्णके समान रूप धारण करनेवाले
चोटीदार केतु जो पूर्व या पश्चिम दिशामें दिखाई देते हैं और रविज अर्थात्
से उत्पन्न हुए केतु हैं, इनका किरण नाम है, और गिनतीमें यह पचीस हैं ।
के उदय होनेसे राजाओंमें विरोध होता है ॥ १० ॥ तोता, अग्नि, दुपहरियाका
, लाख या रक्तके समान जो केतु अग्निकोणमें दिखाई दे, वे अग्निसे उत्पन्न
हैं, और संख्यामें वे भी पचीस हैं । (२५+२५=५०) इनके उदय होनेसे
भय होता है ॥ ११ ॥ जो पचीस (५०+केतु २५=७५) टेढी चोटी-
हैं, रूखे और कृष्णवर्ण होकर दक्षिण दिशामें दिखाई देते हैं, सो यमसे
न्न हुए हैं इनके उदय होनेसे मरी पडती है ॥ १२ ॥ दर्पणके समान गोल
कारवाले, शिखारहित, किरणयुक्त और सजल तेलके समान कांतिवाले जो
स केतु (७५+२२ = ९७) ईशान दिशामें दृष्टि आते हैं सो पृथ्वीसे उत्पन्न
हैं इनके उदय होनेसे दुर्भिक्ष व भय होता है ॥ १३ ॥ चन्द्रकिरण, चाँदी,
, कुमुद या कुन्दपुष्पके समान जो तीन (९७+३ = १००) केतु हैं यह
माके पुत्र हैं, और उत्तरदिशामें दिखाई देते हैं । इनके उदय होनेसे सुभिक्ष
है ॥ १४ ॥ और ब्रह्मदण्ड नामक युगान्तकारी ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ एक
है । (१००+१ = १०१) यह तीन चोटीवाला और तीन रंगका है,
चाहे जिस दिशामें दिखाई देगा इसका कोई नियम नहीं है ॥ १५ ॥
प्रकार एकशत एक केतुका वर्णन लिखा है । अब स्पष्टलक्षणसे ८९९ केतु-
का वर्णन किया जाता है ॥ १६ ॥ शुक्रतनय नामक जो चौरासी केतु हैं सो

रुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः । विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥ १७ ॥ स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः । अतिकष्टफला दृश्या सर्वत्रै कनकसंज्ञाः ॥ १८ ॥ विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखा परित्यक्ताः । षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धायम्याश्रिताः पाप ॥ १९ ॥ नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्लाः यथेष्टदिक्प्रभवाः बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥ २० ॥ क्षतजान लानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः । नाम्ना च कौङ्कुमार सौम्याशासंस्थिताः पापाः ॥ २१ ॥ त्रिंशत्र्यधिका राहोस तामसकीलका इति ख्याताः । रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फ मर्कचारोक्तम् ॥ २२ ॥ विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्निविश्वरू संज्ञानाम् । तीव्रानलभयदानां ज्वालामाला कुलतनूना ॥ २३ ॥ श्यामारुणाविताराश्चामररूपा विकीर्णदीधितयः

उत्तर और ईशान दिशामें दृष्टि आते हैं यह बृहत् शुक्लवर्ण तारकाकार, चिक और तीव्रफलयुक्त हैं ॥ १७ ॥ शनिके पुत्र जो साठ (८४+६० = १४४) वे हैं, यह कान्तिमान, दो शिखावाले और कनकसंज्ञक हैं। यह सब ओर दिख देते हैं, इनके उदय होनेसे अतिकष्ट होता है ॥ १८ ॥ चोटीहीन, चिकने, शु वर्ण, एकतारेके समान दक्षिण दिशाको आश्रित किये पैंसठ (१४४+६५ २०९) विकच नामक जो केतु हैं, यह बृहस्पतिके पुत्र हैं, इनका उदय हो पृथ्वीके लोग पापी हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जो केतु वह साफ दिखाई नहीं दे सूक्ष्म, दीर्घ, शुक्लवर्ण, चाहे जिस दिशामें रहनेवाले और तस्कर नामक हैं बुधके पुत्र हैं । इनकी गिनती इक्यावन (२०९+५१ = २६०) है और अत्यन्त पापफलवाले हैं ॥ २० ॥ रक्त या अग्निके समान जिनका रंग है, त जिनके शिखा हैं, तारेके समान हैं, सो गिनतीमें साठ हैं (२६०+६० = ३२ उत्तर दिशामें स्थित और कौंकुम नामक जो मंगलके पुत्र केतु हैं, सो भी पाप लके देनेवाले हैं ॥ २१ ॥ तामसकीलक नामक जो तेंतीस (३२०+३३ = ३५ राहुके पुत्र केतु हैं, जो चन्द्रसूर्यगत होकर दिखाई देते हैं उनका फल सूर्यचा कहा गया है ॥ २२ ॥ जिनका शरीर ज्वालाकी मालासे युक्त हो रहा है, अग्निविश्वरूप नामक जो एकशत वीस (३५३+१२० = ४७३) केतु हैं, वे त अनलभयदायक हैं ॥ २३ ॥ जो केतु श्यामारुणवर्ण हैं चमरके समान जिन किरणें फैली रहती हैं, जो रूखे होते हैं, जो पवनसे उत्पन्न हुए और गिन सतहत्तर (४७३+७७ = ५५०) हैं, उनके उदय होनेसे पापभय है

अरुणाख्या वायोः सप्तसप्ततिः पापदाः पुरुषाः ॥ २४ ॥ तारा
ञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ । द्वे च शते चतुरधिके च
रस्रा ब्रह्मसन्तानाः ॥ २५ ॥ कंका नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्वंश
ल्मसंस्थानाः।शशिवत् प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः॥२
षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञा कबन्धसंस्थानाः । चण्डा भ
प्रदाः स्यू रूपताराश्च ते शिखिनः ॥ २७ ॥ शुक्लविपुलैकतारा न
विदिशां केतवः समुत्पन्नाः । एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वद
॥ २८ ॥ उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः । सद्
करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ॥ २९ ॥ तल्लक्षणोऽस्थिके
स तु रुक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः । स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्
डमरमरकाय ॥३०॥ दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्
शिखः।प्राङ्नभसोऽर्धविचारीक्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥३१॥ प्राग्
श्वानरमार्गे शूलाग्रःश्यावरूक्षताम्रार्चिः। नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इ

है ॥ २४ ॥ तारापुंजके समान आकारवाले प्रजापति पुत्र जो आठ (५९०+
५९८) केतु हैं उनका नाम गणक है । चौकोन आकारवाले ब्रह्मसंतान नामक
केतु हैं तिनकी संख्या दो सो चार है ॥ (५९८+२०४ = ७६२) ॥ २५ ॥ गु
अर्थात् लताके गुच्छेके समान जिनका आकार है ऐसे बत्तीस (७६२+३२ =
७९४) कंक नामक जो केतु हैं, सो वरुणजीके पुत्र हैं, चन्द्रमाके समान कान्ति
वाले और अत्यन्त अशुभ फल देनेवाले हैं ॥२६॥ कबन्धके समान आकारधारी
छियानवें (७९४+९६ = ८९०) कबन्ध नामक केतु हैं सो कालके पुत्र, यह भयंकर
भयदाई हैं और इनमें कुरूपवाले तारे लगे हुए हैं॥२७॥ बडे बडे एक एक तारेद
जो नौ (८९०+९ = ८९९) केतु हैं, सो विदिशसमुत्पन्न हैं, इस प्रकार (पहिले ए
शत एक १०१ और वर्त्तमान८९९ कुल १०००) एक सहस्र केतुका वर्णन कि
गया, अब इसमें विशेष विशेष कहे जाते हैं ॥ २८ ॥ जो केतु पश्चिम दिशामें उद
होते हैं और उत्तरदिशामें फैलते हैं,बडे बडे और स्निग्धमूर्ति हैं इनको वसाकेतु कह
हैं इनके उदय होनेसे मरी पडती है और उत्तम सुभिक्ष होता है॥२९॥पहिलेके समा
लक्षणवाले,रूखे और चिकने जो केतु उदय होता है उनका शस्त्र नाम है इनके उद
होनेसे क्षुधाभय, डमर (उलटपुलट) और मरी पडती है ॥३० ॥ अमावस्याके दि
आकाशके पूर्वार्द्धमें सहस्ररश्मि और हजार शिखावाला जो केतु दिखाई देता
उसका नाम कपालकेतु है, इससे क्षुधा, मरी, अनावृष्टि और रोगभय होता है॥३१

कपालतुल्यफलः ॥ ३२ ॥ अपरस्यां चलकेतुः शिखया य
ग्रथाङ्गुलोच्छ्रितया । गच्छेद्यथा यथोदक् तथा तथा दैर्घ्यम
॥ ३३ ॥ सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनि
नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति ॥ ३४ ॥ ह
प्रयागकूलाद् यावदवन्तीं च पुष्कराख्याम् । उदगपि च दे
मपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम् ॥ ३५ ॥ अन्यानपि च स
क्वचित् क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः । दश मासान् फलपाकोऽस्य
दष्टादश प्रोक्तः ॥ ३६ ॥ प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेत
न्यश्च । क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥
स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः । दश
ण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥ ३८ ॥ श्वेत इति जटा
रूक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः । विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रि

आकाशके पूर्वदक्षिणमार्गमें शूलके अग्रभागके समान, कपिश, रूक्ष, ताम्र
किरणोंसे युक्त जो केतु आकाशके तीन भागतकमें गमन करता है उसको
कहते हैं, इसका फल कपालकेतुके समान है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जो धूम्रकेतु
दिशामें उदय होता है, दक्षिणकी ओरको एक अंगुल ऊंची शिखा करके युक्त
है, और उत्तरदिशाकी तरफ क्रमानुसार बढता रहता है, उसको चलकेतु क
यह चलकेतु इस प्रकार क्रमशः दीर्घ होकर यदि उत्तरध्रुव, सप्तर्षिमण
अभिजित् नक्षत्रको स्पर्श करता हुआ आकाशके एक भाग जाकर दक्षिण
अस्त हो जाय तो प्रयागके निकटसे लेकर अवन्तीतक पुष्करदेश और
देविका नदीतक बडे भारी मध्यदेशका नाश हो जाता है और किसी किसी
रोग या दुर्भिक्षसे और देशोंकाभी नाश होता है इसका फल दशमासमें प
कोई कोई पण्डित कहते हैं कि, अठारह मासमें इसका फल होता है ॥
॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दो पहर रातके समय आकाशके पूर्व भागमें दक्षिणके अ
केतु दिखाई दे उसको धूमकेतु कहते हैं । और (क) नामक जो केतु है
आकार गाडीके जुएके समान है, युग बदलनेके समय वह सात दिनतक
देता है ॥ ३७ ॥ और (क) नामक धूमकेतु यदि अधिक दिनतक दि
तो दश वर्षतक बराबर शस्त्रकोपसे उत्पन्न हुआ सन्ताप हुआ करता है ।
श्वेत नामक केतु यदि जटाके समान आकारवाला, रूखा, कपिशवर्ण और
शके तीन भागतक जाकर लौट आवे तो तिहाई प्रजाका नाश हो

ाः प्रजाः कुरुते ॥ ३९ ॥ आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति
त्तिकासंस्थः । ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते ॥४०॥
केतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक् । दिव्यान्तरिक्ष-
मो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ॥ ४१ ॥ सेनाङ्गेषु नृपाणां गृह-
शैलेषु चापि देशानाम् । गृहिणामुपस्करेषु विनाशिनां दर्शनं
ति ॥ ४२ ॥ कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्छिखो निशा-
ाम् । दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥४३॥
दिकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः । ऋज्वी शिखा-
शुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥ ४४ ॥ उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो
ान् करोत्यसौ सार्द्धान् । प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तू-
[॥ ४५ ॥ जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण
तया । नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य
४६ ॥ भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः । हरि-

---

३९ ॥ जो केतु कुछेक धूमवर्णकी चोटीसे युक्त होकर कृत्तिका नक्षत्रको स्पर्श
दिखाई दे, उसको रश्मिकेतु कहते हैं. इसका फल श्वेतनामक केतुके समान
४० ॥ ध्रुवनामक एक प्रकारका केतु है, इसका आकार, वर्ण, प्रमाण
नहीं, न गति स्थिर है, यह दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम तीन प्रकारका ही
है, यह स्निग्ध और अनियत फलदाता है ॥ ४१ ॥ यह ध्रुवकेतु विनाशशाली
ओंकी सेनाके अंगमें, विनाश होनेवाले देशके वृक्षोंमें या विनाशशाली गृह
यहां बहुधा दृष्टि आता है ॥ ४२ ॥ जिस केतुकी कान्ति कुमुदके समान हो
पूर्वकी ओरको फैल रही हो उसको कुमुदकेतु कहते हैं, यह बराबर दशवर्ष
सुभिक्षका देनेवाला है, जो केतु सूक्ष्म तारेके समान आकारवाला हो, और
दिशामें एक पहरतक दिखाई दे, उसका नाम मणिकेतु है, स्तनके ऊपर
होनेसे जिस प्रकार दूधकी धार निकलती है, यह शिखाभी तैसेही सरल और
गवाली होती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके उदय होनेसे साढेचार मासतक सुभिक्ष
है, परन्तु बहुधा छोटे छोटे जन्तुओंके ऊपर इसका प्रभाव होता है ॥ ४५ ॥
तु और दिशामें ऊंची शिखा करके पिछले भागमें चिकना हो उसको जलकेतु
हैं, जलकेतु उदय होनेसे नौ मासतक सुभिक्ष होता है और प्राणियोंको शान्ति
है ॥ ४६ ॥ सिंहकी पूंछके समान उसकी शिखा दक्षिणावर्त होती है और
स्निग्ध सूक्ष्म तारा पूर्वदिशामें रातको दिखाई देता है सो भवकेतु है ॥ ४७ ॥

लाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्त्तया शिखया ॥ ४७ ॥ यावत
मुहूर्त्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान् । तावदतुल सुभिक्ष
प्राणान्तिकान् रोगान् ॥ ४८ ॥ अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो
न्निशामेकाम् । सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ॥
आवर्त्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः ।
त्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः॥५०॥पश्चात् स
काले संवर्त्तो नाम धूम्रताम्रशिखः । आक्रम्य वियत्त्र्यंशं
आवस्थितो रौद्रः ॥ ५१ ॥ यावत एव मुहूर्तान् दृश्यो व
तावन्ति । भूपाञ्छस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ॥ ५२
शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूमितेऽथवा स्पृष्टे । नक्षत्रे
वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान् ॥ ५३ ॥ अश्विन्यामः
भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात् । बहुलासु कलिङ्गेशं रो
शूरसेनपतिम् ॥ ५४ ॥ औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीव
तथार्द्रासु । आदित्येऽश्मकनाथं पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥

यह भवकेतु जितने मुहूर्ततक दिखाई देगा तितने मासतक अतुल सुभिक्ष
यदि यह रूखा होगा तो प्राणान्तक रोग होते हैं ॥ ४८ ॥ पहिलेके समान
वाला और मृणालके समान जो गौरवर्णका केतु पश्चिम दिशामें एक राततक
दे उसका नाम पद्मकेतु इससे सात वर्षतक हर्षसहित सुभिक्ष होता है ॥ ४
केतु आधी रातके समयमें सव्य शिखावाला अरुणकीसी कांतिवाला चिकना
देता है उसे आवर्त कहते हैं, यह केतु जितने क्षणतक दिखाई दे उतने
सुभिक्ष होता है ॥ ५० ॥ जो केतु धूम या ताम्रवर्णकी शिखावाला है, भ
और आकाशके तीन भागतकको आक्रमण करता हुआ शूलके अग्रभागके
आकारवाला होकर सन्ध्याकालमें पश्चिमकी ओर दिखाई दे उसको
कहते हैं ॥ ५१ ॥ यह केतु जितने मुहूर्ततक दिखाई देगा, तितने वर्षत
पातसे राजा लोग पीडित होते हैं और उदयकालमें जो नक्षत्र वर्तमान
उस नक्षत्रमें जिसका जन्म है, वह पुरुषभी पीडित होता है ॥ ५२ ॥ जि
नक्षत्रके केतुसे आधूमित या छुए जानेसे जिस जिस राजाका वध होता है,
जाता है ॥ ५३ ॥ केतुसे अश्विनी नक्षत्र आधूमित हो वा छुवा जाय तो अश्म
राजाका विनाश होता है। भरणीमें किरातपति, कृत्तिकामें कलिङ्गराज, रोहि
सेनापति, मृगशिरामें उशीनरराज, आर्द्रामें मत्स्यराज, पुनर्वसुमें अश्मकना
नक्षत्रमें मगधाधिपति, आश्लेषामें असिकेश्वर, मघानक्षत्रमें अंगराज, पूर्वाप

असिकेशं मौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये। औज्जयनिक-
ार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥ ५६ ॥ चित्रासु कुरुक्षेत्राधि-
ास्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः। काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने
ा स्तः ॥ ५७ ॥ इक्ष्वाकुरत्नकनाथौ हन्येते यदि भवेद्विशाखासु।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्यैष्ठास्वथ सार्वभौमवधः ॥ ५८ ॥ मूलेऽन्ध्र-
द्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति। यौधेयकार्जुनायनशिबि-
चैद्यान् वैश्वदेवे च ॥५९॥ हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहला-
धिपं वाङ्गम्। नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः
॥ ६० ॥ उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽभिवृष्टो
ः। अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम् ॥ ६१ ॥
म्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा ऋक्षं च यत् स्पृशति
त्कथितांश्च देशान्। दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान्
ुक्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ॥ ६२ ॥
ति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां केतुचार एकादशोऽध्यायः ॥११॥

ाण्ड्यनरपति, उत्तराफाल्गुनीमें उज्जयिनीस्वामी, हस्तमें दण्डकाधिपति, चित्रामें
ुरुक्षेत्रराज, स्वाती नक्षत्रमें काश्मीर और काम्बोजराज, विशाखामें इक्ष्वाकु और
नकपति, अनुराधा नक्षत्रमें पुण्ड्रदेशका राजा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें चक्रवर्ती राजा
ा जाता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ केतुसे, मूलनक्षत्र आधूमित या
ार्श होनेसे अन्ध्र और मद्रराज मृत्युको प्राप्त होते हैं। पूर्वाषाढामें काशीपति, उत्त-
षाढा नक्षत्रमें योधराज, अर्जुनायनराज, शिविनरपति और चैद्यराज नाशको प्राप्त
ते हैं। और श्रवणसे लेकर छः नक्षत्र पीडित होनेपर क्रमानुसार केकय, पंजाब,
हल, वंग, नैमिषारण्य और किरातदेशके राजाका नाश होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥
तुकी शिखा उल्कासे भेदित हो तो शुभ होता है। सब प्रकारसे वृष्टियुक्त हो तो
त्यन्त मंगल होता है परन्तु इससे ही चोल, अफगान, सित और चीन देशका
मंगल होता है ॥६१॥ केतुकी शिखायें जिन देशोंसे अलग वा नम्र हो या जिन
ोंसे किसी नक्षत्रको स्पर्श करे तदुक्त (तन्नक्षत्राक्रान्त) सब देश मानो दिव्यप्र-
वसे नाश होते हैं, वस गरुडजी जिस प्रकार साँपके फनका भोग लगाकर सुखी
ते हैं, राजालोग उन देशोंपर चढाई करके वैसेही सुखी होते हैं ॥ ६२ ॥

ते श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

अगस्त्यचारः ।

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो वाता
र्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः । पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोऽ
निधिना याम्या च दिग्भूषिता तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चा
समासादयम् ॥१॥ समुद्रोऽन्तःशैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः कृ
स्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः । पतन्मुक्तामिश्रैः प्र
मणिरत्नाम्बुनिवहैः सुरान् प्रत्यादेष्टुं सितमुकुटरत्नानिव पुरा ॥
येन चाम्बुहरणेऽपिविद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः । निर्गतैस्तद्
गैश्च राजितःसागरोऽधिकतरं विराजितः ॥ ३ ॥ प्रस्फुरत्तिमिज
भजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः। आपदां पदगतोऽपि यापि
येन पीतसलिलोऽमरश्रियम् ॥ ४ ॥ प्रचलत्तिमिशुक्तिशंखचि
सलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम् । सतरङ्गसितोत्पलहंसभृ

सूर्य भगवान्का मार्ग रोकनेके लिये बढे हुए शिरवाले विन्ध्याचलको जिन
थांम दिया था, देवताओंके शत्रु और मुनियोंके कोंखके भेदन करनेवाले वात
नामक असुरको जिन्होंने पचा डाला था, जो समुद्रको पान कर गये थे और
रूप समुद्रद्वारा जिन्होंने दक्षिण दिशाको विभूषित किया था, मुकुट और रत्नध
देवताओंको मानो तिरस्कार देनेके लिये जिन करके पूर्वकालमें हठात् जलरा
विनाशित होनेसे, मकरगणोंके नखरोंसे उत्खात शिखर जलान्तर्वर्ती शैल
और श्रेष्ठ मणि वा रत्नराजि करके निकले हुए, गिरते हुए मोती मिले। जलरा
जलनिधि अधिक रुचिर हुआ था, नदीपति समुद्र, जिसके द्वारा जलहीन होक
वृक्षहीन पर्वत, मणि, रत्न, विद्रुम और तहांसे निकले हुए सर्पोंके द्वारा शो
होकरभी अत्यन्त विराजमान हुआ था, प्रस्फुरणशाली अर्थात् कूदते हुए नाके
जलहस्तियोंके द्वारा टेढा चलता हुआ महोदधि समुद्रका जल जिसने पान
लिया, आपदाका आस्पद होकरभी जो समुद्र स्वर्गीय शोभाको प्राप्त हुआ
और जिस कालमें जलके हरे जाने परभी तैरते हुए नाके सीपियें और शं
व्याप्त हुआ सरितपति, शरत्कालमें तरंग युक्त, शुभ्रवर्ण, कमल व हंसशो
पुष्करणीकी शोभाको धारण करता था जिस आकाशमें तिमिरूप श्वेतवर्ण
मणिरूप तारा, स्फटिकरूप चन्द्र और सर्पाके फणपर स्थित मणियेंही जिसमें

ः शरदीव बिभर्ति रुचम् ॥ ५ ॥ तिमिसिताम्बुधरं मणिता-
स्फटिकचंद्रमनम्बुशरद्द्युति । फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं
लगेशवियच्च चकार यः ॥ ६ ॥ दिनकररथमार्गविच्छित्तये-
ग्रतं यच्चलच्छृङ्गमुद्भ्रान्तविद्याधरांसावसक्तप्रियाव्यग्रदत्तांक-
ालम्बाम्बराभ्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैःशोभितम्।करिकटमदमि-
ावलेहानुवासानुसारिद्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान्बाणपुष्पै-
तंसकान् धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतातदरीनिर्झरम् । गगन-
मेवोल्लिखन्तंप्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुमत्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफाव-
ातमन्द्रस्वनैः शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः रह्न-
इनसक्तयारेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्यासितो द्यानमम्भो-
ानन्नमूलानिलाहारविप्रान्वितं विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्च तस्यो-

धूमकेतु रूपसे विराजमान हुई थीं उस निर्जल शरत्कालके शोभायमान समु-
माकाशको जिन्होंने उत्पन्न किया था, जलराशिके निर्मल करनेवाले उन
का विवरण यहाँ संक्षेपसे कहा जाता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥
थका मार्ग रोकनेके लिये विन्ध्यपर्वत बराबर बढता जाता था, उस समय
शिखरोंके बढनेकी चेष्टासे जो फडक रहे थे उसके शिखरोंपर रहनेवाले
रगण भ्रमचकित और गिरनेके निकट हुए थे इस कारण उनके कंधोंपर
ई सुन्दरियोंने घबडाकर आकाशकी गोदीमें देहको लम्बमान कर दिया था,
लके समय उनकी गोदिमें और देहके समस्त वस्त्र उडती हुई पता-
मान शोभायमान होने लगे, बस वह उन्नत ध्वजायमान विद्याधरगण
र्वतको शोभायमान कर रहे थे. विन्ध्यपर्वतकी कन्दरा और झरनोंमें मृगेंद्र
) वास करते थे, सिंहोंके मस्तकपर, बाणकुसुमसे गुंथ शिरपर धारण
ोग्य मालाके समान, मदजल मिलनेसे हाथीके कुम्भकी रुधिरके स्वादिष्ट
अनुगामी होकर भ्रमरपांति शोभायमान हो रही थी । अति बडे हाथियों-
फुल्ल वृक्षोंके खींचनेसे, त्रासके मारे अत्यन्त घबडाये मतवाली भ्रमरपां-
भीर संगीत ध्वनियुक्त और जरख, रीछ, व्याघ्र और शाखामृग (वानर)
ब्दायमान शैलकूट (छोटा शृंग) द्वारा विन्ध्यपर्वत मानो आकाशमें कुछ
ा था, विन्ध्यपर्वतके वनोंमें देवतालोग रहते हैं । जल पीनेवाले, अन्नत्यागी,
ो और पवनाहारी बहुतसे ब्राह्मणों करके युक्त, और मदसे आसक्त हुई
ो समान रेवा (नर्मदा) नदी करके निर्जलमें आलिंगित उस विन्ध्यपर्व-
न्होंने रोक दिया था, उनके ही उदयका कुछ एक वर्णन श्रवण

दयः श्रूयताम् ॥ ७ ॥ उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसुमाये
लप्रदूषितानि । हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भ
निर्मलानि ॥८॥ पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनः
क्तिम् । ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव सरित्स
॥ ९ ॥ इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता सरिद्भ्रमत्षट्पदपं
षिता । सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति स
॥ १० ॥ इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं द्रष्टुं तरंगव
कुमुदं निशासु । उन्मीलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापीवि
नमिवासिततारकान्तम् ॥ ११ ॥ नानाविचित्राम्बुजहंसको
रण्डवापूर्णतडागहस्ता । रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीव
गस्त्यनाम्ने ॥१२॥ सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद्धनपरिवेष्टित
भिर्भुजंगैः । फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्य
नेन ॥१३॥ स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणा

करो ॥ ७ ॥ जिस प्रकार बुरे लोगोंके समागमरूप मलसे दूषित हृदयवाला
दर्शन करतेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता है वैसेही वर्षाकालीन मट्टीके यो
कीचड मिला हुआ जल अगस्त्यमुनिका उदय होतेही स्वभावसेही निर्मल
है ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सुन्दरी स्त्रीके हँसनेके समय ताम्बुलरागरंजित अतए
वर्ण ओष्ठाधरके मध्यभागमें श्वेतदन्तपांति विराजमान होती है, वैसेही अ
जीके उदयसे दोनों पार्श्वमें अधिष्ठित दो लालवर्ण चक्रवाकोंके बीचमें वि
शब्दायमान हंसावली द्वारा नदियां शोभायमान होती हैं ॥ ९ ॥ अगस्त्य
उदय होनेसे नदियां नीलपद्मके निकटस्थित श्वेतपद्मयुक्त और उसके ऊपर
करती हुई भ्रमरपांतिसे शोभित होनेसे मानो भावोंके साथ कटाक्षको
वाली कामके वश हुई विदग्धस्त्रीके समान शोभायमान होती हैं ।
तरंगरूप कंगण धारण करनेवाली, दीर्घिकारूप कामिनी रात्रिकाल
चले जानेसे बढे हुए चन्द्रमाकी विभूतिको दर्शन करनेहीके लिये मानो
गंत भ्रमरयुक्त कुमुदरूप कृष्णतारेवाले श्रेष्ठ पलकदार नेत्रोंको खोलती हैं ।
अनेक प्रकारके मनोहर पद्म, हंस, चक्रवाक और कारण्डवादिद्वारा परिपूर्ण,
रूप हस्तयुक्त पृथ्वी मानो बहुतसे रत्न, पुष्प और फलोंसे मुनि अगस्
अर्घ देती है ॥ १२ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे वरसा हुआ जल, मेघपरिवेष्टित मूर्
फणोंसे निकली विषरूप अग्निद्वारा पुष्ट होनेपरभी अगस्त्यमुनिके दर्शनसे
हो जाती है ॥ १३ ॥ जिनका स्मरण करतेही पापसमूह दूर हो जाते हैं, उ

मुनिभिःकथितोऽस्य यथार्घविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम्
। १४ ॥ संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादि-
शेज्ज्ञः । तच्चोज्जयन्यामगतस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभा-
स्करस्य ॥१५॥ ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशिद-
क्षिणस्याम् । सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः
प्रयच्छेत् ॥ १६ ॥ कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च रत्नैश्च
सागरभवैः कनकाम्बरैश्च । धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्य-
क्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥१७॥ नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः
प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः । भवति यदि च दद्यात् सप्त
वर्षाणि सम्यग् जलनिधिरसनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥१८॥

मार अगस्त्यजीकी स्तुति करनेका फल हम कहांतक कहें, मुनिलोगोंने उन
अगस्त्यजीके अर्घकी विधि जिस प्रकारसे कही है, राजाओंकी हितकारी वह
व्यवस्था अब कही जाती है ॥ १४ ॥ पण्डितलोग गणितके नियमानुसार अगस्त्य
जीका उदय गिनकर सब देशोंमें आदेश करेंगे । जब सूर्यका स्पष्ट कन्याराशिका
सात अंश कम अर्थात् ४-२३ चार राशि २३ अंश होगा। (यह प्रायः भाद्रमा-
सके २२-२३-२४ दिनतक होता है) तब उज्जयिनीनगरीमें अगस्त्यमुनिका उदय
होगा ॥ १५ ॥ सूर्यनारायनकी किरणोंसे जब रात्रिका अन्धकार कुछ एक
अंशको प्राप्त हो जाता है (भोरकी वेला) तब दैवज्ञके द्वारा प्रकाशित दिशाओंका
विभाग (" यह दक्षिण दिशा है, इस दिशामें भगवान् अगस्त्यजीको अर्घ्य दो "
इस प्रकार दैवज्ञकी आज्ञा पाय) राजाको उचित है कि दक्षिणदिशामें यथाकालमें
उत्पन्न हुए अर्थात् शरत्कालके पुष्प, फल, समुद्रके निकले हुए रत्न, सुवर्ण, वस्त्र,
गौ, वृषभ, परमान्नयुक्त भक्ष्य, दही, अक्षत, सुगन्धि धूप और चन्दनादिद्वारा
रचित अर्घ्य पृथ्वी ऊपर देय ॥ १६ ॥ १७ ॥ यदि राजा श्रद्धावान् होकर इस
प्रकार अर्घ्य धारण करे तो निरोग होकर समस्त शत्रुओंको जीते । और यदि
इसी प्रकारसे सात वर्षतक अर्घ्य देता रहे तो समुद्ररशना पृथ्वीका स्वामी अर्थात्

---

१ " अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः । " मिथुनराशिकी पिछली सीमामें और
अंश दक्षिण विक्षेपमें दिखाई देनेवाला ताराही अगस्त्य है । " स्वात्यगस्त्यमृगव्याधचित्राज्येष्ठाः
पु। अभिजिद् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः ॥ " स्वाती, अगस्त्य, मृग व्याध चित्रा, ज्येष्ठा,
पुनर्वसु, अभिजित् और ब्रह्महृदय नामक समस्त नक्षत्र १३ अंशकालांशमें उदय या अस्त
होते हैं । सूर्य सिद्धान्त ॥

द्विजो यथालाभमुपाहृतताघः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रा
वैश्यश्च गां भूरिधनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥ १
रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत् स्फु
भयाय। माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररो
गस्त्य नाम्ना ॥ २० ॥ शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तपर्य
महीं किरणौघैः। दृश्यते यदि ततःप्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजन
॥ २१ ॥ उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मर
च धत्ते। दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगते
मुपैति ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामगस्त्यचारो द्वादशोऽध्यायः ॥

चक्रवर्ती हो जाय ॥१८॥ जो ब्राह्मणलोग जितनी वस्तु मिले उससेही अगस्त्य
अर्घ्य दे तो चारों वेदोंके अधिकारी हों और सुन्दरी स्त्री व पुत्रलाभ करें।
भी यदि यथालब्ध वस्तु (अर्थात् जितनी वस्तु मिले) उससे अगस्त्यको अ
तो गाय ढोर और अधिक धनको प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥ अगस्त्य नक्षत्र
पुरुष अर्थात् रूखा दिखाई दे तो रोग होता है, कपिल वर्ण होनेसे अनावृष्टि
वर्ण होनेसे गायढोरोंका अशुभ, स्फुरण अर्थात् कम्पनशाली होनेसे भय, मं
समान रंग होनेसे क्षुधा युद्ध और सूक्ष्म होनेसे नगरका रोध (रुकना) ।
॥ २० ॥ अगस्त्य नक्षत्र यदि शातकुम्भ[1] अर्थात् चांदीके समान वा स्फटिक (
के समान शुभ्रवर्ण होकर किरणोंसे पृथ्वीको तृप्त करे तो पृथ्वी बहुत अ
होकर भय और रोग रहित जनोंसे परिपूर्ण हो जाती है ॥ २१ ॥ यदि अग
उल्का या केतुसे आहत हो तो क्षुधाभय और मरी पडती है, जब सूर्य हस्त
गमन करे तो अगस्त्य नक्षत्र सब देशोंमें दिखाई देता है और रोहिणीमें सूर्य
करे तो सब देशोंमें अस्त हो जाते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥

---

१ " ातकुम्भशब्दः सुवर्णरौप्ययोर्द्वयोरपि वाचकः अत्र तु रूप्यवाचकः " इति महोत्पलः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

सप्तर्षिचारः ।

ैकावलीव राजती ससितोत्पलमालिनी सहासेव । नाथवतीव
दृग्यैःकौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥१॥ ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्त्ती-
रा भ्रमद्भिश्च । यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥२॥
न्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विक-
द्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥३॥ एकैकमिन्नृक्षे शतं शतं
रन्ति वर्षाणाम्। प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयंते समाध्वीकाः ॥४॥
भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात् । तस्याङ्गि ।
तोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ॥ ५ ॥ पुलहः क्रतुरिति भग-
सन्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः । तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती
ी ॥ ६ ॥ उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वा ।
ः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्धये ॥ ७ ॥ गन्धर्व-

---

ितकमलकी माला पहरे कामिनीके समान उत्तरदिशा, जो सप्तर्षिमण्डलसे,
ड़ीकी माला पहिरनेसे शोभायमान, मन्द मुसुकानयुक्त और सनाथासी जान
है और ध्रुव नक्षत्ररूप नायकके उपदेशसे इधर उधर भ्रमण करनेवाले सप्त-
के साथ उत्तर दिशा मानो बारम्बार नाचती है; वृद्ध गर्गजीके मतानुसार
ी गतिका विषय कहा जायगा ॥ १ ॥ २ ॥ जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वीका
करते थे, तब मघानक्षत्रमें सप्तर्षि थे, शकाब्द अंकके साथ २५२६ मिलानेसे
ठिरका समय जानता ॥ ३ ॥ वह एक २ नक्षत्रमें शत २ वर्षतक विचरण
हैं। यह उत्तर-पूर्वदिशामें सदा साध्वी अरुन्धतीके साथ उदय होते हैं ॥ ४ ॥
गमें भगवान् मरीचि मरीचिकी पश्चिम दिशामें वसिष्ठ, उनके पीछे अंगिरा
तर अत्रि, उनके निकट पुलस्त्य, पुलह और भगवान् क्रतु क्रमानुसार पूर्व
ं विराजमान हैं, उनमें साध्वी अरुन्धती, मुनीश्रेष्ठ वसिष्ठजीका आश्रय लिये
॥ ५ ॥ ६ ॥ उल्का, वज्र वा धूमादिसे हत, विवर्ण, ज्योतिहीन और
ोनेपर वह अपने २ वर्गका नाश करते और विपुल वा स्निग्ध होने पर
अपने वर्गको बढाते हैं ॥ ७ ॥ मरीचि किसी प्रकारसे पीडित हो तो

---

१ श्रीमद्भागवतटीकामें श्रीधरस्वामीके मतके साथ इस सप्तर्षिमण्डलसंस्थानका भेद है ॥

देवदानवमन्त्रोषधिसिद्धयक्षनागानाम् । पीडाकरो मरीचिर्ग्गं
विद्याधराणां च ॥८॥ शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् व
पेतान् । हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः ॥ ९
अङ्गिरसो ज्ञानेयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः । अत्रेःकान्त
भवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः॥१०॥ रक्षःपिशाचदानवदैत्यभु
ङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः स
ज्ञभृतः ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सप्तर्षिचारस्त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

कूर्मविभाग ।

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा । भारतवर्षे मध्यात्
गादिविभाजिता देशाः ॥१॥ भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिह
संख्यताः । मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः॥२॥ मा
रकोपज्योतिषधर्मारण्यानिशूरसेनाश्च । गौरग्रीवोद्देहिकपुड

गन्धर्व, देव, दानव, मंत्रौषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरोंको पीडाद
होते हैं ॥ ८ ॥ वसिष्ठजी पीडित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्
और वनवासी तपस्वियोंका नाश करते हैं परन्तु किरणयुक्त होकर वृद्धि कर
॥ ९ ॥ अंगिरा हत होकर ज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष और ब्राह्मणोंका नाश क
है । अत्रिका व्याघात हो तो कान्तारजात, जलजात, जलनिधि और नदियं
नाश होता है ॥ १० ॥ पुलस्त्यजीके विघ्नसे राक्षस पिशाच, दानव, दैत्य,
गगण; पुलहका भेद होनेसे मूल, फल और क्रतुमुनिका विघ्न होनेसे यज्ञ
वालोंको विघ्न होता है ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि०बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तीन २ नक्षत्रोंका एक एक वर्ग होता है । इस प्रकारसे नौ वर्ग हैं । इन
वर्गोंका आरम्भ कृत्तिका नक्षत्रसे होता है । भारतवर्षके बीचमें प्रदक्षिणाके क्र
नुसार सब देश इसके द्वारा विभाजित हुए हैं ॥ १ ॥ मध्यदेश, भद्र, अरि
माण्डव्य, साल्व, नीप, उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्सघोष, यामुन, सारस्
मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, गौरग्रीव, उद्दे

ञ्चालाः ॥ ३ ॥ साकेतकंककुरुकालकोटिकुकुराश्च पारिया-
ः । औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ॥ ४ ॥
पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्वजपद्ममाल्यवद्गिरयः । व्याघ्रमुखसूक्ष्म-
चान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च ॥ ५ ॥ खसमगधशिबिरगिरिमिथि-
मतटौड्राश्ववदनदन्तुरकाः । प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमुद्रपु-
ाः ॥६॥ उदयगिरिभद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः
ादताम्रलिप्तिककोशलका वर्द्धमानश्च ॥ ७ ॥ आग्नेय्यां दिशि
लकलिंगवङ्गोपवङ्गजठराङ्गाः । शौलिकविदर्भवत्सान्ध्रचेदि-
चोर्ध्वकण्ठाश्च ॥ ८ ॥ वृषनालिकेरचर्मद्वीपा विन्ध्यान्तवासि-
पुरी । श्मश्रुधरहेमकूटव्यालग्रीवा महाग्रीवाः ॥ ९ ॥ किष्कि-
कण्कस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः । सह नग्नपर्णशब-
लेषाद्ये त्रिके देशाः ॥ १० ॥ अथ दक्षिणेन लंका कालाजि-
रिकीर्णतालिकटाः।गिरिनगरमलकदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यमरुक-
॥११॥कंकटटंकणवनवासिशिबिकफणिकारकोंकणाभीराः ।
रवेणावन्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥ १२ ॥ कर्णाटमहाट-

ुड, अश्वत्थ, पांचाल, साकेत, कंक, कुरु, कालकोटि, कुकुर, परियात्र नग,
बर, कापिष्ठल और हस्तिनादेश (३) (४) (५) नक्षत्रमें विराजमान हैं
॥ ३ ॥ ४ ॥ अनन्तर पहिले अंजन, वृषभध्वज, पद्म, माल्यवद्गिरि, व्याघ्र-
सूक्ष्म, कर्वट, चान्द्रपुर, शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिल, समतट,
अश्वदन, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयगिरि,
डैक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रलिप्तिक, कोश-
और वर्धमान ये सब देश (५) (७) (८) नक्षत्रमें विराजमान हैं ॥ ५ ॥
॥ ७ ॥ अग्निकोणमें कोशल, कालिंग, वंग, उपवंग, जठर, अंग, शौलिक,
वत्स, अन्ध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, वृष, नालिकेर, चर्मद्वीप विन्ध्याचलके
, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव, किष्किन्धा, कण्टकस्थल,
राष्ट्र, पुरिक, दशार्ण नग्नपर्ण और शबर ये सब देश आश्लेषादि तीन
में (९) (१०) (११) विराजमान हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर
में लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र,
च्छ, कंकट, टंकण वनवासी, शिबिक, फणिकार, कोंकण, आभीर, आकार,
आवन्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट, नासिक्य,

विचित्रकूटनासिक्याकोल्लगिरिचोलाः । क्रौंचद्वीपजटाधरका
ऋष्यमूकश्च ॥ १३ ॥ वैडूर्यशंखमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीप
गणराज्यकृष्णवेल्लूरपिशिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥ १४ ॥ तुम
नकार्मणेयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः । काञ्ची मरुची
नचेर्योर्यकसिंहला ऋषभाः ॥ १५ ॥ बलदेवपट्टनं दण्डकाव
मिंगिलाशना भद्राः । कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति वि
॥ १६ ॥ नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिंधुसौवीराः ।
वामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्त्ताः ॥ १७ ॥ फेणगिरिय
माकरकर्णप्रावेयपाराशरशूद्राः ॥ बर्बरकिरातखण्डक्रव्याश्या
चंचूकाः ॥ १८ ॥ हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रवि
स्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्चमहार्णवोऽत्रैव ॥ १९ ॥ अपरस्यां म
मान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः । अपरान्तकशान्
हैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥ २० ॥ पञ्चनदरमठपारततारक्षिति
वैश्यकनकशकाः । निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थ
च ॥ २१ ॥ दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारता
मद्राः । अश्मककुलूतलहडस्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थः ॥ २

कोल्लागिरि, चोल, क्रौंचद्वीप, जटाधर, कावेरी, ऋष्यमूक, वैडूर्य शंखमुक्ताक
अत्र्याश्रम, वारिचर, धर्मपुरद्वीप, गणराज्य, कृष्णावेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि,
नग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिणसमुद्र, तापसाश्रम, ऋषिक, काञ्ची, मरुच
चेय, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पत्तन, दण्डकावन, तिमिङ्गिलाशन
कच्छ, कुञ्जरदरी, और ताम्रपर्णी आदि देश (१२) (१३) (१४) नक्षत्रमें विर
हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ नैर्ऋतकोणमें
काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, अरव, अम्बष्ठ, कपिल, ना
आनर्त, फेणगिरि, यवन, माकर, कर्णप्रावेय, पराशर, शूद्र, बर्बर, किरा
क्रव्याद, आभीर, चंचूक, हेमगिरि, सिन्धुकालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर औ
डादिदेश और समुद्र स्वाती आदि तीन नक्षत्रमें (१५) (१६) (१७)
मान हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ पश्चिमदिशामें मणिमान्, मेघवान् वनौघ,
र्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शान्तिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद
पारत, तारक्षिति, जृंग, वैश्य, कनक, शक और जो लोग मर्यादाहीन प
शाके रहनेवाले हैं वे लोक (१८) (१९) (२०) नक्षत्रमें रहते हैं।
॥ २१ ॥ पश्चिमोत्तर दिशामें माण्डव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक,

मती फल्गुलुका गुरुहा मरुकुत्सचर्मरङ्गाख्या । एक-
ोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥ २३ ॥ उत्तरतः कैलासो
ान्वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च । क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः
मीनाश्च ॥ २४ ॥ कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायना-
ाः । आदर्शान्तर्द्वीपित्रिगर्त्ततुरगाननाश्वमुखाः ॥ २५ ॥
धरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः । तक्षशिला-
कलावतकैलावतकण्ठधानाश्च ॥ २६ ॥ अम्बरमद्रकमालव-
वकच्छारदण्डपिङ्गलकाः । माणहलहूणकोहलशीतिकमाण्डव्य-
पुराः ॥ २७ ॥ गान्धारयशोवतिहेमतालराजन्यखचरग-
श्च । यौधेयदासमेयाः श्यामकाः क्षेमधूर्त्ताश्च ॥ २८ ॥
ान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः । अभिसारदरदत-
कुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥ ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्य-
ातचीनकौणिन्दाः । भल्लापलोलजटसुरकुनठखसघोषकुचिकाः
ाः ॥ ३० ॥ एकचरणानुविश्वाः सुवर्णभूर्वसुवनं दिविष्ठाश्च -
वचीरनिवसनत्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगन्धर्वाः ॥ ३१ ॥ वर्गैराग्नेयाद्यै

, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्थ, वेणुमति, फल्गुलुका, गुरुहा, मरुकुत्स, चमरंग
विलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव और आस्यकेश ये सब देश (२१) (२२)
 नक्षत्रमें विद्यमान हैं। उत्तरदिशामें कैलास, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्,
, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जु-
, अमीध्र, आदर्श, आन्तर्द्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, अश्वमुख, केशधर,
टनासिक, दासेरक, वाटधान, सरधान, तक्षशिल, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठ,
अम्बर, भद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दन्तपिंगलक, मान, हल, हूण, कोहल,
ह, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य,
य, दासमेय, श्यामक और क्षेमधूर्तादि देश (२४) (२५) (२६) नक्ष-
विराजमान हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ईशान-
में मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर, काश्मीर, अभिसार, दरद, तंगण, कुलूत,
ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कौणिन्द, भल्लाप,
जट, सुरकुनठ, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविश्व, सुवर्णभू, वसुवन,
ष्ठ, पौरव, चीरनिवसन, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि और गन्धर्वादि समस्त देश
९) (१) (२) नक्षत्रमें रहते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ आग्नेयादि

क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः । पाञ्चालो मागधिकः कालि
क्षयं यान्ति ॥ २२ ॥ आवन्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति सिन्
वीरः । राजा च हारहौरो मद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥ २३

इति श्रीवराहमिहिरकृत बृहत्संहितायां कूर्मविभागश्चतुर्दशोध्यायः ।

पंचदशोऽध्यायः ।

नक्षत्रव्यूहः ।

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः । आकरि
पितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १ ॥ रोहिण्यां सुव्रतपण
धनियोगयुक्तशाकटिकाः । गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्य
न्नाः ॥ २ ॥ मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरवि
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥ रौद्रे वधबन्ध
परदारस्तेयशाठ्यभेदरताः । तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवे
मज्ञाः ॥ ४ ॥ आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः

समस्त वर्ग पापग्रहादिसे पीडित होनेपर यथाक्रमसे पांचाल, मागधिक, क
आवन्त, आनर्त, सिन्धुसौवीर, हारहौर, मद्र और कौणिन्द देशके रा
नाश होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥

सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, सूत्रकी भाषा जाननेवाले, अ
ताई द्विज, कुंमार, पुरोहित और अब्दज्ञ (वर्षके फलका जाननेवाला) वृ
नक्षत्रके आधीन हैं ॥ १ ॥ सुव्रत, पण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक
बैल, जलचर, किसान, पर्वत और सम्पत्तिमान् पुरुष रोहिणीके आधि
॥ २ ॥ सुरभिवस्त्र, पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहंग, मृग, यज्ञमें
पीनेवाले, गन्धर्व, कामी और पत्रवाहकगण (डॉकिये) मृगशिराके वश हैं
आर्द्रा नक्षत्रके वशमें, वध, बन्ध, मिथ्या, परदारहरण, शाठ्य और भे
पुरुष, भूसीधान्यसे तीक्ष्ण मंत्रकरके उच्चाटन मारणादि अभिचार उ
लकर्म जाननेवाले वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥ पुनर्वसुमें उत्तम धान्य, सत्य,
शौच, कुलरूप, बुद्धि, यश, अर्थयुक्त, सेवानियुक्त शिल्पजनसमन्वि

यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥ पुष्ये यव-
धूमाः शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपाः सलिलोपजीविनः साध-
यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥ ६ ॥ अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्न-
षाणि । परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यंसर्वभिषजश्च॥७॥ पित्र्ये
धान्याढ्याः कोष्ठागाराणिपूर्वताश्रायिणः। पितृभक्तवणिक्शूराः
मादाःस्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ ८ ॥ प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगा-
शिल्पिपण्यानि । कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि
॥ आर्यम्णेमार्दवशौचविनयपाषण्डिदानशास्त्ररताः। शोभन-
यमहाधनधर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १० ॥ हस्ते तस्करकु-
रथिकमामात्रशिल्पिपण्यानि । तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्ते-
युताश्चात्र ॥ ११॥ त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्य गान्धर्वगन्ध-
ज्ञाः । गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥१२॥
ती खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि । अस्थि-
सौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३ ॥ इन्द्राग्निदैवते

जमान हैं ॥ ५ ॥ जौ, गेहूं, सब प्रकारकी शाली, गन्ने, मंत्र जाननेवाले, सब
, जलसे आजीविका करनेवाले और यज्ञकी क्रियामें आसक्त हुए साधुलोग
नक्षत्रमें हैं ॥ ६ ॥ आश्लेषाके अधिकारमें बनाये हुए कन्द, मूल, फल,
, पन्नग (सर्प), विष, तुषधान्य, पराये धनको हरण करनेवाले पुरुष और
स्त वैद्य हैं ॥ ७ ॥ मघानक्षत्रके अधिकारमे धान्यागार और समस्त ग्रह, धन
युक्त पर्वतके रहनेवाले पितृभक्त बनिये, शूर, क्रव्याद और स्त्रियोंसे द्वेष कर-
ले मनुष्यगण हैं ॥ ८ ॥ नट युवती सुभगगायक, शिल्पी (कारीगर),
स, नोंन मधु, तेल और कुमारकगण पूर्वाफाल्गुनीके वश हैं ॥ ९ ॥ उत्तरा-
ल्गुनी नक्षत्रके अधिकारमें मृदुता, पवित्रता, विनय, नास्तिकपन, दान और
रत पुरुष राजा; सुन्दर धान्य और स्वधर्मानुरागी महाजन लोग विराजमान
। १० ॥ तस्कर, कुंजर, रथी, मंत्री, शिल्पी, पण्य, तुषधान्य, वेदज्ञ और
तिष जाननेवाले, वणिक् हस्तनक्षत्रके वशमें हैं ॥ ११ ॥ चित्राके वशमें भूषण,
ग, अंगराग लेख्य, गंधर्वव्यवहार, गंधयुक्त जाननेवाले विज्ञानी, गणनामें निपुण
और जुलाहे वर्तमान हैं ॥ १२ ॥ स्वातीमें खग, मृग, घोडे, धान्य, बहुतसी

रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः । कार्पासमाषचणकाः पुर
ताशभक्ताश्च ॥ १४ ॥ मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगो
रताः । ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नाम् ॥ १५ ॥
न्द्रेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः । विजि
नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥ १६ ॥ मूले भेषजभिषजो
मुख्याः कुसुममूलफलवार्त्ताः । बीजान्यतिधनयुक्ताः फलमू
वर्तन्ते ॥१७॥ आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधन
सेतुकरवारिजीवकफल कुसुमान्यम्बुजातानि॥१८॥विश्वेश्वरे म
त्रमल्लकतरितुरगदेवताभक्ताः। स्थावरयोधाभोगान्विताश्च ये
युक्ताः॥१९॥श्रवणेमायापटवोनित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः
हिनःसधर्मा भागवताःसत्यवचनाश्च॥२०॥वसुभे मानोन्मु
क्ताश्चलसौहृदाःस्त्रियां द्वेष्याः दानाभिरता बहुवित्तसंयुताःश
नराः॥२१॥वरुणेशेपाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचरा
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥२२

हवावाले स्थान, पण्यकुशल बनिये और जिनकी मित्रता स्थिर नहीं है
स्वभाववाले तपस्वी लोग वास करते हैं ॥ १३ ॥ विशाखानक्षत्रमें लाल
वाली शाखायें, तिल, मूंग, कपास, उर्द, चने, इन्द्र और अग्निके भक्त
हैं ॥१४॥ अनुराधामें शूरतासम्पन्न, गणनायक साधुसमूहमें बैठनेवाले
वर्त्तमान हैं और शरद ऋतुके उत्पन्न हुए समस्त द्रव्य हैं ॥ १५॥ ज्ये
अधिकारमें कुल वित्त यशवाले, पराया धन हरण करनेवाले, अति शूरग
यकी इच्छा करनेवाले राजा और समस्त सेनापति लोग हैं ॥ १६
औषध, वैद्य गणमुख्य लोग, फूल, फल, मूल, पत्ते, बीज और फल मूलो
करनवाले और अतिधनवान् पुरुष विद्यमान हैं॥१७॥ पूर्वाषाढामें मृदु ज
और सत्यशौचधनयुक्त मनुष्य, पुल बनानेवाले, नहर काटनेवाले, सेवक प
कुसुम और समस्त पद्म हैं ॥१८॥ मंत्री, मल्लयोधा, हाथी, घोडे, तुरंग अ
भक्त, भोगवान्, तेजयुक्त, स्थावर, वीर लोक लोग उत्तराषाढामें हैं ॥
णके वशमें माया जाननेमें चतुर, नित्य उद्योग करनेवाला, कर्ममें सामर्थ्य
वाला उत्साहयुक्त; धर्मपराण, भगवद्भक्त और सत्यवादी लोग हैं ॥ २०
मान छोडे हुए हीजडे, चंचल सुहृदतावाले स्त्रिद्वेषी दानरत, बहुतसे ध
शान्तिपरायण राजालोग वर्त्तमान हैं ॥२१॥ शतभिषामें व्याधे मत्स्यबन्ध
आजीविका करनेवाले शूकर पालनेवाले, धोबी, कलवार और शाकुनिक

क्रूरपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः । धर्मव्रतैर्विरहिता नियु
शलाश्च मनुजाः ॥ २३ ॥ आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयु-
महाविभवाः । आश्रमिणः पाषण्डा नरेश्वराःसारधान्यं च
२४ ॥ पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशंखमौक्तिका
नि । सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजा नौकर्णधाराश्च ॥ २५ ॥
श्वन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः । तुरगारोहाश्च वणि-
पेतास्तुरगरक्षाः ॥ २६ ॥ याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधब-
ाडनासक्ताः । तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन
२७ ॥ पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
ष्णमैत्रं पित्र्यदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ २८ ॥
दित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति भानि ।
त्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाम् ॥२९॥
येन्द्रचित्रावसुदैवतानि । सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि सार्पं वि-
॥ श्रवणो भरण्यश्चण्डालजातेरिति निर्दिशन्ति ॥३०॥ रविर-
तभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम् । ग्रहणगतमथोल्कया

, पशुपालक, हिंसा करनेवाले, कीनाश, नीच और शठ चेष्टावाले, धर्मव्रत-
मल्लयुद्ध करनेमें चतुरलोग वास करते हैं ॥ २३ ॥ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें यज्ञ
और तपवान् महाविभववाले, आश्रमी, राजा लोग, ब्राह्मण, पाखण्डी और
ान्य विराजमान हैं ॥ २४ ॥ रेवतीके अधिकारमें जलसे उत्पन्न हुए फल,
लवण, मणि, शंख मुक्ता, पद्म, सर्व प्रकारके सुगन्धित फूल, गन्ध, द्रव्य
और नावके खेवट लोग हैं ॥ २५ ॥ आश्विनीमें अश्वहर लोग, सेनापति
ावक, घोडे, घुडसवार, रईस, बनिये और रूपवान् पुरुष हैं ॥ २६ ॥
के वशमें तुषधान्य रक्त मांस खानेवाले, क्रूर, वध, बन्ध ताडना करनमें
त और सद्गुणहीन लोक रहते हैं ॥ २७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वा-
ा और कृत्तिकानक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है, उत्तरफाल्गुनी, उत्तराषाढा,
ाद्रपदा और पुष्यनक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा
ाद्रपदा और पुष्यनक्षत्र क्षत्रियोंका है, रेवती, अनुराधा, मघा और अश्विनी
ानियोंका अधिकारी कहा जाता है, मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा
तके प्रभु हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र
के स्वामी हैं । आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी चाण्डाल जातिके
हैं ॥ ३० ॥ जो नक्षत्र रवि और शनिसे मुक्त हैं, मंगलके भेदन था वक्रमें

हतं नियतमुषाकरपीडितं च यत् ॥ ३१ ॥ तदुपहतमिति प्र
प्रकृतिविपर्ययमातमेव वा । निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविप
समृद्धये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्रव्यूहः पञ्चदशोऽध्यायः

अथ षोडशोऽध्यायः ।

प्राङ्नर्मदार्धशोणोड्रवंगसुह्माः कलिंगबाह्लीकाः । शकयव
धशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥ १ ॥ मेकलकिरातवि
बहिरन्तःशैलजाः पुलिन्दाश्च । द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकू
यमुनायाः ॥ २ ॥ चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीक
श्च । पुंड्रा गोलांगूलश्रीपर्वतवर्द्धमानाश्च ॥ ३ ॥ इक्षुमत
तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम् । तुषधान्यकटुकतरुकन
नविषसमरशूराणाम् ॥ ४ ॥ भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृ
यायिचौराणाम् व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वा
गिरिसलिलदुर्गकोशलमरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः । वनवा

दूषित हैं, ग्रहणगत या उल्कासे हत हैं, अथवा सूर्यकिरणसे सदा पीडित
वह उपहत अथवा प्रकृति विपर्ययगत या वारिवर्गदूषण अथवा विपर्यय
लाते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुराद
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचदशोऽध्याय

नर्मदाके पूर्वार्द्ध, शोण, ओड्र, वंग, सुह्म बाह्लीक, शक, यवन, मगध
प्राग्ज्योतिष, चीन, काम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वतका विच
बाहरी पुलिन्द, द्रविडका पूर्वार्ध, यमुनाका दाहिना किनारा, चम्प
कौशाम्बि, चेदि, विन्ध्याटवी, कलिंग, पुण्ड्र, गोलांगूल, श्रीपर्वत, वर्द्ध
इक्षुमति ये समस्त देश और तस्कर, पारत, कान्तार, गोपबीज, तुषधा
वृक्ष, कनक अग्नि, विष समरशूर, औषध, वैद्य, चतुष्पद, किसान, नृ
वैद्ल, चोर, कालासर्प, और दंशवान् तीक्ष्ण अरण्यद्रव्योंका स्वामी सू
॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ पर्वत , जल, दुर्ग, कोशल, मरुकच्छ, समुद्र, रो
वनवासी. तंगण, हल, स्त्रीराज्य, महार्णवद्वीप, मधुररस, कुसुम, फल,

लस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः ॥ ६ ॥ मधुररसकुसुमफलसलिलल-
मणिशंखमौक्तिकाब्जानाम् । शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्र-
वेप्राणाम् ॥ ७ ॥ सितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्य-
णाम् । शृङ्गिनिशाचरकर्षकयज्ञविदांचाधिपश्चन्द्रः ॥८॥ शो-
ग नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः।निर्विन्ध्या वेत्रवती
॥ गोदावरी वेणा ॥९॥ मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धु-
तीपाराः । उत्तरपाण्ड्यमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः
० ॥ द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापुरकौंकणाः समन्त्रिषिकाः
लकेरलदण्डककान्तिपुरम्लेच्छसंकरजाः॥११॥ नासिक्यभोग-
विराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः । ये च पिबन्ति सुतोयां
ं ये चापि गोमतीसलिलम् ॥ १२ ॥ नागरकृषिकरपारतहु-
ना जीविशस्त्रवार्त्तानाम् । आटविकदुर्गकर्बटवधकनृशंसाव-
नाम् ॥ १३ ॥ नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघात-
ानाम् । रक्तफलकुसुमविद्रुमच मूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥१४॥
भवनाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम् । शठदीर्घवैर-
शिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः ॥ १५ ॥ लौहित्यः सिन्धुनदः
र्गम्भीरिका रथाह्वा च । गङ्गाकौशिक्याद्याधिपतिः सरितो

मुक्ता, पद्म, शालि, यव (जौ), दवा, गेहूं, यज्ञमें सोमपान करनेवाले, राजाके
ए ब्राह्मणगण, सितसुभग तुरंग, रतकरी युवती, सेनापति, भोज्य, वस्त्र शृंगी,
निशाचर, किसान और यज्ञ जाननेवालोंका स्वामी चन्द्रमा है ॥ ६ ॥ ७ ॥
। शोण, नर्मदा और भीमरथाके आधी पश्चिम दिशाके सब राजा, निर्विंध्या,
, गोदावरी, शिप्रा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, महानदी, सिन्धु, मालती,
नदी, उत्तर आरण्य, महेन्द्राद्रि, विन्ध्य, मलयका निटकवर्ती भाग, चोल,
विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापुर, कोंकण, समान्त्रिषिक, कुंतल, केरल,
, कान्तिपुर, म्लेच्छ, संकरज, नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचलके
के देश लोग तापती और गोमती नदीका मधुर जल पीते हैं, नगरवासी,
, पारत अग्निसे आजीविका करनेवाले, शस्त्रसे आजीविका करनेवाले, वनचारी,
दुद्रनगर, घातक, गर्वित, नरपति, कुमार, हस्ती, दांभिक, बालक, अभिघात,
ठक, रत्नफल और फूल, मूंगा, सेनापति, गुण, मद, तीक्ष्णकोश, भवन,
त्री लोग, धातुओंकी आकर, जन, भिक्षु, चोर, शठ, दीर्घवैर और भोजन,
करनेवालोंका स्वामी मंगल है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥
॥ लौहित्य और सिन्धुनद, सरयू, गम्भीरिका, रथाह्वा, गंगा और कौशिकी

वैदेहकाम्बोजाः ॥ १६ ॥ मथुरायाः पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्ती
कूटस्थाः । सौमराष्ट्रसेतु जलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिणः ॥
उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविदः । आलेख्यः
गणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥ चरपुरुषकुहककर्ज
शिशुकविशठसूचकाभिचाररतः । दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन
जालज्ञाः ॥ १९ ॥ आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्त
व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥ सिन्धुन
भागो मथुरापश्चार्धभरतसौवीराः । स्रुघ्नोदीच्यविपाशास
तद्रुरमठसाल्वाः ॥ २१ ॥ त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारतावाटधानयौ
सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ॥ २२ ॥ हस्त्यश्वपु
तभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः । कारुण्यसत्यशौचव्रत
दानधर्मयुताः ॥ २३ ॥ पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभि
नीतिज्ञाः । मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च ॥
शैलेयकमांसीतगरकुष्ठरससैन्धवानि वल्लीजम् । मधुररः
च्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य ॥ २५ ॥ तक्षशिलमार्तिव
बहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः । प्रस्थलमालवकैकयदाशा

आदि सब नदियें, काम्बोज, वैदेह, मथुराका पूर्वार्द्ध, हिमालय, गोमन
चित्रकूटके सब राज्य, सेतु, जलमार्ग, पण्य बिल और पहाडी जीवगण,
पंडित, चित्र, शब्द और गणितका जाननेवाला, चरपुरुष, कुहकजीवक,
कवि, शठ, सूचक (ढंढोरची), अभिचाररत, दूत, हीजडा, मसखरा,
और इन्द्रजालका जाननेवाला, रक्षक, नट नाचनेवाला, घी, तेल, स्नेह, बीज
व्रतचारी, रसायन, कुशल पुरुष और खिच्चड इन सबका स्वामी बुध है ।
॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ सिन्धुनदका पूर्वभाग, मथुराका पिछल
भाग, भरत, सौवीर, स्रुघ्नकी उत्तर दिशा, विपाशा और शतद्रुनदी, रामठ,
त्रैगर्त, पौरव, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, आर्जुनायन औ
देशके अर्धभागके गांव और सब राज्य, हाथी, घोडा, पुरोहित, राजा, मंत्री
और पौष्टिक सम्बन्धमें आसक्त जन और महाधन, शब्दार्थ, वेद
अभिचार और नीतिज्ञ छत्र, ध्वज, चामरादि राजाके सन्मानद्रव्य, शैलज
जीत), जटामांसी (बालछड), तगर, कूट, पारा, सेंधा, लतासे उ
द्रव्य, मधुर रस और मोम और चोरक इन सबका स्वामी बृहस्पति है
॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ तक्षशिल, मार्तिकावत, बहुगिरि, गान्धा

राः शिबयः ॥ २६ ॥ ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं
भागसरितं च । रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः
७ ॥ सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः । वर-
युवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥ २८ ॥ उद्यानसलि-
मुकयशःसुखौदार्यरूपसम्पन्नाः । विद्वदमात्य वणिग्जनघट-
त्राण्डजास्त्रिफलाः ॥ २९ ॥ कौशेयपट्टकम्बलपत्रोर्णिकरोध्र-
चोचानि । जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥३०॥
र्ताबुंदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः । नष्टा यस्मिन्देशे सर-
पश्चिमो देशः ॥ ३१ ॥ कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा
मृती महीतटजाः । खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्वोपहत-
राः ॥३२॥ बन्धनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरूपवृद्धसौकरिकाः ।
ज्यस्खलितव्रतशबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः ॥ ३३ ॥ कटुतिक्त-
यनविधवायोषितो भुजगतस्करमहिष्यः। खरकरभचणकवातु-
ष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ॥ ३४ ॥ गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा
छजातयशूद्राः। गोमायुभक्षशूलिकबोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गाः

, मरुस्थल, मालव, कैकल, दाशार्ण, उशीनर और शिबिविदेश, जो लोग वितस्ता,
और चन्द्रभागा नदीका जल पीते हैं रथ, चांदी, खानि, कुंजर, घोडा,
, धनयुक्त सुगंधिवान् फूल, उबटन, मणिवज्रादि, विभूषण, पद्म, शेज, उत्तम
युवती, कामके समान, शोधित अन्न, मधुर द्रव्य खानेवाले पुरुष, बगीचे, जल,
लोग, यश सुख उदारता और रूपवान् विद्वान्, मंत्री, बनियां, कुंभार, चित्रा-
त्रिफला (हर्र, बहेडा, आमला), रेशमीन कपडे, कम्बल, शण, पत्र, ऊन,
पत्ते, चोच, जायफल, अगर, वच और चन्दन यह सब शुक्रके आधीन हैं
॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीरशूद्र,
, जिस देशमें सरस्वती नदी दिखाई नहीं देती, पश्चिमदेश, कुरुक्षेत्र, प्रभास,
, वेदस्मृती, महीके किनारवाले, सब द्रव्य, दुष्ट, मलीन, नीच, तेली सत्त्व-
जिसका पुरुषपन नष्ट हो गया है, बन्धक, व्याध, अपवित्र केवट कुरूप
भरपाल, गणपूज्य, जिनका व्रत छूट गया है, शबर, पुलिन्द, दरिद्र कटु,
रसायन विधवा स्त्री, सर्प, तस्कर, भैंस, गधा, करभ, चना, मदर और
मुसली ये सब वस्तुयें शनिके स्वाधीन हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥
शिखर, कन्दर, दरियोंमें रहनेवाली म्लेच्छजातियां, शूद्र, गोमायु, भक्ष,
बोक्काण, अश्वमुख, विकलांग, कुलांगार, हिंसक, कृतघ्न, चोर, सत्य, शौच

॥ ३५ ॥ कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च । ख
नियुद्धवित्तीव्ररोषगर्भाशया नीचाः ॥ ३६ ॥ उपहतदाम्भिव
सनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे । धर्मेण च सन्त्यक्ता माषां
श्चर्कशशिशत्रोः ॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगा
चीनाः । प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३
परदारविवादरताः पराण्डककुतूहला मदोत्सिक्ताः । मूर्खा
कविजिगीषवश्च केतोःसमाख्याताः ॥ ३९ ॥ उदयसम
स्निग्धांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो यदि च न हतो निर्घातोल्क
ग्रहमर्दनैः । स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः स
शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥ अभिहितवि
लक्षणैः क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः । डमरभयगदातुरा
नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ॥ ४१ ॥ यदि न रिपुकृतं
नृपाणां स्वसुकृतं नियमादमात्यजं वा । भवति जन
चाप्यवृष्ट्या गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ॥ ४२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहभक्तयो नामषोडशोऽध्याय

और दानरहित, खच्चर, मल्लयुद्ध जाननेवाले, तीव्ररोष युक्त, नीच, उपह
राक्षस बहुत सोनेवाले और धर्महीन, जन्तु, उर्द, और तिल राहुके वश हैं
॥ ३६ ॥ ३७ ॥ पहाडी किला, श्वेत, हूण, चोल, अफगान, मरु, चीन,
देश, धनी, महेच्छका व्यापार करनेवाले, पराक्रमयुक्त, पराई स्त्रीमें रत
पराण्डक, कुतूहली, मदगर्वित, मूर्ख, और धार्मिक, विजयकी इच्छा
केतुके आधीन हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जो ग्रह स्वाभाविक महान्, स्निग्धां
निर्घात, उल्का, धूरि या ग्रहमर्दनसे हत नहीं हैं,स्वभवनगत, स्वोच्चप्राप्त औ
हसे देखे जाकर उदय होते हैं, वह जिनके स्वामी कहलाते हैं उनका मंगल
॥ ४० ॥ उक्त विपरीत लक्षणों करके ग्रहोंके अधिकार किये सब द्रव्य
प्राप्त होते हैं, और उस कालमें आक्रमण करनेमें डरपोक गदातुर जन
अत्यन्त दुःखित होते हैं ॥४१॥ यदि राजाओंको शत्रुका अपने पुत्रका य
किया हुआ अभय न हो.अथवा पृथ्वीमें अनावृष्टि न हो तो नियमके व
पुर पर्वत और नदियोंमें गमन करना उचित है ॥ ४२ ॥

इतिश्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

ग्रहयुद्धम् ।

युद्धं यथा यदा वा भविष्यदादिश्यते त्रिकालज्ञैः । तद्विज्ञानं
रणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्तात् ॥ १ ॥ वियति चरतां ग्रहाणामु-
र्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम् । अतिदूराद्दृग्विषये समतामिव सम्प्र-
तानाम् ॥ २ ॥ आसन्नक्रमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्दनापसव्यैः ।
द्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥ ३ ॥ भेदे वृष्टिविनाशो
दः सुहृदां महाकुलानां च । उल्लेखे शस्त्रभयं मन्त्रिविरोधः प्रिया-
त्वम् ॥ ४ ॥ अंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः ।
द्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति युद्धानि भूपानाम् ॥ ५ ॥ रविराक्रन्दो
ध्ये पौरः पूर्वेऽपरे स्थितो यायी । पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं
ीतांशुराक्रन्दाः ॥ ६ ॥ केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते हता ग्रहा
न्युः । आक्रन्दयायिपौरान् जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ॥ ७ ॥
रे पौरेण हते पौराः पौरान् नृपान् विनिघ्नन्ति । एवं याय्या-

त्रिकालज्ञानी पंडितलोग जिस समयमें होनहार ग्रहयुद्धके विषयमें आज्ञा देते
। मैं करणग्रंथमें (पंचसिद्धान्तिका) सूर्यसिद्धान्तके मतसे सो कह आया हूँ सो
१॥ एकके ऊपर एक अलग २ अपने मार्गमें स्थित ग्रहोंकी जो अतिदूरसे दर्शनके
षयमें समानता होती है, उसको पंडित लोग ग्रहयुद्ध कहते हैं ॥ २ ॥ पराशरादि
नियोंने आसन्न क्रमयोगसे भेद, उल्लेख, अंशुमर्दन और अपसव्य यह चार प्रका-
के ग्रहयुद्ध कहे हैं ॥ ३ ॥ भेदयुद्धमें वर्षाका नाश सुहृद् व कुलीनोंमें भेद होता
, उल्लेख युद्धमें शस्त्रभय, मंत्रिविरोध और दुर्भिक्ष होता है॥४॥ अंशुमर्दन युद्धमें राजा
ोगोंमें युद्ध, शस्त्र, रोग, भूखसे पीडा और अवमर्दन होता है, अपसव्य युद्धमें राजा-
ण युद्ध करते हैं ॥५॥ सूर्य दोपहरमें आक्रन्द होता है, पूर्वाह्नमें पौरग्रह तथा अपरा-
में पापी ग्रह आक्रन्द संज्ञक होते हैं, बुध, गुरु और शनि यह सदा पौर हैं । चन्द्रमा
ित्य आक्रन्द है ॥६॥ केतु, मंगल, राहु और शुक्र यायी हैं । इन ग्रहोंके हत होनेसे
ाक्रन्द, यायी और पौर क्रमानुसार नाशको प्राप्त होते हैं; जयी होनेपर स्ववर्गको जय
ते हैं ॥७॥ पौरग्रहसे पौरग्रहके टकरानेपर पुरवासी गण और पौर राजाओंका नाश
ोता है इस प्रकार यायी और आक्रन्दग्रह या पौर और यायी ग्रह परस्पर हत होनेपर

क्रन्दौ नागरयायिग्रहाश्चैव ॥८॥ दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपः
सन्निवृत्तोऽणुः । अधिगूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च
जितः ॥ ९ ॥ उक्तविपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनि
विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥
द्वावपि मयूखपृक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः । तत्रान
प्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥ युद्धं समागमो वा यद
तु लक्षणैर्भवतः । भुवि भूभृतामपि तथा फलमभ्यूह्यं वि
॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्त्ताश्च । :
शूरसेनाःकलिङ्गसाल्वाश्च पीडयन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विजि
न्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति । कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापा
जिते ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकन

अपने १ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥ जो ग्रह दक्षिणदिश
कम्पायमान अप्राप्त होकर भलीभांतिसे निवृत्त अर्थात् टेढा, क्षुद्र, और
ढका हुआ, विकराल, प्रभाहीन और विवर्ण जान पडे वह ग्रह पराजित
इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयी कहता है, परन्तु बडे मंडलवाला वि
द्युतिमान् होकर दक्षिणदिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है
ग्रहयुद्धकालमें यदि दो ग्रह किरणयुक्त बडे मंडलवाला और चिकने हों
अन्योन्य प्रीति कहा जायगा.ऐसा हो तो पृथ्वीमें राजा लोगोंकी भी युद्ध
बरी होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाक्ष होगा॥११॥ जो युद्ध
लक्षणसे जाना जाय तो पृथ्वीमें राजालोगोंका फलभी वैसाही जाना जा
बृहस्पतिजी मंगलको जीत लें तो बाह्लीक, यायी और अग्निसे आजीवि
वाले पीडा पाते हैं । बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कलिंग और श
पीडा होती है ॥ १३ ॥ शनिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवासि
होती है, प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती है । शुक्र मंगलको जीत ले
गार, म्लेच्छ और क्षत्रियोंको ताप होता है ॥ १४ ॥ मंगलके द्वारा

---

१ यह लक्षण केवल शुक्रके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शुक्रके
जयी होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना उचित है कि शुक्र उत्तरमें हो
बहुधा युद्धमें जयी होगा " उदक्स्थो दक्षिणास्थो वा भार्गवः प्रायशो जयी " ॥ २ ॥
मिलनेको युद्ध समागम और अस्तमन कहते हैं. सूर्यसिद्धान्तग्रहयुत्यधिकार. मंगलादि
मंगलादि पंच ग्रहोंके मिलनेको युद्ध, चंद्रमाके साथ योगको समागम और सूर्यके साथ योग
कहते हैं ॥

त्तरदिक्स्थाः क्रतुदीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति ॥ १५ ॥ गुरुणा
धे जिते म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः। त्रैगर्तपार्वतीयाः पीडच-
ते कम्पते च मही ॥१६॥ रविजेन बुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जस-
नगर्भिण्यः। भृगुणा जितेऽग्निकोपः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः
१७ ॥ जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया मद्राः। शाल्वा
त्सा वङ्गा गावः सस्यानि नश्यन्ति ॥ १८ ॥ भौमेन हते जीवे
ध्यो देशो नरेश्वरा गावः सौरेण चार्जुनायनवसातियौधेयशिबि-
प्राः ॥ १९ ॥ शशितनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यश-
भृताःउपयान्ति मध्यदेशश्च संक्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥ २० ॥
क्रे बृहस्पतिहते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति। ब्रह्मक्षत्रविरोधः
लिलं च न वासवस्त्यजति ॥ २१ ॥ कोशलकलिङ्गवङ्गा वत्सा
त्स्याश्च मध्यदेशयुताः। महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः शूर-
नाश्च ॥ २२ ॥ कुजविजिते भृगुतनये बलमुख्यवधो नरेन्द्रसं-
मा:। सौम्येन पार्वतीयाः क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च ॥ २३ ॥

वृक्ष, नदी, तपस्वी, अश्मक, नरेन्द्र और उत्तरादिशाके यज्ञमें दीक्षित हुए
ताप पाते हैं ॥ १५ ॥ गुरु करके बुध जीत लिया जाय तो म्लेच्छ, शूद्र, चोर
र्थयुक्त पौरजन, त्रैगर्त्त और पहाडी आदमियोंको पीडा होती है, पृथ्वी कंपाय-
न होती है ॥ १६ ॥ शनिके द्वारा बुध ध्वंस हो तो मल्लाह, योधा, जलज, धनी
गर्भिणियें और शुक्रसे बुध जीता जाय तो अग्निकोप होकर धान्य, मेघ व यायि-
ग विध्वंस होते हैं ॥ १७ ॥ शुक्रसे बृहस्पतिजी आहत हों तो कुलूत, गांधार,
कय, मद्र, शाल्व, वत्स, वंगगण और गोसमूह व धान्य नाशको प्राप्त होता है
१८ ॥ मंगलसे गुरु हत हो तो मध्यदेश, राजालोग और गाय, बैल शनि करके
हो तो आर्जुनायन, वसाति, यौधेय, शिवि और विप्रगण और बुध करके
स्पति जीता जाय तो म्लेच्छ, सत्य और शस्त्रसे आजीविका करनेवाले और
यदेश ये सब क्षयको प्राप्त होते हैं। परन्तु ग्रहभक्तके मतसे फलको निरूपण
ना चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥ बृहस्पतिसे शुक्र हत हो तो श्रेष्ठ यायी विनाशको
हो, ब्राह्मण और मंत्रियोंसे विरोध हो और इन्द्र जल नहीं वर्षाता ॥ २१ ॥
शल, कलिंग, वंग, वत्स, मत्स्य, और मध्यदेशके वासी, शूरसेनगण और
सकगण महापीडाको भोग करते हैं ॥ २२ ॥ मंगलसे शुक्र जीत लिया जाय
सेनापतियोंका वध और राजाओंका युद्ध होता है। बुधसे शुक्र जीत लिया जाय
सब पहाडी देशोंमें कष्ट होता है, दुग्धकी हानि और अल्प वृष्टि होती है

रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । ज
जाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥ २४ ॥ अ
सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा । क्षितिजेन टंकण
न्ध्रौड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ॥ २५ ॥ सौम्येन पराभूते मन्देऽ
वणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिष
शकाश्च ॥ २६ ॥ अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवाग
शसितासितानाम् । फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद्यथा त
घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धः सप्तदशोऽध्यायः ॥१

अथाष्टादशोऽध्यायः ।

चन्द्रग्रहसमागमः ।

भानां यथासम्भवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशांकः प्र
क्षिणं तच्छुभकृन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशांकः ॥१॥ चन्द्र

॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र विजित हो जाय तो गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, क्षत्रिय लोग
जलज पीडित होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहभक्तका फल है ॥ २
शुक्रसे शनि ग्रह निहत हो तो महंगी, सर्प, पक्षी और मानियोंको पीडा होती
मंगलसे शनि निहत हो तो टंकण, अन्ध्र, ओड्र, काशी और बाह्लीक देशवाले
पीडा होती है ॥ २५ ॥ बुधसे शनि पराजित हो तो अंगदेश, वणिक् विहंग,
और सर्पगण संतापित होते हैं और बृहस्पतिके द्वारा हत होनेपर स्त्रियें, महिष
शकजातिके पुरुष सन्तापित होते हैं ॥ २६ ॥ मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और
इन ग्रहोंकि परस्पर हननका यह विशेष फल कहा गया और स्थलोंमें अर्थात् स
रण नक्षत्रादिके साथ जो ग्रहादिका युद्ध होगा वह भक्ति नामक पूर्व अध्य
उसका जो फल कहा है उसके अनुसार कहना चाहिये परन्तु ग्रह अनेक स्थ
हत होकर अपने २ नियत पदार्थोंका नाश करते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
स्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १

यदि चन्द्रमा नक्षत्रोंके या ग्रहोंके यथासम्भव उत्तरमें गमन करे तो उस च
'प्रदक्षिण' कहते हैं यह मनुष्योंका शुभकारी है, परन्तु उसका दक्षिणमें
करना मनुष्योंको शुभदायी नहीं है ॥ १ ॥ जो चन्द्रमा मण्डल ग्रहके उत्तरमें

मुदक्पार्वतीयबलशालिनां जयः। क्षत्रियाःप्रमुदिताः सयायिनो
धान्यमुदिता वसुन्धरा ॥ २ ॥ उत्तरतः स्वसुतस्य शशांकः
जयाय सुभिक्षकरश्च। सस्यचयं कुरुते जनहार्दिं कोशचयं च
धिपतीनाम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतेरुत्तरगे शशांके पौरद्विजक्षत्रियप-
तानाम्। धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्ष मुदिताः
श्च ॥ ४ ॥ भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगज-
नवृद्धिदः।यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा
॥ ५ ॥ रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत् पुरभूभृतां जयः।
बाह्लिकसिन्धुपह्लवानामुद्राजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥ येषा-
गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च। तद्द्रव्यपौरेतर-
देशान् पुष्णाति याम्ये न निहन्ति तानि ॥ ७ ॥ शशिनि
मुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्।
शशिसमवायाः कीर्तिताभग्रहाणां न खलु भवति युद्धं साक-
दोग्रहर्क्षैः ॥ ८ ॥

श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहि० शशिग्रहसमागमोऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

लवान् पहाडियोंकी जय होती है, पापी गणोंके साथ क्षत्री लोग हर्षित होते
र पृथ्वी बहुतसे धान्यसे युक्त होकर प्रसन्न हो जाती है ॥ २ ॥ चन्द्रमा
उत्तरमें जाय तो पौर जयहेतु, सुभिक्षकारी, धान्यवर्द्धक, मनुष्योंको आनन्द-
और राजाओंका कोशसंचारी होता है ॥ ३ ॥ बृहस्पतिके उत्तरमें चन्द्रमा
तो पौर, क्षत्रिय, ब्राह्मण, पंडित और मध्यदेशके धर्मकी वृद्धि होती है,
र होता है, प्रजा संतुष्ट होती है ॥ ४ ॥ यदि शुक्रके उत्तरमें चन्द्रमा गमन
ो कोश, गज (हाथी) और घोडोंकी वृद्धि हो, यायी और धनुषधारी
की विजय हो और उत्तम धान्य सम्पत्ति प्राप्त हो ॥५॥ जो चन्द्रमा शनिके
में गमन करे तो पौर राजाओंकी जय और शक, बाह्लीक, सिन्धु, पह्लव और
लोग आनन्दित होते हैं ॥ ६ ॥ जो शीतल किरणवाला चन्द्रमा नक्षत्रोंके
में गमन करे तो निरुपद्रव होकर निजद्रव्य पौर वा ग्रहभक्ति मत हो देशवा-
को पोषण करे, परन्तु दक्षिणमें गमन करके उनको हनन करता है। ग्रहोंके
में चन्द्रमाके होनेका फल कहा गया, दक्षिण और होनेसे इसका विपरीत फल
है। ग्रह वा नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमाका मिलन कहा गया। चन्द्रमाका युद्ध
ा नक्षत्रोंके साथ कभी नहीं होता ॥ ७ ॥ ८ ॥

। श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
स्तव्य. पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः ।

ग्रहवर्षफलम्,

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि दैवाद्विभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि । स्यन्दन्तिनैव च प्रचुरं स्रवन्त्यो रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ॥ १ ॥ तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले नाम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः । नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभः सीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ॥ २ ॥ हस्त्यश्वपत्तिमद्बलैरुपेता बाणासनासिमुसलातिशयाश्चरन्ति । घ्नन्तो युधि नृपानुचरैश्च देशान् संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे । व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशैर्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविपयोदैः । गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भिरुत्कण्ठकेन गुरुध्वनितेन चाशाः ॥ ४ ॥ तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यफुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि । गावः प्रभूतपयसो नयनरामा रामा रतैरविरतं रमयंति रामान् ॥५॥ गोधूमशालियवध

यदि सूर्य वर्षका स्वामी, मासका स्वामी, दिनका स्वामी हो तो सब जगह पर धान्य थोडा हो, वनमें जगह २ वृक्षोंमें कीडे लग जायँ, नदियोंमें बहुतसा न रहे, मारे पीडाके औषधियोंमें अत्यन्त बल न रहे, शीतकालमें भी सूर्य धूप करे, पर्वतके समान मेघगण अधिक जल नहीं बर्षावें, आकाशमें चन्द्रमा तारोंकी दीप्ति जाती रहे, गाय और तपस्वी कुलको शोक हो, हाथी, घोडे, तिकरूप सहनीय बलयुक्त राजा लोग बहुतसे बाण, धनु, असि और मुसल अपने अनुचरोंको साथ ले युद्ध करके समस्त देशोंको ध्वंस करते हुए घूमें । ॥ २ ॥ ३ ॥ जो चन्द्रमा वर्षका मालिक हो तो चलायमान पर्वतके समान सर्प अंजन, भ्रमर और महिषीकी नाईं काली द्युतिवाले मेघवृन्द आकाशको करते हैं, उत्कण्ठासूचक भारी शब्द करके समस्त दिशाओंको पूर्ण करे अमल जलसे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं, सरोवरोंमें, कमल कुमुद और उत्पल जाते हैं, उपवन (बाग) प्रफुल्ल वृक्षयुक्त और भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान हैं, गाय दूध बहुतसा देती हैं, नेत्रोंको आनन्द देनेवाली स्त्रियां आशक्तिसे पुरुषोंका रमण कराती हैं, ईख, शाली, जौ, धान्य श्रेष्ठ और युक्त समूह युक्त चैत्य अर्थात् छोटे २ देवमंदिरोंसे अंकित और यज्ञ व होमके पवित्र

रेक्षुवाटा भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या। चित्यंकिता क्रतु-
र्घोषविघुष्टनादा संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ॥ ६ ॥ वातो-
द्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दि-
क्षुः। हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति निस्वीकृता विपशवो भुवि
र्त्यसंघाः ॥ ७ ॥ अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि मुञ्चन्ति
क्वचिदपः प्रचुरं पयोदाः। सीम्नि प्रजा तमपि शोषमुपैति सस्यं
निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ॥ ८ ॥ भूपा न सम्यगभिपालन-
सक्तचित्ताः पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः। एवंविधैरुपद्रुता
भवति प्रजेयं संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ॥ ९ ॥ मायेन्द्र-
जालकुहकाकरनागराणां गान्धर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः।
पिप्रीषयाः नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्प-
रेभ्यः ॥ १० ॥ वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च सम्यक्
चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः। अध्यक्षरं स्वभिनिविष्टधियोऽत्र
केचिदान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः ॥११॥ हास्यज्ञदूतकवि-

रक्षायमान होकर पृथ्वी राजाओंसे पाली जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ मंगल
वर्षका स्वामी हो तो वायुसे उठी हुई अतिप्रचंड अग्नि ग्राम, वन और नगरोंको
जलानेकी इच्छा करती है, पृथ्वीके मनुष्य चोरोंसे मार डाले जाकर सहायहीन
और पशुहीन होकर हाहाकार करते हुए विचरण करते हैं; मेघकुल शून्यमें कम
ऊंचा और संहत मूर्ति होकर भी कहीं बहुतसा जल नहीं वर्षाते, पका हुआ धान्य
जगभग सूखही जाता है और किसी प्रकारसे निवटकर भी अविनयके हेतुसे दूसरे
आदमी उसको हरण कर लेते हैं, मंगलके संवत्सरमें राजालोग भलीभांतिसे
प्रजाको नहीं पालते, पित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अधिकता होती है, सर्पोंका कोप
होता है, इस प्रकार प्रजाके लोग बिना नाजके दीन हीन और मृतकवत् हो जाते
हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ बुध वर्षका स्वामी हो तो माया, इन्द्रजाल और भानमती
करनेवाले मनुष्य और गंधर्व. लेख्य, गणित व अस्त्र जाननेवालोंकी वृद्धि होती है,
राजालोग प्रीतिकी कामनासे अद्भुतदर्शन और तुष्टिकर द्रव्य, परस्पर एक दूसरेको
दान करनेकी इच्छा करते हैं, जगत्में वार्ता और त्रयी शास्त्र अविकल और सत्य
रहता है, मनुके समान दंडनीति भली भांतिसे विराजमान रहती है, कोई शास्त्र-
ज्ञानमें अपनी बुद्धिको लगाता है, कोई २ आन्वीक्षिकी शास्त्रसे परम पदके पानेकी
चेष्टा करता है, बुधग्रह अपने वर्षमें अथवा मासमें इस प्रकारसे पृथिवीको हास्यज्ञ

बालनपुंसकानां युक्तिज्ञसेतुजलपर्वनवासिनां च । हार्दं क
मृगलाञ्छनजः स्वकेऽब्दे मासेऽथ वा प्रचुरतां भुवि चौषधीः
॥१२॥ ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मन
भिन्दन् । विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वर
भाजाम् ॥ १३ ॥ क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनं
गोकुलाढ्या।क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्धिजना तदा विभ
॥ १४ ॥ विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदैर्वृतमुर्वी पयसाभितर्पयाद्भि
सुरराजगुरोः शुभेऽत्र वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमार्द्धियुक्ता ॥ १
शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्झितपयःपरिपूर्ण
श्रीमत्सरोरुहततताम्बुतडागकीर्णा योषेव भात्यभिनवाभरणोज
लाङ्गी ॥ १६ ॥ क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारिपक्षमुद्घुष्टनैकज
शब्दविराविताशम् । संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां गां पाल
न्त्यवनिपा नगराकराढ्याम् ॥ १७ ॥ पेपियते मधु म
सह कामिनीभिर्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् । बोभु

दूत कवि, बालक नपुंसक, युक्ति जाननेवाले, सेतु, जल और पर्वतवासि
तृप्ति करता है और पृथ्वीपर औषधियां बहुतायतसे होती हैं ॥ २० ॥ १
॥ १२ ॥ बृहस्पति वर्षका स्वामी हो तो यज्ञमें उच्चारण की हुई विपुल आव
गामी वेदध्वनि, यज्ञध्वंस करनेवालोंके मनको विदीर्ण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके
यज्ञांश भागियोंके हृदयको आनन्द कराकर भ्रमण करती हैं, उत्तम सस्यवती
अनेक हस्ती, घोड, चतुरंग सेना, महाधन, गोकुल और धनयुक्त पृथ्वी राजा
पाली जाकर और वर्धित होकर मानो स्वर्गवासियोंके समान स्पर्द्धा करनेवा
साथ विराजमान होती है, आसमानी पानीसे तृप्तिकारक विविध रंगके ब
पृथ्वीको ढक लेते हैं, इन देवतानाथके गुरु बृहस्पतिजीके शुभवर्षमें इस प्रक
पृथ्वी बहुतसे धान्यवाली और ऋद्धियुक्त होती है ॥ १३ ॥ १४ १५ ॥
वर्षका स्वामी हो तो पर्वताकार बादलोंकरके छोडे हुए जलसे परिपूर्ण हुए
सुन्दर कमलोंसे जिनका जल ढका हुआ है ऐसे तडागोंसे आकीर्ण होकर नये
गहनोंसे सजी हुई उज्ज्वल अंगवाली नारीके समान शोभा पाता है, और शा
ईख पैदा करती है, शत्रुओंको क्षय करनेवाले और पोषण करते हुए जयश
दिशाओंको शब्दायमान करते हुए राजा लोग शिष्ट जनोंको संतोष और दुष्ट
नाश करके नगर व खानिके सहित ऋद्धिशाली पृथ्वीका पालन करते हैं, व
ऋतुमें मनुष्यगण कामिनियोंके साथ बारंबार मधुपान करके वेणुवीणाके साथ
बार श्रवणसुख कर गान किया करते हैं और अतिथि सुहृद व भाई बन्धु

थिसुहृत्स्वजनैः सहान्नमब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः
: ॥ उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्त-
कृतानि । रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि
या च ॥ १९ ॥ वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्षमारुग्णनैकवि-
त्र धरातलं द्यौः । नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा तोयाशा
विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः ॥२०॥ जातानि कुत्रचिदतोय-
विनाशभृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि । सस्यानि
नभिवर्षति वृत्रशत्रौ वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ॥ २१ ॥
पटुमयखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा न सकलफलदाता पुष्टिदोऽ
पथा यः । यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः शुभफलमपि
प्राप्यमन्योऽन्यतायाम् ॥२२॥

श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहवर्षफलमेकोनविंशोऽध्यायः।१९।

न्नभोजन किया करते हैं, शुक्रके वर्षमें इस प्रकारसे कामदेवकी जय हुआ
है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ जब शनि वर्षका स्वामी होता है तब खोटे
चोर और बहुतसे संग्रामोंके होनेसे समस्त राज्य आकुल होते हैं, बहुतोंका
न जाता रहता हैं, बन्धुओंका वियोग होनेसे मनुष्यगण बहुतही रोते हैं.
मारे और रोगोंके मारे बहुतही व्याकुल होते हैं, आकाशमें जैसेही बादल
वैसेही पवन उनको उड़ा देता है, पृथ्वीपर एक पत्ताभी तो आरोग्य नहीं
आकाशमें सूर्य चन्द्रमाकी किरणें धूरिसे बँध जाती हैं, जलाशय जलहीन
दियां कृशांग हो जाती हैं, कहीं पर नाज जलके अभावसे नष्ट हो जाता है,
ल भरी हुई भूमिमें फल जाता है । इस प्रकार जिस वर्षमें शनि स्वामी होता
इन्द्र मन्द मन्द धान्यका देनेवाला जल वर्षाता है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥
क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी या किसीसे विजित हो जाता है, वह समस्त
दाता और पुष्टिकारी नहीं हो सकता । जो अशुभ ग्रह वर्षका स्वामी या
स्वामी होता है तो उसके भारसे उत्पन्न हुए फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा
शुभ फलभी प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः ।

ग्रहशृङ्गाटकः ।

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति तारग्रहा रविं सर्वे । भय मयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातंकैः ॥ १ ॥ चक्रधनुःशृङ्गाट दण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः । क्षुदवृष्टिकरा लोके समराय च मान न्द्राणाम् ॥२॥ यस्मिन् खांशे दृश्या ग्रहमाला दिनकरे दिनान गते । तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रापद्रवश्च महान् ॥३॥ यस्मिन कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः । अविभेदनाः । परस्परमम मयूखाः शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥ ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमा सन्निपाताख्याः । कोशश्चेत्येषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ एकर्क्षे चत्वारः सह पौरेर्यायिनोऽथवा पञ्च । संवर्तो नाम भवेच्छि खिराहुयुतःस सम्मोहः ॥ ६ ॥ पौरःपौरसमेतो यायी सह यायि समाजाख्यः । यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा क ॥ ७ ॥ दितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्य

जिस दिशामें ताराग्रह रविमें प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, उसी दि वासियोंको अस्त्रकोप, क्षुधा और आतंकसे भय होता है ॥ १ ॥ ग्रहसंस्थान चक्र, धनु, शृगाटक (चतुष्पथ), दण्डपुर, प्रास या वज्र के समान दिखाई दे लोगोंको क्षुधा, अवृष्टि और राजाओंका समर हुआ करता है ॥ २ ॥ सूर्य भ न् के दिनके अन्तमें चले जाने पर जिस देश के आकाश के अंशमें ग्रहमाला लाई दे वहांपर दूसरे राजाका अधिकार होता है और परचक्रका महान् उ होता है ॥ ३ ॥ जिस नक्षत्रमें ग्रह आया करते हैं, उस नक्षत्रके वशीभूत जन विनाश करते हैं, परस्पर वर्जित विभेदन और निर्मल किरण होनेपर वहांके मनुष्य मंगल होता है ॥ ४ ॥ ग्रहोंका संवर्त्त, समागम, सम्मोह, समाज सन्निपात कोशनामक रोग हुआ करता है इन सबके सफल लक्षण कहे जाते हैं ॥ एक नक्षत्रमें पौर ग्रहोंके साथ चार या पांच यायि ग्रहोंके मिलनेसे संवर्त्त जाता है, राहुकेतुका सम्मोह कहलाता है ॥ ६ ॥ पौरके साथ पौरव यायिगणोंके साथ यायीका संयोग होनेपर समाज नाम होता शनि और बृहस्पतिके संगमें यदि कोई और ग्रह आ जाय तो वह कहा जायगा ॥ ७ ॥ यदि पश्चिममें एक और पूर्वमें दूसरा उदय हो तो उ

कृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥ समौ वर्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशो भयदौ प्रजानाम् । समाजसुसमः प्रदिष्टो वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहशृङ्गाटकं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः ।

गर्भलक्षणम् ।

न्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् । यस्मादतः यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥ तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि शानि तानि दृष्ट्वेदम् । क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवात्स्यादिरनि ॥ २ ॥ दैवविदवहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे । तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥ ३ ॥ ातः परमन्यच्छास्त्रं ज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव । प्रध्वंसिन्यपि

त कहते हैं, समागममें अर्थात् चंद्रमाके मिलनमें ग्रहगण विकाररहित, विपुल और धन्य होते हैं ॥ ८ ॥ संवर्त्त और समागमका फल समता है, और कोशमें प्रजाओंको भय होता है; समाज संज्ञामें उत्तम समता और तमें वैर और कोप होता है ॥ ९ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद्‌ -पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

ही जगत्‌का प्राण है और अन्न वर्षाकालके वशमें है इस कारण इस करके सहित वर्षाकालकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥ मैंने गर्ग, पराशर, काश्यप ात्स्यादि मुनियोंके द्वारा रचे हुए और बांधे हुए वर्षाके समस्त लक्षण देख; गर्भलक्षण बनाया है ॥ २ ॥ जो दैवका जाननेवाला पुरुष रात दिन णमें मन लगाय सावधान चित्तसे रहते हैं, उनके वाक्य मुनियोंके समान ोतमें कभी मिथ्या नहीं होते ॥ ३ ॥ इससे कौनसा श्रेष्ठ शास्त्र है, कि किस स्त्रको जानकर विध्वंसी कलिकालमेंभी लोग त्रिकालदर्शी होते हैं ॥ ४ ॥

काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति ॥ ४ ॥ केचिद्वदन्ति कार्त्ति
शुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युः । न तु तन्मतं बहूनां गर्गादि
मतं वक्ष्ये ॥ ५ ॥ मार्गशिरशुक्लपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढा
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ॥ ६ ॥ यन्नक्षत्रमुप
गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात् । पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रस
मायाति॥७॥सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसम्भवा रात्रौ
प्रभवाश्चाहनि सन्ध्याजाताश्च सन्ध्यायाम्॥८॥ मृगशीर्षाद्या ग
मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च । पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छ्र
वणस्य सितम् ॥ ९ ॥ माघसितोत्था गर्भाः श्रावणकृष्णे प्रसू
मायान्ति । माघस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेद्भाद्रपदशुक्लम् ॥ १
फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः । तस्यैव कृ
पक्षोद्भवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले ॥ ११॥ चैत्रसितपक्षजाताः कृष्
श्वयुजस्य वारिदा गर्भाः । चैत्रासितसम्भूताः कार्त्तिकशुक्लेऽभि
र्षन्ति ॥१२॥ पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाःप्राग्भवन्ति जीमूताः । शे

कोई २ कहते हैं कि कार्तिकमासके शुक्लपक्षको लांघकर गर्भके दिन होते
किन्तु यह बात सर्वसंमत नहीं है इसलिये गर्गादि बहुतसे ऋषियोंका मत प्र
करता हूं ॥ ५ ॥ अग्रहायण मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे जिस दिन च
पूर्वाषाढा नक्षत्रमें होता है उस दिनसेही सब गर्भोंका लक्षण जानना चाहिये
चंद्रमाके जिस नक्षत्रमें प्राप्त होनेसे मेघको गर्भ होता है, चंद्रमाके वशसे १९५ दि
वह गर्भ प्रसवके कालको प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ शुक्लपक्षका पैदा हुआ गर्भ कृष्ण
और कृष्णपक्षका पैदा हुआ गर्भ शुक्लपक्षमें, दिनका गर्भ रात्रिकालमें, रात्रिका
दिनके किसी भागमें और संध्याका गर्भ विपरित सन्ध्याकालमें प्रसव कालको
है, ॥८॥ मृगशीर्षादिमें पैदा हुए गर्भ और पौषशुक्लजात गर्भ मन्दफलयुक्त
पौषकृष्णपक्षके द्वारा श्रावणका शुक्लपक्ष बताना चाहिये ॥ ९ ॥ माघम
शुक्लपक्षका गर्भ श्रावणके कृष्णपक्षमें प्रसवकालको प्राप्त होता है, माघके कृ
पक्षद्वारा भाद्रमासका शुक्लपक्ष निश्चय होता है ॥ १० ॥ फाल्गुनके शुक्लपक्ष
गर्भ भाद्रमासके कृष्णपक्षमें प्रसव होने चाहिये, फाल्गुनके कृष्णपक्षजा
गर्भ हैं, वह आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रसूत होते हैं ॥ ११ ॥ चैत्रके
पक्षजात गर्भ आश्विनके कृष्णपक्षमें जल देते हैं; और चैत्रके शुक्लपक्ष स
गर्भ कार्तिकके शुक्लपक्षमें जल वर्षाते हैं ॥ १२ ॥ पूर्वदिशाके मेघ प

पि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ॥ १३ ॥ ह्लादि मृदुद्-
छवशक्रदिग्भवो मारुतो वियद्विमलम् । स्निग्धसितबहुलपरि-
परिवृतौ हिममयूखार्कौ ॥१४॥ पृथुबहुलस्निग्धघनं घनसूची-
रकलोहिताभ्रयुतम् । काकाण्डमेचकाभं वियद्विशुद्धेन्दुनक्षत्रम्
१५ ॥ सुरचापमन्द्रगर्जितविद्युत्प्रतिसूर्यकाः शुभा सन्ध्या ।
शिशिवशक्राशास्थाः शान्तरवाः पक्षिमृगसंघाः ॥ १६ ॥
पुलाः प्रदक्षिणचराः स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः । तरवश्च
रुपसृष्टांकुरा नरचतुष्पदा हृष्टाः ॥ १७ ॥ गर्भाणां पुष्टिकराः
षामेव योऽत्र तु विशेषः । स्वर्तुस्वभावजनितो गर्भविवृद्धौ तम-
धास्ये ॥ १८ ॥ पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरि-
ाः । नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपातः ॥१९॥ माघे
लो वायुस्तुषारकलुषद्युती रविशशांकौ । अतिशीतं सघनस्य च
नोरस्तोदयौ धन्यौ ॥ २० ॥ फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽ-

ते हैं और पश्चिमके मेघ पूर्वदिशामें उदित होते हैं, ऐसे ही शेष दिशाओंमें बादल और पवनका अदल बदल होता है ॥ १३ ॥ उत्तर, ईशानकोण और देशाकी वायुमें आकाश निर्मल, आनन्दकर, मृदु होता है । चंद्रमा और सूर्य ध, सफेद और बहुत करके घेरेदार होता है ॥ १४ ॥ स्थूल, बहुत चिकने सि युक्त अथवा काकके अण्डके समान और मोरके पंखोंके समान आकाशके पर नक्षत्र आर चंद्रमा विमल ज्योतिवालेही होते हैं ॥ १५ ॥ इन्द्रधनुष और भीर गर्जनयुक्त, सूर्याभिमुख, बिजलीका प्रकाश करनेवाले उत्तर, ईशान और देशामें स्थित मेघोंके होनेपर और पक्षी व मृगकुलके शान्त शब्द करनेपर ाकाल रमण ठीक होता है ॥ १६ ॥ जो प्रदक्षिणा करते हुए बहुतसे ग्रह उप-ीन और चिकनी किरणवाले हों, वृक्ष व्याधिके अंकुरोंसे हीन और नर व ाये हर्षित दृष्टि आवें तो गर्भोंकी पुष्टता होती है, परन्तु वह निज ऋतु और भाविक गर्भके विषयमें कहा है ॥ १७ ॥ १८ ॥ अग्रहायण और पौषमें मेघोंके पारागरंजित और मण्डलदार होनेसे आग्रहायण मासमें अति शीत और पौषमें ंत हिमपात होनेसे गर्भ पुष्ट नहीं होता ॥ १९ ॥ माघमें यदि प्रबल वायु, , सूर्यकी किरण तुषारके समान कलुषित और अत्यन्त शीतल हो तो मेघयुक्त का अस्त और उदय वांछनीय है ॥ २० ॥ जो फाल्गुनके महीनेमें पवन रूखी प्रचंड बहे, चिकने बादल इकठे हों, यदि वे सम्पूर्ण हों सूर्य अग्निके समान

असंप्लवाः स्निग्धः । परिवेषाश्चासकलाः कपिलस्ताम्रो रवि
शुभः ॥ २१ ॥ पवनघनवृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेष
घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताय वैशाखे ॥ २२ ॥ मुक्त
जतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः । जलचरसत्त्वाक
गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥ २३ ॥ तीव्रदिवाकरकिरणाभिताि
मन्दमारुता जलदाः । रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्र
काले ॥ २४ ॥ गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांसुपातदिग्दाहा
क्षितिकम्पस्वपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥ रुधिरा
ष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्षनं राहोः । इत्युत्पातैरेभिस्त्रिविधै
न्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥ स्वर्तुस्वभावजनितैःसामान्यैर्यैश्चलक्ष
वृद्धिः । गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥२७॥ भा
दाद्वयविश्वाम्बुदैवपैतामहेष्वथर्क्षेषु । सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो
तोयदो भवति ॥ २८ ॥ शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासं
शुभो गर्भः । पुष्णाति बहून्दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिवि
॥ २९ ॥ मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्त

पिंगल और ताम्रवर्ण हो तो शुभ होता है ॥ २१ ॥ यदि चैत्रमें सब गर्भ
मेघ, वृष्टियुक्त और परिवेषयुक्त हो तो शुभ है । जो वैशाखमें मेघ, वायु,
और शब्दायमान बिजलीसे युक्त हो तो गर्भसे हितसाधन होता है ॥ २२ ॥
या चांदीके समान वा तमाल, नील उत्पल और अंजनकी द्युतिके समान या
चर प्राणियोंके समान आकारवाले मेघ बहुतसा जल वर्षावे और सूर्यकी कि
गर्भ तपे और मंद २ पवनके चलनेसे बादल प्रसवकालमें मानो रुषित होकर
धारा वर्षावे ॥ २३ ॥ २४ ॥ उलका, वज्र, धूरिका गिरना, दिग्दाह, भू
गन्धर्वनगर, कीलक, केतु, ग्रहयुद्ध, निर्घात. रुधिरादिके वर्षनेसे विकारपन,
इन्द्रधनुष, राहुदर्शन इन सब उत्पातोंसे व और तीन उत्पातोंसे गर्भका ना
जाता है ॥ २५ ॥ ऋतुके स्वभावसे साधारण लक्षणद्वारा जो गर्भ बढ
उनके विपरीत लक्षणोंसे उनका बदल हो जाता है ॥ २७ ॥ सब ऋत
हीं पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वाषाढा उत्तराषाढा और रोहिणीनक्षत्रमें
हुए गर्भ बहुतसा जल देते हैं ॥ २८ ॥ शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा,
और मघासंयुक्त गर्भ शुभदायी और बहुत दिनतक पोषण करते हैं तीन उत्प
हने हुए हो तो हनन करते हैं ॥ २९ ॥ जब चन्द्रमा इन पांच
त्रोंमेंसे किसी एक नक्षत्रमें रहता है तब अग्रहायणसे वैशाखतक
मासमें क्रमानुसार ॥ ८ ॥ ॥ ६ ॥ १६ ॥ २० ॥ २४ ॥ और ३ दिनतक

विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ॥ ३० ॥ क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः । शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥ ३१ ॥ गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्त कृता । द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ॥ ३२ ॥ गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः । आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥ ३३ ॥ काठिन्यं याति यथा चिरकालधृत पयः पयस्विन्याः । कालातीतं तद्वत्सलिलं काठिन्यमुपयाति ॥ ३४ ॥ पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं तदर्धार्धमेकहान्यातः । वर्षति पञ्च समन्तात्तद्रूपेणैव यो गर्भः ॥ ३५ ॥ द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन । षड्‌ विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥ ३६ ॥ पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः । विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गर्भलक्षणमेकविंशोऽध्यायः ॥ २१

कर वर्षा हुआ करती है ॥ ३० ॥ क्रूरग्रहसंयुक्त होनेपर समस्त गर्भ ओले, अशनि और मछली वर्षाया करते हैं और चंद्रमा या सूर्य शुभग्रहयुक्त या शुभग्रहसे देखे जानेपर बहुत ही वर्षा करते हैं ॥ ३१ ॥ यदि गर्भसमयमें अकारण ही बहुतसी वर्षा होवे तो गर्भका अभाव होता है, द्रोणके अष्टांशसेभी अधिक वर्षण करनेपर गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥ जो पुष्टगर्भ ग्रहोपघातादिसे न वर्षे तो प्रसवकाल आत्मीय गर्भके समय ओलेका मिला हुआ जल वर्षाते हैं ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार गायोंका बहुत कालतक धरा हुआ दूध कडेपनको प्राप्त हो जाता है, वैसे ही गर्भ अनेक दिन बीतनेपर कठिनताको प्राप्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ जो गर्भ पांच प्रकारके निमित्तसे पुष्ट होता है वह गर्भ शतयोजनतक फैलकर वर्षा करता है, उसे एक २ निमित्तके अभावमें, शत योजनके अर्द्धार्द्धकी हानि होकर वर्षा होती है ॥ ३५ अर्थात् चतुर्निमित्तक गर्भ ५० योजन (२०० कोश), त्रिनिमित्तक २५ योजन (१०० कोश), द्विनिमित्तक १२॥ योजन (५० कोश) और एक निमित्तकगर्भ ५ योजन (२० कोश) तक जल वर्षाता है. पांचनिमित्तकगर्भ एक द्रोणजल वर्षाता है, पवननिमित्तक तीन (३) आढक और विद्युन्निमित्तक ६ आढक जल वर्षाता है ॥ ३६ ॥ जो गर्भ पवन, जल, बिजली, गर्जित और मेघ रूप पंचनिमि-

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

गर्भधारणम् ।

ज्येष्ठसिते ऽष्टम्याश्चत्वारो वायुधारणादिवसाः । मृदुशु
शस्ताः स्निग्धघनस्तगितगगनाश्च ॥ १ ॥ तत्रैव स्वात्य
भचतुष्टये क्रमान्मासाः । श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धार
स्युः॥२॥ यदिताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न
तस्करभयदाःप्रोक्ताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ॥ ३ ॥ स
सपृषतः सपांसुत्करमारुताः । सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना
शुभधारणाः ॥ ४ ॥ यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाःशुभा
पस्थिताः । तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः
सपांसुवर्षाः सापश्च शुभाबालक्रीया अपि । पक्षिणां
वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ॥ ६ ॥ रविचन्द्रपरि
स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः । वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वस

युक्त है सो बहुतसा जल देता है, यदि गर्भकालमें बहुतसा जल वर्षे तो प्रस
बांधकर जलकण वर्षा करते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
वास्तव्य--पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकविंशोऽध्य

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिको चार दिनतक वायुसे गर्भ
होनेके दिन हैं । सो मृदु शुभ वायुयुक्त होनेपर या चिकने मेघसे ढके हुए
होनेपर श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ उसमें स्वाती आदि चार नक्षत्रोंके वर्षा हो तो क्रम
णादि महीनेमें गर्भधारण परिस्रुत जानना अर्थात् वर्षा न होगी ॥ २ ॥
चारों दिन एकसे हों तो शुभ होता है, जो इससे विपरीत हो तो मंगलद
होते, बरन् तस्करोंका भय होता है । वासिष्ठजीके कहे हुए श्लोक इस
कहे हैं यथा ॥ ३ ॥ दामिनी; जलकण और धूरि मिला हुआ पवन चले,
वा सूर्यका मेघोंसे ढके रहना इस प्रकारका जो गर्भ धारण है सो श्रेष्ठ
जिस समय श्रेष्ठ बिजली शुभ दिशाओंमें दमके तब बुद्धिमान् पुरुषव
चाहिये कि धान्यकी वृद्धि होगी ॥ ५॥ जो बालक खेलते २ जल या धू
या पक्षियोंका मधुर २ शब्द हो, पक्षी धूल या जलादिमें किलोलें करें तो शु
॥६॥ चन्द्रमा सूर्यके मण्डल स्निग्ध हैं और अत्यन्त दूषित नहीं हो तो इ

वृद्धये ॥ ७ ॥ मेघाः स्निग्धा संहताश्च प्रदक्षिणगतिक्रिया
स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्यार्थसाधिका ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मेघगर्भधारणं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

प्रवर्षणम् ।

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन । शुभमशु
वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः ॥ १ ॥ हस्तविशालं
कमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः । पञ्चाशत्पलमाढकमनेन
ज्जलं पतितम् ॥ २ ॥ येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दव
ग्रेषु । वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥ ३ ॥
द्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये । गर्गवसिष्ठप

वर्षा ही सब धान्योंको बढानेवाली है ॥ ७ ॥ मेघ चिकने, गाढे और
गतिसे परिक्रमा करते हुए चलते हों तो सर्व धान्य और अर्थकी साधन
बडी भारी वर्षा होती है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
द्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥

ज्येष्ठकी पूर्णिमाके भलीभांति वर्ष जानेपर यदि पूर्वाषाढादि नक्षत्रमें व
जलका परिमाण और शुभाशुभ बुद्धिमानोंको कहना उचित है ॥ १ ॥
लम्बे और एक हाथ चौडे कुण्डको धारण करके जलका प्रमाण कहना
यह पानीसे भर जाय तो उस वर्षे हुए जलको तोलकर वर्षाका परिणा
उक्त पात्रका परिणाम पचास पल है । यह जलसे भर जाय तो वर्षे हुए
परिणाम एक आढक होता है ॥ २ ॥ जिसके गिरनेसे पृथ्वीपर चिह्न
यातृणोंकी नोकोंपर पानीकी बूंदें ठहर जायँ, उस वर्षासे ही जलका प्रथम
कहना चाहिये ॥ ३ ॥ कोई २ कहते हैं कि जहांतक देखा जाय वहां त
होती है; कोई २ ऊपर कहे हुए लक्षणसे दश योजन मण्डलमें वर्षाका हो
हैं, परन्तु गर्ग, वसिष्ठ और पराशरके मतसे बारह योजन अर्थात् ४८ कोस

त्तमेतद्द्वादशान्न परम् ॥ ४ ॥ येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्त
वर्षति प्रायः । यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥
हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः । शतभिष
स्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥६॥ श्रवणे मघानुराधाभ
मूलेषु दश चतुर्युक्ताः फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिद्र
॥ ७ ॥ ऐन्द्राग्नाख्ये वैश्वे विंशतिः सार्पभे च दशत्र्यधि
आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः ॥ ८ ॥ पञ्चदशाजे
कीर्तिता च वाजिभे दश द्वौ च । रौद्रेऽष्टादश कथिता
निरुपद्रवेष्वेषु ॥९॥ रविरविसुतकेतुपीडिते भे क्षितितनयत्रिवि
भुताहते च । भवति हि न शिवं न चापि वृष्टिःशुभसहिते नि
द्रवे शिवं च ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणं नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

वर्षा नहीं होती ॥ ४ ॥ जिन नक्षत्रोंमें वर्षा होती है, बहुधा प्रसवकाके समय सब नक्षत्रोंमें वर्षा हुआ करती है, परन्तु यदि पूर्वाषाढासे लेकर मूलनक्षत्रतक नक्षत्रमें वर्षा न हो तो सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि होती है ॥५॥ जो उपद्रवहीन चंद्रः पूर्वाषाढा, मृगशिर, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हो तो सोलह द्रोण,शतभिषा, और स्वातीमें ४ द्रोण, कृत्तिकामें १० दश, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी मूलमें चतुर्दश, फाल्गुनीमें पच्चीस, पुनर्वसुमें २० बीस, विशाखा और उत्त नक्षत्रमें बीस, आश्लेषा नक्षत्रमें तेरह, उत्तराभद्रपदा उत्तरफाल्गुनी और णीमें पच्चीस, पूर्वाभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी नक्षत्रमें बारह और आर्द्रामें रह द्रोण जल वर्षाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥९॥ यदि सब नक्षत्र सूर्य, शनि वा पीडित हों और मंगल करके त्रिविध अद्भुत द्वारा आहित हों तो वर्षा नहीं परन्तु सुखके साथ निरुपद्रव होनेपर शुभ होता है ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबाद वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

रोहिणीयोगः ।

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासक्तिमधुकरानुरुते । बहु
गकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ॥ १ ॥ सुरनिलयशिखरि
खरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह । गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च या
ष्यसङ्घेभ्यः ॥ २ ॥ तानवलोक्य यथावत् प्राजापत्येन्दुस
योगार्थान् । स्वल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ॥ ३ ॥ प्र
शमाषाढनमिस्रपक्षे क्षपाकरेणोपगतं समीक्ष्य । वक्तव्यमिष्टं
तोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद्ग्रहचिन्तकेन ॥ ४ ॥ योगो यथान
एव वाच्यः स धिष्ण्ययोगः करणे मयोक्तः । चन्द्रप्रमाणद्यु
र्णमार्गैरुत्पातपातैश्च फलं निगद्यम् ॥ ५ ॥ पुरादुदग्यत्पुरते
वा स्थलं त्र्यहोषितस्तत्र हुताशतत्परः । ग्रहान् सनक्षत्रगणान् स
लिखेत् सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ॥ ६ ॥ सरत्नतोयौषधि
श्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितैः सुपूजितैः। अकालमूलैः कलशैरल

सुमेरुपर्वतके शिखरपर लगे हुए वृक्षोंके फूलोंपर आसक्त हुए भ्रमरोंके गुं
अनेक प्रकारके पक्षियोंकी चहकारसे और देवाङ्गनाओंके मृदु गंभीर गीतोंके
परिपूर्ण, पर्वतकी चोटीपर स्थित रमणीक उपवनोंमें बृहस्पतिजीने नारदजी
रोहिणीयोग कहा था और गर्ग, पराशर, काश्यप ऋषियोंने और मयअसुरने
शिष्योंसे जो कहा था, उसको देखकर इस छोटेसे ग्रंथमें उस ही रोहिणी और
माके योगका अर्थ यथार्थ २ वर्णन करनेको हम उत्साही हुए हैं ॥१॥२॥३ ॥ अ
मासके कृष्णपक्षमें रोहिणीका चंद्रमाके साथ मेल देखकर जगत्का इष्ट या अ
शास्त्रके उपदेशानुसार दैवज्ञकह सकता है॥४॥ मेल होनेसे पहले ही उनका योग
प्रकारसे होना चाहिये, करण (पंचसिद्धान्तिका) में वह धिष्ण्ययोग हमारे द्वारा
जा चुका है, चंद्रमाका प्रमाण, द्युति, वर्ण, मार्ग और उत्पातके द्वारा ही फल क
चाहिये॥५॥ ग्रहसंस्थानके जाननेवाला नगरकी पूर्व, उत्तरदिशामें नक्षत्रसहित ग्र
लिखकर धूप, फूल और बलिसे पूजा करे ॥६॥ चारों ओरमें वृक्ष और कौंपलसे
हुआ रत्नसहित जल और औषधियुक्त, तिसकी तलीका भी न हो ऐसे पूज

कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसेद्द्विजः ॥७॥ आलभ्य मन्त्रेण महा
बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे। प्लाव्यानि चामीकरदर्भतोयैः
मरुद्वारुण सौम्यमन्त्रैः ॥ ८ ॥ श्लक्ष्णां पताकामसितां विद
द्दण्डप्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां च। आदौ कृते दिग्ग्रहणेनभस
ग्राह्यस्तया योगगते शशाङ्के ॥ ९ ॥ तत्रार्धमासाः प्रहरैर्विकः
वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः। सव्येन गच्छञ्छुभदः सदैव याः
न्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥ १० ॥ वृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि स
सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे। येषां तु योंऽशोंऽकुरितस्त
स्तेषां विवृद्धिं समुपैति नान्यः ॥ ११ ॥ शान्तपक्षिमृगरा
दिशो निर्मलं वियदनिन्दितोऽनिलः। शस्यते शशिनि रोहि
युते मेघमारुतफलानि वक्ष्यतः ॥ १२ ॥ क्वचिदसित
सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगैरिवाम्बुवाहैः। वलित

कलशके द्वारा कुश बिछे हुए यज्ञस्थानमें ब्राह्मणको बैठना चाहिये॥ ७॥महाव्रत
मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर सब प्रकारके बीज घडेमें डालकर सुवर्ण और दर्भयुक्त
उसको प्लावित करे और मारुत, वरुण और सौम्य मंत्रसे होम करे ॥ ८ ॥ चन
योग होनेपर दंडके समान बारह हाथ ऊंचे बांसपर४ हाथ लम्बी काले रंगकी
धारण करे। पहले दिन निर्णय करके उस पताकासे कितने क्षणतक कौन दिशा
चलती है सो जाने॥९॥एक प्रहरतक एक दिशामें हवा चले तो१२ दिनतक वर्ष
फिर इस प्रकार वायु बहनके कालसे दिवसके अंशको निर्णय करे (श्रावणसे व
तक इन चार मासके आठ पक्षका एक२पक्ष एक२अंशसे निर्देश करना चाहिये
दिशामें वायु गमन करे तो शीघ्र ही शुभदायी होती है और जो एक नियर
अर्थात् एक दिशामें ही गमन करे तो वह वायु प्रतिष्ठावान् और बलवान्
॥ १० ॥ इस योगके चले जानेपर घडेमें धरे हुए बीजोंमेंसे जो जो अंकु
उनका वही २ अंश ही वृद्धिको प्राप्त होगा, और अंश नहीं ॥११॥रोहिणी
चन्द्रमाका मेल होनेपर यदि सब दिशाएँ शान्त हो जायँ, पक्षीगण या मृगग
मनोहर शब्द करें, आकाश निर्मल और वायु आनंदित हो तो भूमिकी श्रेष्ठ
होती है। इसके उपरान्त मेघ मारुतके फल क्रमानुसार कहे जाते हैं ॥१२॥
शमें कहीं कालेसे मिला हुआ श्वेत, कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण वर्ण, कहीं
जठर, पृष्ठ मात्र दृश्य अर्थात् कुण्डली मारकर सर्पके मारनेसे जैसे

गात्रदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥ १३ ॥ विकसित-
लोदरावदातैररुणाकरद्युतिरञ्जितोपकण्ठैः । छुरितमिव वियद्ध
चित्रैर्मधुकरकुंकुमकिंशुकावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्ध-
वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् । द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं
मेव दावपरितमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाञ्जनशैलशिलानिचय-
रूपधरैः स्थगितं गगनम् । हिममौक्तिकशंखशशांककरद्युतिहा-
रम्बुधरैरथवा ॥१६॥ तडिद्धेमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः स्रवद्वारिदानैः
त्प्रांतहस्तैः । विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलै-
चाब्दनागैः ॥ १७ ॥ सन्ध्यानुरक्तेनभसिस्थितानामिन्दीवर-
मरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवेष्टितस्य कान्तिं हरेश्चोर-
यदा वा ॥ १८ ॥ सशिखिचातकदर्दुरनिःस्वनैर्यदिविधिश्रित-
पटुस्वनाः । खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः सलिलदाः सलि-
मुचः क्षितौ ॥ १९ ॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैरुयहमवरुद्धं
मथवाहः । यदि वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुर-
भूः ॥ २० ॥ रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैरुष्ट्रध्वांक्षप्रेतशाखामृ-

और पेट दीख पडती हों, चमकती हुई बिजलीके समान जीभवाले और
क विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश घिर जाय, खिले हुए
के समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, कुंकुम, टेसूके
समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेके समान जो आकाश शोभायमान हो,
मेघोंसे रंगनेके समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे ढका हुआ
चमकती हुई बिजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी
भैसोंके द्वारा आकुल किया हुआ दावानलयुक्त वनके समान दिखलाई दे या
पहाडके काले पत्थरोंके समान मेघोंसे आकाश छा जाय, अथवा हिम,
शंख और चन्द्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशम-
ढक जाय, या बिजलीरूप हेमकक्षासम्पन्न वायुका रूप अग्रदन्तरूप जलरूप
आता प्रान्तरूप कर चलानेवाला, विचित्र इन्द्रका रूप ऊंची ध्वजासे शोभा-
और तमाल वा भ्रमरके समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलसे सब आकाश
ाय, जो सांझके रागसे रँगे हुए आकाशमें स्थित नीले पद्मके समान मेघवृंद
र पहरे हुए हरिकी कान्तिको हरण करे और मोर चातक व मेंढकोंके शब्दके
यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशव्यापी
पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षाते हैं ॥१३॥ १४ ॥१५ ॥१६॥ १७ ॥१८॥ १९ ॥
क्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिरे रहे तो सुभिक्ष हो,

गाभैःअन्येषां वा निंदितानांसरूपैर्मूकैश्चाब्दैर्नोशिवनापि वृ
विगतघने वा वियति विवस्वानामृदुमयूखः सलिलकृदेव
इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै
पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः। याम
क्षीयते नैर्ऋतेऽर्धं पश्चाज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥ २३ ॥ व
त्थैर्गतवृष्टिः क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः सौम्यकाष्ठासमुत्थैः श्रे
त्थाणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि ॥ २४ ॥
पातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः । नादा
सपतत्रिणां च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥ २५ ॥ नाम
रुदगादिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः। पूर्णैः स मासःस
दाता स्रुतैरवृष्टिःपरिकल्प्यमूनैः॥२६॥अन्यैश्च कुम्भैर्नृपन

मनुष्य प्रसन्न हों और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षे ॥ २० ॥ रूखे और
नसे जिनका देह फैल गया है, ऊंट, काग, प्रेत किंवा वानरोंके समान
निन्दित आकारवाले शब्दरहित मेघ जो उदय हों तो शुभ नहीं होत
होती है ॥ २१ ॥ अथवा आकाश मेघशून्य हो, यदि सूर्यकी किरणें
तो जल वर्षेगा और रात्रिकालमें आकाश निर्मल नक्षत्रोंके साथ कुमुद
समान प्रफुल्ल हों तो वृष्टि अच्छी होती है ॥ २२ ॥ पूर्वदिशाके उत्पन्न
धान्य भलीभांति पक जाता है, आग्नेय कोणके उठे हुए मेघोंसे अ
होता है, दक्षिण दिशाके उत्पन्न मेघोंसे धान्यका क्षय होता है, नैर्ऋतसे
करके महँगी होती है और पश्चिमके उठे हुए मेघोंसे सुन्दर वर्षा होती है
वायुकोणके उठे हुए मेघोंसे वायु और कहीं भी वर्षा होती है, उत्तर दि
हुए मेघोंसे पुष्ट वर्षा होती है और ईशानकोणके उठे हुए मेघोंसे श्रेष्ठ
है, चारों ओरकी वायुमें भी ऐसा ही फल होता है ॥२४॥ जो रोहिणी
उल्का गिरे, बिजली, वज्रपात, दिग्दाह, निर्घात, पृथ्वीका कंपायमान
मृग व पक्षियोंका कोलाहल शब्द हो तो बादलके लक्षणके समान
किया जाता है ॥ २५ ॥ रोहिणीयोगके दिन वृष्टि गिरनेके समय उत्तर
दिशाओंमें श्रवण, भादों, क्वार, कातिक इन चारोंके नामके चार घडे
क्रमसे स्थापित करे, जो जो घडा जलसे पूर्ण होगा वही श्रावणादि मा
नुसार जलदाता होगा जिस घडेका जल टपक जाय तो अवृष्टि होग
वा जल कम वर्षेगा ॥ २६ ॥ इसी भांतिसे और घडे राजाओंके

ापरैस्तथैव। भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि
ूपम् ॥ २७ ॥ दूरगो निकटगोऽथवा शशी दक्षिणे
यथातथा स्थितः। रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा
जगतो विनिर्दिशेत् ॥ २८ ॥ स्पृशन्नुदग्याति
राशांकस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गाः। असंस्पृशन्योगमु
ः करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ॥ २९ ॥ रोहिणी-
ध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः। क्कापियान्ति
ाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ॥ ३० ॥ उदितं
ीतदीधिति प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी। शुभमेव तदा
ाः प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः ॥ ३१ ॥ अनुगच्छति
शशी कामी वनितामिव प्रियाम्। मकरध्वजबाणखेदिताः
ां वशगास्तदा नराः ॥३२॥ आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा यदि
ोपसर्गो महान् नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्ती-

ामके प्रदक्षिणाके भावसे स्थापन करे, फिर दूसरे दिन उनको देखे. जो
, टपक जाय, जिसका जल कम हो जाय या जो पूर्ण रहे, उसका वैसा ही
र्णय करना चाहिये ॥ २७ ॥ चन्द्रमा दूर स्थित होकर रहे या निकट
ह; पर दक्षिणामार्गमें यदि रोहिणीयुक्त हो तो सर्व प्रकारसे संसारको
होता है ॥ २८ ॥ जब चन्द्रमा रोहिणीके उत्तर दिशावाले नक्षत्रको स्पर्श
आ हो तो बहुतसे उपद्रवोंके साथ अच्छी वर्षा होती है और विना योग
ये उत्तर दिशाके नक्षत्रमें जाय तो भी बहुतसी वर्षा होती है और मंगल
॥ २९ जो चन्द्रमा रोहिणीके शकटमें (आकाशमें शकटके आकारके
हैं) विराजमान हो तो आदमी शरणरहित, क्षुधातुर, बालयुक्त और
के तपाई हुई हांडीके जलको पीते हुए समय बिताते हैं ॥ ३० ॥ पहले
उदय हो और जिसके पीछे ही रोहिणी उदय हो तो कामदेवसे
हुई स्त्रियां कामी पुरुषके वश हो जाती हैं ॥ ३१ ॥ प्यारी
पीछे कामी जनके समान यदि चन्द्रमा रोहिणीके पीछे चले तो मनु-
पञ्चबाणके बाणोंसे पीडित होकर औरतोंके वशमें हो जाते हैं ॥ ३२ ॥
कोणमें चन्द्रमा विराजमान हो तो बडे २ उपद्रव होते हैं, नैर्ऋतकोणमें हो
त धान्य ईतिसे ग्रसित होकर नष्ट हो जाते हैं, पश्चिम और वायुकोणमें
हो तो खेतीका मध्यम संग्रह होता है, ईशानकोणमें हो तो अनेक गुण होते

तिभिः।प्राजेशानि लदिक्स्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्चयं स्थाणुदिशं गुणाःपुबहवः सस्यार्घवृद्ध्यादयः ।३३। ताड च योगतारकामावृणोति वपुषा यदापि वा। ताडने भय दारुणं छादने नृपवधोऽङ्गनाकृतः ॥ ३४ ॥ गोप्रवेशसम वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरःभूरि वारि शबले तु मध्य सितेऽम्बु परिकल्पनापरैः।३५। दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्च नभसि तोयदावृते। रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भू सस्यसंयुता ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

अथ पंचविंशोऽध्यायः ।

स्वातीयोगः।

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावषाढासहिते च आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्यं योऽस्मिन् विशे प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥ स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि स पयान्ति वृद्धिम् । भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्म

हैं और धान्यका मूल्य भी बढ जाता है इत्यादि ॥ ३३ ॥ जो चन्द्रमा यं ताडना करे या शरीरसे ढक ले तो क्रमानुसार दारुण भय और स्त्रीके द्वार वध होता है ॥ ३४ ॥ संध्याके समय जब गायें वनसे चरकर आवें (समय चन्द्रमाके प्रवेशका समय हो) और तिस समय उनके आगे बैल पशु आवे तो बहुतसी वर्षा होती है। शुक्ल पशुके आगे आनेसे मध्यम व है। जो अनेक रंगवाला पशु आगे हो तो वर्षाऊ बादल भी मेघ नहीं बर यदि मेघसे ढके हुए आकाशमें चन्द्रमा रोहिणीसे युक्त न दिखलाई पडे त बडा भारी भय आता है और पृथ्वीपर बहुतसा जल और धान्य होते हैं

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमु रादास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्याय

जैसे चन्द्रमाके साथ रोहिणीयोगका फल है स्वाती और आषाढ नक्ष चन्द्रमाके योगका फल भी वैसा ही है। आषाढमासके शुक्लपक्षमें इसका विचार करके इसमें जो विशेषता है सो कही जाती है ॥ १ ॥ स्वाती नक्षत्र पहले अंशमें वर्षा हो तो सर्व प्रकारके धान्य बढते हैं, दूसरे भागमें तिल,

स्त न शारदानि ॥ २ ॥ वृष्टेऽह्नि भागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्ध-
ये तु सकीटसर्पा। वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे निश्छिद्रवृष्टिर्ध्रु-
प्रवृष्टे ॥ ३ ॥ सममुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपां-
: । तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति ॥ ४ ॥ सप्तम्यां
तेर्योगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे वायुर्वा चण्डवेगः
जलधरो वापि गर्जत्यजस्रम्। विद्युन्मालाकुलं वा यदि
ते नभो नष्टचन्द्रार्कतारं विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्व-
रुपेता ॥ ५ ॥ तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा।
तेर्योगं विजानीयादाषाढे च विशेषतः ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्वातीयोगो नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

ौर तिसरे भागमें ग्रीष्मकालका धान्य होता है। परन्तु शारद ऋतुकी खेती
ोती ॥ २ ॥ दिनके पहले भागमें वृष्टि होनेसे सुवृष्टि होती है, दूसरे भागमें
सर्प और कीडे होते हैं, मध्य और अपरभागमें वृष्टि हो तो सुवृष्टि और
न वर्षनेसे उस वर्षमें बहुतसी वृष्टि होती है ॥ ३ ॥ चित्राके उत्तर ओरका
अपांवत्स कहा जाता है, उसके निकट हुए चन्द्रमाके साथ स्वातीका योग
मंगल होता है ॥ ४ ॥ यदि माघ मासकी कृष्णपक्षीय सप्तमी तिथिमें स्वाति-
हिम गिरे या प्रचंड वेगसे पवन चले, जलयुक्त बादल गर्जता रहे और
श यदि बिजलीकी रेखाओंसे युक्त हो, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंकी ज्योति
वर्षकालमें जनपद आनंदित और सब धान्योंसे युक्त होते हैं ॥ ५ ॥ फाल्गुन
। वैशाखको कृष्णपक्षमें भी ऐसा ही स्वातीका योग होता है, परन्तु आषाढ
स्वातियोगको विशेषरूपसे जानना ॥ ६ ॥

ीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

---

१ "अपांवत्सस्तु चित्रायामुत्तरेऽशैस्तु पञ्चभिः" चित्रा नक्षत्रके पांच अंश उत्तरविक्षेपमें तीन अंश स्फुट होनेके बाद विक्षेपमें जो एक बडा तारा दिखाई देता है सोई "अपांवत्स" है॥
तिनक्षत्रग्रहयुत्यधिकार ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

आषाढीयोगः ।

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकतामुपै
जम् । तद्वृद्धिर्भवति न जायते यदूनं मन्त्रोऽस्मिन् भवति तु
मन्त्रणाय ॥१॥ स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती
यिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ॥२॥ येन सत्येन च
ग्रहा ज्योतिर्गणस्तथा । उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजं
॥ ३ ॥ यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत् सत्यं ब्रह्मवादिषु । यत् सत
लोकेषु तत् सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मणो दुहितासि त्व
त्येति प्रकीर्तिता । कश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुल
क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवस्त्रमस्याः । सूत्र
च दशांगुलानि षडेव कक्षोभयशिक्यमध्ये ॥ ६ ॥ यास्ये
काञ्चनं सन्निवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैवम् । तोयैः

आषाढी पूनमके दिन जब उत्तराषाढामें चन्द्रमा चला जाय तब सभी
बीज (बीहन) बराबर तोलकर रख दे और दूसरे दिन जिस धान्यका बी
यतको प्राप्त हो अर्थात् बढ जाय उसकी वृद्धि होती है, जो धान्य
वह भलीभांति नहीं होता, इसमें तुला अभिमंत्रका मंत्र पढना चाहिये
सत्यात्मिका देवी सरस्वतीकी इस मंत्रसे इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये,
सरस्वती ! आप सत्यसम्बन्धमें सत्यव्रतवाली हैं, इसलिये जो सत्य
आप दिखा दें ॥ २ ॥ इस संसारमें जिस सत्यके बलसे चन्द्रमा, सूर्य
ज्योतिर्गण पूर्वमें उदित होते और पश्चिममें अस्त हो जाते हैं, सर्व वेदमें
है, ब्रह्मवादियोंमें जो सत्य है और त्रिलोकमें जो सत्य है वह सत्य, यहां
दिखा दें, क्योंकि आप ब्रह्माकी पुत्री आदित्या नामसे विख्यात हैं, अ
काश्यपी और तुला नामसे विख्यात हैं ॥ ३–५ ॥ शनकी बनी हुई चार
बँधी हुई छः अंगुलकी विस्तारवाली तखडी है, उसकी चारों डोरियोंका
२ अंगुल होना चाहिये इस प्रकार दोनों पल्लोंके बीचमें छः अंगुलके प
कक्षा रखनी चाहिये (जिस सूत्रको पकडकर उठाते हैं, उसे कक्षा कहते हैं
दायीं ओरके पल्लेमें कांचन रखना चाहिये, ऊपरके पल्लेमें शेष द्रव्य और

दभिः सारिसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥ ७ ॥
गा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपाः सिक्थकेन द्विजाद्याः ।
शा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥ ८ ॥
प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खादिरेण कार्या । विद्धः
स्येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः॥ ९ ॥
य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम् ।
लाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥ १० ॥
विषाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः । ग्राह्यं
गद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति ॥ ११॥ त्रयोऽपि
ः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन । विपर्यये

, कूप, सरोवर या नदीके जलसे यह कार्य करनेसे क्रमानुसार हीन, मध्यम त्तम वर्षा होती है, अर्थात् कुएका जल यदि पहले दिनकी अपेक्षा दूसरे दिन धिक भारी हो जाय तो वर्षा न होगी, यदि वृष्टिका जल अधिक भारी हो मध्यम वर्षा होगी और नदी या कुण्डका जल अधिकभारी हो जाय तो जल वर्षता है, सब जल बढै तो अतिवृष्टि और सब जल घटै तो अनावृष्टि ॥ ७ ॥ दन्तसे नागगण, लोमसे गो, अश्वादि पशुगण, स्वर्णसे राजालोग अर्थात् एक ग्रास प्रमाण मोमसे द्विजातिलोगोंकी वृद्धिहानि जानी जाती है, दयदेश, वर्ष, मास और दिङ्मंडल तथा शेष द्रव्य (धान्यादि) आत्मरूप से जिस वस्तुकी हानि वृद्धि जाननी हो उसीको मापकर फल कहना. सुवर्ण का भा तुलादण्ड ही अच्छा है, चांदीका मध्यम है, यह न हो तो खैरकी की दण्डी बनानी चाहिये । अथवा जिस शरसे पुरुष विद्ध हो जाते हैं वैसे कारकी और वितस्तिके प्रमाणकी दण्डी बनानी चाहिये ॥ ८ ॥९॥ तराजूके ल करनेमें हीनकी उच्चता और अधिककी वृद्धि (नीचता) होती है, यह शरहस्य कहा गया । मनुष्य रोहिणीयोगमेंभी इसको धारण करते हैं ॥१०॥ रोहिणी और आषाढनक्षत्रमें पापग्रहयोग अच्छा नहीं है, परन्तु जिस वर्ष स हो अर्थात् आषाढमास हो, उस वर्षमें पहले कहे हुए दोनों योग ग्रहण यँगे ॥ ११ ॥ यदि तीनों (रोहिणी, स्वाती और आषाढी) योगोंका फल हो तो निसन्देह होकर शुभ या अशुभ फल जैसा हो सो कहना और

स चन्द्रमासमें रविसंक्रमण नहीं होता उसको अधिमास या मलमास कहते हैं । " असंक्रान्तिमा सः स्फुटंस्यात् ।" (सिद्धान्तशिरोमणिः)

यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम् ॥ १२ ॥
त्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा । वहुजलपवना पुष्टा
च पूर्वादिभिः पवन ॥ १३ ॥ वृत्तायामाषाढ्यां कृष्णच
मजैकपादर्क्षे । यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चे
॥ १४ ॥ आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यद्यै ानाऽनिलीभवेत् ।
गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥ १५ ॥

इति श्रीवराहमिहि० बृहत्सं ितायामाषाढीयोगो नाम षड्विंशोऽध्याय

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

वातचक्रम्

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णितश्चन्द्राकांशुसटा
कलितो वायुर्यदाप्याशतःनैकान्तस्थितनीलमेघपटलां शा

अदलबदल होनेपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो फल है, वही अधिक व
है ॥ १२ ॥ यदि पूर्वाई हवा चले तो धान्य भलीभांति निवट जाता है, अ
की हवा चलनेपर अग्निका कोप होता है, ऐसेही यदि दक्षिणादिकी प्रदक्षि
मन्दवृष्टि, मध्यवृष्टि, उत्तमवृष्टि, झंझावृष्टि, पुष्टवृष्टि और शुभवृष्टि होती है
आषाढी पूर्णिमाके पीछे कृष्णचतुर्थीमें और पूर्वाषाढानक्षत्रमें जो बादल
तो वर्षा अच्छी है, नहीं तो नहीं ॥ १४ ॥ आषाढी पौर्णिमासीको स
होनेके समय यदि ईशानकोणकी पवन चले तब पृथ्वीपर धान्य उत्तम हो

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रीवरचितायां भाषाटीकायां षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६

आषाढीयोगके दिन जब सूर्य अस्त हो तब आकाशसे पूर्वाई पवन
के तरंग शिखरको स्पर्श करता हुआ घूमता और चन्द्रमा सूर्यके किरण
अभिघातसे बन्ध जाता है तब समस्त पृथ्वी एकान्तमें स्थित नीले

---

१ अत्र "केचिद्वातचक्रं" (अध्यायं) पठन्ति तद्वराहमिहिरकृतं न भवति । यतो ' नि
वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा । बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥' इत्यनेन पौनर
पुस्तकादर्शेषु दृश्यतेऽतोऽस्माभिः सरसत्वाद् व्याख्यायते । इति टीकाकृता भट्टोत्पलेनोक्तम् ।

तां वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला विद्यात्तदा मेदिनीम् १ यदाग्नेयो
युर्मलयशिखरास्फालनपटुःप्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे
व्रसति। तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरालिङ्गिततला स्वगात्रो-
ष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम्॥२॥तालीपत्रलतावितानत-
भिः शाखामृगान्नर्तयन् योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनन् सुपरुषोवायु-
दा दक्षिणः। सर्वोद्योगसमुन्नताश्च गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः
नाशा इव मन्दवारिकणिकान्मुञ्चन्ति मेघास्तदा॥ ३ ॥ सूक्ष्मै-
लवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे भानोरस्तमये प्लव-
विरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः। क्षुत्तृष्णामृतमानुषास्थिशकलप्रस्तार-
रच्छदा मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते॥ ४ ॥
दा रेणूत्पातैः प्रविकटसटाटोपचपलः प्रवातः पश्चार्धे दिनकरक-
पातसमये। तदा सस्योपेता प्रवरनृपराबद्धसमरा धरा स्थाने
स्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा॥ ५ ॥ आषाढीपर्वकाले यदि किर-

होंसे और वृद्धिको प्राप्त हुए शरदृतुके फल धान्यसे युक्त होकर समस्त
न्ती धान्यसे शोभायमान हो जाता है॥ १ ॥ भगवान् सूर्यके अस्ताचलपर
न करनेपर जब मलयपर्वतके शिखरपर अखंडित आग्नेय वायु वहन करे तो
वी नित्य उद्दीप्त होती है, और प्रकाशकी शिखासे तलमें आलिंगन पानेपर
ने गात्रके तापसे उत्पन्न हुए श्वासोंसे मानो भस्मको वमन करती है॥ २ ॥
इस योगमें निठुर दाक्षिणी पवन शब्द करते २ तालवृक्ष लताओंके समूहसहित
रोंको नचाता रहता है, तब सर्व प्रकारके उद्योग करके ऊँचे गजके समान
र और अंकुशसे ताडित हाथीके समान मेघ कृपण मनुष्यके समान थोडी वर्षा
ते हैं॥ ३ ॥ सूर्यके अस्तगमनकालमें जब नैर्ऋतवायु छोटी इलायची और
ग वृक्षोंको समुद्रके किनारेमें घुमाता है तब भूख प्यासके मारे मृत मनुष्योंके
यों के टुकडे और तिनकोंके गुच्छेके भारसे ढकी हुई पृथ्वीको उन्मत्त प्रेतकी वधूके
न उग्र व चपल दिखाया करता है॥ ४ ॥ संध्याके समय जब कि धूरि वर्षने
के केशरके आक्षेपद्वारा चञ्चल और गर्वके हेतुसे चञ्चल हो पश्चिममें बहता है,
पृथ्वी धान्ययुक्त और प्रधान राजाओंकी समरभूमि होकर स्थान २ में चरबी
व रुधिरसे बराबर ढकी रहती है॥ ५ ॥ आषाढी पूर्णिमाको जब सूर्यके
त होनेका समय आवे, उस समय यदि मेघका शत्रु वायवीय पवन गरुडकी
ढका चलनेवाला होकर गमन करता है; तब पृथ्वी जलकी धारासे प्रफुल्ल, मेंढ

णपतेरस्तकालोपपत्तौ वायव्यो वृद्धवेगः प्लवति घनरिपुः
दानुकारी । जानीयाद्वारिधाराप्रमुदितमुदितां मुक्तमण्डू
सस्योद्भासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ॥ ६
अस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ वात्यामोदिकदम्
सुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः । विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकल
स्तदा तोयदा उन्मत्ता इव दृष्टचन्द्रकिरणा गां पूरयन्त्य
॥ ७ ॥ ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत्
गागुरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः । आपूर्णोदकयौव
मती सम्पन्नसस्याकुला धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो
वर्णास्तदा ॥ ८ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्संहितायांवातचक्रं नाम सप्तविंशोऽध्याय

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ।

सद्योवृष्टिलक्षणम् ।

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्यचन्द्रोलग्नंयातोभ
वा केन्द्रगः शुक्लपक्षेसौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्

कोंके शब्दसे शब्दायमान और धान्यशोभाधारिणी होकर बहुत सुखके
भाग्य सेनाके समान दिखाई देती है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके अंतमें जब सूर्य
मेरु पर्वतकी तलीमें पहुँच जाय तो सुगन्धित उत्तर वायु कदम्बके फूल
सुगंधित होकर वहता है तब बादलोंमें बिजली घूमती है और वह
दीप्ति धारण करनेसे मत्त होकर उन्मत्तके समान चन्द्रमाकी किरणों
पृथ्वीको जलसे पूर्ण कर देता है ॥ ७ ॥ जो प्रचण्डध्वनि पुन्नाग, अगर
जातके फूलोंसे सुगंधित ईशान वायु शीतल और देवताओंसे सेवनीय हो
चलरूप यौवनद्वारा परिपूर्ण और पके हुए नाजसे युक्त हो जाती है औ
वश करनेवाले धर्मात्मा राजालोग धर्मकी रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुर
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांसप्तविंशोऽध्याय

वर्षाका प्रश्न पूछे जानेपर उस कालमें चन्द्रमा यदि जलराशिके अर्थात्
मीन, कन्या और मकरकी अन्त्यार्द्ध राशिको आश्रय करके यदि लग्नमें

काले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ॥ १ ॥ आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्यो-न्मुखो वा । प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन पृच्छा-काले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २ ॥ उदयशिखरिसं-स्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्याद्रुतकनकनिकाशःस्निग्धवैडूर्यकान्तिः । तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान् प्रतपति यदि वोच्चैः खं गतोऽतीवतीक्ष्णम् ॥ ३ ॥ विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः । पवनविगमः पोप्लू-यन्ते झषाः स्थलगामिनो रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ ४ ॥ मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः । रथ्यायां शिशुनिचिताश्च सेतुबन्धाः सम्प्राप्तं जल-मचिरान्निवेदयन्ति ॥५॥ गिरयोऽञ्जनपुञ्जसन्निभा यदि वा बाष्प-निरुद्धकन्दराः । कृकवाकुविलोचनोपमाःपरिवेषाःशशिनश्च वृष्टिदाः

हो और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, पापग्रहसे देखा जाय तो थोडा जल वर्षता है और बहुत कालतक वर्षा नहीं होती । शुक्रभी चन्द्रमाके समान फलदाता है ॥१॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नका करनेवाला गीला द्रव्य वा जल अथवा जलपर जिसका नाम हो ऐसे किसी द्रव्यको छुए अथवा जलके निकटवाले या जल-सम्बन्धी किसी कार्यमें रत हो या प्रश्न करनेके कालमें जल या जलवाचक शब्द हो तो प्रश्नकर्तासे निःसंदेह कहा जा सकता है कि बहुत शीघ्र वर्षा होगी ॥ २ ॥ वर्षाकालमें जिस दिन उदयपर्वतपर स्थापित सूर्य भगवान् अपनी कांतिसे दृष्टिको संताप पहुँचानेवाले हों, पिघले हुए सुवर्णके समान या वैडूर्यमणिके समान चिकनी कांतिवाले हों उस दिन जल वर्षेगा और यदि आकाशके ऊँचे स्थानमें जाकर तीक्ष्ण किरणोंसे तपें तो उस समय जल वर्षेगा ॥ ३ ॥ जलका स्वाद बिगड जाना गायकी आंखके समान आकाशका रंग हो जाना, दिशाओंका विमल होना, सांभरका पसीज जाना, कागके अंडोंके रंगके समान रंगवाले मेघोंका उदय होना, पवनके बहनेसे थँभ जाना, मछलियोंका जलमेंसे वारंवार उछलना और मेंड-कोंका वारंवार शब्द करना, जलकी अवाईका चिह्न है ॥ ४ ॥ बिल्लियोंका अपने पंजोंसे पृथ्वीको कुरेदना, लोहेपर मैल जम जानेसे उसमें कच्चे मांसके समान गंध आना, बालकोंका मार्गमें रेते आदिका पुल बांधना शीघ्र ही जल वर्षनेके लक्षणको प्रकाश करता है ॥ ५ ॥ समस्त पर्वत अंजनराशिके समान रंगवाले हो जायँ, उनकी कंदराओंमें बाफ भर जाय और चन्द्रमाका परिवेष कुक्कुटके नेत्रके समान

॥ ६ ॥ विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवा
द्रुमाधिरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतं च ॥
तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः ।
च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण ॥
नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वंति श्रवणान् खुरानपि । प
पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥ ९ ॥ यदा कि
गृहपटलेषु कुक्कुरा भवन्ति वा यदि विततं दिवोन्मुखाः ।
तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा तदा क्षमा भवति समातित्रा
॥ १० ॥ शुककपोतविलोचनसन्निभो मधुनिभश्च यदा हिमदीधि
प्रतिशशी च यदा दिवि राजते पतति वारि तदा न चिराद्दिवः
स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि दण्डवत स्थि
पवनःपुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदागमो भवेत्॥१२॥ बं
गगनतलोन्मुखाःप्रवालाःस्नायन्ते यदि चलपांसुभिर्विहङ्गाःसे
यदि च सरीसृपास्तृणाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः॥

हो जाय तो वर्षा होगी ॥ ६ ॥ बिना किसी उपद्रवके चींटियोंका अपने अ
एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानपर ले जाना, सर्पोंका मैथुन करना और
ऊपर चढना और गायोंका उछलना कूदना वर्षाका लानेवाला है ॥ ७ ॥ जो
ऊपर गिरगट चढकर आकाशकी ओर देखे, गायेंभी ऊपरको दृष्टि उठाकर,
देखे तो शीघ्रही जल गिरेगा ॥ ८ ॥ जो पशु गृहसे बाहर जानेकी इच्छा
और कान व खुरोंको कंपायमान करते रहें और कुत्तेभी इन पशुओंकी न
कार्य करें तो बतलाना चाहिये कि जल वर्षेगा ॥ ९ ॥ जब घरोंकी छत्तोंप
बैठे या बराबर ऊपरको देखें और जब दिनके समय ईशानकोणमें बिजली
तब अन्यत्तही जलके वर्षनेसे पृथ्वी एकाकार हो जायगी ॥ १० ॥ जिस
तोते या कबूतरके नेत्रके समान चन्द्रमाका लाल रंग हो या शहतके
रंग हो और जब आकाशमें दूसरा चन्द्रमा दिखलाई जावे, तब आकाशसे
जल वर्षेगा ॥ ११ ॥ जो रात्रिमें बिजलीकी कडकडाहटका शब
दिनके समय रुधिरके समान या दंडके समान बिजलीकी रेखा दीख पडे
पवन आगेसे शीतल हो तो उस समय जलका आगम होता है ॥ १२ ॥ ल
नये पत्ते जो आकाशकी ओर उठ जायँ, पक्षिगण जल या धूरीसे स्नान क
सर्पादि कीडे मकोडे तृणोंकी नोक पर चढकर बैठें तो शीघ्र वर्षा होगी ॥

शुकचाषचातकसमानवर्णा यदा जपाकुसुमपंकजद्युतिमुषश्च
ाघनाः। जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः प्रभूतपुटस-
न तु चिरेण यच्छन्त्यपः॥ १४॥ पर्यन्तेषु सुधाशशांक-
ा मध्येऽञ्जनालित्विषः स्निग्धानैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपा-
छेदिनः। माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राक्चाम्बुपाशोद्भवा
वारिमुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि॥१५॥ शक्र-
रिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषाः। उद्गमास्तसमये
भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु॥ १६॥ यदि तित्तिरपत्र-
गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः। उदयास्तमये सवि-
नेशं विसृजन्ति घना न चिरेण जलम्॥ १७॥ यद्यमोघकि-
सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः। भूसमं च रसते यदा-
स्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम्॥ १८॥ प्रावृषि शीतकरो भृगु-
त् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः। सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तम-
जलागमनाय॥ १९॥ प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे

ध्याकालके आकाशमें मेघगण मोर, शुक, नीलकण्ठ या चातकपक्षीके
रंगवाले या जपाकुसुम वा कमलकी कांतिको हरण करें और जलकी तरंग
नाका, कछुआ, शूकर या मछलीके समान आकारवाले हों तो शीघ्र जल
॥ १४॥ चारों किनारोंपर सीधा और चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण हो, मध्यम
और भ्रमरके समान दीप्तिवाला हो, चिकने जलकी बूंदें टपकता हो, परि-
समान एकके ऊपर एक चढे रहें, पूर्वदिशासे आकर पश्चिम दिशाको जायँ
ल शीघ्रही पृथ्वीमें बहुतसा जल वर्षते हैं॥ १५॥ सूर्यके उदय या अस्तके
जो इन्द्रधनुष्य, परिघ, दूसरा सूर्य, दण्डाकार, इन्द्रधनुष्य, या बिजलीके समान
प्रकाशित हो तो शीघ्रही बहुतसा जल वर्षता है॥ १६॥ सूर्यके उदय
समय यदि आकाशका रंग तीतरके पंखोंके समान हो जाय और पक्षिगण
न्दित होकर कलरव करते हैं तो मेघ शीघ्रही बहुतसा जल वर्षाते हैं॥ १७॥
ज़ार किरणवाले सूर्यके अस्तकालमें अस्ताचलकी किरणोंके समान ऊंची
अमोघ किरणें विराजमान हैं और यदि मेघगण पृथ्वीके निकट शब्द करें तो
तोंको वर्षा होनेका बडा भारी लक्षण कहा जा सकता है॥ १८॥ जो वर्षा
चन्द्रमा शुभ ग्रहों करके देखता जाय तो शुक्रसे सप्तम राशिमें या शनिसे
पञ्चम वा सप्तम राशिमें हो तो यह जलागमका कारण है॥ १९॥ ग्रहोंके
स्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेपर और पक्षक्षयमें, अयनके

मण्डलसंक्रमे च । पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के चार्द्राम् ॥ २० ॥ समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयो तयोश्च सङ्गमे । यमारयोः पवनहुताशजं भयं न दृष्टयोरस्तं सद्ग्रहैः ॥ २१ ॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावल यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सद्योवृष्टिलक्ष नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

कुसुमलता.

फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् । स्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥१॥ शालेन कम रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च । पाण्डूकः क्षीरिकया न केन सूकरकः ॥ २ ॥ न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दु च षष्टिको भवति । अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यन जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कंगुनिष्पत्तिः । गो

अन्तमें और सूर्यके आर्द्रामें जानेपर बहुधा नियमानुसार वर्षा होती है बुध शुक्रके समागमसे, बुध बृहस्पतिके समागमसे, बालबृहस्पति और शु मसे जल वर्षता है। जो अच्छे ग्रहसे न देखा जाकर या न मिलकर श मंगलका संयोग हो तो अग्निका भय होता है ॥ २१ ॥ जब सूर्यका करनेवाले ग्रह सूर्यके पूर्वमें भी पश्चिममें रहे तो वे पृथ्वीको समुद्रके स देते हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्या

वनस्पतियोंके फल और फूलोंकी अधिकाई देखनेसे द्रव्योंकी सुलभता औ निष्पन्नता जानी जाती है ॥ १ ॥ शालके फूल और फलोंकी अधिकाई ह शाही, दूधीसे पाण्डूके, नीले अशोकसे शूकरकी वृद्धि होती है, वडकी वृ और तिन्दुककी वृद्धिसे षष्टिक धान्य होते हैं और पीपलकी वृद्धिसे सब वृद्धि होती है ॥२॥३॥ जामुनकी वृद्धिसे तिल और उर्द, शिरीषकी वृद्धि

मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन॥४॥अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपा-
न्वदेदशनैः। बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान्॥५॥
अतसीवेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः। तिलकेन शङ्ख-
मौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेनशणः॥६॥ करिणश्च हस्तिक-
र्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन। गावश्च पाटलाभिः कदलीभिर-
जाविकं भवति॥७॥ चम्पककुसुमैः कनकं विद्रूमसम्पच्च बन्धु-
जीवेन। कुरुवकवृद्ध्या वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्तैः॥८॥ विद्याच्च
सिन्दुवारेण मौक्तिकं कुंकुमं कुसुम्भेन। रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री
नीलोत्पलेनोक्तः॥९॥ श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पैः पद्मैर्विप्राः पूरोहिताः
कुमुदैः। सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः॥१०॥
आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम्। खदिरशमीभ्यां
दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः॥११॥ पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभि-
क्षमथ मारुतः कपित्थेन। निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति
कुटजेन॥१२॥ दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण।
श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति॥१३॥ यस्मि-

महुएसे गेहूं और सप्तपर्णसे जौकी वृद्धि जानना चाहिये॥४॥ अतिमुक्तक और कुन्द इन दोनों पुष्पवृक्षकी वृद्धिसे कपास, असनासे सरसों, बेरसे कुलथी और चिरबिलसे मूंगको जानना चाहिये॥५॥ वेतससे अलसी, पलाशसे कोदोंकी वृद्धि, तिलकसे शंख, मोती और चांदीकी वृद्धि और इंगुदीकी वृद्धिसे शनकी उत्पत्ति होती है॥६॥ हस्तिकर्णसे हाथियोंकी, अश्वकर्णसे घोडोंकी, पाटलाकी वृद्धिसे गायोंकी और कदलीसे बकरी और भेडोंकी वृद्धि होती है॥७॥ चम्पाके फूलसे सुवर्ण, दुपहरियाके फूलसे मूंगा, कुरबककी वृद्धिसे वज्र, नन्दिकावर्तसे वैदूर्य, सिन्धुवारकी वृद्धिसे रत्नोंकी वृद्धि, कुसुम्भसे केशर, लालकमलसे राजा और नील कमलसे मंत्री कहा जाता है॥८॥९॥ सुवर्णपुष्पसे वणिक, पद्मसे विप्र, कुमुदसे पुरोहित, सुगन्धद्रव्यसे सेनापति, आकके वृक्षसे सुवर्ण, आमसे कल्याण, भिलावेसे भय, पीलुसे आरोग्य, खैर और शमीसे दुर्भिक्ष, अर्जुनसे शुभकरी वृष्टि, नीम और नागकुसुमसे सुभिक्ष, कैथसे पवन, निचुलसे अवृष्टिका भय और कुटजसे व्याधिभयका ज्ञान होता है॥१०॥११॥१२॥ दूब और कुशके बढनेसे ईख, कचनारसे आग और श्यामालताकी वृद्धिसे व्यभिचारिणी स्त्रियें बढती हैं॥१३॥ जिस देशमें वृक्ष और गुल्म और लताओंके पत्ते चिकने और छेदसे रहित

न्देशे स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः संदृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च। त
वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृह० कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथ त्रिंशोऽध्यायः।

संध्यालक्षणम्।

अर्द्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्। तावत् स
कालश्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन् ॥ १ ॥ मृगशकुनपवनपरिवे
धिपरिघाभ्रवृक्षसुरचापैः। गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः स्नेह
॥ २ ॥ भैरवमुच्चैर्विरुवन् मृगोऽसकृद् ग्रामघातमाचष्टे। रवि
दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः ॥ ३ ॥ अपसव्ये संग्राम
सेनासमागमः शान्ते। मृगचक्रे पवने वा सन्ध्यायां मिश्रग
॥ ४ ॥ दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्या
दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ॥ ५ ॥

दिखाई दें उस देशमें शुभ वर्षा होगी और जिसमें वृक्षोंके पत्ते रूखे औ
दार हों वहां थोडा २ जल वर्षता है ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुर
दाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां—
मेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

प्रतिदिन सूर्यके अर्द्धास्त हो जानेके समयसे जबतक आकाशमें नक्ष
भांति दिखाई न दें तबतक संध्याकाल रहता है ऐसाही अर्द्धोदित सूर्य
तारादर्शनतक सन्ध्याकाल है ॥ १ ॥ मृग, शकुन, पवन परिवेष, परिधि
मेघ, वृक्ष, इन्द्रधनुष, गंधर्वनगर, सूर्यकिरण, दण्ड, धूरि, स्नेह और वर्ण (
लक्षणोंसे संध्याका फल कहा जाता है ॥ २ ॥ वारंवार ऊँचा भयंकर शब्द
हुआ मृग ग्रामके नष्ट होनेकी सूचना करता है। सेनाके दक्षिणभागमें
सूर्यके सोहीं मुख कर महान् शब्द करे तो सेनाका नाश होता है ॥ ३
दक्षि में शान्त होनेसे संग्राम और वाममें होनेसे सेनाका समागम होता है
कालमें मृग चक्रवा पवनके मिश्र या मिली हुई दिशाओंमें चलनेसे वर्षा ह
पूर्वमें प्रातःसन्ध्याके समय सूर्यकी ओरको मुख करके मृग और पक्षियों
युक्त संध्या देशके नाशकी सूचना प्रकाश करती है. दक्षिण दिश
सूर्यकी ओर मुख किये मृग पक्षियों करके शब्दायमान नगर शत्रुओं व

रुतोरणमथने सपांसुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले । भैरवरावे रूक्षे
पातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥ ६ ॥ मन्दपवनावघट्टित-
ऽतपलाशद्रुमा विपवना वा । मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता
ता सन्ध्या ॥ ७ ॥ सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्य-
धिपरिवेषाः । सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः
: ॥ विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः ।
ह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥ उद्यो-
: प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः । किरणाः शिवाय
तो वितमस्के नभसि भानुमतः ॥ १० ॥ शुक्लाः करा दिन-
दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः । अव्युच्छिन्ना ऋजवो
करास्ते ह्यमोघाख्याः ॥ ११ ॥ कल्माषबभ्रुपिला विचित्र-
अष्ठहरितशबलाभाः । त्रिदिवानुबन्धिनो वृष्टयेऽल्पभयदास्तु
हात् ॥ १२ ॥ ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्चतद्-

लिया जाता है ॥ ५ ॥ गृह, वृक्ष, तोरणमथन और धूरिके साथ मट्टीके
को उडानेवाला पवन, प्रबल वेग और भयङ्कर रूखे शब्दसे पक्षियोंको गिरावें
अशुभकारी सन्ध्या होती है ॥ ६ ॥ सन्ध्याकालमें मन्द पवनके प्रवाहसे हिलते
पलाश अथवा वायुरहित हो और मधुर स्वरसे शान्त दिशामें विहङ्ग और
के नाद करनेसे सन्ध्या पूजित होती है ॥ ७ ॥ संध्याकालमें दण्ड, तडित,
, मंडल, परिवेष, इन्द्रधनु, ऐरावत और सूर्यकी किरण इन सबका स्निग्ध
शीघ्र वर्षाको लाता है ॥ ८ ॥ टूटी फूटी, टेढी वेडी, विध्वस्त, विकराल,
ठ, बांई ओरको झुकी हुई, छोटी २ विकल और मलीन सूर्यकी किरणें संध्या
में हों तो युद्ध हो, वर्षा नहीं हो ॥ ९ ॥ अन्धकारहीन आकाशमें सूर्यकी
णोंका निर्मल, प्रसन्न, सीधा, दीर्घताका प्राप्त होना और प्रदक्षिणाके आकारमें
संसारके मंगलका कारण होता है ॥ १ ॥ सूर्यके किरण दिनके आदि मध्य
अन्तगामी होकर, चिकने, अखंडित, सीधे और श्वेत हों तो वर्षा होती है
इनका नाम अमोघ है ॥ ११ ॥ वही काले, पीले, कपिल, लाल, हरे अनेक
रके होकर आकाशमें फैल जायँ तो वर्षाके कारणरूप हैं, परन्तु एक सप्ताहतक
एक भयदायी हैं ॥ १२ ॥ इनके ताम्ररंग होनेमें सेनापतिकी मृत्यु होती है,
और लालरंगके समान हों तो सेनापतिको दुःख होता है, हरे रंगके होनसे
और धान्यका नाश होता है, धूम्रवर्णसे गोनाश, मंजीठकी आभाके समान
र होनेसे शस्त्र व अग्निका भय होता है, पीछे हों तो पवनके साथ वर्षा होती

व्यसनम् । हरिताः पशुसस्यवधं धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥१
माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम् । भस्मसद्द
स्त्ववृष्टिं तनुभावं शबलकल्माषाः ॥ १४ ॥ बन्धूकपुष्पाञ्जनचू
सन्निभं सान्ध्यं रजोऽभ्येति यदा दिवाकरम् । लोकस्तदा रोगश
र्निपीड्यते शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥ १५ ॥ रविकि
जलदमरुतां संघातो दण्डवत् स्थितो दण्डः । स विदिक्स्
नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजातीनाम् ॥ १६ ॥ शस्त्रभयातंककरो
प्राङ्मध्यसन्धिषु दिनस्य । शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुख
निहन्ति दिशम् ॥ १७ ॥ दधिसदृशाग्रो नीलो भानुच्छादी ख
ध्यगोऽभ्रतरुः । पीतच्छुरिताश्च घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥१
अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे समुद्गते यायिनो नृपस्य वधः । बालतरुप्रति
पिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥१९॥ कुवलयवैदूर्याम्बुजकिञ्जल
भा प्रभञ्जनोन्मुक्ता । सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणोद्भासिता
॥ २० ॥ अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारपांसुधूमयुता । प्रा

है, भस्म समान होनेसे अनावृष्टि और सबल और कलमाष रंगके होनेसे वृ
क्षीणभाव हो जाता है ॥१४॥ संध्याकालकी धूरि दुपहरियाके फूल और अं
चूर्णके समान काली होकर जब सूर्यके सामनेको जाती है तब मनुष्य सैकडों
रके रोगोंसे पीडित होते हैं, इसका श्वेत होना मनुष्योंकी वृद्धि और शान्तिका व
होता है।१५। सूर्यके किरण जल और पवनसे मिलकर दंडके समान हो जायँ तो
दंड होता है, वह विदिक्में स्थित हो तो राजाओंको और दिक्में स्थिर होकर ब
तियोंको अशुभकारी होता है ॥ १६ ॥ दिन निकलनेसे पहले और मध्य सन्धि
दंड दिखाई दे तो शस्त्रभय और रोगभयका करनेवाला होता है, शुक्लादि वर्णका
ब्राह्मणोंको और जिनके सम्मुख स्थित हो उन दिशाओंको हनन करता है ।
आकाशमें सूर्यके ढकनेवाले दहीके समान किनारेदार नीले मेघको अभ्रतरु
हैं । यह और पीले रंगका मेघ जो घनमूल अर्थात् उसके नीचे मुख युक्त ह
बहुतसा जल वर्षाता है ॥ १८ ॥ अभ्रतरु शत्रुके ऊपर चढ जानेवाले राजाके
२ चलकर अकस्मात् शान्त हो जाय तो युवराज और मंत्रीका नाश हो ज
॥ १९ ॥ नीलकमल, वैदूर्य और पद्मकेशरके समान कांतियुक्त, पवनहीन
यदि सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हो तो वर्षा करती है ॥ २० ॥ अशुभका

रोत्यवग्रहमन्यतौ शस्त्रकोपकरी ॥ २१ ॥ शिशिरादिषु वर्णाः
ोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः । प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वर्तौ
ास्ता विकृतिरन्या ॥ २२ ॥ आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय
विगामि । सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥ २३ ॥
ृतनितान्तघनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः । यदि च
ीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥ २४ ॥ नृपविपत्ति-
रः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत् । कनकरूपधरो बल-
द्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥२५॥ उभयपार्श्वगतौ परिधी
वेः प्रचुरतोयभृतो वपुषान्वितौ । अथ समस्तककुप्परिवारिणः
रिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥ २६ ॥ ध्वजातपत्रपर्वतद्वि-
ाश्वरूपधारिणः । जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्त सन्निभाः
२७॥ पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः । बलान्यरूक्षमूर्त-

धर्वनगरी, हिम, धूरि और धूम (कुहर) युक्त संध्या वर्षाकालमें वर्षाकी कमी
रती है व और ऋतुमें हो तो शस्त्रका कोप करनेवाली होती है॥२१॥शिशिरादिऋ-
में संध्याका स्वभावसे उत्पन्न हुआ रंग जो लाल, पीला, श्वेत, चित्रविचित्र, पद्म
ौर रुधिरके समान होता है जैसी ऋतु हो वैसाही वर्ण हो तो कल्याणदायी है,दूसरा
ग हो तो विकार होता है॥२२॥ शस्त्र धारण किये नररूपधारी सूर्यके सन्मुखके मेघ
ो छिन्नभिन्न हों तो शत्रुभय होता है, श्वेत आकाशमें गंधर्वनगर जो सूर्यको ढक
तो आक्रमणकारी राजाको घेरा हुआ नगर प्राप्त हो जाता है,सूर्यनगर गंधर्वनग-
का भेदन करे तो नगरका शत्रुसे नाश हो जाता है॥२३॥ शुक्लवर्ण और शुक्ल किना-
ाले मेघ जो बांई ओरसे सूर्यको ढके अथवा उशीर (खस) गुल्मकी समान अदीप्त
्शासे उत्पन्न हुए बादलसे जो सूर्य ढक जाय तो वर्षा करनेवाला होगा ॥ २४ ॥
्र्यके उदयकालमें जो शुक्लवर्णका परिघ दिखाई दे तो, राजाको विपद होती है,
क्तवर्णसे सेनाका कोप होता है और कनकरूपधारीसे बलकी वृद्धि होती है ॥२५॥
्र्यके दोनों ओरकी परिधि जो शरीरवाली हो जाय तो बहुतसा जल वर्षता है,सब
रिधि दिशाओंको घेर लें तो जलका एक कणभी नहीं गिरता॥२६॥सन्ध्याकालके
घ ध्वज, छत्र, पर्वत,हस्ती और घोडेका रूप धारण करे तो जयका कारण है और
क्तके समान लाल हो तो रणके कारण होते हैं॥२७॥पलालके धुएँके समान स्निग्ध

यो विवर्द्धयन्ति भूभृताम् ॥२८॥ विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारु
प्रकाशिनः । घनाः शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः॥२९
दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजःपरिघादियुता च । प्रत्यहमर्क
कारयुता वा देशनरेशसुभिक्षवधाय॥ ३० ॥ प्राची तत्क्षणमे
नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं सप्ताहात्परिवेषरेणुपारिघाः कु
न्ति सद्यो न चेत् । तद्वत्सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिल
स्तर्क्षमत्रैव दिने ऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥ ३१ ॥ ए
दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरो
पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता काचिदुल्कानिप
॥ ३२ ॥ प्रत्यर्कसंज्ञाः परिधिस्तु तस्य त्रियोजनाभा परिघ
पञ्च । षट् पञ्च दृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति॥३३

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहि०सन्ध्यालक्षणं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०

मूर्तिधारी मेघ राजालोगोंके बलको बढाते हैं ॥२८॥ मेघ संध्याकालमें तीक्ष्ण सू
प्रकाशक वृक्षाकार हों या झुक जायँ तो मंगल होता है, इसी समयमें नगरके सम
मेघ हो तो शुभ होता है ॥२९॥ सूर्यके सन्मुख होकर पक्षी, गीदड और मृग क
शब्दायमान और दंड, धूरि और परिघयुक्त वा प्रतिदिन सूर्यको विकार करनेवा
संध्या देश, राजा और सुभिक्षके नाशके कारण हैं॥३०॥ पूर्वसंध्या तत्काल फल
देती है, रात्रि वा सायंसन्ध्या तीन दिनमें और परिवेष, रज और परिघ उसी दि
फल न दे तो एक सप्ताहमें फल देते हैं, ऐसेही सूर्यकिरण, इन्द्रधनुष, बिज
प्रतिसूर्य, मेघ और वायु आठ दिनमें और पक्षी व मृग सप्ताहमें फलको पकाते
सन्ध्या अपनी दीप्तिसे एक योजन और बिजली अपनी दीप्तिसे छः योजनतक प्रक
किया करती है मेघकी गर्जना पांच योजनतक जाती है और उलकासे गिरं
योजनका कुछ परिमाण नहीं ॥ ३१॥३२ ॥ प्रत्यर्क नामवाली परिधिकी दीप्ति त
योजन, परिघकी दीप्ति पांच योजन, परिवेषचक्रकी दीप्ति पांच या छः योजन
देखी जाती है और इंद्रधनुष दश योजनतक प्रकाश करता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि०बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ।

दिग्दाहलक्षणम् ।

दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः ।
अरुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥
ऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः । राज्ञो
द्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥ २ ॥ प्राक्क्षत्रियाणां
रेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा । याम्ये सहोग्रैः पुरु-
तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥ पश्चात्तु शूद्राः कृषि-
विनश्च चौरास्तुरंगैः सह वायुदिक्स्थे । पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च
गाः पाषाण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥ ४ ॥ नभः प्रसन्नं
मलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च । दिशां च दाहः कन-
वदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ॥ ५ ॥

श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ३१

पीले वर्णका दिग्दाह राजभयका कारण, हुताशनके वर्णका दिग्दाह देश नाशका
ण होता है और लालरंगका हुआ दक्षिणी पवन धान्यको नष्ट करता है ॥ १ ॥
 दिग्दाहमें अत्यन्त दीप्ति हो और सूर्यके समान छायाको (अंतर्गतज्योतिको)
ाशित करता है वह रुधिरके समान दाह राजाको महाभय देता है और शस्त्रका
 प्रकाशीत करता है ॥ २ ॥ पूर्वदिशामें दिग्दाह हो तो राजा और क्षत्रियोंको
ा होती है, अग्निकोणमें कुमारगण और शिल्पयोगी पीडा देता है, दक्षणिमें
पुरुष, वैश्य दूतगण और दूसरी वार व्याही हुई स्त्रियोंको पीडादायक
ा है ॥ ३ ॥ पश्चिमदिशामें शूद्र और किसान, वायुकोणमें तुरंगसहित
 लोग और उत्तर दिशामें ब्राह्मण लोग और इशान कोणमें पाषण्डी
 बनियोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ जो आकाश प्रसन्न हों, नक्षत्र निर्मल हो,
 घूमता हुआ चले तो सुवर्णके रंगका दिग्दाह लोगोंके और राजाके हितका
मित्त होता है ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

भूमिकम्पलक्षणम् ।

क्षितिकम्पमाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम् । भूभ
न्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥ १ ॥ अनिलोऽनिलेन
क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्येके । केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये
राचार्याः॥२॥ गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च
कम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडम् ॥३॥ भगवन्नाम
त्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा । क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः
नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥ तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित्स्फुरि
विनतमीषत् । साश्रुविलोचनमाननमवलोक्य पितामह
॥ ५ ॥ मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्
शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतिमाह ॥ ६ ॥ किन्
लदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम् । प्राग्द्वित्रिच
गेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥ चत्वार्यार्यम्णाद्य

एक संप्रदायवाले भूमिकंपको जलमें रहनेवाले बडे प्राणियोंका कि
कहते हैं, कोई २ कहते हैं-पृथ्वीके भारको धारण करनेसे थके हुए दि
विश्राम करना ही इसका कारण है ॥ १ ॥ और कोई २ कहते हैं कि ज
पवनसे टकराकर गिरता है, तब वही शब्दके साथ भूमिकम्पको करता है अ
२ इसको शुभ अशुभ कार्यका कारण कहते हैं. किसी किसी आचार्यका
है कि, पूर्वकालमें पृथ्वी और आकाशसे नीचे गिरते हुए और पृ
आकाशको उडते हुए पर्वतोंको गिरने और उडनेसे कम्पायमान हो देवताओं
लजाती हुई पृथ्वी ब्रह्माजीसे बोली थी,-हे भगवन् ! आपने मेरा "अचला
रक्खा है, परंतु इस समय चलायमान पर्वतों करके मैं सचला (कम्पयुक्त)
इस कारण मैं इस कष्टको नहीं सह सकती ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ पृथ्वीके इस
गद्गद वचन सुनकर और फडकते हुए अधरवाला कुछेक झुका हुआ आंसुअ
नेत्रवाला मुख देखकर ब्रह्माजी बोले,-हे इन्द्र ! धरतीका शोक हरण क
पर्वतोंके पंख काटनेको वज्र लाओ । इन्द्रने " तथास्तु " कहकर पृथ्वीसे
" कुछ भय नहीं है. परन्तु वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिनरातके प्रथ
तीसरे और चौथे भागमें सत् और असत् फल सूचित करनेके लिये तुमको
यमान करेंगे " ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ पहले उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा,

यं मृगशिरोऽश्वयुक् चेति । मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि
हात् ॥ ८ ॥ धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन्
म् । विरुजन्द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ॥९॥ वाय-
भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधीक्षयोऽभिहितः । श्वयथुश्वासोन्मादज्व-
भवा वणिक्पीडा ॥ १० ॥ रूपायुधभृद्वैद्याः स्त्रीकविगन्धर्व-
शिल्पिजनाः पीड्यन्ते । सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च
१ ॥ पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसंज्ञानि । वर्गो
भुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ॥१२॥ तारोल्कापातावृतमा-
मिवाम्बरं सदिग्दाहम् । विचरति मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्त-
ान्तः ॥ १३ ॥ आग्नेयेऽम्बुदनाशः सलिलाशयसंक्षयो नृप-
रम् । दद्रूविचर्चिकाज्वरविसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ॥ १४ ॥
जसः प्रचण्डाः पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गबाह्लीकाः । तङ्गणकलि-
ङ्गद्रविडाः शबराश्च नैकविधाः ॥ १५ ॥ अभिजिच्छ्रवणध-
प्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चास्य स्व
णि ॥ १६ ॥ चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडित्व-

मृगशिरा और अश्विनी यह वायव्य मंडल है; इसका फल एक सप्ताहमें
है ॥ ८ ॥ इसमें धूमसे छाये हुए आकाशमें पृथ्वीकी धूरिको उडाता हुआ,
ो तोडता हिलाता प्रचंड पवन चला करता है और सूर्यकिरण मन्द हो जाते
॥ वायव्य भोंचालसे धान्य, जल और वनौषधियोंका क्षय होता है, वानि
शोथ, दमा, उन्माद, ज्वर और खांसीकी पीडा होती है ॥१०॥ सुन्दर पुरुष
ारी, वैद्यगण, स्त्री, कवि और गानेवाले,व्यापारी और शिल्प जाननेवाले पुरुष
ौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेश पीडित होता है ॥११॥ पुष्य,
, विशाखा, भरणी, पित्र्य, अज और भाग्य नामवाले नक्षत्रमें होतभुजवर्ग होता
का रूप इस प्रकार है, सात दिनतक तारा और उल्काके गिरनेसे ढका हुआ
ा मानो दिग्दाहयुक्त और कुछेक दीप्तिके समान होता है और सात शिखा-
ग अग्नि पवनका सहायी होकर विचरता है ॥ १२॥ १३ ॥ इस आग्नेयवर्गमें
प होनेसे मेघनाश, जलाशयोंका सूखना, राजद्वेष और दाद, विचर्चिका, ज्वर,
का और पांडुरोग होते हैं. दीप्ततेजा और प्रचंड अश्मक,अङ्ग, बाह्लीक, तंगण
, वंग, द्रविड देश और अनेक प्रकारके शबरगण पीडित होते हैं ॥ १४॥१५॥
जित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा और अनुराधा ये सात नक्षत्र

न्तः । गवललालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥
ऐन्द्रं श्रुतिकुलजातिख्यातावनिपालगणपविध्वंसि । अतिसार
ग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥१८॥ का॰ियुगन्धरपौरवकिरा
राभिसारहलमद्राः । अर्बुदसुराष्ट्रमालवपीडाकरमिष्टवृष्टि
॥ १९ ॥ पौष्णाप्याद्रार्श्लेषामूलाहिर्बुध्न्यवरुणदेवानि । म
मेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥ नीलोत्पला
ञ्जनत्विषो मधुररा‌विणो बहुलाः । तडिदुद्भासितदेहा धारा
वर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥ वारुणमर्णवसरिद्राश्रितघ्नमति
विगतवैरम । गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥
षड्भिर्मासैःकम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः । अन्या
त्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥ २३ ॥ उल्का हरिश्चन्द्रपुरं
निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः । वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वो
तारागणवैकृतानि ॥ २४ ॥ व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्धू
ग्निविस्फुलिङ्गार्चिषो वा । वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये वि

इन्द्रमंडलके हैं.इन का स्वरूप ऐसा है, चलते हुए पर्वतके समान रूपधारी, गंभी
कारी, तडिद्युक्त,वनभैंस, भ्रमर और सांपके समान काले मेघ जलको वर्षाते है
वर्गमें भूमिकम्प होनेसे समुद्र और नदियोंमें रहनेवाले राजा और गणप
विध्वंस होता है और अतिसार, गलग्रह,वदनरोग और वमनकोप होता है ॥१
॥१८॥ काशी, युगंधर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुरा
मालव देशमें पीडा होती है और अभिलाषाके अनुसार वर्षा होती है ॥
रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा ये सात
वरुणमण्डलके हैं इनका स्वरूप इस प्रकार है नीला कमल, भ्रमर और
समान प्रतिफलित द्युतिमान्, बिजलीकरके उद्भासित देह बहुतसे बादल
शब्द करते २ जलधारारूप अंकुरोंसे वर्षते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ इस वारुण
भूमिकम्प हो तो समुद्र और नदियोंके आश्रयमें रहनेवालोंका नाश होता
वृष्टिकारक, द्वेषहीन और गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और विदेहवासियों
करता है ॥ २२ ॥ भूमिकंपका फल छःमासमें पकता है, निर्घातका फल दो
होता है, इन मंडलोंमें और उत्पात हों वेभी इन दो महीनोंमेंही फल देंगे
उल्का, गंधर्वपुर, धूरि, उपद्रव, भूकंप, दिग्दाह, प्रचंडपवन और सूर्य च
ग्रहण, नक्षत्र और तारोंके विकारके लिये कहा गया ॥२४॥ बिना बादलके

वैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥ २५ ॥ सन्ध्याविकाराः परिवेषख-
नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः।अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतःप्रतीपं
ण्डलैरेव फलं निगद्यम् ॥ २६ ॥ हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चा-
द्रमेवमन्योऽन्यम् । वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः
.७ ॥ प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः । क्षुद्भ-
काव्रृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥ २८ ॥ वारुणपौरन्दरयोः
क्षशिववृष्टिहार्दयो लोके । गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च
लाः ॥२९॥ पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्दैवराट् च सप्ताहात् ।
फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः ॥ ३० ॥ चलयति
ः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम् । सलिलपतिरशीति-
कुलिशधरोऽभ्यधिकं च षष्टिकम् ॥३१॥ त्रिचतुर्थसप्तमदिने
पक्षे तथा त्रिपक्षे च । यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपना-
भवति ॥ ३२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भूमिकम्पलक्षणं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

विकार, अग्निकी चिनगारीदार लपट, पवनके साथ वर्षाका होना, धूम, वनैले
पोंका ग्राममें आना, रात्रिमें इन्द्रधनुषका दिखाई देना, संध्याका विकार, परि-
, नदियोंकी गतिका विपरीत होना, आकाशमें तुरहीका बजना, और भी जो
संसारमें विपरीतता हो इस वर्गसेही उसका फल कहा जाता है ॥ २५ २६ ॥
द्रमण्डल वायव्यमंडलको निहत करे या वायव्यमंडल इन्द्रवर्गका नाश करे
सेही वारुण और आग्नेयमंडल परस्पर एक दूसरेको हनन करे तो उसको
क्षत्रजात कम्प कहते हैं ॥ २७ ॥ आग्नेय और वायव्यमंडलके परस्पर टक-
विख्यात राजाकी मृत्यु होती है या वह विपत्तीमें पडता है, और मनुष्य
, मरी और वर्षाके न होनेसे सन्तापित होते हैं, वरुण और पौरन्दर मंड-
माभिघातसे सुभिक्ष, कल्याणी वर्षा और प्रीति होती है, गायें बहुतसा दूध देने
हैं, राजा लोग आपसका वैर छोड देते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ अंग फडकना
जिन उपद्रवोंके फलका समय नहीं कहा, उनके वायव्यमंडलमें होनेसे दो
मध्यमें फल होता है, अग्निवर्ग तीन पक्षमें, इन्द्रवर्ग सप्ताहके पीछे और
र्ग शीघ्र फलवान् होता है ॥ ३० ॥ पवनवर्ग दो शत योजन, अनलवर्ग
त दश योजन, वरुणवर्ग एक शत अस्सी योजन और इन्द्रवर्ग साठ योजनसे
धिक भूमिको कंपायमान करता है ॥ ३१ ॥ भूमिकंपके बाद लोग

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

उल्कालक्षणम् ।

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्यु
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥
पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः । विद्युदहोभिः
स्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥ तारा फलपादकरी फल
प्रकीर्तिता धिष्ण्या । तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काश
॥ ३ ॥ अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरु
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ॥ ४ ॥ विद्यु
त्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा । कुटिलविशाला नि
जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥५॥ धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूं
दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम् । ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा
॥ ६ ॥ तारा हस्त दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा । तिर्यग

चौथे और सातवें दिनमें या महीनेमें वा पक्षमें अथवा तीन पक्षमें जो फिर
हो तो मुख्यराजाका नाश होता है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्याय

स्वर्गमें फल भोगे हुए पुरुषोंका गिरनेके समय जो रूप होता है वही
धिष्ण्या, उलका, अशनि, बिजली और तारा यह पांच भाग उलकाके
उलका १५ दिनमें वैसेही धिष्ण्या और अशनि तीन पक्षमें अर्थात् ४५ दि
तारा वा बिजलीका फल छः दिनमें होता है ॥ २ ॥ तारा ए
फलका करनेवाली है, धिष्ण्या आधे फलको देनेवाली और बिजली, उ
इन तीनोंका संपूर्ण फल होता है ॥ ३ ॥ अशनिका आकार चक्रके
यह बडे शब्दके साथ पृथ्वीको फाडती हुई मनुष्य, गज, अश्व, मृग, प
वृक्ष और पशुओंके ऊपर गिरती है ॥ ४ ॥ तड २ शब्द करती हुई बिद्
नके प्राणियोंको त्रास उपजाती हुई कुटिल और विशाल होकर जलती हु
ऊपर और ईंधनके ढेरपर गिरती है ॥ ५ ॥ पतली, छोटी पूंछवाली
जलते हुए अंगारके समान दश धनुषसे कुछ अधिक स्थानतक दिखाई
इसका परिणाम दो हाथका है ॥ ६ ॥ तारा तांबा, कमल,ताररूप वा शु

। याति वियत्युह्यमानेव ॥ ७ ॥ उल्का शिरसि विशाला निपन्ती वर्द्धते प्रतनुपुच्छा । दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥ प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः । गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ॥ ९ ॥ ध्वजझषकरिगेरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः । श्रीवत्सवज्रशंखस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥ १० ॥ अम्बरमध्याद्बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय । बम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥ ११ ॥ संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च । परचक्रागमनृपवधदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥ १२ ॥ पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः । उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरनिःसृता यातुः ॥ १३ ॥ शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी । क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४ ॥ उत्तरदिगादिपतिताविप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा । ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगता

उल्का विस्तार एक हाथका है खींचते हुएके समान आकाशमें तिरछी या आधी उठी हुई गमन करती है ॥ ७ ॥ प्रतनुपुच्छा विशाला उल्का गिरते २ बढती है, परन्तु इसकी पूंछ छोटी होती जाती है । इसकी दीर्घता पुरुषके समान होती है, इसके अनेक भेद हैं ॥ ८ ॥ कभी यह प्रेत, शस्त्र, खर, करभ, नाका, बन्दर, डाढवाले जीव और मृगके समान आकारवाली हो जाती है. कभी गोह सांप और धूमरूप हो जाती है और कभी दो शिरके रूपवाली होती है. यह पापमयी है ॥ ९ ॥ कभी ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, अश्व, तपी हुई धूल और हंसके समान, कभी श्रीवत्स, वज्र, शंख और स्वस्तिक रूपसे प्रकाशित होती है परन्तु यह सब कल्याण और सुभिक्षकारी है ॥ १० ॥ परन्तु अनेक प्रकारकी रूपवाली उल्कायें निरन्तर आकाशमें घूमते २ आकाशमेंसे गिरती हैं ॥ ११ ॥ चंद्र और सूर्यको स्पर्श करके उनमेंसे गिरे अथवा भूमि कम्पयुक्त हो तो नगरपर पराये राजाका अधिकार होगा, नृपवध, दुर्भिक्ष, अवृष्टि और भयकारी होती है ॥ १२ ॥ सूर्य चंद्रमाके दांई ओर उल्का गिरे तो वनवासियोंका नाश करता है. दिवाकरसे निकली हुई उल्का सन्मुख आवे तो गमनकारीको शुभ है ॥ १३ ॥ शुक्ल, रक्त, पीत और काले रंगकी उल्का क्रमानुसार द्विजातिवर्गोंका नाश करनेवाली है और इसका मस्तक, छाती बगल और पूंछमें यह सब वर्ण स्थापित हों तोभी यह क्रमानुसार ब्राह्मणादि चार वर्णोंका नाश करनेवाली है ॥ १४ ॥ प्रदक्षिणाके क्रमसे उत्तर आदि दिशाओंमें उल्का रूखे भावसे गिरे तो क्रमानुसार ब्राह्मण

च तदद्वृद्धयै ॥ १५ ॥ श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभ
निभा रूक्षा । सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभ
॥ १६ ॥ नक्षत्रग्रहघाते तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा । उदये
रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥ भाग्यादित्यधनिष्ठा
षूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णु
॥ १८ ॥ ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणा
क्षिप्रेषुकलाविदुषांपीडा साधारणे चहते ॥ १९ ॥ कुर्वन्त
पतिता देवप्रतिमासुराजराष्ट्रभयम् । शक्रोपरि नृपतिनां
तत्स्वामिनांपीडाम् ॥ २० ॥ आशाग्रहोपघाते तद्देशानां
कृषिरतानाम् । चैत्यतरौ सम्पति तासत्कृतपीडां करोत्यु
॥ २१ ॥ द्वारि पुरस्यपुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहि

क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है. सीधी, चिकनी, अखंड और आक
नीचे भागमें जानेवाली हो तो उपरोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥
अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मके समान रूखी संध्यासे उत्पन्न
दिनसे उत्पन्न हुई, टेढी और दलित हुई उलकाका गिरना शत्रुके भयका
है ॥ १६ ॥ उलकासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तो पीछे कही हुई भक्तिका
होता है और उस २ वस्तुका क्षय होता है, उदय या अस्तकालमें उलका
या चन्द्रमाको हनन करे तो वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफा
पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगतारेको उलका हनन करे तो युवति
पीडा होती है, और पुष्य, स्वाती व श्रवणको उलका हत करे तो ब्राह्मण
क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा
राधा और रेवतीको उलका पीडित करे तो राजाओंको पीडा होती है, तीनों
भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उलका ताडन क
चोरोंको पीडा होती है, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, कृत्तिका और विशा
उलकासे भेद हो तो गीत नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥
देवताकी मूर्तिपर उलका गिरे तो राजा और राज्यको भयदायक है. इन्द्रध्वज
तो राजाओंको और घरमें गिरे तो गृहस्वामिओंको पीडा उत्पन्न करती है ॥
दिशाके स्वामी गृहके ऊपर उलका गिरे तो उस दिशाके रहवासियोंको, खरि
गिरनेसे किसानोंको, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उलका गि
साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरद्वारपर उलका गिरे तो पुरका क्षय, इ

यतने विप्रान् विनिहन्याद्रोमिनो गोष्ठे ॥२२॥ क्ष्वेडास्फोटि-
दितगीतोत्कुष्टस्वना भवन्ति यदा । उल्कानिपातनसमये भयाय
ष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥ यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डा-
ः सा नृपतेर्भयाय । या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महे-
वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥ श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनाः ।
यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥ बर्हिपुच्छरू-
ी लोकसंक्षयावहा । सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥२६॥
त मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्र-
कारिणी ॥ २७ ॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी ।
डशोऽथवा गता सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥ सुरपतिचापप्र-
ा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति । पवनविलोमा
ःलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥ २९ ॥ अभिम-

ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा है, ब्रह्माके मंदिरपर गिरे तो ब्राह्मणोंका
गोठमें गिरे तो बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको हनन करती है ॥ २२ ॥ जो
ा गिरनेके समय क्ष्वेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित
त गीत और रोनेका ऊँचा शब्द हो तो नृपयुक्त राज्यको भय होता है ॥२३॥
का आकार दंडके आकारके समान होकर आकाशमें बहुत देरतक रहे वह
ा राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें ठहरकर डोरीसे बंधी
समान प्रवाहित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तो राजाको भयदायी है ॥२४॥
ल्का विपरीत चले अर्थात् जहांसे निकली हो वहींको फिर लौट चले तो शेठलो-
ो भय करती है, टेढी चलनेवाली उल्का रानियोंका, नीचेको मुखवाली
ा राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्मणोंका नाश करती है॥२५॥
छके समान आकारवाली उल्का लोकक्षयकारी और सर्पके समान चलनेवाली
ा स्त्रियोंका अनभल करती है ॥ २६ ॥ मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप
ा पुरोहितको नाश करती है और बांसकी बीढके समान उल्का देशमें दोष
न करती है ॥२७॥ व्याल (काले सांप) और सूकरके समान आकारयुक्त वा
गारीदार अथवा पिण्डाकार या शब्दसहित उल्का चले तो पापदायिनी है॥२८॥
ानुषके समान हो तो राज्यका नाश करे, आकाशमें लीन हो जाय तो बादलोंका
करे और पवनकी प्रतिकूल दिशामें कुटिलभावसे गमन करे और फिर लौट आवे

वति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य । कि
च यथा दिशा प्रदीता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० उल्कालक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

परिवेषलक्षणम् .

सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।
वर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥ १ ॥ ते रक्तनीलपाण्
पोताभ्राभ शबलहरिशुक्लाः । इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपित
ग्निकृताः ॥ २ ॥ धनदः करोति मेचकमन्योऽन्यगुणाश्रयेण च
न्ये । प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ॥३॥ च
खिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः। अविकलवृत्तः स्निग्ध
वेषः शिवसुभिक्षकरः ॥ ४ ॥ सकलगगनानुचारी नैकाभः

तो शुभदायी नहीं है ॥ २९ ॥ जिस औरसे उल्का आकर पुर या सेनाके ऊ
उस दिशासे ही राजाको भय होता है और जिस दिशामें प्रकाश करके गि
उस दिशामें जाय तो शीघ्र शत्रुओंको जीतनेके लिये समर्थ होता है ॥ ३०

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा
स्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

सूर्य या चंद्रमाके किरण पर्वतके ऊपर प्रतिबिम्बित और पवनसे
मंडलाकार होकर थोडेसे मेघवाले आकाशमें अनेक रंग और अ
दिखलाई देते हैं उनको परिवेष कहते हैं ॥ १ ॥ रक्त, नील,
श्वेत, कबूतरके रंगका, मेघके रंगका शबल (अनेक प्रकारके रंगोंसे
हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णके परिवेष क्रमानुसार इन्द, यम, वरुण, निर्ऋति,
महादेव, ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धनदाता कुबेरजी काले
परिवेष कहते हैं और परस्पर गुण आश्रयके हेतु जो वारंवार लीन होत
अल्प फल देनेवाला परिवेष वायुका है ॥ ३ ॥ जो परिवेष नीलकंठ मोर,
तेल, दूध और जलके समान आभावाला हो, स्वकालसम्भूत हो, जिन
खंडित न हो, जो स्निग्ध हो वह सुभिक्ष और मंगलका करनेवाला है ॥ ४
परिवेष सारे आकाशमें गमन करे, अनेक आभादार हो, रुधिरके समान हो

भो रूक्षः । असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः
॥ ५ ॥ शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे । हरि-
निभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ॥ ६ ॥ वर्णेनैकेन यदा
ः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः । स्वर्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च
र्कः ॥ ७ ॥ दीप्तविहङ्गमृगरुतः कलुषः सन्ध्यात्रयोत्थितोऽति-
न् । भयकृत्तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ८ ॥ प्रति-
मर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः । परिविष्टयोरभीक्ष्णं
स्तनभः स्थयोस्तद्वत् ॥ ९ ॥ सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो
शस्त्रकोपकरः । त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम्
१० ॥ वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे । होरा-
ाधिपयोर्जन्मर्क्षे वाशुभो राज्ञः ॥ ११ ॥ परिवेषमण्डलगतो
तनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः । जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषि-

ं छकडेके समान, धनुष और शृङ्गाटकके समान हो तो पापकारी है ॥ ५ ॥
ी गर्दनके समान परिवेष हो तो अतिवर्षा होती है, बहुतसे रंगोंसे युक्त हो
राजाका वध होता है, धूम्रवर्ण होनेसे भय होता है, इन्द्रधनुषके समान या
कके फूलके समान कान्तिमान् होनेसे युद्ध होता है ॥ ६ ॥ जिस ऋतुमें परि-
एक वर्णके मेलसे बहुत चिकना, उस्तरेके समान छोटे २ मेघोंसे व्याप्त हो या
ी किरणें पीले वर्णकी हो उस समय शीघ्र वृष्टि होती है ॥७॥ सूर्यकी ओर-
मुख करके पक्षी और मृगोंके शब्दसहित (त्रिकालके शब्दसहित) त्रिकालकी
ामें उत्पन्न हुआ अतिमहान् परिवेष भयंकर होता है, परन्तु जो यह उल्का या
ी करके भेदित हो तो शस्त्रसे राजाकी मृत्यु होती है ॥ ८ ॥ प्रति दिन रात
चन्द्रमाका परिवेष रक्तवर्ण हो तो राजाका वध होता है और उदयकाल, अस्त-
दिनरातके मध्यकालमें सूर्य चन्द्रमाका एक दिनमें यदि अधिक परिवेष हो
ी वही फल अर्थात् राजाका वध होता है ॥ ९ ॥ दो मंडलवाला परिवेष सेना-
ो भयकारी है परन्तु अत्यन्त शस्त्रकोपकारी नहीं है, तीन मंडलवाला या
क मंडलवाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोधका कारण होता है
० ॥ भौमादि कोई ग्रह, चन्द्रमा नक्षत्र यदि एक परिवेषमें हो तो तीन दिनमें
या एक मासमें युद्ध होता है, होरा और लग्नाधिपति वा जन्मनक्षत्रका परिवेष
ो राजाका अशुभ होता है ॥ ११ ॥ जो शनि परिवेषमंडलमें हो तो छोटे
को नष्ट करता है और स्थावर वा किसानोंका हननकारी होकर पवनयुक्त

कृन्निहन्ता च ॥ १२ ॥ भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्र
शस्त्रभयम् जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥ १
न्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च । शुक्रे यायिः
क्षां पीडाप्रियं चान्नम् ॥ १४ ॥ क्षुदनलमृत्युनराधिपः
जायते भयं केतौ । परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृ
॥ १५ ॥ युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयो
सकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥१६॥ याः
नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः । प्रलयमिव विद्धि
पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ॥ १७ ॥ ताराग्रहस्यकुर्यात् पृथग्
त्थितो नरेन्द्रवधम् । नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदये
॥१८॥विप्रक्षत्रियविट्छूद्रहा भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः
पुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकरी भवति॥१९॥ युवराजस्
परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः । पुरराधो द्वादश्यां सैन्यक्षो

वृष्टिको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥ मङ्गल परिवेषमें हो तो कुमार, सेना
सेनाको व्याकुलता हो और अग्नि शस्त्रका भय हो, और बृहस्पति प
तो पुरोहित, मंत्री और राजाओंको पीडा होती है ॥ १३ ॥ बुध परिवे
मंत्री, स्थावर और लेखक लोगोंकी वृद्धि और अच्छी वर्षा होती है, परि
हो तो चढकर जानेवाले राजा, क्षत्री राजाको पीडा और दुर्भिक्ष होता
केतु परिवेषमें हो तो क्षुधा, अनल, मृत्यु, राजा और शस्त्रसे भय उत्पन्न
राहु परिवेषमें हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है ॥ १५ ॥ र
परिवेषके भीतर दो ग्रहोंके होनेसे युद्ध होता है, तीन ग्रह जो परिवे
दुर्भिक्ष और वर्षा न होनेका भय होता है ॥ १६ ॥ परिवेषमें चार ग्र
मंत्री और पुरोहितके साथ राजाकी मृत्यु हो जाय, पंचादि ग्रह मंडल
जगत्में मानो प्रलय हो जाय ॥ १७ ॥ ताराग्रह अर्थात् मङ्गलादि पंच
नक्षत्रगण यदि अलग २ परिवेषमें हों तो राजाका वध हुआ करता है, य
उदय न हो तो केतूदय होनेसे उसीका फल होता है ताराग्रहादिफल
है ॥ १८ ॥ प्रतिपदासे लेकर चौथतक तिथिमें परिवेष हो तो क्रमानुसा
क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश हो जाता है, पंचमीसे लेकर सातैंत
श्रेणी, पुर और कोषका अशुभकारी होता है ॥ १९ ॥ अष्टमीमें परि
और उसके पीछे तीन तिथिमें परिवेष होनेसे राजाका दोष

म् ॥ २० ॥ नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्।
त् तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २१ ॥ नागरिका-
ाभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था। परिवेषमध्यरेखा
थाक्रन्दसाराणाम् ॥ २२ ॥ रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां
तयस्तेषाम्। स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जय-
ाम् ॥ २३ ॥

ीवराहमि िरकृतौ बृहत्सं० परिवेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४॥

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः।

इन्द्रायुधलक्षणम्.

स्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे। वियति धनुः
ानायेदृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः॥१॥ केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासो-
ामाहुराचार्याः। तद्यायिनां नृपाणामभिमुखामजयावहं भवति
॥ अच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत्स्निग्धं घनं विविधवर्णम्।

ीमें परिवेष होनेसे पुरका रोध हो जाता है और त्रयोदशीमें होनेसे शस्त्रका होता है ॥ २० ॥ चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रानीको पीडा होती है, पंचद· राजाको पीडा होती है ॥ २१ ॥ परिवेषके भीतर रेखा दिखाई दे तो नग· योंको पिडा होती है, परिवेषके बाहर रेखा हो तो चढ जानेवाले राजाओंको होती है, परिवेषके बीचमें हो तो आक्रन्दसारका शुभाशुभ विचारे ॥ २२ ॥ क्त या कूर्मविभागके अनुसार देशका विभाग करनेसे जिस देशके भागमें ाका रंग लाल श्याम या रूखा हो उस देशकी पराजय होगी- स्निग्ध, श्वेत ा दीप्तिशाली परिवेष जिनके भागमें गिरे उनकी जय होगी ॥ २३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य—पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

नेक रंगवाले सूर्यके किरण पवनसे रोके जाकर मेघयुक्त आकाशमें जो धनु· आकार दिखाई देता है वही इन्द्रधनुष है ॥ १ ॥ कोई २ आचार्य कहते , अनन्तनामक कुलनागके श्वाससे यह उत्पन्न होता है, जो राजालोग इस नुषको सन्मुख रखकर जायँ तो युद्धमें उनकी पराजय होती है ॥ २ ॥ वह डेत भूमिमें लगा हुआ, प्रकाशदार, चिकना, निबिड, अनेक रंगोंसे युक्त और

द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ॥ ३ ॥
गुद्भूतं क्षितिस्वामिनाशनं व्यभ्रजं मरककारि । पाटलपीत
शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥ ४ ॥ जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस
स्तरौ स्थिते व्याधिः । वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधा
रैन्द्रम् ॥ ५ ॥ वृष्टिं करोत्यवृष्टयां वृष्टिं वृष्टयां निवारय
च्याम् । पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ॥ ६ ॥
मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम् ।
परोदक्प्रभवं निहन्याद्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥ ७ ॥
सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् । भव
यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रायुधलक्षणं

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दोनों बार उदित व अनुलोम होनेपर श्रेष्ठ है और बहुतसा जल वर्षाता
इशान, अग्नि, नैर्ऋत और वायु इन चारों कोनोंमें जो इन्द्रधनुष उदय
संस्थानके राजाका नाश होता है. विना मेघके आकाशमें इन्द्रधनुष हो
पडती है। पाटलके फूल, पीले और नीले रंगका हो तो शत्र, अग्नि, औ
क्षादि दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जलमें इन्द्रधनुष हो तो अनावृष्टि,
होनेसे धान्यकी हानि, वृक्षपर होनेसे व्याधि और वल्मीक (बमई) प
शस्त्रभय और रात्रिमें होनेसे मंत्रिके वधका कारण होता है ॥ ५ ॥ जो
ष्टिके समय और इन्द्रधनुष पूर्वदिशामें हो तो जल वर्षता है, वर्षनेके समय
हो तो वृष्टिको रोकता है । पश्चिममें इन्द्रधनुष हो तो सदाही वर्षा होती
पूर्वदिशामें रात्रिकालके समय इन्द्रधनुष हो तो राजाओंके पीडित क
दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशासे उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष सेनापति, नाय
मंत्रीका नाश करता है ॥ ७ ॥ रात्रिके समय इन्द्रधनुष श्वेत वर्णादि अर्थ
रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तो क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और
नाश करता है, परन्तु जिस दिशामें हो उसी दिशाओंके राजाओं
नाश होगा ॥ ८

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-रादाबाद
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः।

गंधर्वनगरम्.

दगादिपुरोहितनृपबलपतियुवराजदोषदं खपुरम्। सितरक्त-
ष्णं विप्रादीनामभावाय ॥ १ ॥ नागरनृपतिजयावहमुद-
क्स्थं विवर्णनाशाय। शान्ताशायां दृष्टं सतोरणं नृपतिवि-
॥ २ ॥ सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं च भयदं नरेन्द्रराष्ट्राणाम्
विकान् हन्याद्धूमानलशक्रचापाभम् ॥ ३ ॥ गन्धर्वनगर-
तमापाण्डुरमशनि...वातकरम्। दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरि
जयः सव्ये ॥ ४ ॥ अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते पुरं पताका-
तोरणान्वितम्। यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग्भूरि
सुन्धरा ॥ ५ ॥

वराहमिहिरकृतौबृहत्सं०गन्धर्वनगरलक्षणंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः।३६।

गन्धर्वनगर उत्तरादि दिशाओंमें अर्थात् उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम
हो तो क्रमानुसार पुरोहित, राजा, सेनापति और युवराजको विघ्न होता
त, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णका हो तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके
कारण होता है ॥ १ ॥ उत्तरदिशामें हो तो नगर और राजाओंको जय-
होता है। ईशान, अग्नि और वायुकोणमें स्थित हो तो नीचजातिका नाश
ता है। शान्त दिशामें तोरणयुक्त गन्धर्वनगर दिखाई दे तो राजाकी विजय
॥ २ ॥ जो गन्धर्वनगर सदा सब दिशाओंमें हो तो राजा व राज्य सब-
भयदायी होता है और धूम, अनल व इन्द्रधनुषके समान हो तो चोर और
र्योंको हनन करता है ॥ ३ ॥ कुछेक पाण्डुर रंगका गन्धर्वनगर हो तो
होकर झंझापन चला करता है, दीप्त दिशामें गन्धर्वनगर हो तो राजाकी
होती है, वामदिशामें हो तो शत्रुभय और दक्षिणभागमें स्थित हो तो जय-
॥ ४ ॥ जब अनेक रंगकी पताका, ध्वज और तोरणयुक्त गन्धर्वपुर
शमें प्रकाशित हो तो रणमें हस्ती, मनुष्य और घोडोंका बहुतसा रुधिर पृथ्वी
रती है ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-
व्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

प्रतिसूर्यलक्षणम् ।

प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो दिवसकृदृतुवर्णसप्रभः स्निग्धः। वैदूर्य
स्वच्छः शुक्लश्च क्षेमसौभिक्षः ॥१॥ पीतो व्याधिं जनयत्यश
रूपश्च शस्त्रकोपाय । प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातंकनृप
॥ २ ॥ दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिल
उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिसूर्यचक्रं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

रजोलक्षणम् ।

कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन । अ
व्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ॥१॥ यस्यां दिक्षि धूरि

जिस ऋतुमें सूर्यका रंग जिस प्रकारका हो और जिस ऋतुमें प्रतिसूर्यका
वैसाही चिकना, वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ और शुक्ल वर्ण युक्त हो तो क्षेम
सुभिक्षकारारी होता है ॥ १ ॥ पीत वर्ण हो तो व्याधि उत्पन्न करता है, अ
समान वर्ण धारण किये हो तो शस्त्रकोपका कारण होता है और प्रतिसूर्यकी
अर्थात् बहुतसे प्रतिसूर्य उदय हों तो चोरभय, आंतक और राजाका नाश हो
है ॥ २ ॥ उत्तरमें प्रतिसूर्य हो तो जल वर्षाता है, दक्षिणमें हो तो पवन च
है, दोनों दिशाओंमें हो तो जलभय होता है, ऊपर स्थित हो तो राजाको
नीचे स्थित हो तो मनुष्योंका नाश करता है ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

गहरे अँधियारेके समूहके समान धूरि जब समस्त दिशाओंको ढक ले कि
पर्वत, पुर या वृक्ष इत्यादि कुछभी दिखाई न दें तब निश्चय जानना कि रा
नाश होगा ॥ १ ॥ पहले जिस दिशामें धूरिका समूह दीख पडे या जिस

---

१ अध्यायोऽयं न व्याख्यातो न चोल्लिखितो भट्टोत्पलेन । निवेशितोऽस्मत्वादर्शे दृष्टत्वात् ।

वा यस्याम् । आगच्छति सप्ताहात्तत्रैव भयं न सन्देहः ॥ २ ॥ श्वेते रजो घनौघे पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च । न चिरात् प्रकोपमुपयाति शस्त्रमतिसंकुला सिद्धिः ॥ ३ ॥ अर्कोदये विजृम्भति यदि दिनमेकं दिनद्वयं वापि । स्थगयन्निव गगनतलं भयमत्युग्रं निवेदयति ॥ ४ ॥ अनवरतसञ्चयवहं रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ । क्षेमाय च शेषाणां विचक्षणानां नरेन्द्राणाम् ॥ ५ ॥ रजनीद्वयं विसर्पति यस्मिन् राष्ट्रे रजोघनं बहुलम् । परचक्रस्यागमनं तस्मिन्नपि सन्निबाद्धव्यम् ॥ ६ ॥ निपतति रजनीत्रितयं चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय । राज्ञां सैन्यक्षोभो रजसि भवेत्पञ्चरात्रभवे ॥ ७ ॥ केत्वाद्युदयविमुक्तं यदा रजो भवति तीव्रभयदायि । शिशिरादन्यत्रतौ फलमविकलमाहुराचार्याः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रजोलक्षणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

वह धूरिसमूह पहले निवृत्त हो, निःसन्देह सात दिनमें तहां भय आवेगा ॥ २ ॥ धूरिराशिरूप मेघसमूह श्वेतवर्णका हो तो मंत्री और जनपदोंको पीडा होती है । शीघ्र शस्त्रकोप आ पहुँचता है और कार्यकी सिद्धि अतिकष्टसे होती है ॥ ३ ॥ सूर्य उदय होनेके समय जो धूरी एक दिनतक वा दो दिनतक आकाशको ढके हुए प्रकाशित हो तो उग्र भयका विषय कहा जाता है ॥ ४ ॥ एक रात्रितक बराबर धूरी इकट्ठा होती जाय तो मुख्य राजाकी मृत्यु होती है और शेष बुद्धिमान् राजाओंको शुभ फल करती है ॥ ५ ॥ जिस देशमें दो रात्रितक बराबर घनी धूरि फैलती है तो भलीभांति जान लेना चाहिये कि उस देशमें दूसरे राजाका राज होगा ॥ ६ ॥ तीन या चार रात्रितक बराबर धूरि गिरती रहे तो अन्न व रसका नाश हो जाता है, पांच रात्रितक धूरी गिरे तो राजाओंकी सेनामें खलबली मच जाती है ॥७॥ केतु आदिके उदयसे पीछे धूरि गिरे तो तीव्र भय होता है. आचार्य लोग कहते हैं कि शिशिरके सिवाय और ऋतुओंमें इसका अधिक फल होता है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

निर्घातलक्षणम् ।

पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति
तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः ॥ १ ॥ अर्को
रणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः । आप्रहरांशेऽजा
न्याच्छूद्रपौरांश्च ॥ २ ॥ आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो
पीडयति । वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान् प्रहरे चतुर्थे
अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि । र
ययामे पिशाचसंघान्निपीडयति ॥ ४ ॥ तुरगकरिणस्तृत
हन्याद्यायिनश्चतुर्थे च । भैरवजर्जरशब्दो याति यत
हन्ति ॥ ५ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्सं० निर्घातलक्षणंनामैकोनचत्वारिंशो

पवनके द्वारा पवन टकराकर जब पृथ्वीपर गिरता है तब वही निघ
है. उस निर्घातके समय सूर्यकी ओरको मुख करके पक्षिगण शब्द कं
कारी होता है ॥ १ ॥ सूर्य उदय होनेके समय निर्घात हो तो
अर्थात् विचारक, नृप, धनवान्, योधा, स्त्री, वणिक् और वेश्यायें न
प्रहरांशसमयतक हो तो बकरी पालनेवाले, शूद्र और पुरवासियोंका न
दुपहरके मध्यमें हो तो राजसेवा करनेवाले पुरुष और ब्राह्मणोंको पी
तीसरे प्रहरमें निर्घात हो तो वैश्य और जल देनेवाले मेघोंको, चौथे प्र
चोरोंको पीडित करता है ॥ २ ॥ ३ सूर्यास्त होनेपर नीचलोगोंका
प्रथम याममें होनेपर धान्यका नाश करता है, रात्रिके दूसरे
हो तो पिशाचको पीडित करता है ॥ ४ ॥ रात्रिके तीसरे प्रहरमें ह
और घोडोंको और चौथे प्रहरमें निर्घात हो तो पैदलोंको हनन क
जिस दिशासे भयंकर और फटे हुए शब्दके साथ निर्घातका उत्पात
दिशा नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशी
बादधास्तव्य—पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीक
मेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।

सस्यजातकम् ।

[वृ]श्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः । ग्रीष्मशरत्सस्यानां
[य]द्योगाःकृतास्त इमे ॥ १ ॥ भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छु-
[भा]क्रान्तैः । बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षितैर्ग्रैष्मकविवृद्धिः ॥२॥
[अष्ट]मराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहस्थितयोः । सिंहघटसं-
[स्थय]र्वा निष्पत्तिर्ग्रीष्मसस्यस्य ॥ ३ ॥ अर्कात्सिते द्वितीये बुधे--
[वा] युगपदेव वा स्थितयोः । व्ययगतयोरपि तद्वन्निष्पत्तिरतीव
[दृ]ष्ट्या ॥ ४ ॥ शुभमध्येऽलिनि सूर्याद्गुरुशशिनोः सप्तमे परा
[..]त । अन्यादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः ॥ ५ ॥
[..]हिबुकार्थयुक्तैः सूर्यादलिगात्सितेन्दुशशिपुत्रैः । सस्यस्य परा
[..]त् कर्मणि जीवे गवां चाग्र्या ॥ ६ ॥ कुम्भे गुरुर्गवि शशि
[..]लिमुखे कुजार्कजौ मकरे । निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् पर-

[वृश्चि]क या वृषराशिमें सूर्यके प्रवेशकालके समय ग्रीष्म और शरत्कालके उत्पन्न
[धा]न्यके सम्बन्धमें जो शुभाशुभ बादरायण मुनिजीने निश्चय किये हैं वह यह
[सूर्य]के वृश्चिक राशिमें गमन करनेके समय उसके समस्त केन्द्रस्थान अर्थात्
, कुंभ, वृष और सिंहराशि शुभ ग्रहों करके युक्त वा बलवान् शुभ ग्रहोंकरके
[देखे ज]ाय तो ग्रीष्मके धान्यकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥ २ ॥ जब सूर्य आठवीं
[(] वृश्चिक) में गमन करे उस काल यदि कुंभमें बृहस्पति और सिंहमें
अथवा सिंहमें बृहस्पति और कुंभमें चन्द्रमा हो तो ग्रीष्मका उत्पन्न हुआ
[ब]ढता है ॥ ३ ॥ शुक्र या बुध जो सूर्यकी दूसरी राशिमें जाय अथवा एक
सूर्यकी बारहवीं राशिमें जाय तो भी ऐसा ही अन्न होगा और उसमें यदि
[..]की दृष्टि हो तो वह अन्न उत्तम भांतिसे होगा ॥ ४ ॥ वृश्चिक राशिमें
सूर्यकी दोनों दिशाएँ यदि दो शुभ ग्रह और उससे सातवें चन्द्रमा और
हो तो बहुत उत्तम खेती हो, वृश्चिक आरम्भमें रवि और उसके दूसरे
बृहस्पतिका होना आधी खेतीकी सूचना कराता है ॥ ५ ॥ शुक्र, चन्द्र
[..] ग्रह जो वृश्चिकमें गये हुए सूर्यसे दूसरी, चौथी अथवा ग्यारहवीं
हो तो अन्नकी श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होती है और कर्म (दशम) में बृहस्पति
[गौ]ओंके लिये श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ जिस समय सूर्य वृश्चिक

चक्ररोगभम् ॥ ७ ॥ मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं
लिगः । पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥
स्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम् । सस्यं
द्धुतं निष्पादयेद्व्यक्तम् ॥ ९ ॥ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ
वृश्चिकस्थस्य । सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न
वृश्चिकसंस्थादर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ।भवति
सस्यानामर्घपरिहानिः ॥ ११ ॥ विधिनाऽनेन रविर्वृ
समुत्थानाम् । विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा
त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विच
कधान्यं कुरुते समर्थमुभयोपयोग्यं च ॥ १३ ॥
संस्थः शारदस्य तद्वदेव रविः । संग्रहकाले ज्ञे
क्रूरदृग्योगात् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सस्यात
चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४० ॥

राशिमें गमन करे उस समय जो कुंभमें बृहस्पति, वृषमें चन्द्रमा
यदि मकरराशिमें हों तो अन्न भलीभांतिसे होता है, परन्तु पीछे
रोगका भय हुआ करता है ॥ ७ ॥ जो सूर्य वृश्चिक राशिमें दो
हो तो धान्यका नाश करता है, इस समय वृषराशिमें स्थित हो
अन्नका नाश कर देता है ॥ ८ ॥ उसके अर्थस्थानमें स्थित क्रूर
देखा जाय तो पहिली बोई हुई खेतीका नाश करता है, परन्तु
खेती भलीभांतिसे उपजती है ॥ ९ ॥ वृश्चिक राशिमें स्थित सू
मेंके या केन्द्रस्थित और क्रूर ग्रह खेतीका नाश करते हैं परन्तु
देखता हो तो सब जगहके धान्यको नाश नहीं कर सकते ॥ १०
ग्रह वृश्चिकराशिमें स्थित सूर्यसे सातवें और छठें हो तो खेती होत
महंगा रहता है ॥ ११ ॥ वृषराशिमें सूर्यके प्रवेश करनेसे उ
नाशका या मंगलका कारण भी होता है ऐसा पंडितोंका कहना
मेषादि तीन राशियोंमें स्थित सूर्य शुभ ग्रह करके युक्त हो य
जाय तो ग्रीष्मकी खेती समर्थ हो और इतना सस्ता अन्न रहे
परलोक दोनों बना लें (परलोक बनानेके लिये अन्नदान करें
मकर और कुंभराशिमें स्थित सूर्य शरत्कालमें उत्पन्न हुई खेती

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्रव्यनिश्चयः ।

ये येषां द्रव्याणामधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः । मुनिभिः
शुभार्थं तानागमतः प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥ वस्त्राविककुतुपानां
गोधूमरालकयवानाम् । स्थलसम्भवौषधीनां कनकस्य च
तो मेषः ॥ २ ॥ गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिषसुर-
नयाः स्युः । मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूककर्पासाः ॥३॥
णि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि । सिंहे तुषधान्य-
सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥ ४ ॥ षष्ठेऽतसीकलायाः कुल-
धूममुद्गनिष्पावाः सप्तमराशौ माषा गोधूमाः सर्षपाः
ाः ॥ ५ ॥ अष्टमराशाविक्षुः सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि ।
तु तुरगलवणाम्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥ ६ ॥ मकरे

अन्नको संग्रहकालमें क्रूर ग्रहकी दृष्टि और योगसे इसका उलटा फल होता
जानना चाहिये ॥ १४ ॥

ते श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा-
बादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

---

२ राशियोंको निज द्रव्योंका स्वामी मुनि लोगोंने कहा है, शुभ और अशुभ
के लिये आगमसे उनका विषय कहा जाता है ॥ १ ॥ मेशराशि वस्त्र, भेडके
बने कम्बल, बकरेकी ऊनसे बने कम्बल, मसुर, गेहूँ, राल (वृक्षोंके गोंद),
लकी उपजी हुई औषधियें और सुवर्णकी स्वामिनी कही जाती है ॥ २ ॥
सुम, गेहूँ, शालि धान्य, जौ, महिष और गाय इनकी स्वामिनी वृषराशि है-
और शरदृतुमें उत्पन्न हुए पदार्थ, लता, कमल कुमकुमादिकी जड और कपास
थुनके अधीन हैं ॥ ३ ॥ कर्कमें कोदो, केला, दूब फल, पत्र, और
स्वामिनी है । सिंहके अधिकारमें, भुस्सी, धान्य, रस, गुड और
के चर्म हैं ॥ ४ ॥ कन्याराशिमें अलसी, मटर, कुलथी, गेहूँ, मूंग,
(मटर) हैं । तुला राशिमें उर्द, गेहूं सरसों और जौ विद्यमान
॥ ईख, शिक्यस्य द्रव्य (ईखमें पानी देनेसे जो वस्तु उत्पन्न
), लोहा, भेड, बकरीका स्वामी वृश्चिक है अश्व, लवण,

तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि । कुम्भे
कुसुमरत्नचित्राणि ॥ ७ ॥ मीने कपालसम्भवरत्ना
वज्राणि । स्नेहाश्चनैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च
श्चतुर्दशार्थायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः । व्ह्येकादश
मेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥ ९ ॥ षट्सप्तमगो हानिं
करोति शेषेषु । उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषे
॥ १० ॥ राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थि
तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥ ११ ॥ इष्टः
बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम् । तद्द्रव्याणां वृद्धि
दुर्लभत्वं च ॥ १२ ॥ गोचरपीडायामपि राशिर्ब
ग्रहैर्दृष्टः । पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्रव्यनिश्च
नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

अम्बर, अस्त्र, तिल, धान्य और मूल धनराशिमें विराजमान हैं
वृक्ष गुल्मादि और सींचनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, ईख सु
लोहा है। कुंभमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, रत्न और चि
वर्त्तमान हैं ॥ ७ ॥ कपालसम्भव रत्न (हाथीके शिरसे निकली
शिरसे निकली मणि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ अनेक रू
और मछलियाँ मीनराशिके अधीन हैं ॥ ८ ॥ जिस राशिके द
सातवें, नववें, दशवें ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो अथवा दूसरे, पां
वा एकादश स्थानमें बुध हो उस राशिमे जो द्रव्य कहे हैं उनकी
शुक्र उस राशिके छठे या सातवें स्थानमें हो, तिस राशिके द्रव्
अभिन्न राशियों में हो तो वृद्धि करते हैं, और क्रूर ग्रह उप
तीसरे, छठे, दशम या एकादश स्थान में हों तो शुभदायी हैं
और राशि में स्थित हो तो हानिकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥
जिस राशि के पीडा स्थान में अर्थात् उपचय स्थान के सिवा
स्थित हों, उस राशिके अधिकार में जितने द्रव्य हों वह सब
होजाते हैं ॥ ११ ॥ बलवान् शुभ ग्रह जिन राशियों के इष्टस्थ
चयस्थान में हों, उन राशियों के अधीन में जो जो द्रव्य हैं उन
सामर्थ्य और सुलभता होती है ॥ १२ ॥ गोचर पीडा में

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अर्घकाण्डम् ।

अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च । दृष्ट्वामावा-
ग्यामुत्पातान् पौर्णमास्यां च ॥ १ ॥ ब्रूयादर्घविशेषान् प्रति-
ं राशिषु क्रमात् सूर्ये । अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमरार्तये
ाम् ॥ २ ॥ मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यस्य संग्रहं कुर्यात् ।
मूलफसस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥ ३ ॥ मिथुनस्थे सर्व-
ान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय । षष्ठे मासे विपुलं विक्री-
(प्राप्नुयाल्लाभम् ॥ ४ ॥ कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणि-
ने विनिधाय । द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः॥५॥
े सुवर्णमणिचर्मशस्त्राणि मौक्तिकं रजतम् । पञ्चममासे लब्धि-
हेतुरतोऽन्यथा छेदः ॥ ६ ॥ कन्यागते दिनकरे चामरखरकर-

ान् और शुभ ग्रहों करके देखी जाय तो पीडा नहीं, और क्रूर ग्रह देखते हों
ससे विपरीत फल होता है ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबाद वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

ातिमासमें सब राशियें जब सूर्यमें गमन करें, अमावास्या या पूर्णिमामें परिवेष,
, परिधि, अतिवृष्टि, उल्का व दंडरूप उत्पातोंको देखकर क्रमानुसार सब विष-
ो कहना चाहिये और तिथियोंमें जो उत्पात होते हैं, वे सब उत्पात राजाओंके
गडबडीका भय प्रगट करते हैं ॥१॥ २ ॥ सूर्य मेषराशिमें जाय तो ग्रीष्मजात
का संग्रह करना उचित है. वृषराशिमें बनैले फल और मूलका संग्रह करना
ग्य है. चौथे मासमें उसमें लाभ होता है ॥३॥ सूर्य मिथुन राशिमें प्राप्त हो तो
प्रकारके रस और सब प्रकारके धान्योंका संग्रह करके छठे मासमें विक्रय करे तो
सा लाभ होता है ॥४॥ सूर्य कर्क राशिमें स्थित हो तो मधु, गन्ध, तेल, घी
शक्करकी रक्षा करनेसे अर्थात् इनके भर लेनेसे दूसरे मासमें दूना लाभ होता है
अल्पाधिक समय होनेपर कम लाभ और नाश होवे ॥ ५ ॥ सिंहराशिमें सूर्य
ो सुवर्ण, मणि, चर्म, वर्म, शस्त्र, मोती और चांदीका संग्रह करके पांचवें मासमें
तो बेचनेवालेको लाभ होता है, इसके विरुद्ध होनेसे हानि होती है ॥ ६ ॥ सूर्य

भवाजिनां क्रेता । षष्ठे मासे द्विगुणं लाभमवाप्नोति विक्रीण
तौलिनी तान्तवभाण्डं मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि । आद
न्यानि च षण्मासाद्विगुणिता वृद्धिः ॥ ८ ॥ वृश्चिकसंस्थे स
फलकन्दकमूलविविधरत्नानि । वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं
प्रयच्छन्ति ॥ ९ ॥ चापगते गृह्णीयात् कुंकुमशंखप्रवालका
मुक्ताफलानि च ततो वर्षार्द्धाद्द्विगुणतां यान्ति ॥ १० ॥ मृ
गृह्णियाद् दिवाकरे लोहभाण्डधान्यानि । स्थित्वा मासं द
भार्थी द्विगुणमाप्नोति ॥ ११ ॥ सवितरि झषमुपयाते म
कन्दभाण्डरत्नानि । संस्थाप्य वत्सरार्धं लाभकमिष्टं सम
॥ १२ ॥ राशौ राशौ यस्मिन् शिशिरमयूखः सहस्रकिरण
युक्तोऽधिमित्रदृष्टस्तत्रायं लाभको दिष्टः ॥ १३ ॥ सवित
सम्पूर्णो वा शुभैर्युतवीक्षितः शिशिरकिरणः सद्योऽर्घस्य प्रवृ
स्मृतः । अशुभसहितः सन्दृष्टो वा हिनस्त्यथवा रविः प्र
तान् भावान् बुद्धा वदेत्सदसत् फलम् ॥ १४ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं०मर्घकाण्डं नामद्विचत्वारिंशोऽध्याय

कन्याराशिमें हो तो चमर, गधे,हाथीके बच्चे और घोडोंको खरीदकर छठे म
तो दुगुना लाभ होता है ॥ ७ ॥ तुलाराशिमें सूर्य हो तो सूत व ऊनके
वस्त्र, बर्त्तन, मणि, कम्बल, कांच, पीले फूल और समस्त धान्योंका संग्र
इनका मोल फिर दूना बढ जाता है ॥ ८ ॥ वृश्चिकराशिमें सूर्य हो
मूल फल और विविध भांतिके रत्न इकठे करके दो वर्षतक रक्खे तो दु
होता है ॥ ९ ॥ सूर्य धनराशिमें हो तो कुंकुम, शंख, मूंगा, मोती और
संग्रह करना चाहिये खरीदनेसे छः मासके पीछे इनका मोल दुगुना
है ॥ १० ॥ मकर और कुम्भराशिमें सूर्य हो तो लोहा, बर्तन और
ग्रहण करना चाहिये । लाभका चाहनेवाला इन वस्तुओंको एक मास र
तो दुगुना लाभ होगा ॥ ११ ॥ मीनराशिमें सूर्य प्राप्त हो तो मूल, प
वर्त्तन और रत्नोंको ग्रहण करके छः मास रखनेके पीछे बेचे तो मन
होता है ॥ १२ ॥ जिस राशिको सूर्य या चंद्रमा प्राप्त हों और अधि
वे देखे जायँ तो उस राशिसम्बन्धी वस्तुमें लाभ करते हैं और अमा
पूर्णिमाको चन्द्रमा शुभग्रहसे युत हो या देखा जाता हो तो शीघ्र अर्घप्रवृ
जाता है । सूर्य अशुभ ग्रहसे देखा जाय या अशुभ ग्रहके साथ हो तो

अथ त्रिचत्वारिंशोध्यायः ।

इन्द्रध्वजसंपत् ।

ब्रह्माणमूचुरमरा भगवञ्छक्ताः स्म नासुरान् समरे । प्रतियोध-
ुमतस्त्वां शरण्यशरणं समुपयाताः ॥ १ ॥ देवानुवाच भग-
(क्षीरोदे केशवः स वः केतुम् । यं दास्यति तं दृष्ट्वा नाजौ
ास्यन्ति वो दैत्याः ॥ २ ॥ लब्धवराः क्षीरोदं गत्वा ते तुष्टुवुः
ाः सेन्द्राः । श्रीवत्सांकं कौस्तुभमणिकिरणोद्भासितोरस्कम् ॥ ३ ॥
पतिमचिन्त्यमसमं समन्ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम् । परमात्मान-
ादिं विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम् ॥ ४ ॥ तैः संस्तुतः स देवस्तुतोष
ायणो ददौ चैषाम् । ध्वजमसुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णां-
(॥ ५ ॥ तं विष्णुतेजोभवमष्टचक्रे रथे स्थितं भास्वति रत्नचित्रे ।
ाप्यमानं शरदीव सूर्यं ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः ॥ ६ ॥ सकिं-

इस प्रकार प्रत्येक ग्रहगत भावोंको जानकर अच्छे और बुरे फलको कहना
ाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

देवतालोगोंने ब्रह्माजीसे कहा था "हे भगवन् ! हममें इतनी सामर्थ्य नहीं है
असुरलोगोंके साथ युद्ध करें, इस कारण हे शरण देनेवाले ! उनके साथ युद्ध
के लिये हम आपकी शरण लेते हैं" ॥ १ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंसे
कि "श्रीभगवान् केशवजी क्षीरसागरमें विराजमान हैं, वह तुमको एक (झंडी)
उस केतुको देखकर फिर दैत्यलोग युद्धमें तुम्हारे सामने खडे नहीं रह
गे" ॥२॥ इस प्रकार इन्द्रके साथ वह सब देवता वर पाकर क्षीरसागरपर गये
श्रीवत्सके चिह्नसे युक्त कौस्तुभमणिकी किरणोंसे जिनकी छाती प्रकाशमान
रही है, अचिन्त्य (विचारमें न आनेके योग्य), समदर्शी सब प्राणियोंके अन्त-
वास करनेवाले, सूक्ष्म, जिनकी सीमाका परिमाण नहीं, अनादि, परमात्मा,
ति विष्णुजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३ ॥ जब इस प्रकारसे उन देवताओंने
ायणकी स्तुति की तो उन्होंने देवताओंकी देवताओंके बहुओंके मुखरूपी
लवनको सूर्य और राक्षसोंकी बहुओंके मुखरूपी कमलवनको चंद्रमाके समान
ध्वज देकर संतुष्ट किया ॥ ५ ॥ महाराज इन्द्र शरत्कालके सूर्यके समान
ाशमान, विष्णुजीके तेजसे उत्पन्न हुए, आठ पहियेदार, प्रकाशित, रत्नसे चित्रित

किणीजालपरिष्कृतेन स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन । समुच्छि
रराध्ध्वजेन निन्ये विनाशं समरेऽरिसैन्यम् ॥७॥ उपरिचरस्य
वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम् । यष्टिं तां स नरेन्द्रो विधिव
यामास॥८॥प्रीतो महेन मघवा प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति
द्वसुमन्तस्ते भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ॥९॥ मुदिताः प्रज
निमित्तैः भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः । ध्वज एव चामि
जगति फलं सदसत्॥१०॥पूजा तस्य नरेन्द्रैर्बलवृद्धिजयार्थि
पूर्वम् । शक्राज्ञया प्रयुक्ता तामागमतः प्रवक्ष्यामि ॥ ११
विधानं शुभकरणदिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्तैः । प्रास्थानिकैर्वन
वज्ञः सूत्रधारश्च ॥ १२ ॥ उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मी
चितिजाताः । धुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्लीवन्दाकयुक्ताश्च
बहुविहगालयकोटरपवनानलपीडिताश्च ये तरवः । ये

रथमें स्थित उस ध्वजको पाकर हर्षित हुए ॥ ६ ॥ किंकणियोंके समूह
माला, छत्र, घंटा, पिटक (एक प्रकारका भूषण जो ध्वजामें लगाया जा
युक्त और अति ऊंचे उस ध्वजसे महाराज इन्द्रने युद्धमें शत्रुकी सेन
किया ॥ ७ ॥ देवताओंके राजा इन्द्रने चेदिके राजा उपरिचरवसुको य
बना हुआ दंड दिया था, राजाने भली भांतिसे उस दंडकी पूजा की ॥
उत्सवसे प्रसन्न होकर इन्द्रने कहा था कि जो राजा इस उपरिचरवसु
उत्सव करेंगे वे वसुके समान वसुमान् होकर पृथ्वीमें सिद्धिके जानने
उनकी सब प्रजा संतुष्ट, भयरोगरहित और बहुतसे अन्नवाली होगी अ
घरमें बहुत नाज भरा रहेगा. यह ध्वज ही जगत्में निमित्त करके सं
असत् फलका प्रकाश करेगी ॥ ९ ॥ १० ॥ पहले इन्द्रकी आज्ञासे सेन
और जीतके चाहनेवाले राजाओं करके जिस प्रकार इन्द्रध्वजकी पूजा
सो यहांपर शास्त्रके अनुसार कहूंगा ॥ ११ ॥ उस पूजाकी विधि
शुभ करण, दिवस, नक्षत्र और मंगल मुहूर्त यात्रा करनेके योग्य हो
और सूत्रधार (बढई) को वनमें जाना चाहिये ॥ १२ ॥ फुलवाडी,
पितृवन, बमई मार्ग और चिता तथा कुबडा, खडे २ ही सूख गये हों
जिनपर बेल फैल रही हो तथा बन्दा भी हो, जिसपर पक्षियोंके बहुतसे
या हवा और आगसे जो वृक्ष पीडित हों, अथवा जिन वृक्षोंका नाम स्त्री
हो जैसे खिरनी सो ऐसे वृक्ष इन्द्रकेतुके अर्थ शुभ नहीं हैं ॥ १३ ॥ १४

स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ॥ १४ ॥ श्रेष्ठोऽर्जुनोऽश्वकर्णः प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते । एतेषामन्यतमं प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥१५॥गौरासितक्षितिभवं सम्पूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम् । विजने समेत्य रात्रौ स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मन्त्रम् ॥ १६ ॥ यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः । उपहारं गृहीत्वमेवं क्रियतां वासपर्ययः ॥ १७ ॥ पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम । ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १८ ॥ छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक् प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा परशोर्जर्जशब्दो नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ॥ १९ ॥ नृपजयदमविध्वस्तं पतनमाकुञ्चितं च पूर्वोदक् । अविलग्नं चान्यतरौ विपरीतमतस्त्यजेत्पतितम् ॥ २० ॥ छित्त्वाग्रे चतुरंगुलमष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम् । उद्धृत्य पुरद्वारं शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा ॥ २१ ॥ अरभङ्गे बलभेदो

अश्वकर्ण, प्रियक, धव और गूलर यह पांच वृक्ष श्रेष्ठ हैं। यदि इसमें कोई भी वृक्ष न हो तो और कोई वृक्ष ग्रहण करलें तो भी अच्छा है ॥ १५ ॥ गौरवर्ण या कृष्ण वर्ण पृथ्वीपर उत्पन्न हुए वृक्षकी पहले यथाविधिसे पूजा करके ब्राह्मण रात्रिके समय मनुष्यरहित वनमें जायऔर ऐसे वृक्षको छूकर यह मंत्र पढे,–"इस वृक्षपर जो प्राणी रहते हैं उनका शुभ हो, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। यह आहार ग्रहण करके वह प्राणी और कहीं वास करें। हे नगोत्तम! देवराजकी ध्वजाके लिये यह राजा तुमको पानेकी इच्छा करते हैं, तुम्हारा शुभ हो, इस पूजाको ग्रहण करो" ॥१६॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त प्रभातके समय उत्तर वा पूर्वमुख होकर वृक्षको काटे, उस समय वृक्षके काटनेसे जो जर्जर शब्द निकले तो वह अशुभ है, मनोहर और घने शब्दका निकलना शुभ है ॥ १९ ॥ विना टूटे हुए वृक्षका गिरना, टेढा न होना, दूसरे वृक्षसे लगकर न गिरे, पूर्व व उत्तर दिशाको गिरे तो राजाओंको जयदायी होता है। इन सबके अतिरिक्त गिरा हुआ वृक्ष विपरीत फलका देनेवाला है ॥ २० ॥ अग्रसे चार अंगुल मूलसे आठ अंगुल काटकर काठको जलमें डाल देना फिर वृक्षको जलसे निकाल छकड़ेके द्वारा या आदमियोंसे उठवाकर पुरके द्वारमें लाना चाहिये ॥२१॥ लानेके समय छकड़ेका आरा टूट जाय तो सेनाका भेद होता है, नेमिके टूटनेसे सेनाके नाशकी सूचना होती है। अक्ष (पहियेका धुरा) टूटने-

ग्या नाशो बलस्य विज्ञेयः । अर्थक्षयोऽक्षभङ्गे च वर्द्धकिनः
२२ ॥ भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां नागरैर्वृतो राजा । दैवज्ञसचिव-
कंचुकिविप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः ॥ २३ ॥ अहताम्बरसंवीतां यष्टिं
रन्दरीं पुरं पौरैः । स्रग्गन्धधूपयुक्तां प्रवेशयेच्छंखतूर्यरवैः ॥२४॥
धिरपताकातोरणवनमालालंकृतं प्रहृष्टजनम् । सम्मार्जितार्चित-
थं सुवेषगणिकाजनाकीर्णम् ॥ २५ ॥ अभ्यर्चितापणगृहं प्रभूत-
ण्याहवेदनिर्घोशम् । नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुषपथं नगरम्
२६ ॥ तत्र पताकाः श्वेता विजयाय भवन्ति रोगदाः पीताः ।
यदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥ २७ ॥ यष्टिं प्रवेश-
न्तीं निपातयन्तो भयाय नागाद्याः । बालानां तलशब्दे संग्रामः
त्वयुद्धे वा ॥ २८ ॥ सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा विधिवद्यष्टिं प्ररोपय-
न्त्रे । जागरमेकादश्यां नरेश्वरःकारयेच्चास्य ॥ २९ ॥ सितव-
ोष्णीषधरः पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः । जुहुयादग्निं सांवत्सरो
ामित्तानि गृह्णीयात् ॥ ३० ॥ इष्टद्रव्याकारः सुरभिः स्निग्धो

धनका नाश और अणिके टूटनसे बढईका नाश हो जाता है ॥ २२ ॥ भाद्रमासके
क्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें श्रेष्ठ वेषधारी नगरवासी, दैवज्ञ, मंत्री, कंचुकी, विप्रादिकोंके
थ राजा अखंडित वस्त्रोंसे ढके हुए और माल्य गन्ध धूपयुक्त इन्द्रध्वजको शंख
हीके शब्दके साथ पुरवासियोंसे उठवाकर पुरमें प्रवेश कराना चाहिये ॥ २३ ॥
२४ ॥ उस काल वह पुर मनोहर पताका तोरण और वनमालासे सजाया
गा हो, वहांके सब मनुष्य हर्षित हो, भली भांतिसे झाड बुहार और जल छिडके
ाहोंसे युक्त व सुन्दर वेषवाली वेश्याओंसे सजाधजा हो ॥ २५ ॥ सब दुकानें
ी सजाई हों, चारों ओर पुण्य शब्द और वेदध्वनि होती रहें ॥ नगरके चौराहे,
, नचनइये और संगीतके जाननेवालोंसे भरे रहें ॥ २६ ॥ ऐसे समय श्वेतपताका
ाना विजयका कारण है, पीली पताका रोगदायी और अनेक रंगवाली पताका
यकी देनेवाली है, लाल रंगकी पताका शत्रुशस्त्रके कुपित होनेके कारण होती है
२७॥ दंडको नगरमें प्रवेश करानेके समय जो हस्ती आदि कोई जीव उसको गिरा
तो भयका कारण होता है । जो बालकगण उस समय तालियाँ बजावें या किसी
णीका युद्ध होवे तो संग्रामका होना सूचित होता है ॥ २८ ॥ फिर बढईको
ाहिये कि दंडको विधिविधानसे छीलकर खरादपर चढावे, राजाको उचित है कि
कादशीके दिन जागरण करे ॥ २९ ॥ श्वेत वस्त्र और पगडी बांधे हुए राजाका
ोहित ऐन्द्र और वैष्णवमंत्रसे अग्निमें होम करे । दैवज्ञको उचित है कि संवत्सरके
ेमित्त (शकुन) सबको बतावे ॥ ३० ॥ अभिलाषा किये हुए द्रव्यके समान

ऽनलोऽर्चिष्मान् । शुभकृदतोऽन्यो नेष्टो यात्रायां विस्तरो-
हितः ॥ ३१ ॥ स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः स्निग्धः
क्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य । गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां
ां समुद्ररसनां वशगां करोति ॥ ३२ ॥ चामीकराशोककुरण्ट-
जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ । न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं
ति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥ ३३ ॥ येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां
स्वनोऽग्निर्यदि वापि दुन्दुभेः । तेषां मदान्धेभघटाविघट्टिता
न्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥ ३४ ॥ ध्वजकुम्भहयेभभूभृता-
रूपे वशमेति भूभृताम । उदयास्तधराधराधरा हिमवद्विन्ध्यप-
रा धरा ॥ ३५ ॥ द्विरदमदमहीसरोजलाजैर्घृतमधुना च हुता-
सगन्धे । प्रगतनृपशिरोमणिप्रभाभिर्भवति पुरश्छुरितेव भूनृ-
। ॥ ३६ ॥ उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ शुभाशुभं सप्तमरीचि-

रधारी, सुगन्धित, चिकना, घना और लपटदार अग्नि शुभकारी है इसके
य और अग्नि वांछित फलका देनेवाला नहीं है । इसका वर्णन विस्तारसहित
ात्रामें किया है ॥ ३१ ॥ देवताके लिये अग्निमें घृतकी आहुतिका देना,
पके अन्तमें होमके अग्निका आपही आप उजली शिखावाला, चिकना, दक्षि-
ासे घेरनेवाला हो तो गङ्गायमुनाके जलरूपकी सुन्दर हार पहरनेवाली और
रूपी तगडीको जिसने पहर रक्खी है ऐसी पृथ्वी राजाके वशमें हो जायगी
॥ सुवर्ण, अशोक, कुरंटक, पद्म, वैदूर्य या नीले कमलके समान रंगवाला
हो तो अन्धकार रत्नकी ज्योतिसे पीडीत होकर राजाके गृहमें अवकाशको
ाप्त होता अर्थात् अन्धकार टिका नहीं रहता ॥ ३३ ॥ जो अग्निमें समुद्र, मेघ
या नगाडेके समान शब्द हो तो जिस समय वह राजा युद्ध करनेको चले
समय सब दिशाएँ मस्त हाथियोंके समूहसे भरी हुई अन्धकारके समान काले
ी दिखाई देती हैं ॥३४॥ जो अग्नि ध्वज, घडा, घोडा और हाथियोंके समान
ो उदय व अस्तपर्वतकी धारण करनेवाली हिमालय और विन्ध्यपर्वतरूप
ारण करनेवाली पृथ्वी राजाके वशमें हो जाती है ॥ ३५ ॥ हाथीका मद,
पृथ्वी, पद्म (कमल), खीलें, घी या शहदके समान अग्निमें सुगन्धी हो
णाम करते हुए राजाओंकी शिरके मुकुटमें जडी हुई मणियोंकी
े द्वारा राजसभा व्याप्त हो जाती है ॥ ३६ ॥ इन्द्रध्वजको
के समय अग्निके स्वरूपसे जो शुभाशुभ कहे गये, वह जन्म, यज्ञ ग्रह

रूपैः । तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियात्राविवाहकालेष्वपि चिन्त
॥ ३७ ॥ गुडपूपपायसाद्यैर्विप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च । श
द्वादश्यामुत्थाप्योऽन्यत्र वा श्रवणात् ॥ ३८ ॥ शक्रकुमार्यः
प्राह मनुः सप्त पंच वा तज्ज्ञैः । नन्दोपनन्दसंज्ञे पादे
चोच्छ्रायात् ॥ ३९ ॥ षोडसभागाभ्यधिके जयविजयते ह
धरे चान्ये । अधिका शक्राजनित्री मध्येऽष्टांशेन चैतासाम्
प्रीतैः कृतानि विबुधैर्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः"। तानि
दद्यात् पिटकानि विचित्ररूपाणि ॥ ४१ ॥ रक्ताशोकनिकाश
रस्त्र विश्वकर्मणा प्रथमम् । रसना स्वयम्भुवा शंकरेण
कवर्णधरी ॥ ४२ ॥ अष्टास्रि नीलरक्तं तृतीयमिन्द्रेण
दत्तम् । असितं यमश्चतुर्थं मसूरकं कान्तिमदयच्छत् ॥
माञ्जिष्ठाभं वरुणः षडस्रि तत्पंचमं जलोर्मिनिभम् ।
केयूरं षष्ठं वायुर्जलदनीलम् ॥ ४४ ॥ स्कन्द
केयूरं सप्तममददद्धजायवहुचित्रम् । अष्टममन

शांति यात्रा और विवाहके समयमें इनका विचार करना चाहिये
गुडपिट्टी, खीरादि और दक्षिणासे ब्राह्मणोंकी पूजा करके द्वादशीको श्रवण
और तिथिको श्रवणनक्षत्रके समय ध्वजाको उठावे । ध्वजाके ऊपर पाँच
शक्रकुमारी बनावे ऐसा मनुजी महाराजने कहा है । जितनी ऊंचाई ध्व
उसके चौथाई अंशके समान नन्दा और आधेके तुल्य उपनन्दा
शक्रकुमारी बनावे, सोलहवें भागसे कुछ अधिक जय और विजयनामक दे
बनावे और बीचमें आठ अंशसे अधिक इन्द्रमाता बनावे, पहले दे
हर्षित होकर इन्द्रध्वजको भूषण दिये थे इसमें वह समस्त भूष
पिटक क्रमानुसार दान करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ विश्व
लाल अशोकके समान चौकोन अलंकार (गहना) पहले
दूसरा अनेकरंगवाली तगडी ब्रह्मा और शिवजीने दी, इंद्रजीने आठ कोनव
और लालरंगका तीसरा भूषण इन्द्रध्वजको दिया, यमराजने कान्तिमान
नाम चौथा भूषण इन्द्रध्वजको दिया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तिसके उपरान्त
जीने मंजीठके समान कान्तिमान् जलतरंगके समान छः कोणवाला पांच
और पवन देवताने मोरके समान रंगवाला बादलके समान नीला छः
नामक गहना इन्द्रध्वजको दिया ॥ ४४ ॥ स्वामिकार्तिकने अनेक चित्रयु
केयूर नामक सातवां गहना इन्द्रध्वजको दिया, होमके अग्निने ज्वाला

लासंकाशं हव्युभुग्दत्तम् ॥ ४५ ॥ वैदूर्यसदृशमिन्दुर्नवमं ग्रैवे
ददावन्यत् । रथचक्राभं दशम सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम् ॥ ४
एकादशमुद्दंशं विश्वेदेवाः सरोजसंकाशम् । द्वादशमपि च नि
मुनयो नीलोत्पलाभासम् ॥ ४७ ॥ किञ्चिदध ऊर्ध्वं निर्णतमु
विशालं त्रयोदशं केतोः । शिरसि बृहस्पतिशुक्रौ लाक्षारसस
ददतुः ॥ ४८ ॥ यद्यद्येन विनिर्मितममरेण विभूषणं ध्वजस्य।
तत्तत्तद्दैवत्यं विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः ॥ ४९ ॥ ध्वजपरिमाणत्र
परिधिः प्रथमस्य भवति पिटकस्य । परतः प्रथमात्प्रथमादष्ट
हीनानि ॥ ५० ॥ कुर्यादहनि चतुर्थे पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्र
मनुना चागमगीतान् मन्त्रानेतान् पठेन्नियतः ॥ ५१ ॥ हरा
वस्वतशक्रसोमैर्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः । महर्षिसंघैः सदिगप
भिः शुक्राङ्गिरःस्कन्दमरुद्गणैश्च ॥ ५२ ॥ यथा त्वमूर्जस्कर
रूपैः समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः । तथेह तान्याभरणानि
शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण ॥ ५३ ॥ अजोऽव्ययः शाश्वत

आठवां अलंकार दिया ॥४५॥ चंद्रमाने वैदूर्यमणिके समान, गरदनमें पहरनेके
नवम अलंकार और त्वष्टा (सूर्य) ने रथके पहियेके समान प्रभायुक्त दशवां
इन्द्रध्वजको दिया॥४६॥विश्वेदेवताओंने कमलके समान ग्यारहवां अलङ्कार, मुनि
नीले कमलके समान निवंशनामक बारहवां अलंकार और बृहस्पति व शुक्रने
ऊपर कुछ नीचेसे ऊपर बना हुआ,झुका हुआ विशाल महावरके रंगके समान
अलङ्कार इन्द्रध्वजके मस्तकपर चढाया ॥४७॥४८॥ इन्द्रध्वजके लिये जिस दे
जो जो गहने बनाये उन गहनोंके मालिक वही देवता हैं यह पंडित लोगोंको ज
चाहिये ॥४९॥ प्रथम पिटककी परिधि ध्वजाके परिमाणका एक तिहाई हिस
फिर पीछेकी समस्त परिधि क्रमानुसार पहलेकी परिधिसे अष्टमांश न्यून हैं ॥
शास्त्रका जाननेवाला पुरुष चौथे दिन मंत्रसे इन्द्रध्वजको पूरण करे और आ
मनुजीके कहे हुए इन मंत्रोंको पढे॥५१॥ महादेव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र कुबेर,
वरुण, महर्षिगण, सब दिशाएँ, अप्सराएँ, शुक्र, अंगिरा,कार्तिकेय, वायु और
देवता इन करके तेजकारी, बहुरूप, उदार भूषणोंसे जिस प्रकार आप पूजित हु
देव ! इस समय प्रसन्न होकर उन सब गहनोंको ग्रहण करो, हे देव ! तुम जन्म

रूपो विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः । त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः सहस्रशीर्षा शतमन्युरीड्यः ॥ ५४ ॥ कविं सप्तजिह्वं त्रातारम् इन्द्रमवितारं सुरेशम् । ह्वयामि शक्रं वृत्रहणं सुषेणमस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु ॥ ५५ ॥ प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे । पठेदिमान्नृपतिः सोपवासो मन्त्राञ्छुभान् पुरुहूतस्य केतोः ॥ ५६ ॥ छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्रैर्विचित्रमाला-कदलीक्षुदण्डैः । सव्यालसिंहैःपिटकैर्गवाक्षैरलंकृतं दिक्षु च लोक-पालैः ॥ ५७ ॥ अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं सुश्लिष्टयन्त्रार्गल-पादतोरणम् । उत्थापयेद्वक्ष्म सहस्रचक्षुषः सारद्रुमाभग्नकुमारि-कान्वितम् ॥ ५८ ॥ अविरतजनरावं मङ्गलाशीःप्रणामैः पटुपट-हमृदङ्गैः शंखभेर्यादिभिश्च । श्रुतिविहितवचोभिः पापठद्भिश्च विप्रैरशुभरहितशब्दं केतुमुत्थापयीत ॥ ५९ ॥ फलदधिघृतलाजा-क्षौद्रपुष्पाग्रहस्तैः प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टुवद्भिश्च पौरैः धृत-मनिमिषभर्तुः केतुमीशः प्रजानामरिनगरनताग्रं कारयेद्विड्वधाय ॥ ६० ॥ नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्पमध्वस्तमाल्यपिटका

विकाररहित,नित्य और एकरूप हो, तुम ही अनादि पुरुष और ग्रह हो, तुम ही,यम तुम ही संहारकारी, तुम ही अग्नि, तुम ही हजार मस्तकवाले, तुम ही पूज्य हो,कवि सप्तजिह्व,त्राता, सुरपति,अविता,वृत्रासुरके मारनेवाले शक्र और सुषेण नामक तुमको मैं आह्वान करता हूँ, हमारे सब वीर उत्तरमें विराजमान अर्थात् जयी हों ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥५४ ॥५५ ॥ इन्द्रध्वजका पूर्ण करना, उडाना, प्रवेश कराना, स्नान, माला पहराना और विसर्जनके समय राजा उपवास करके इन शुभ मन्त्रोंको पढे ॥ ५६ ॥ छत्र, ध्वज, आदर्शफल, अर्द्धचन्द्र, विचित्र माला, कदली, गन्ना, काला सर्प, सिंह, पिटक, गवाक्ष और दिक्पालोंको इस ध्वजमें चारों ओर बनावे ॥ ५७ ॥ अखंडित वृक्षका बना हुआ, अखंडित रस्सीसे बँधा हुआ, कुमारिका जिसमें बनी हुई हों; यंत्र, अर्गल, पाद और तोरणयुक्त हजार नेत्रवाले इन्द्रका जो चिह्न है ऐसे ध्वजको राजा उठावे ॥ ५८ ॥ मङ्गल आशीर्वाद, प्रमाण ढोल, मृदङ्ग,शंख, भेरी आदिका मधुर शब्द और वारंवार पढते हुए ब्राह्मणोंके वेदमें कहे हुए वाक्यसे मनुष्योंका शब्दसे युक्त और श्रेष्ठ शब्दवाले केतुको उठावे ॥ ५९ ॥ फल, दही, घी; खीलें, शहद और फूलोंको पहले हाथमें धारण करके मस्तक झुकाकर प्रणाम करते २ स्तुति पढनेवाले पुरवासियों करके इन्द्रध्वज धारण होनेपर शत्रुवधके लिये उसके शत्रुनगरके तरफ उस ध्वजके अग्रभागको प्रजापति (राजा) झुकावे ॥ ६० ॥ जो ध्वज बहुत शीघ्र खडा हो जाय, कांपे नहीं, माला, पिटकादि भूषण उसके

दिविभूषणं च। उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्यात् तच्छ
न्ति भिर्नरपतेः शमयेत्पुरोधाः ॥ ६१ ॥ क्रव्यादकौशिककपोतव
काककंकैः केतुस्थितैर्महदुशन्ति भयं नृपस्य। चाषेण चापि युः
राजभयं वदन्ति श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ॥ ६२
छत्रभङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्करान्मधु करोति निलीनम्। हन्ति
चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ॥ ६३
राज्ञीविनाशं पतिता पताका करोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः। मध्य
ग्रमूलेषु च केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ॥ ६४
धूमावृते शिखिभयं तमसा च मोहो व्यालैश्च भग्नपतितैर्न भ
न्त्यमात्याः। ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्या भङ्गे
बन्धकिवधः कथितः कुमार्याः ॥ ६५ ॥ रज्जूसंगच्छेदने बाल
पीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः। यद्यत्कुर्युर्बालकाश्चारणा
तत्तत्तादृग्भावि पापं शुभं वा ॥ ६६ ॥ दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चि

न गिरें तो उसका हितकारी होता है, इसके सिवाय और भांतिका उठाना अशु
है। राजाके पुरोहितको चाहिये कि शांति करके सब विघ्नोंको दूर करे ॥ ६१
मांसको खानेवाले पक्षी, उल्लू, कबूतर, काग, गिद्ध जो इन्द्रध्वजपर बैठें
राजाको अत्यन्त अशान्ति होती है और इन्द्रध्वजपर नीलकण्ठ बैठे तो युवराज
भय कहा जाता है। बाजपक्षीका इन्द्रध्वजपर गिरना नेत्रभयको उत्पन्न करता
॥ ६२ ॥ छत्र भंग होकर ध्वजका गिरना राजाओंकी मृत्युको प्रकट करता है
और इन्द्रध्वजपर शहदकी मुहाल लगा दें तो तस्करोंकी मृत्यु होती है। ध्वज
उल्का गिरे तो पुरोहितकी और वज्र गिरे तो राजाकी रानीकी मृत्यु होती है ॥६
पताकाके गिरनेसे रानीका नाश और पिटकके गिरनेसे सूखा पडता है। बिचल
ऊपरका और जडका भाग इन्द्रध्वजका टूट जाय तो क्रमसे मंत्री राजा और पु
वासियोंका नाश करता है ॥ ६४ ॥ इसपर धूम छा जाय तो मोह होता है, बी
मेंसे टूटकर गिर जाय तो मंत्रियोंका अभाव हुआ करता है। उत्तरादि च
दिशाओंमें टूटकर गिरे तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको ग्लानि उत्
करता है। कुमारियां कट फट जायँ तो व्यभिचारिणी स्त्रियां मरती हैं ॥६५॥ इन्
ध्वज उठानेके समय उसके रास्ते कहीं अटक जायँ तो बालकोंको पीडा होती है
तोरणकी बगलमें रक्खे हुए काठके टूट जानेसे राजमाताको पीडा होती, बाल
या दूत इन्द्रध्वजके समीप जैसी २ चेष्टा करें वैसा ही (अशुभ कार्य होनेपर
पापकर या (शुभ कार्यमें) शुभकारी होता है ॥६६॥ उठे हुए और पूजित ध्वज

समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे । प्रकृतिभिः सह लक्ष्म वि
लभिदःस्वबलाभिविवृद्धये ॥ ६७ ॥ उपरिचरवसुप्रवर्तितं
भिरप्यनु सन्ततं कृतम् । विधिमिममनुमन्य पार्थिवो न
भयमाप्नुयादिति ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० मिन्द्रध्वजसम्पन्ना
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

नीराजनम् ।

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे कमलनाभे । उ
यति तुरङ्गमकरिनरनीराजनं कुर्यात् ॥ १ ॥ द्वादश्यामष्टम्य
कशुक्लस्य पंचदश्यां वा । आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराज
शान्तिम् ॥ २ ॥ नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदार
षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥ ३ ॥ सज
शाखाककुभमयं शान्तिसद्म कुशबहुलम् । वंशत्रिनिर्मितम
जचक्रालंकृतद्वारम् ॥४॥ प्रतिसरया तुरगाणां भल्लातकशा

भली भांतिसे चार दिन पूजा कर पांचवें दिन प्रजाको साथ ले राजा
ध्वजको विसर्जन करे तो राजाकी सेनाका बल बढ़ता है ॥६७॥ उपरिचर
चलाई हुई, फिर राजाओंके द्वारा सदा की हुई इस विधिसे जो राजा इ
इन्द्रध्वजकी पूजा करेंगे, वे शत्रु लोगोंसे भयको प्राप्त नहीं होंगे ॥ ६८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुर
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्या

बादल जिसकी आँखोंके पलक हैं, चंद्रमा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं
वान् कमलनाभ जब नेत्र खोलते हैं अर्थात् जागते हैं तब घोडे, हाथी और म
नीराजन करना चाहिये ॥ १ ॥ कार्तिकके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, द्वाद
अष्टमीमें या आश्विनमासमें नीराजन संज्ञाकी शान्ति करे ॥ २ ॥ नगरक
पूर्वदिशामें श्रेष्ठ भूमिके ऊपर अच्छे काठका सोलह हाथ ऊँचा और
चौड़ा एक तोरण बनावे ॥ ३ ॥ विजयसारका वृक्ष, गूलर और अ
काठका शांतिग्रह बनावे, उसमें बहुतसे कुश भी रक्खे हों । इसके द्वारमें ब
हुए मत्स्य, ध्वज और चक्र लगाये जायँ ॥ ४ ॥ शान्तिग्रह और सबके

द्धार्थान् कण्ठेषु निबध्नीयात पुष्ट्यर्थं शान्तिगृहगानाम् ॥ ५ ॥
र्यवरुणविश्वदेवप्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः । सप्ताहं शान्तिगृहे
र्यच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥ ६ ॥ अभ्यार्चिता न परुषं वक्तव्या
पि ताडनीयास्ते । पुण्याहशंखतूर्यध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः
७ ॥ प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि कुर्यादुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणतः । कुश-
रावृतमाश्रममग्निं पुरतोऽस्य वेद्यां च ॥ ८ ॥ चन्दनकुष्ठसमङ्गा-
रितालमनःशिलाप्रियंगुवचाः । दन्त्यमृताञ्जनरजनीसुवर्णपुष्पा-
मन्थाश्च ॥ ९ ॥ श्वेतां सपूर्णकोशां कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः ।
गकुसुमं स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च ॥ १० ॥ कलशेष्वेतान्
श्य सम्भारानुपहरेद्बलिं सम्यक् । भक्ष्यैर्नानाकारैर्मधुपायस-
वकप्रचुरः ॥ ११ ॥ खदिरपलाशोदुम्बरकाश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः
मिधः । स्रुक्कनकाद्रजताद्वा कर्त्तव्या भूतिकामेन ॥ १२ ॥
भिमुखः श्रीमान् वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा । तिष्ठेदनल-
पे तुरगभिषग्दैववित्सहितः ॥ १३ ॥ यात्रायां यदभिहितं

घोडोंके गलेमें प्रतिसिरामंत्रसे भिलावा, शहीके धान्य, कूठ और सरसोंका
ना उचित है ॥ ५ ॥ सूर्य, वरुण, विश्वेदेव, प्रजापति, इन्द्र और विष्णुजीके
से शान्तिगृहमें एक सप्ताहतक घोडोंकी शान्ति करे ॥ ६ ॥ वे घोडे पुण्याह,
भेरीध्वनि और गीतध्वनिसे भयरहित और पूजित हों, कठोर वचनसे या
किसी प्रकारसे डराये धमकाये न जावें ॥ ७ ॥ जब आठवां दिन प्राप्त हो तो
और चीरसे ढकी हुई आश्रमकी अग्निको तोरणकी दक्षिण ओरसे उत्तरकी
वेदीके ऊपर स्थापन करे ॥ ८ ॥ चन्दन, कूठ, मंजीठ, हरिताल, मैनशिल,
ी, वच, अमृत, अंजन, हलदी, सुवर्ण, फूल, गनियारी ॥९॥ सफेद फटकरी,
ोशा, कुटकी, त्रायमान, सहदेवी बूंटी, श्वेतवर्ण पूर्णकोष, नागकेशर, कौंच,
र, और सोमवल्ली ॥१०॥ यह सब वस्तु बराबर लेकर कलशोंमें डाले और
ा मधु खीर, यावकादि अनेक भांति खानेके पदार्थोंके साथ भलीभांति बलि
११॥ खैर, ढाक, गूलर, गम्भारी और पीपलके काठकी समिधा बनावे,
ते चाहने वालेको सोने या चांदीका स्रुवा बनाना चाहिये ॥ १२ ॥ व्याघ्रके
पर स्थित हो पूर्वको मुख किये श्रीमान् राजा अश्व, वैद्य और दैवज्ञ लोगोंके
अग्निके समीप बैठे ॥ १३ ॥ ग्रहयज्ञकी विधिमें यात्राके विषयमें और महेन्द्र
विषयमें वेदी, पुरोहित और अग्निके लक्षण जो कहे हैं वे सब इस विधानमें

अद्यज्ञविधा महेन्द्रकेतौ च । वेदी पुरोहितानललक्षण
वधार्यम् ॥१४॥ लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदवरं चै दीक्षिं
अहतसिताम्बरगन्धस्रग्धूपाभ्यर्चितं कृत्वा ॥१५॥ अ
मूलं समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनैर्वाचा वादित्रशंखपुण्याहनि
तदिगन्तम् ॥१६॥ यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः स
स जयति तदा नरेन्द्रः शत्रूनचिराद्विना यत्नात् ॥१७
राज्ञः परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम् । यात्रायां व्याख्य
विचिन्त्यं यथायुक्ति ॥ १८ ॥ पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात
वाजिने स यदि जिघ्रेत् । अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीते
भिहितः॥१९॥ कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्यौदुम्बरीं स्पृ
शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ॥ २० ॥ श
विवृद्धये कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः । मृण्मयमरिं वि
लेनोरःस्थले विप्रः ॥ २१ ॥ खलिनं हयाय दद्यादभिम
हितस्ततो राजा । आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजि
॥ २२ ॥ मृदङ्गशंखध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामे

भी जानने चाहिये ॥ १४ ॥ उत्तम लक्षणवाले हाथी, घोडेको दीक्षा
नवीन वस्त्र पहिराय फूलोंके हार और गंध धूपादिसे पूजन करे ॥
वचन कह उसको समझाते बुझाते धीरे २ अनेक प्रकारके बाजे, शं
शब्दोंसे जिसकी ध्वनि दिशामें भर गई है ऐसे आश्रमतोरणमूलके स
लावे ॥ १६ ॥ जो लाया हुआ घोडा पहले दायाँ चरण उठाकर खड
राजा शीघ्र और विना परिश्रमके शत्रुओंको जीत लेगा, परन्तु अश्वके
राजाको भय होता है. हाथी, घोडोंकी बाकी चेष्टाका फल जो या
है सो यहांपर यथायुक्तिसे विचारना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥ पुरो
कर अश्वको भोजन करनेके लिये पिण्ड दे और घोडा उसको सूंघ ले
कर ले तो जयदायी होता है. इससे विपरीतका होना अशुभ कहा
गूलरकी शाखा कलशके जलसे भिगोकर राजा और हाथियोंसे युक्त
घोडोंकी शान्तिके लिये पौष्टिकमंत्रसे पुरोहित या ब्राह्मण स्पर्श करे
वृद्धिके लिये अभिचारके मंत्र पढ बारंबार शान्ति करे, पुरोहितको
मृत्तिकाकी शत्रुमूर्त्ति बनाय शूलसे उसकी छातीको फाडे ॥ २० ॥
हित मंत्र पढकर लगामको घोडेके मुखमें दे, फिर राजा उस अश्व
नीराजित होकर सेनाके साथ उत्तर दिशामें जाय ॥ २२ ॥ वह मृद

ारुतः। शिरोमणिव्रातचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन्विवस्वानिव तोय-
त्यये ॥ २३ ॥ हंसपंक्तिभिरितस्ततोऽद्रिराट् सम्पतद्भिरिव
कुचामरैः। मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः॥२४॥
कवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः। भूरिरत्नकिरणा-
रञ्जितः शक्रकार्मुकरुचं समुद्वहन् ॥ २५ ॥ उत्पतद्भिरिव खं तुर-
मैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम्। निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः शक्र-
परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥ २६ ॥ सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सित-
गुष्णीषविलेपनाम्बरः। धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवे-
ुलले भृगोः सुतः ॥ २७ ॥ सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रह-
ांशुभासुरम्। निर्विकारमरिपक्षभीषणं यस्य सैन्यमचिरात्स गां
येत् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनविधिर्नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

र मद झरते हुए हर्षित हाथी की मदगन्ध से सुगन्धित हुई, पवन के सेवन से
त हो मुकुट में जडी हुई मणियों की चञ्चल कान्ति से बादल फट जाने पर
के समान प्रकाशमान मूर्ति धारण करके शुद्ध गन्धयुक्त पवन के पीछे बहते
गिरनेवाले श्वेत चामर से हंसावली से शोभायमान पर्वतराज के समान कल्पाय-
, सुन्दरमाला और सुन्दर वस्त्र पहरकर शोभित हो ॥ २३ ॥ २४ ॥ अनेक
के मणि और हीरों से भूषित, मुकुट, कुण्डल और बाजू धारण किये हुए राजा
काल में अनेक रत्नों की किरणों से रंगे हुए इन्द्रधनुष के समान सुन्दर रूप
ण करके आकाश में मानो उडते हुए घोडे, धरणी के विदारण करनेवाले हाथी
शत्रुको विजय करने वाले मनुष्योंके साथ, देवताओं से घिरे हुए इन्द्र के
ान गमन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ अथवा हीरा, मोती, जडी श्वेतमाला, पगडी,
दना या चंदनादि लगाय, वस्त्र पहर, छत्र धारण कर हाथी पर सवार हो, मेघ
ऊपर चन्द्रमा के नीचे विराजमान शुक्र के समान गमन करे ॥ २७ ॥ उस
में जिसकी सेना हर्षित हो और हर्षित हाथी, घोडे और मनुष्यों से युक्त है,
ल अस्त्र शस्त्रों की कान्तिसे प्रकाशमान है, विकाररहित और शत्रुपक्षको भय
ानेवाली होती है वह राजा शीघ्र ही पृथ्वीको जीत लेनेमें समर्थ होता है॥२८॥

। श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्त-
-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ।

खञ्जनदर्शनम् ।

खञ्जनको नामायं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे । प्रो
यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥ स्थूलोऽभ्यु
कण्ठः कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः । आकण्ठमुखात् कृष्णः स
पूरयत्याशाम् ॥ २ ॥ कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः सितकरटान्त
रिक्तकृद्रिक्तः । पीतो गोपीत इति क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ॥
अथ मधुरसुरभिफलकुसुमतरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु । क
गभुजगमूर्ध्नि प्रासादोद्यानहर्म्येषु ॥ ४ ॥ गोगोष्ठसत्समागम
त्सवपार्थिवद्विजसमीपे । हस्तितुरङ्गमशालाच्छत्रध्वजचाम
॥ ५ ॥ हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु । द
ध्रधान्यकूटेषु च श्रियं खञ्जनः कुरुते ॥ ६ ॥ पंके स्वाद्वन्ना
रससम्पच्च गोमयोपगते शाद्वलगे वस्त्राप्तिः शकटस्थे देशवि
॥ ७ ॥ गृहपटलेऽर्थभ्रंशो वध्रे बन्धोऽशुचौ भवति रोगः

खञ्जन नामक पक्षीके प्रथम दर्शन से जिन फलोंका होना मुनिलोगों ने
वह समस्त फल इस समय कहे जाते हैं ॥ १ ॥ स्थूल कंठके, ऊंचे और
गलेवाले खञ्जनको "भद्र" कहते हैं यह खञ्जन मङ्गलकारक है और मुखसे
काला हो तो इसका "सम्पूर्ण" नाम है । यह आशा का सम्पूर्ण करने वाला
होता है ॥ २ ॥ जिसके गलेमें काले बिन्दुके अन्तपर सफेदी और कुसुम्भी
उसको "रिक्त" कहते हैं, इसका फल निष्फल होता है, पीले रंग का
"गोपीत" नामवाला है, इसका दर्शन क्लेशदायी है ॥ ३ ॥ मधुर सुगन्धित
और कुसुम युक्त वृक्ष, पवित्र जलाशय, हाथी, घोडे और सर्पों के मस्तक,
फुलवाड़ियें, अटारियें, गोठ, श्रेष्ठ समागम, यज्ञ, उत्सवगृह, राजा और द्विज
के निकट रहना, हस्तिशाला, अश्वशाला, छत्र, ध्वज और चामर, सुवर्ण
वस्त्र, पद्म, उत्पल, पूजित और गोबर आदि से लिपे हुए स्थान, दहीके पा
धान्य के ढेरपर जो खञ्जन दिखाई दे तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ ५
कीचड में खञ्जन बैठा हो तो स्वादिष्ट अन्न मिलता है, गोबर पर बैठा हो त
सम्पत्ति, हरी दूबपर बैठा होतो वस्त्र की प्राप्ति और शकट पर स्थित
देश का नाश होता है ॥ ७ ॥ घर की छत्त पर जब खञ्जन बैठा हो तो

ञाविकानां प्रियसंगममावहत्याशु ॥ ८ ॥ महिषोष्ट्रगर्दभास्थि-
शानगृहकोणशर्कराद्रिस्थः । प्राकारभस्मकेशेषु चाशुभो मरण-
भयदः ॥ ९ ॥ पक्षौ धुन्वन्नशुभः शुभः । पिबन् वारि निम्नगा-
स्थः । सूर्योदयेऽथ शस्तो नेष्टफलः खञ्जनोऽस्तमये ॥ १० ॥
राजने निवृत्ते यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम् । पश्येत्तया गत-
क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥ ११ ॥ तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति
स्मिन् यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचः। अङ्गारमप्युपदि-
न्ते पुरीषणेऽस्य तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम् ॥ १२ ॥
।विकलविभिन्नरोगितः स्वतनुसमानफलप्रदः खगः । धनकृद्-
निलीयमानको वियति च बन्धुसमागमप्रदः ॥ १३ ॥ नृपति-
। शुभं शुभप्रदेशे खमवलोक्य महीतले विदध्यात् । सुरभिकु-
धूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम् ॥ १४ ॥ अशुभ-
पे विलोक्य खञ्जनं द्विजगुरुसाधुसुरार्चने रतः । न नृपतिरशुभं

होता है, छिद्रपर बैठा हो तो बन्धन और अपवित्रस्थानमें दिखाई देनेसे
होता है, बकरी भेडादिके पलनेके स्थानपर बैठा हो तो शीघ्र प्रिय मनुष्यसे
गप हो ॥ ८ ॥ भैंस, ऊंट, गधा, हड्डी, श्मशान, घरका कोना, शर्करा, पर्वत,
गर, भस्म और केशमें स्थित हो तो अशुभकारी और मरणभयदायी है ॥ ९ ॥
पंखोंका फटकानेवाला खञ्जन अशुभकारी होता है, नदीमें जल पीता हुआ
तो शुभकारी है । सूर्योदयके कालमें खञ्जनका दर्शन श्रेष्ठ है और अस्त समयमें
फलकी प्राप्ति नहीं होती है ॥ १० ॥ नीराजन हो जानेपर जिस
के मुखसे सन्मुख गमन करता हुआ खञ्जन दिखाई दे और राजा उस
की ओर जाय तो शीघ्र ही उसके शत्रु उसके वशमें हो जाते हैं ॥ ११ ॥
स्थानमें खञ्जन मैथुन करता है वहांपर निधिकी प्राप्ति होती है, जहांपर खञ्जन
करे उस पृथ्वीके तले कांच रहता है, जहांपर विष्ठा त्याग करे वहां उसके
कोयला रहता है । इस कौतुककी जाँच करनेके लिये पृथ्वीको खोदना
हिये ॥१२॥ मृतक, विकल अलग प्रकारका या रोगयुक्त खञ्जन पक्षी अपने शरी-
अनुसार फल दिया करता है, आकाशमें उडता हुआ दिखाई देनेसे धनकारी
भाई बंधुसे मिलापका करनेवाला होता है ॥ १३ ॥ राजा भी शुभ देशमें
खञ्जनको देखकर सुगन्धित फूल और धूपयुक्त शुभ वन्दन करनेके योग्य
पृथ्वीपर दे तो समस्त मङ्गलकी वृद्धि होवे ॥ १४ ॥ द्विज, गुरु, साधु और
ताओंके पूजनमें रत राजा अशुभ खञ्जन देखकर भी जो एक सप्ताहतक

समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ॥ १५ ॥ अ
प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषे । दिक्स्थानमूर्तिलग्
न्तदीप्तादिभिश्चोह्यम् ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खञ्जनदर्शनं नाम
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

उत्पातलक्षणम् ।

यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये । तेषां संक्ष
प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ॥ १ ॥ अपचारेण नराणामुपसर्गः पा
याद्भवति । संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्तदुत्पाताः ।
मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान् । तत्प्रति
नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत॥२॥दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घात
परिवेषाः । गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत् ।

मांसका भोजन नहीं करते, उनको अशुभ फलकी प्राप्ति नहीं होती
खञ्जनके प्रथम दर्शनका फल एक वर्षमें होता है, परन्तु जो इस समयके
फिर खञ्जनका दर्शन हो तो उसी दिन सूर्यास्त होनेतक उसका फल मिल
है परंतु पंडित लोग खञ्जनके देखनेके सम्बन्धमें, समस्त फलाफल, स्थान
लग्न, नक्षत्र और शान्ति दीप्तादि दिशा आदि जानकर निर्णय करे॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
बादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

महर्षि गर्गजीने जिन उत्पातोंका वर्णन अत्रिजीसे किया है, इस समय
उत्पातोंका वर्णन यहांपर किया जाता है. स्वभावसे विपरीत होना ही उत
यही इसका संक्षेप अर्थ है ॥ १ ॥ मनुष्योंके अहिताचरण करनेसे
इकट्ठा होता है, उससे ही उपद्रव होता है । दिव्य अन्तरिक्ष और समस्त
उत्पात उनकी भली भांतिसे सूचना करते हैं ॥ २ ॥ मनुष्योंके अव्यवहार
देवतालोग अप्रसन्न होकर इन उत्पातोंको उत्पन्न किया करते हैं उन उ
दूर करनेके लिये राजाको अपने राज्यमें शान्तिका कराना उचित है ॥ ३
नक्षत्रोंका विकार, उल्का, निर्घात, पवन और घेरा दिव्य उत्पात हैं, गधर्व

न चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति। नाभसमुपैति
तां शाम्यति नो दिव्यमित्येके ॥ ५ ॥ दिव्यमपि शममुपैति
तकनकान्नगोमहीदानैः। रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च
६ ॥ आत्मसुतकोशवाहनपुरोहितेषु लोकेषु। पाकमुपयाति
परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ॥ ७ ॥ अनिमित्तभङ्गचलनस्वेदा-
पातजल्पनाद्यानि। लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम्
८ ॥ दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि। सम्पर्यासन-
नसङ्गाश्च न देशनृपशुभदाः ॥ ९ ॥ ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रो तं वैकृतं
ातीनाम्। यद्रुद्रलोकपालोद्भवं पशूनामनिष्टं तत ॥१०॥ गुरु-
शनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम्। स्कन्दविशा-
मुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ॥ ११ ॥ वेदव्यासे मन्त्रिणि
ायके वैकृतं चमूनाथे। धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय

नुषादि अन्तरिक्ष उत्पात कहे जाते हैं ॥ ४ ॥ चर (चलायमान) व स्थिर
चल) आदि पदार्थोंसे उत्पन्न हुए उत्पात भौमनामसे ख्यात हैं, यह उत्पात
तेसे टकराये जाकर दूर हो जाते हैं. कोई कहते हैं कि आन्तरिक्ष उत्पात शान्ति
देनेसे हलके हो जाते हैं और दिव्य उत्पात कभी दूर नहीं होते ॥ ५ ॥ परन्तु
लयकी भूमिमें गोदोहन और कोटि होम करनेसे, बहुतसा सुवर्ण, अन्न, गौ
पृथ्वीका दान करनेसे दिव्य उत्पात भी शान्त हो जाते हैं ॥६॥ राजा अपनी
पुत्र, खजाना, सवारियें, पुर, स्त्री, पुरोहित और सब लोकमें आठ प्रकारसे कहे
दैव उत्पात पाकको प्राप्त होते हैं ॥७॥ शिवलिंग, देवताकी प्रतिमा या पवित्र
का अनिमित्त भंग होना, चलायमान होना, पसीना आना, आंसू गिरना और
ना आदि हो तो राजा और देशका नाश हो जाता है ॥८॥ जो देवतालोगोंकी
के समय शकट, गाडीकी धुरी, पहिया, जुआ, इन्द्रध्वज टूट जाय या गिर पडे,
जाय, चिपट जाय, नाशको प्राप्त हो जाय या किसीसे मेल खा जाय तो देश
राजाका कल्याण नहीं होता ।९। ऋषि, धर्मपिता और ब्रह्मसे उत्पन्न हुई विकृति
ाति, रुद्र व लोकपालोंसे उत्पन्न हुआ विकार पशुओंको अनिष्ट करनेवाला है
॥ बृहस्पति, शुक्र और शनिग्रहसे उत्पन्न हुए उत्पात पुरोहितका, विष्णुजीसे
न्न हुए उत्पात सब लोकोंका- स्कन्द और विशाखसे उत्पन्न हुए उत्पात मंडलीक
ओंका अनभल करते हैं ॥११॥ वेदव्याससे उत्पन्न हुए उत्पात मंत्री, गणेशजीसे
न्न हुए उत्पात सेनापति, विश्वकर्मा और धातासे उत्पन्न हुए उत्पात प्रजाका

निर्दिष्टम् ॥ १२ ॥ देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत्स्या
तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ॥ १३ ॥ रक्षःपि
चगुह्यकनागानामेतदेव निर्देश्यम । मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वे
फलपाकः ॥ १४ ॥ बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः पुरोधास्त्र्यहो
स्नातः । स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत प्रतिमाम् ॥ १५ ॥ म
पर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत् । स्थाली
जुहुयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः ॥ १७ ॥ इति विबुधविकारे शान्
सप्तरात्रं द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च । विधिवदव
लैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥ १
इति लिङ्गवैकृतम् । राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च ने
नवान् । मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य सराष्ट्रस्य विज्ञेया ॥ १८ ॥ जलमां
र्द्रेज्वलने नृपतिवधःप्रहरणे रणो रौद्रः । सैन्यग्रामपुरेषुच नाशो
भयं कुरुते ॥ १९ ॥ प्रासादाभवनतोरणकेत्वादिष्वनलेन दग्धेषु । त
वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात् ॥ २० ॥ धूमोऽनग्निसमु

नाश करते हैं ॥ १२ ॥ देवकुमार, देवकुमारी, देववनिता और देवदूतोंसे
विकार होते हैं सो राजकुमार, कुमारिका, स्त्री और परिजनोंके ऊपर फल
और यक्ष, पिशाच, गुह्यक व नागोंके उत्पाग अनिष्टकारक होते हैं. आठ म
इन सब उत्पातोंका फल पकता है ऐसा कहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥ पुरोहित
विकारको जानकर तीनराततक उपवास करके न्हाय धोय पवित्र होकर स्ना
फूल, अनुलेपन और वस्त्रसे प्रतिमाकी पूजा करे, मधुपर्क, भक्ष्य और पूजाके
हारसे विविवत पूजा करे और तिस लिंगके मंत्रसे विधिविधानपूर्वक स्थाली
और होम करे ॥ १५ ॥ १६ ॥ जिन राजाओं करके इस देवविकारमें ब्राह्मण
देवताओंकी पूजा, गीत, नाचका उत्सव और दक्षिणयुक्त शान्ति सात रात्रि
होती है उनके लिये इस पापका पाक रुक जाता है ॥ १७ ॥ इति लिंगवैकृ
जिस राज्यमें विना ही अग्निके द्रव्य जल जाय और इंधनयुक्त आग नहीं जले
राज्यके राजाको पिडा होगी यह जानना चाहिये ॥ १८ ॥ जल, मांस और
द्रव्यके जलनेसे राजाओंका वध होता है, सस्त्र चिह्नसे प्रचण्ड युद्ध और
ग्राम व पुरोंमें अग्निके नाशसे भय होता है ॥ १९ ॥ प्रासाद, भवन, तोरण,
आदि अनल या बिजलीसे दग्ध हो जानेपर नियमके वशसे छः मासमें व
दूसरे राजाका राज्य होता है ॥ २० ॥ विना आगके धूमका निकलना, दि

तमश्चाह्निजं महाभयदम् । व्यभ्रे निश्युडुनाशो दर्शनमपि
दोषकरम् ॥ २१ ॥ नगरचतुष्पादाण्डजमनुजानां भयङ्करं
नमाहुः । धूमाग्निविस्फुलिङ्गैः शय्याम्बरकेशगैर्मृत्युः ॥ २२ ॥
धज्वलनसर्पणस्वनाः कोशनिर्गमनवेपनानि वा । वैकृतानि
वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसंकुलं वदेत् ॥ २३ ॥ मन्त्रैर्वाह्नैः
क्षात्समिद्भिर्होतव्योऽग्निः सर्षपः सर्पिषा च । अग्न्यादीनां
शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः ॥२४॥ इत्य-
कृतम् । शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम् । हसने
शं रुदिते च व्याधिबाल्यम् ॥ २५ ॥ राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ
धोऽतीव कुसुमिते बाले । वृक्षात् क्षीरस्रावे सर्वद्रव्यक्षयो
॥ २६ ॥ मद्ये वाहननाशः संग्रामः शोणिते मधुनि रोगः ।
दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःसृते सलिले ॥ २७ ॥ शुष्कविरोहे
संक्षयःशोषणे च विरुजानाम् । पतितानामुत्थाने स्वयंभयं

बरतना और अंधकार महाभयदायी होता है । रात्रिके समय मेघहीन आका-
नक्षत्रका नाश या दिनमें नक्षत्रका दर्शन दोषकारी है ॥ २१ ॥ जो अग्नि
हो तो नगर, चौपाये, अंडज और मनुष्योंके लिये भयंकर कहा जाता
, अम्बर और बालोंमें गया हुआ धूम व अग्निकी चिनगारियोंसे मृत्यु ही
ोती है ॥ २२ ॥ सब अस्त्र शस्त्रोंका जलना, उनमेंसे शब्दका होना या
निकल आना, कांपना अथवा जो और विकार शस्त्रोंमें देखे जायँ तो
राज्यमें प्रचण्ड रण होता है ॥ २३ ॥ दुधारे वृक्षोंसे उत्पन्न हुई समिध,
और घृतसे वह्निमंत्रके द्वारा होम करे और इसमें ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान
इस इससे ही अग्निविकृतिकी शान्ति हो जाती है ॥ २४ ॥ इति अग्निवैकृत ।
क वृक्षोंकी शाखा टूट जानेसे रणकी तैयारियाँ होती हैं । वृक्षोंके हँसनेसे
ध्वंस और रुदन करनेसे रोगकी अधिकाई होती है ॥ २५ ॥ अनऋतुमें
के फूलनेसे राज्यमें भेद पड जाता है, छोटे वृक्षोंके अत्यन्त फूलनेसे बाल-
ध और वृक्षोंसे दूध निकलनेपर सब द्रव्योंका क्षय हो जाता है ॥ २६ ॥
द्य निकले तो वाहनोंका नाश, रुधिरके निकलनेसे संग्राम, शहदके निक-
ोग, तेलके निकलनेसे दुर्भिक्षका भय और जल निकलनेसे महाभय होता
७ ॥ अंकुर सूख जानेसे वीर्य और अन्नका भली भांतिसे क्षय होता है ।
वृक्ष विना कारणके सूख जायँ तो भी सेनाका और अन्नका क्षय होता है ।
वृक्ष खडे होकर उठ बैठे तो देवका भय होता है ॥ २८ ॥ प्रसिद्ध वृक्षमें

दैवजनितं च ॥२८॥ पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपवधाय
ष्टम् । धूमस्तस्मिन् ज्वालाथवा भवेन्नृपवधायैव॥२९॥ सर्पत्
जल्पत्सु वापि जनसंक्षयो विनिर्दिष्टः । वृक्षाणां वैकृत्ये दश
फलविपाकः ॥३०॥ स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य च्छत्रं निधा
पादकस्य । कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र
होमः ॥ ३१ ॥ पायसेन मधुना च भोजयेद् ब्राह्मणान् घृ
भूपतिः । मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते मह
॥ ३२ ॥ इति वृक्षवैकृतम् । नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन्
म्भवो मरणम् । कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं कुसुम
॥ ३३ ॥ अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफलकुसुमभवो वृक्षाभव
यद्येकस्मिन् परचक्रागमो नियमात् ॥ ३४ ॥ अर्धेन यद
भवति तिलानामतैलता वा स्यात् । अन्नस्य च वैरस्यं
विद्याद्भयं सुमहत् ॥ ३५ ॥ विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामा
पुराद्बहिः कार्यम् । सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा
शान्त्यै ॥ ३६ ॥ सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं प्रदेयं तत

कुऋतुमें फूलका आना राजाके वधका कारण कहा जाता है और इसमें
(शिखा) अथवा धुएंके रहनेसे भी राजाके वधका कारण होगा ॥ २९
चलने लगें या कुछ बोलनेकेसा शब्द करने लगें तो भली भांतिसे मनुष्यों
होता है. वृक्षोंके विकारका फल दश मासमें पकता है ॥ ३० ॥ माला
धूप और वस्त्र द्वारा वृक्षकी पूजा करके उसके ऊपर छत्र धारण करे
बनाकर रुद्रका जप और " रुद्रेभ्य. " इत्यादि मंत्रसे षडङ्ग होम करे ।
वृक्षोंमें विकार प्राप्त होनेपर राजाको उचित है कि घृतयुक्त पायस (खीर
मधुसे ब्राह्मणका भोजन करावे और दक्षिणामें भूमिका दान करे. इस
विधि महर्षियोंने कही है ॥ ३२ ॥ इति वृक्षवैकृत । कमल और जो आदि
नालमें दो या तीन बालकी उत्पत्ति या दो फूल या दो फलोंके उत्पन्न
उनके स्वामीका मरण प्रगट होता है ॥ ३३ ॥ धान्यकी अतिवृद्धि हो औ
वृक्षमें अनेक प्रकारके फल फूल लगें तो नियमके वशसे निश्चय ही शत्रुव
उस देशमें आवेगी ॥ ३४ ॥ जब तिलके आधे भागमें तेल हो या तिलमें
न निकले तो अन्नकी विरसतासे बडा भारी भय आ पडता है ॥ ३५ ॥ वि
प्राप्त हुए फूल या फलको गाम या पुरके बाहिर कर देना उचित है. इसकी
साम्य नामक चरु करे और पशु अर्थात् बकराभी शान्तिके लिये देवे ॥
जो खेतोंमें विकार दिखाई दे तो प्रथम वह खेत ही ब्राह्मणोंको दान करे फि

प्रथमं द्विजेभ्यः। तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषान् समुपैति तज्जान् ॥ ३७ ॥ इति सस्यवैकृतम्। दुर्भिक्षमनावृष्ट्या मतिवृष्ट्यां क्षुद्भयं सपरचक्रम्। रोगो ह्यनृतुभवायां नृपवधोऽनभ्र जातायाम् ॥ ३८ ॥ शीतोष्णविपर्यासे नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु। षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च ॥ ३९ ॥ अन्यर्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षं प्रधाननृपमरणम्। रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥ ४० ॥ धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विद्यात्। अङ्गारपांसुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥ ४१ ॥ उपल विना जलधरैर्विकृता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः। छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥ ४२ ॥ क्षीरघृतक्षौद्राणां दध्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे। देशविनाशो ज्ञेयोऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम्॥४३॥ यद्यमलेऽर्कैच्छाया न दृश्यते दृश्यते प्रतीपा वा। देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्दिश्यम् ॥ ४४ ॥ व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ। प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत् क्षुद्भयं सुमहत् ॥ ४५ ॥ सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां योगः स्मृतो वृष्टिवि-

---

भूमिदेवताका चरु करनेसे उससे उत्पन्न हुए दोष फिर नहीं हो सकते ॥ ३७ ॥ इति सस्यवैकृत। अनावृष्टिसे दुर्भिक्ष, अतिवृष्टिसे पराई सेनाका आना और क्षुधाका भय, अनऋतुमें वर्षाके होनेसे रोग और विना मेघके वर्षनेसे राजाका वध होता है ॥३८॥ शीत और ग्रीष्ममें अदल बदल होनेसे, सब ऋतुओंको वर्त्ताव भली भांति न होनेसे छः मासतक दैवभय, राज्यभय और रोगभय हुआ करता है ॥३९॥ अनऋतुमें बराबर एक सप्ताहतक वर्षा होनेसे मुख्य राजाकी मृत्यु होती है. रुधिरकी वर्षा होनेसे शस्त्रका उद्योग और मांस, हड्डी, चर्बी आदिकी वर्षा होनेसे मरी पडती है ॥४०॥ धान्य, सुवर्ण, छाल, फल और फूलादिकी वर्षा होनेसे भय होता है. जिस नगरमें कोयले और धूरिकी वर्षा हो उस नगरका नाश हो जाता है ॥४१॥ बिना बादलके ओलोंका गिरना, गधे, ऊंट, बिलाव, गीदड आदि प्राणियोंका विकारयुक्त दिखाई देना, अथवा अतिवृष्टिमें छिद्र (कहीं वर्षा हो कहीं न हो) ऐसा हो तो खेतीके लिये टीडी आदि भय उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ दूध घी, शहद या गरम जलके वर्षनेसे देशका नाश और रुधिरकी वर्षा होनेसे राजाओंमें युद्ध हुआ करता है ॥ ४३ ॥ जो निर्मल सूर्यमें छाया दिखाई न दे अथवा विपरीत छाया दिखाई दे तो कहना चाहिये कि देशमें महाभय होगा ॥ ४० ॥ जब दिन या रात्रिके समय मेघहीन आकाशमें पूर्व या पश्चिम दिशामें इन्द्रधनुष दिखाई दे तो भारी दुर्भिक्ष पडता है ॥ ४५ ॥ वृष्टि विकारके कालमें सूर्य चन्द्रमा और पव

कारकाले । धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्ति
पापम् ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् । अपसर्पणं नदीनां नगरा
रेण शून्यतां कुरुते । शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादे
॥ ४७ ॥ स्नेहासृङ्मांसवहाःसंकुलकलुषाःप्रतीगाश्चापि । पर
स्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥ ४८ ॥ ज्वालाधूमक्
रुदितोत्कुष्टानि च कूपानाम् । तत्प्रजल्पितानि च जनमर
प्रदिष्टानि ॥ ४९ ॥ तोयोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च त
नाम् । सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिरियम् ॥
सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः । तैरेव च
होमं शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥ इति जलवैकृतम् । प्रस
कारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ वा हीनातिरिक्तका
देशकुलसंक्षयो भवति ॥ ५२ ॥ वडवोष्ट्रमहिषगोह
नीषु यमलोद्भवे मरणमेषाम् । षण्मासात्सूतिफलं श
श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥ ५३ ॥ नार्यः परस्य ि

नका यज्ञ करे उस समय धान्य, अन्न, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे पापकी
होगी ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृत । जो नदियाँ नगरके नीचे बहती हों और वह नग
छोडकर सरक जायँ या नगरके न सूखनेवाले स्थान कुंड इत्यादि सूख जायँ तो
ही नगर सूना हो जाता है ॥ ४७ ॥ जो तेल, रुधिर या मांस नदियोंमें बहत
जल मलीन हो जाय, या उलटी बहने लगे तो छः मासके बीचमें शत्रुकी सेन
रपर चढ आती है ॥ ४८ ॥ कुएँमें ज्वाला या धूप दिखाई दे, जल खौलने
रोनेका शब्द गीत बकवाद सुनाई आवे तो इन बातोंका होना, मरीका कार
॥ ४९ ॥ विना खोदे हुए जलका निकलना, जलकी गन्ध और रसका अदल
हो जाना, जलाशयका विकारको प्राप्त हो जाना बडे भारी भयका कारण है
शान्ति इस प्रकारसे करनी चाहिये, जलविकारमें वारुणमंत्रसे वरुणजीकी पूजा
इसी मंत्रसे जप व होम करना चाहिये, इस प्रकारसे इस पापकी शान्ति होगी।
॥ ५१ ॥ इति जलवैकृत । जो स्त्रियोंमें प्रसवविकार हो या उनके एक साथ
तीन या चार बच्चे पैदा हों, प्रसवसमयके पीछे या पहले प्रसव हो तो देश
कुलका भलीभांतिसे क्षय होता है ॥ ५२ ॥ घोडी, ऊंटनी, भैंस, गाय और
नीके एक साथ दो बच्चे पैदा हों तो इनकी ही मृत्यु होती है प्रसववै

क्तव्यास्ता हितार्थिना । तर्पयेच्च द्विजान् कामः शांतिं चैवात्र
रयेत् ॥ ५४ ॥ चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु ।
रं स्वामिनं यूथमन्यथा हि विनाशयेत् ॥ ५५ ॥ इति प्रसववै-
म् । परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चमसाधु धेनूनाम् । उक्षाणौ
न्योऽन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥ मासत्रयेण
ग्रात् तस्मिन्निःसंशयं परागमनम् । तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ
णनिर्दिष्टौ ॥५७॥ त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत् ।
येद्ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥ स्थालीपाकेन
तारं पशुना च पुरोहितः । प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बहुन्नद-
णाम्॥५९॥इति चतुष्पदवैकृतम्।यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न
च्च वाहयुतम् । राष्ट्रभय भवति तदा चक्राणां सादभङ्गं च
६ ॥ अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् ।
त्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥६१॥ गीतरवतूर्यनादा

छः मासके पीछे होता है, इसकी शान्तिके लिये गर्गजीने दो श्लोक कहे हैं,
के प्रसवमें विकार हुआ हो हितार्थी पुरुषको चाहिये कि इन स्त्रियोंको दूर
में छोड आवे । ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार तृप्त करे और इसमें इस
रसे शान्ति करावे, चौपायोंको अपने थलसे अलग करके दूसरेकी भूमिमें छोड
। नहीं तो नगरस्वामी और अपने झुंडका नाश हो जाता है ॥५३॥५४॥५५॥
प्रसववैकृत । एक जातिका पशु दूसरी जातिके पशुसे मैथुन करे तो अमंगल
। है या दो बैल जो परस्पर थन पियें अथवा कुत्ता गायके बछड़ेका थन पियें तो
गल होता है ॥५६॥ ऐसा हो तो तीन मासमें निःसंदेह शत्रुकी सेना आती है, इसके
के लिये गर्गजीने यह दो शान्तिकारी श्लोक कहे हैं–"उनको छोड देने, निकाल
या दानकर देनेसे शीघ्र शुभ होता है, इस कारण ब्राह्मणोंको तृप्त करे और जप
करावे । पुरोहितको उचित है कि प्रजापत्यमंत्रसे स्थालीपाक और पशुओंसे
का यजन करे और बहुतसे अन्नका दक्षिणा दे" ॥५७॥ ५८ ॥ ५९ ॥ इति
ष्पादवैकृत । रथ, बहली आदि सवारी जो विना ही घोडे बैलादिके जुते हुए
ने लग या बैलादिसे जुती हुई सवारी गमन न करे और पहिया पृथ्वीमें गड जाय
राज्यको भय होता है ॥ ६० ॥ विना बजावे ही तुरहीका शब्द हो या बजानेसे
रेही बजे नहीं या उसमें व्युत्पत्ति अर्थात् अनेक प्रकारके शब्द हों तो
की सेनाका आगमन या राजाका मरण होता है ॥ ६१ ॥ जब आकाशमें

नभसि यदा व चरस्थिरान्यत्वम् । मृत्युस्तदा गदा वा विस्व
पराभिभवः ॥ ६२ ॥ गोलांगूलयोः सङ्ग दर्वीशूर्पाद्युपस्करवि
क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ॥ ६३ ॥ वा
व्येषु नृपतिर्वायुं सक्तुभिरर्चयेत । आवायोरिति पञ्चर्चो जाप
प्रयतैर्द्विजैः ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणभिश्च तर्पं
वह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥ इति वा
वैकृतम् । पुरपक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पु
नक्तं वा दिवसचराः क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ॥ ६६ ॥ सन्
ध्ययेऽपि मण्डलमाबध्नन्तो मृगा विहङ्गा वा । दीप्तायां दिश
क्रोशन्तः संहता भयदाः ॥६७॥ श्वानः प्ररुदन्त इव द्वारे व
जम्बुका दीप्ताः।प्रविशेन्नरेन्द्रभवने कपोतकःकौशिको यदि वा ॥
कुक्कुटरुतंप्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः।प्रतिलोममण्डल
श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः ॥ ६९ ॥ गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च

प्रतिध्वनि हो, तुरही बजे या कर्कादि राशिका विपरीत घटन हो तो रोग य
होती है । तुरहीका शब्द स्वरहीन हो तो शत्रुकी पराजय होती है ॥ ६२
और हलका अचानक जुड जाना, दर्वी (चमचा) आदि घरकी सामग्रीमें
प्रकारका विकार आ जाना और शृंगालके शब्दका होना शस्त्रभयका कार
इसकी शान्तिका होना मुनिजीने इस प्रकार कहा है—"इस वायव्य विकारमें
सत्तूसे पवनका पूजा कर और ब्राह्मणोंके द्वारा " आ वायोः " इस ऋक्प
जप करावे, परमान्न और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर, यत्नके सहि
तसा अन्न दक्षिणामें दे और होम करावे" ॥६३॥६४॥६५॥ इति वायव्य
घरके पाले हुए पक्षिगण वनचारी हो जांय या वनैले पक्षी निर्भय होकर
प्रवेश कर आवें, दिनके चरनेवाले रात्रिमें अथवा रात्रिके चरनेवाले दिनमें
करें, दोनों संध्याओंमें मृग और पक्षी मंडल बांध २ कर बैठें, अथवा वह इ
सूर्यकी ओरको मुख करके चिल्लावें तो भय होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ज
रोते २ द्वार पर डटे रहें, सूर्यकी ओरको मुख करके गीदड रोवें, जो कबू
उल्लू राजभवनमें प्रवेश करें, अथवा प्रदोषके समयमें मुरगा शब्द करे, हे
ऋतुओंमें कोयल बोले, आकाशमें बाज आदि पक्षियोंका प्रतिलोम मंडल
करें तो भयदायी होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ घरमें, चैत्यमें, तोरण और

संघसम्पाताः । मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवाश्चापि नाशाय ॥७०॥ श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय । पशुशस्त्रव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम् ॥ ७१ ॥ मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमान्‌ सदक्षिणान् । देवाः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥७२॥ सुदेवा इति चैकेन देया गावश्च दक्षिणा । जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिरांसि च ॥ ७३ ॥ इति मृगपक्ष्यादिवैकृतम् । शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु । तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ॥ ७४ ॥ सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनग्नौ । छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी ॥७५॥ पाषण्डानां नास्तिकानां च भक्तः साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः । ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ॥ ७६ ॥ प्रहर हर छिन्दि भिन्दीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः । निगदन्तः प्रहरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ॥ ७७ ॥ अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतप्रताभिलेखनं यस्मिन् । नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण

पक्षियोंका झुंड गिरे और मधुका छत्ता, बमई व कमलसे उत्पन्न हुए पदार्थ गिरें तो ऊपर कहे हुए स्थानोंका नाश होता है ॥७०॥ जो हड्डीको कुत्ते घरमें ले आवें या मृतक अंगका कोई भाग ले आवें तो मरीका कारण है. पशु और शस्त्र मनुष्यकी भांति बोलें तो राजाकी मृत्यु होती है. इन बातोंकी शान्तिके लिये मुनिजीने यह वचन कहा है—"मृगपक्षियोंके विकारमें दक्षिणाके साथ होम करे, पांच ब्राह्मणोंसे "देवाः कपोत है" इस मंत्रका जप करना चाहिये, और "सुदेवाः" मंत्रसे दक्षिणा देकर शाकुनसूक्तका जप करना उचित है अथवा "मनोवेदाशिरांसि" यह मंत्र जपे ।७१॥७२॥७३॥इति मृगपक्षिविकार । इन्द्रध्वज, इन्द्रकील,थंभ, द्वारा कपाट,तोरण केतु टूट जाय या गिर जाय तो राजाका मरण होता है॥७४॥ दोनों सन्ध्याके समय तेजका होना अग्निरहित वनमें धूमका उत्पन्न होना, विनां छेदके पृथ्वीका फट जाना और कांपना भयदायी होता है ॥७५॥ जिस देशका राजा पाखण्डी और नास्तिकोंका भक्त होता है, साधुओंकेसे आचरण नहीं करता, क्रुद्धस्वभाव, ईर्षा करनेवाला, क्रूर विग्रहमें चित्तको लगानेवाला होता है उस देशका नाश हो जाता है ॥७६॥ जब शस्त्र, काठ, पत्थरहाथमें लेकर बालकगण "मारो, छीन लो, काटो, तोड डालो" ऐसा कहते २ एक दूसरेको मारते हैं तब शीघ्र ही भय होता है ॥ ७७ ॥ कोयले या गेरूसे जिस घरकी भीतोंपर मृतकोंके चित्र बनाये जायँ, अथवा विनाशके समय

॥ ७८ ॥ लूतापटाङ्कशबलं न सन्ध्ययोः पूजितं क
नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च यद्गृहं तत् क्षयं याति ॥७९॥ र
धानेषु निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम् । प्रतिघातायैतेषां ग
चकारेमाम् ॥ ८० ॥ महाशान्त्योऽथ बलयो भोज्यानि
च । कारयेत महेन्द्रं च माहेन्द्रीभिः समर्चयेत् ॥
शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम् । नरपतिदेशविनाशे केतो
ग्रहेऽर्केन्द्वोः । उत्पातानां प्रभवःस्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥
च न दोषान् जनयन्त्युत्पातास्तानृतुस्वभावकृतान् । त्र
श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तः ॥ ८३ ॥ वज्राशनिमहीक
निर्घातनिःस्वनाः । परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमनोदया
द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः । गोपक्षिमदवृद्धि
मधुमाधवे ॥ ८५ ॥ तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दु
अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥ ८६ ॥ रक्तपद्मार
नभःक्षुब्धार्णवोपमम् । सरितांचाम्बुसंशोषंदृष्ट्वाग्रीष्मेशुभं व

उसके स्वामीकी तसवीर बनाई जाय, वहाँ शीघ्र ही भय होता है ॥
घरमें मकड़ियोंके जाले पुरे रहें, दोनों सन्ध्याओंमें जिसकी पूजा
नित्य क्लेश होता रहे और स्त्रियें जहां नित्य अपवित्र रहें वहां
है ॥ ७९ ॥ राक्षसोंका दिखाई देना शीघ्र चारों ओरसे मरीके ह
देता है,इसको रोकनेके लिये गर्गजीने इस प्रकार शान्ति कही है-"अ
योग्य पदार्थ और बलि देनेसे महाशान्ति होती है और महेन्द्रके
महेन्द्रको भली भांतिसे पूजन करना चाहिये" ॥ ८० ॥ ८१ ॥ इति
कीलादिवैकृत । राजा और देशके विनाशमें, केतुके उदयमें, अथवा च
ग्रहणमें विना ऋतुमें उत्पातकी उत्पत्तिका होना दोषका कारण नहीं
जिन उत्पातोंसे दोष उत्पन्न नहीं होते,ऋषिपुत्रके कहे हुए इस समास
बीच इनको ऋतुके स्वभावसे उत्पन्न हुए कहे हैं, "वज्र, अशनि (ए
बिजली), भूमिका कांपना, सन्ध्या, टकरानेका शब्द, घेरा, धूरि
और उदयकालमें सूर्य लाल रंगका हो जाना, वृक्षमें अन्न, रस, स्नेह
फूलोंका उत्पन्न होना, गाय व पक्षियोंके मदका बढना चैत और वैश
नेमें मंगलका कारण है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ तारा और उल्काप
हुए चन्द्रमा और सूर्यका कपिलमण्डल अग्निके विना ही ज्वाल
होना,धुआं, धूरि पवनसे आहत, लाल कमलके समान रंगवाली लाल

क्रायुधपरिवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् । कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं
रणं क्षितेः ॥८८॥ सरोनद्युदपानानां वृद्धयूर्ध्वतरणप्लवाः सरणं
ाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥८९॥ दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमा-
द्भुतदर्शनम् । ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥९०॥ गीत-
ादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु । सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि
मृताः ॥९१॥ शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् । रक्षोयक्षा-
सत्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥९२॥ दिशो धूमान्धकाराश्च सन-
ोवनपर्वताः । उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः
९३॥ हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम् । कृष्णाञ्जनाभ-
ाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्॥९४॥चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजा-
मृगपक्षिषु । पत्रांकुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥९५॥
तुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः। ऋतोरन्यत्र चोत्पाता

नय होना, चलायमान समुद्र के समान आकाशका हो जाना, नदी के जलका
ख जाना, ग्रीष्मकाल में दिखाई देनेसे शुभ फल का उत्पन्न करता है ॥ ८६ ॥
७ ॥ इन्द्रधनुष, घेरा, बिजली, सूखे हुए वृक्ष में अंकुरों का निकलना, पृथ्वीका
पना, उलट जाना, स्वरूप का बदल जाना, शब्द करना, फटजाना, सरोवर, नदी
र कुओं का बढ जाना या किनारोंपर आ जाना, जल का विप्लव होना, पर्वत
र घरों का चलायमान होना वर्षाकालमें भयदायी नहीं है ॥ ८८ ॥ ८९॥ दिव्यस्त्री
, गन्धर्व, विमान और अद्भुत दर्शन, आकाश में दिन के समय ग्रह नक्षत्र
र ताराओं का दिखाई देना, पर्वत तथा वन के कंगूरों में गीत और बाजों की
नेका सुनाई देना, धान्य की वृद्धि और जलकी हानि का होना शरत्काल में
कारी कहा है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ वायु और तुषारों में शीतपन, मृग और पक्षियों
शब्द करना, राक्षस व यक्षादि प्राणियों का दर्शन, देववाणी, धूम या अन्धकार-
आकाश, वन, पर्वत और दिशाओंका ढक जाना, ऊंचेमें सूर्यका उदय और
त हेमन्तमें शुभकारी कहा है ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ बर्फका गिरना, पवनके उत्पात,
प और अद्भुतदर्शन, काले अञ्जनके समान आकाश, तारा या उल्कापातसे
काशका चित्राविचित्र होना, गाय बकरी, घोडा, मृग, पक्षी और स्त्रियोंमें विचित्र,
का उत्पन्न होना और पत्र, लता व अंकुरका विकार शिशिर ऋतुमें शुभदायी
९४ ॥ ९५ इस ऋतुमें स्वभावसे उत्पन्न हुए विकार अपनी २ ऋतुमें दिखाई
ो शुभदायी है, और ऋतुमें विकार दिखाई दें तो वह अत्यन्त दारुण होते

भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥ नक्षत्र
संग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् । आलो
मित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ॥ ।
भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभ
रवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुःप्रभृति ॥ ११
जितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन् शिखी घनविनाशकृ
र्महा शोकदः। भुजङ्गममथ स्पृशेद्भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं
विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥ प्राग्द्वारेषु च
नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् । दुर्भिक्षं कुरुते भयमुग्रं मित्रा
धवृष्टिम् ॥ १३ ॥ रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भि
ऽथवा शिखी। किं वदामि यदनिष्टसागरे जगद
संमक्षयम् ॥ १४ ॥ उदयति सततं यदा शि
भचक्रमशेषमेव वा । अनुभवति पुराकृतं तदा
सचराचरं जगत्॥१५॥ धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृश
बलोद्योगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यास्य च यतः । अ

दोषकारी होते हैं ॥ ९ ॥ जो ग्रह और नक्षत्रोंके तारे धुएंकी लपट
रियोंसे युक्त हों या विनाही कारणके उनमें प्रकाश न हो तो र
लोकका ध्वंस होता है ॥ १० ॥ जब आकाशमें दो चन्द्रमा दी
तब ब्राह्मणोंका अत्यन्त शुभ होता है, दो सूर्यके दिखाई देनेसे
युद्ध होता है और तीन चार इत्यादि अनेक चन्द्रसूर्यके निकलने
होती है ॥ ११ ॥ शिखी अर्थात केतु यदि सप्तर्षिमण्डल, अभि
ज्येष्ठानक्षत्रको स्पर्श करे तो बादलोंका नाश, कुशल कर्ममें हानि
होता है, जो श्लेषा नक्षत्रको स्पर्श करे तो निश्चयही वृष्टिका नाश
जनपदमें उपद्रव होकर वह शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १२
द्वार अर्थात् कृत्तिकादि सप्त नक्षत्रमें विचर कर वक्री होनेसे दुर्भिक्ष
विरोध करता है और वर्षाको नहीं करता है ॥ १३ ॥ जो
केतु रोहिणी शकटको भेद करे तो समस्त जगत्का इस प्रकार अ
कि कुछ कहा नहीं जाता ॥ १४ ॥ जब केतु सदा उदय होता
नक्षत्रोंके चक्रमें विचरण करता है तो चराचर जगत अपने कि
अशुभ फलोंका अनुभव करता है ॥ १५ ॥ धनुषके समान आक
और रुधिरके समान रंगवाला हो तो क्षुधा और भयका उप

ायुधपरिवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् । कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं
ा क्षितेः ॥८८॥ सरोनद्युदपानानां वृद्ध्यूर्ध्वतरणप्लवाः सरणं
द्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥८९॥ दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमा-
द्भुतदर्शनम् । ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ॥९०॥ गीत-
द्वित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु । सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि
ताः ॥९१॥ शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् । रक्षोयक्षा-
त्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥९२॥ दिशो धूमान्धकाराश्च सन-
ानपर्वताः । उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः
३॥ हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम् । कृष्णाञ्जनाभ-
ाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्॥९४॥चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजा-
गपक्षिषु । पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥९५॥
स्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः । ऋतोरन्यत्र चोत्पाता

होना, चलायमान समुद्र के समान आकाशका हो जाना, नदी के जलका
जाना, ग्रीष्मकाल में दिखाई देनेसे शुभ फल को उत्पन्न करता है ॥ ८६ ॥
इन्द्रधनुष, घेरा, बिजली, सूखे हुए वृक्ष में अंकुरों का निकलना, पृथ्वीका
ा, उलट जाना, स्वरूप का बदल जाना, शब्द करना, फटजाना, सरोवर, नदी
कुओं का बढ जाना या किनारोंपर आ जाना, जल का विप्लव होना, पर्वत
घरों का चलायमान होना वर्षाकालमें भयदायी नहीं है ॥ ८८ ॥ ८९॥ दिव्यस्त्री
गन्धर्व, विमान और अद्भुत दर्शन, आकाश में दिन के समय ग्रह नक्षत्र
ताराओं का दिखाई देना, पर्वत तथा वन के कंगूरों में गीत और बाजों की
ा सुनाई देना, धान्य की वृद्धि और जलकी हानि का होना शरत्काल में
ारी कहा है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ वायु और तुषारों में शीतपन, मृग और पक्षियों
ब्द करना, राक्षस व यक्षादि प्राणियों का दर्शन, देववाणी, धूम या अन्धकार-
ाकाश, वन, पर्वत और दिशाओंका ढक जाना, ऊंचेमें सूर्यका उदय और
हेमन्तमें शुभकारी कहा है ॥ ९२ ॥ ॥ ९३ ॥ बर्फका गिरना, पवनके उत्पात,
और अद्भुतदर्शन, काले अञ्जनके समान आकाश, तारा या उल्कापातसे
शका चित्रविचित्र होना, गाय बकरी, घोडा, मृग, पक्षी और स्त्रियोंमें विचित्र,
उत्पन्न होना और पत्र, लता व अंकुरका विकार शिशिर ऋतुमें शुभदायी
४ ॥ ९५ इस ऋतुमें स्वभावसे उत्पन्न हुए विकार अपनी २ ऋतुमें दिखाई
शुभदायी है, और ऋतुमें विकार दिखाई दें तो वह अत्यन्त दारुण होते

भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥ नक्ष
संग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् । आल
मित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ॥
भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शु
रवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुःप्रभृति ॥ ११
जितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन् शिखी घनविनाश
महा शोकदः। भुजङ्गममथ स्पृशेद्भवति वृष्टिनाशो ध्रु
विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥ प्राग्द्वारेषु
नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् । दुर्भिक्षं कुरुते भयमुग्रं मित्र
धवृष्टिम् ॥ १३ ॥ रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भि
ऽथवा शिखी। किं वदामि यदनिष्टसागरे जग
संमक्षयम् ॥ १४ ॥ उदयति सततं यदा शि
भचक्रमशेषमेव वा । अनुभवति पुराकृतं तदा
सचराचरं जगत्॥१५॥ धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृ
बलोद्योगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यास्य च यतः ।

दोषकारी होते हैं ॥ ९ ॥ जो ग्रह और नक्षत्रोंके तारे धुएंकी लप
रियोंसे युक्त हों या विनाही कारणके उनमें प्रकाश न हो तो
लोकका ध्वंस होता है ॥ १० ॥ जब आकाशमें दो चन्द्रमा दी
तब ब्राह्मणोंका अत्यन्त शुभ होता है, दो सूर्यके दिखाई देनेसे
युद्ध होता है और तीन चार इत्यादि अनेक चन्द्रसूर्यके निकलन
होती है ॥ ११ ॥ शिखी अर्थात केतु यदि सप्तर्षिमण्डल, अभि
ज्येष्ठानक्षत्रको स्पर्श करे तो बादलोंका नाश, कुशल कर्ममें हानि
होता है, जो श्लेषा नक्षत्रको स्पर्श करे तो निश्चयही वृष्टिका नाश
जनपदमें उपद्रव होकर वह शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १
द्वार अर्थात् कृत्तिकादि सप्त नक्षत्रमें विचर कर वक्री होनेसे दुर्भिक्ष
विरोध करता है और वर्षाको नहीं करता है ॥ १३ ॥ जो
केतु रोहिणी शकटको भेद करे तो समस्त जगत्का इस प्रकार अ
कि कुछ कहा नहीं जाता ॥ १४ ॥ जब केतु सदा उदय होता
नक्षत्रोंके चक्रमें विचरण करता है तो चराचर जगत् अपने कि
अशुभ फलोंका अनुभव करता है ॥ १५ ॥ धनुषके समान आ
और रुधिरके समान रंगवाला हो तो क्षुधा और भयका उ

नमपि सस्यस्य कुरुते ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमर-
ति स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्वि-
ाम् । दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो लोकानन्दं कुरुते-
॥१७॥ पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति
क्षिणेन न शुभो हितकृत्स्यायद्युदक् चरति मध्यगतो
। परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा।
तिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥ उदयेऽस्ते
दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते । सुरचापखण्डमृजु यद्रोहि-
र्घम् ॥ २० ॥ अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न
त् । तेजःपरिहानिमुखाद् भानोरर्धोदयं यावत् ॥२१॥
न्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् । सर्वैरेतैः
ोवर्षं भयं रूक्षैः ॥ २२ ॥ अच्छिन्नः परिघो वियच्च
मा मयूखा रवेः स्निग्धा दीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च

माकी मौर्वी जिस ओरको होती है वहांपर सेनाका उद्योग और
ोती है. चन्द्रमाका शृंग नीचे हो तो धान्य और गायोंका नाश
पट व धुएँका विस्तार करे तो राजाओंके मरणका कारण होता
कना, स्थूल, बराबर शृंगवाला, विशाल और ऊँचा चन्द्रमा उत्तर-
ामें विचरण करे, अशुभ ग्रहसे अलग और शुभ ग्रहसे देखा जाय
त्यन्त आनन्द देता है ॥ १७ ॥ जो चन्द्रमा मघा, अनुराधा,
और चित्रानक्षत्रको प्राप्त होकर दक्षिणमें जाय तो शुभ फल नहीं
रदिशामें वा मध्यमें हो तो हितकारी होता है ॥ १८ ॥ सूर्यके उदय
जो मेघकी रेखा हो, उसका ही "परिघ" नाम है—यह तिरछी हो तो
समान वस्तु हो तो "प्रतिसूर्य" और इन्द्रके धनुषके समान सरल
कहते हैं सूर्यकी लंबी किरणको "अमोघ" कहते हैं और लम्बे व
"ऐरावत" कहते हैं ॥१९॥२०॥ जब सूर्य आधा छिप गया हो,तारे
हों और तेजहानिके आरम्भसे जबतक सूर्यका आधा उदय हो
होती है॥२१॥ उस सन्ध्याकालमें इन चिह्नोंको देखकर शुभ अशुभ
ये, यह समस्त चिकने हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता
परिघविमल आकाश, सूर्यकी श्याम किरणें; स्निग्ध दीधिति, श्वेत-

गनखविक्षतेषुरम्येषु । पुलिनजघनेषु कुर्याद्दृङ्मनसोः प्रीं
॥ ८ ॥ प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते । फुल्ले
नयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥ प्रोत्फुल्लकमलवदन
हंसकलस्वनप्रभाषिण्यः । प्रोत्तुङ्गकुंडलकुचा यस्मिन्नलिनं
सिन्यः ॥ १० ॥ कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतो
अचिरप्रसूतहंकृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥ अथवा स
कुशलागतपोत रत्नसम्बाधे । घननिचुललीनजलचरसितर
लीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥ क्षमया क्रोध इव जितः सिंहो मृगया
यत्र । दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ॥ १३ ॥
कलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः । श्रीमति मृगेक्ष
हेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥ पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थे
रम्यदेशेषु । पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥

जलचारी पक्षियोंके नखविक्षत नदीरूप कामिनी पुलिनरूप मनोहर जां
शान्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥ या खिले हुए कमलरूप वदनवाली, कलहंस
नादरूप वाक्यवाली और पद्मके मुकुल (कली) रूप ऊंचे स्तनवाली
विलासिनियें जहांपर वर्तमान हैं, उडते हुए हंसही जिसका छत्र है, कारण
और सारस पक्षियोंकी ध्वनिसे जो गानके युक्त हैं, प्रफुल्ल इन्दीवर
अतएव सहस्राक्ष इन्द्रके समान रूपधारी पवित्र सरोवरके तीरपर शा
चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥ अथवा गायोंके जुगारनेसे फेन गिरा है, खुरोंसे ता
जहांपर चारों ओर गोबर पडा है, जहांपर नये पैदा हुए बछडोंके हुंकार
फांदनेमें उत्सव हो गया है, ऐसे गोगोठमें पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ ११
जहांपर कुशलसे आये हुए जहाज और रत्नोंके ढेर और घने निचुल (
वृक्ष और जलचर, श्वेत पक्षियोंके लीन होनेसे जहांका किनारा अनेक
गया है उस समुद्रके तीरपर पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ जिस प्रक
क्रोध जीत लिया जाता है, वैसेही जिस स्थानमें मृगगिण करके सिंह
जहांपर पक्षी और मृगोंके बच्चे निडर होकर घूमते हैं तैसे आश्रममें अथ
कलाप, नूपुर, बडे २ नितम्बों करके जिनके पांव फिसल रहे हैं अर्थात्
शालिनी और कोयलके कूकनेके समान मधुर भाषण करनेवाली मृगनय
ओंसे श्रीमान् गृहमें यह शान्ति करनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४
पवित्र देवमन्दिरमें, तीर्थ या उद्यानके रमणीय स्थानमें या परिक्रम

ो निधनमपि सस्यस्य कुरुते ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमर-
ाव भवति स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्वि-
ागवीथ्याम् । दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो लोकानन्दं कुरुते-
त्र चन्द्रः ॥१७॥ पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति
ाङ्कः । दक्षिणेन न शुभो हितकृत्स्याद्यद्युदक् चरति मध्यगतो
॥ १८ ॥ परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा ।
धिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥ १९ ॥ उदयेऽस्ते
भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते । सुरचापखण्डमृजु यद्रोहि-
ावतं दीर्घम् ॥ २० ॥ अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न
का यावत् । तेजःपरिहानिमुखाद् भानोरर्धोदयं यावत् ॥२१॥
मन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् । सर्वैरेतैः
ग्धैः सद्योवर्षं भयं रूक्षैः ॥ २२ ॥ अच्छिन्नः परिघो वियच्च
लं श्यामा मयूखा रवेः स्निग्धा दीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च

ौर इन चन्द्रमाकी मौर्वी जिस ओरको होती है वहांपर सेनाका उद्योग और
ी सूचना होती है. चन्द्रमाका शृंग नीचे हो तो धान्य और गायोंका नाश
है और लपट व धुएँका विस्तार करे तो राजाओंके मरणका कारण होता
१६ ॥ चिकना, स्थूल, बराबर शृंगवाला, विशाल और ऊंचा चन्द्रमा उत्तर-
में नागवीथिमें विचरण करे, अशुभ ग्रहसे अलग और शुभ ग्रहसे देखा जाय
नुष्योंको अत्यन्त आनन्द देता है ॥ १७॥ जो चन्द्रमा मघा, अनुराधा,
ा, विशाखा और चित्रानक्षत्रको प्राप्त होकर दक्षिणमें जाय तो शुभ फल नहीं
, यदि उत्तरदिशामें वा मध्यमें हो तो हितकारी होता है ॥ १८ ॥ सूर्यके उदय
ास्तकालमें जो मेघकी रेखा हो, उसका ही "परिघ" नाम है—यह तिरछी ही तो
धि" सूर्यके समान वस्तु हो तो "प्रतिसूर्य" और इन्द्रके धनुषके समान सरल
ो "दंड" कहते हैं सूर्यकी लंबी किरणको "अमोघ" कहते हैं और लम्बे व
इन्द्रधनुषको "ऐरावत" कहते हैं ॥१९॥२०॥ जब सूर्य आधा छिप गया हो, तारे
शित न हुए हों और तेजहानिके आरम्भसे जबतक सूर्यका आधा उदय हो
क संध्या कहाती है॥२१॥ उस सन्ध्याकालमें इन चिह्नोंको देखकर शुभ अशुभ
कहना चाहिये, यह समस्त चिकने हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता
२२॥ साचत परिघविपुल आकाश, सूर्यकी श्याम किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेत-

गनखविक्षतेषुरम्येषु । पुलिनजघनेषु कुर्याद्दङ्मनसोः प्रीतिजं
॥ ८ ॥ प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते । फुल्लेन्दीव
नयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥ ९ ॥ प्रोत्फुल्लकमलवदनाः क
हंसकलस्वनप्रभाषिण्यः । प्रोत्तुङ्गकुंडलकुचा यस्मिन्नलिनीवि
सिन्यः ॥ १० ॥ कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचितं
अचिरप्रसूतहंकृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥ ११ ॥ अथवा समुद्रत
कुशलागतपोत रत्नसम्बाधे । घननिचुललीनजलचरसितखगश
लीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥ क्षमया क्रोध इव जितः सिंहो मृगयाभिभू
यत्र । दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ॥ १३ ॥ का
कलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः । श्रीमति मृगेक्षणाभि
हेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥ पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थेषूद्य
रम्यदेशेषु । पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥ १५

जलचारी पक्षियोंके नखविक्षत नदीरूप कामिनी पुलिनरूप मनोहर जांघोंपर
शान्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥ या खिले हुए कमलरूप वदनवाली, कलहंसकी व
नादरूप वाक्यवाली और पद्मके मुकुल (कली) रूप ऊंचे स्तनवाली नलिनी
विलासिनियें जहांपर वर्तमान हैं, उडते हुए हंसही जिसका छत्र है, कारण्डव
और सारस पक्षियोंकी ध्वनिसे जो गानेके युक्त हैं, प्रफुल्ल इन्दीवर रूपव
अतएव सहस्राक्ष इन्द्रके समान रूपधारी पवित्र सरोवरके तीरपर शान्ति क
चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥ अथवा गायोंके जुगारनेसे फेन गिरा है, खुरोंसे ताडित ह
जहांपर चारों ओर गोबर पडा है, जहांपर नये पैदा हुए बछडोंके हुंकार और
फांदनेमें उत्सव हो गया है, ऐसे गोगोठमें पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ ११ ॥ अ
जहांपर कुशलसे आये हुए जहाज और रत्नोंके ढेर और घने निचुल (जल
वृक्ष और जलचर, श्वेत पक्षियोंके लीन होनेसे जहांका किनारा अनेक रंगका
गया है उस समुद्रके तीरपर पुष्पस्नान करना चाहिये ॥ १२ ॥ जिस प्रकार क्ष
क्रोध जीत लिया जाता है, वैसेही जिस स्थानमें मृगगिण करके सिंह गिरता
जहांपर पक्षी और मृगोंके बच्चे निडर होकर घूमते हैं तैसे आश्रयमें अथवा क
कलाप, नूपुर, बडे २ नितम्बों करके जिनके पांव फिसल रहे हैं अर्थात् मन्दग
शालिनी और कोयलके कूकनेके समान मधुर भाषण करनेवाली मृगनयनी लल
ओंसे श्रीमान् गृहमें यह शान्ति करनी चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥ अ
पवित्र देवमन्दिरमें, तीर्थ या उद्यानके रमणीय स्थानमें या परिक्रमाकी

ङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः श्वाविन्मूषकविवरैर्व-
र्या च सन्त्यक्ता ॥ १६ ॥ धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा
च विजयाय। सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम्
॥ निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम्।
वा कृत्वा बलिं दिशीशाधिपायां वा ॥ १८ ॥ लाजाक्ष-
कुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात्। आवाहनमथ
तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥ आगच्छन्तु सुराः सर्वे
पूजाभिलाषिणः। दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्येऽप्यंशभा-
॥ २० ॥ आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः। श्वः
प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शांतिं महीपतेः ॥ २१ ॥ आवाहि-
कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते। सदसत्स्वप्ननिमित्तं यात्रायां
विधिरुक्तः ॥ २२ ॥ अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथो-
ान्। गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥ २३ ॥

जल बहाता हो, पूर्व व उत्तरकी ओरको बहती हुई, क्रमसे नीचेकी भूमिमें
ान करना चाहिये ॥ १५ ॥ राख, कोयला, हड्डी, ऊषर, तुष, केश, गढ़ा,
ांकड़ा रहता हो, हत्यारे जंतु और चुहोंके मदक जहां नहीं हों, जहांपर वमई
जिस स्थानकी भूमि घनी, सुगन्धित, चिकनी, मधुर और बराबर हो वही
वेजयकी कारण है; छावनीमेंभी इसकी यथायोग्यसे योजना करनी चाहिये
॥ १७ ॥ दैवज्ञ, मंत्री और याजकलोग पुरसे निकालकर इन स्थानोंकी पूर्व
दिशामें या ईशानकोणमें जांय, उसके उपरान्त पुरोहित प्रणाम करके खीलें,
दहा और फूलोंसे बलिदान करे. इसका आवाहन मंत्र मुनियोंने इस प्रकारसे
है–" जो देवता लोग इसमें पूजा चाहते हैं, जो दिशा नाग ब्राह्मण व और
ई अंशके भागी हों, वह सबही आगमन करे " ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
उपरान्त पुरोहित इस प्रकार सबको बुलाय ऐसा कहे,–" आप लोग आने-
कलको शुभ पूजा प्राप्त कर राजाको शान्ति दे चले जांय " ॥ २१ ॥ बुलाए हुए
ओंको पूजाकरके सबको वह रात्रि वहींपर बितानी चाहिये, रात्रिमें जो स्वप्न
दें, उसका शुभअशुभ फल निरूपण करना चाहिये' यह विषय यात्राध्यायमें
है २२ दूसरे दिन प्रभातको कहे हुए द्रव्य लाय, उस पृथ्वीमें जाय जो जो
चाहिये उस विषयमें मुनिके गाये ये श्लोक हैं–" विद्वान् पुरोहित वहांपर
खैंचकर उसमें अनेक रत्नोंकी खानिवाली पृथ्वीको खैंच और विविध
ंकी कल्पना करे और यथास्थानमें नाग, यक्ष, पितृ, गन्धर्व, अप्सरा मुनि

मङ्गलानि च ॥ ४२ ॥ आदावनडुहश्चर्म जरया संहतायुष: प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥ ४३ ॥ ततो वृषर योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् । सिंहस्याथ तृतीयं स्याद् व्याघ्रर च ततः परम् ॥ ४४ ॥ चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्त रेत् । शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥ ४५॥ भद्रासनं कतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम् । क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्य चर्मणामुपरि ॥ ४६ ॥ त्रिविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पाद धिकोऽर्द्धयुक्तश्च । माण्डलिकानन्तरजित्समस्तराजार्थिनां शुभ ॥ ४७ ॥ आन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः । सचि वाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृतः ॥ ४८ ॥ बन्दिजनपौ विप्रप्रघुष्टपुण्याहनिर्घोषैः । समृदङ्गशंखतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हतानि ॥ ४९ ॥ अहतक्षौमनिवसनं पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत्सर्पिषापूर्णैः ॥ ५० ॥ अष्टावष्ट विंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम् । अधिकेऽधि

चाहिये॥ ३७॥ ३८॥ ३९॥ ४०॥ ४१॥ ४२॥ जो बैल बहुत बूढा होकर मरा है, ऐसे उत्त लक्षणवाले बैलके चर्मकी गर्दन पूर्वकी ओर करके प्रथम बिछावे ॥४३॥ फिर यो बैलके लाल साबत चमडे बिछावे. उसके ऊपर सिंहका और उसके ऊपर व्याघ्र चमडा बिछावे. जब पुष्य नक्षत्र और श्रेष्ठ मुहूर्त आवे तब यह चार प्रकारके च उस वेदीपर बिछावे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ सुवर्ण, चांदी, और तांबेका बना हुआ सुन्द आसन या दुधारे वृक्षके काठका बना हुआ सुन्दर आसन इन चमडोंके ऊ बिछावे. इस आसनकी ऊँचाई तीन प्रकारकी होती है,-एक हाथ सवा ह और डेढ हाथ सब आसन इस प्रकार कहे अनुसार ऊँचे हों और बिछे राज्यके चाहनेवाले समस्त राजाओंको माण्डलिकान्तरजित् अर्थात् जयश्री और शुभदायी होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ मनवाला राजा स्वर्णसे ढकक सचिव, आप्त, पुरोहित, दैव, पौर और कल्याण नामसे घिरकर उस आसन पर बैठे ॥ ४८ ॥ बन्दिजन, और पुरवासियोंकी उत्सवध्वनि, ब्राह्मणोंके द्वा उच्चारण किया हुआ पुण्यशब्द और मृदङ्ग, शंख व तुरईका मंगलशब्द राजा अनिष्टका नाश करता है ॥ ४९ ॥ फिर साबत रेशमीन वस्त्र पहरनेवाले बलिदा और पूजाकारी राजाको कम्बलसे भलीभांति ढककर, घृतपूर्ण कलशसे पुरोहि राजाको अभिषेक करे ॥ ५० ॥ आठ अट्ठाईस या एक सौ आठ कलश हों कल

स्माङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः श्वाविन्मूषकविवरैर्वल्मीकैश्च सन्त्यक्ता ॥ १६ ॥ धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय। सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ॥ १७ ॥ निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम्। कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं दिशीशाधिपायां वा ॥ १८ ॥ लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात्। आवाहनमथ मन्त्रस्तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥ आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः। दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥ आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः। श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शांतिं महीपतेः ॥ २१ ॥ आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते। सदसत्स्वप्ननिमित्तं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥ २२ ॥ अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान्। गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥ २३ ॥

जिसका जल बहाता हो, पूर्व व उत्तरकी ओरको बहती हुई, क्रमसे नीचेकी भूमिमें गृहस्थान करना चाहिये ॥ १५ ॥ राख, कोयला, हड्डी, ऊषर, तुष, केश, गढ़ा, जहां कांकडा रहता हो, हत्यारे जंतु और चूहोंके मदक जहां नहीं हों, जहांपर वमई न हो, जिस स्थानकी भूमि घनी, सुगन्धित, चिकनी, मधुर और बराबर हो वही भूमि विजयकी कारण है; छावनीमेंभी इसकी यथायोग्यसे योजना करनी चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥ दैवज्ञ, मंत्री और याजकलोग पुरसे निकालकर इन स्थानोंकी पूर्व उत्तर दिशामें या ईशानकोणमें जांय, उसके उपरान्त पुरोहित प्रणाम करके खीलें, अक्षत, दही और फूलोंसे बलिदान करे. इसका आवाहन मंत्र मुनियोंने इस प्रकारसे कहा है–"जो देवता लोग इसमें पूजा चाहते हैं, जो दिशा नाग ब्राह्मण व और जो कोई अंशके भागी हों, वह सबही आगमन करें" ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ इसके उपरान्त पुरोहित इस प्रकार सबको बुलाय ऐसा कहे,–"आप लोग आनेवाले कलको शुभ पूजा प्राप्त कर राजाको शान्ति दे चले जांय" ॥ २१ ॥ बुलाए हुए देवताओंको पूजाकरके सबको वह रात्रि वहींपर बितानी चाहिये, रात्रिमें जो स्वप्न दिखाई दे, उसका शुभाशुभ फल निरूपण करना चाहिये' यह विषय यात्राध्यायमें कहा है २२ दूसरे दिन प्रभातको कहे हुए द्रव्य लाय, उस पृथ्वीमें जाय जो जो करना चाहिये उस विषयमें मुनिके गाये ये श्लोक हैं–" विद्वान् पुरोहित वहांपर मंडल खैंचकर उसमें अनेक रत्नोंकी खानिवाली पृथ्वीको खैंच और विविध स्थानोंकी कल्पना करे और यथास्थानमें नाग, यक्ष, पितृ, गन्धर्व, अप्सरा मुनि

मङ्गलानि च ॥ ४२ ॥ आदावनडुहश्चर्म जरया संहृतायुषः । प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥ ४३ ॥ ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् । सिंहस्याथ तृतीयं स्याद् व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥ ४४ ॥ चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत् । शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥ ४५ ॥ भद्रासनमेकतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम् । क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्यं चर्मणामुपरि ॥ ४६ ॥ विविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पादाधिकोऽर्द्धयुक्तश्च । माण्डलिकानन्तरजित्समस्तराजार्थिनां शुभदः ॥ ४७ ॥ आन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः । सचिवाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृतः ॥ ४८ ॥ बन्दिजनपौरविप्रप्रघुष्टपुण्याहनिर्घोषैः । समृदङ्गशंखतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हतानिष्टः ॥ ४९ ॥ अहतक्षौमनिवसनं पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य । कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत्सर्पिषापूर्णैः ॥ ५० ॥ अष्टावष्टाविंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम् । अधिकेऽधिके

चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो बैल बहुत बूढा होकर मरा है, ऐसे उत्तम लक्षणवाले बैलके चर्मकी गर्दन पूर्वकी ओर करके प्रथम बिछावे ॥ ४३ ॥ फिर योद्धा बैलके लाल साबत चमडे बिछावे. उसके ऊपर सिंहका और उसके ऊपर व्याघ्रका चमडा बिछावे. जब पुष्य नक्षत्र और श्रेष्ठ मुहूर्त आवे तब यह चार प्रकारके चर्म उस वेदीपर बिछावे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ सुवर्ण, चांदी, और तांबेका बना हुआ सुन्दर आसन या दुधारे वृक्षके काठका बना हुआ सुन्दर आसन इन चमडोंके ऊपर बिछावे. इस आसनकी ऊँचाई तीन प्रकारकी होती है,-एक हाथ सवा हात और डेढ हाथ सब आसन इस प्रकार कहे अनुसार ऊँचे हों और बिछे तो राज्यके चाहनेवाले समस्त राजाओंको माण्डलिकान्तराजित् अर्थात् जयशील और शुभदायी होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ मनवाला राजा स्वर्णसे ढककर सचिव, आप्त, पुरोहित, दैव, पौर और कल्याण नामसे घिरकर उस आसनपर बैठे ॥ ४८ ॥ बन्दिजन, और पुरवासियोंकी उत्सवध्वनि, ब्राह्मणोंके द्वारा उच्चारण किया हुआ पुण्यशब्द और मृदङ्ग, शंख व तुरहीका मंगलशब्द राजाके अनिष्टका नाश करता है ॥ ४९ ॥ फिर साबत रेशमीन वस्त्र पहरनेवाले बलिदान और पूजाकारी राजाको कम्बलसे भलीभांति ढककर, घृतपूर्ण कलशसे पुरोहित राजाको अभिषेक करे ॥ ५० ॥ आठ अट्ठाईस या एक सौ आठ कलश हों कलश

गुणोत्तरमय च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥ ५१ ॥ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ५२ ॥ भौमान्तरिक्षं दिव्य च यत्ते किल्बिषमागतम् । सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्प्रणाशमुपगच्छतु ॥ ५३ ॥ कम्बलमपनीय ततः पुष्यस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः । अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः । ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ ५५ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ । अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा । दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ५७ ॥ देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर एव च । सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥ नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः । संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ५९ ॥ सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः । वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥ ६० ॥ सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि

जितने अधिक होंगे उतनाही गुण अधिक बढेगा, इस विषयमें मुनिका कहा हुआ यह मंत्र है, -"आज्य (घी) ही परम तेज है, आज्यही श्रेष्ठ और पापका नाश करनेवाला है, आज्यही देवताओंका आहार और समस्त लोक आज्यमेंही प्रतिष्ठित हो रहे हैं; हे राजन् ! भौम, आन्तरिक्ष और दिव्य जो समस्त पाप आपको उपस्थित हुए हैं, वह समस्त आज्यको छूकर नाशको प्राप्त होते हैं" ॥५१॥५२॥५३॥ फिर पुरोहित राजाके शरीरसे कम्बलको उतारकर फल और पुष्पयुक्त पुष्पस्नानके जलमें राजाका अभिषेक करे, उस विषयका मंत्र यह है-"ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु मरुद्गण, साध्य और जो देवता सिद्ध व पुरातन है वह तुम्हारा अभिषेक करे, आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्योंम श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, देवताओंकी माता अदिति, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली, कुहू, दनु, सुरसा विनता, कद्रु, देवताओंकी मातायें और दिव्य अप्सरायें यह सब तुम्हारा अभिषेक करें, नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, संवत्सर, श्रेष्ठ दिन, कला, काष्ठा क्षण और लव आदि कालके शुभ अंग तुम्हारा अभिषेक करें, विमानमें बैठनेवाले देवतागण, सागर, मनु, स्त्रियोंके साथ सातो ऋषि, समस्त ध्रुवस्थान, मरीचि अत्रि, पुलह-पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन

बन्धनमोक्षं कुर्यादाभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम् ॥८१॥ एतत् प्रयुज्यम प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम्।पुष्यं विनार्धफलदा पौषी शान्ति पुरा प्रोक्ता ॥ ८२ ॥ राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥ ८३ ॥ नास्ति लोके उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति । मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मा तिरिच्यते ॥ ८४ ॥ अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च कांक्ष तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ महेन्द्रार्थमुवा बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः।स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम् ॥८६ अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयीत यः । तस्याभयविनिर्मु परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुष्यस्नानं नामाष्ट-चत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

अभ्यन्तर दोष करनेवालेके सिवाय और सबके बन्धन छोडकर देवे॥८१॥हरेक पु नक्षत्रमें सुख, यश और धनकी बढानेवाली यह शान्ति करनी चाहिये. जो मासकी पूर्णिमामें पुष्य नक्षत्र न हो तो वह आधे फलकी देनेवाली है. इसमें शान्ति करनी चाहिये सो पहिले कही है ॥ ८२ ॥ राज्यमें उत्पात या और प्र रके उपसर्ग हों अथवा राहु केतुके दर्शनसे या ग्रहोंके सतानेपर पुष्यस्नान क चाहिये ॥८३॥ इस पृथ्वीमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इस शान्तिसे दूर न जाय और ऐसा अमंगलभी नहीं है, जो इस शान्तिको लांघनेमें समर्थ होवे ॥ ८४ इस कारण राज्यपर बैठनेकी इच्छा करनेवाले,पुत्रका जन्म चाहनेवाले राजाके अभिषेककी यह विधिही सबसे पहले श्रेष्ठ है ॥८५॥ बडी कीर्तिवाले बृहस्पति इन्द्रके लिये इसको कहा है. यह उत्तम पुष्यस्नानविधि आयुःप्रजाको बढानेव और सौभाग्यकी बढानेवाली है ॥८६॥ जो राजा इस विधानसे हाथी और घोड स्नान कराता है, पाप छूटकर उसको श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥

णोत्तरमय च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥ ५१ ॥ आज्यं तेजः समु-
ष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः
तिष्ठिताः ॥ ५२ ॥ भौमान्तरिक्षं दिव्य च यत्ते किल्बिषमागत-
। सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्प्रणाशमुपगच्छतु ॥ ५३ ॥ कम्बलमप-
य ततः पुण्यस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः । अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं
रोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥ ५४ ॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः
ातनाः । ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥ ५५ ॥
ादित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ । अदितिर्देवमाता च
ाहा सिद्धिः सरस्वती ॥ ५६ ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनी-
ली कुहूस्तथा । दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥ ५७ ॥
ापत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर एव च । सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु
ध्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ ५८ ॥ नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्र-
न्धयः । संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥ ५९ ॥
ते त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः । वैमानिकाः सुरगणा
नवः सागरैः सह ॥ ६० ॥ सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि

तने अधिक होंगे उतनाही गुण अधिक बढेगा, इस विषयमें मुनिका कहा हुआ मंत्र है, -"आज्य (घी) ही परम तेज है, आज्यही श्रेष्ठ और पापका नाश नेवाला है, आज्यही देवताओंका आहार और समस्त लोक आज्यमेंही प्रतिष्ठित रहे हैं, हे राजन्! भौम, आन्तरिक्ष और दिव्य जो समस्त पाप आपको उप-ात हुए हैं, वह समस्त आज्यको छूकर नाशको प्राप्त होते हैं" ॥५१॥५२॥५३॥ पुरोहित राजाके शरीरसे कम्बलको उतारकर फल और पुण्ययुक्त पुष्पस्नानके ामें राजाका अभिषेक करे, उस विषयका मंत्र यह है-"ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, द्गण, साध्य और जो देवता सिद्ध व पुरातन है वह तुम्हारा अभिषेक करे, दित्य, वसु, रुद्र, वैद्योंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, देवताओंकी माता अदिति, हा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली, कुहू, दनु, सुरसा, ाता, कद्रु, देवताओंकी मातायें और दिव्य अप्सरायें यह सब तुम्हारा अभिषेक , नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, संवत्सर, श्रेष्ठ दिन, कला, काष्ठा, । और लव आदि कालके शुभ अंग तुम्हारा अभिषेक करें, विमानमें बैठनेवाले तागण, सागर, मनु, स्त्रियोंके साथ सातो ऋषि, समस्त ध्रुवस्थान, मरीचि, त्रि, पुलह पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन,

बन्धनमोक्षं कुर्यादाभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम् ॥८१॥ एतत्व प्रपु
प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम्।पुष्यं विनार्धफलदा पौषी
पुरा प्रोक्ता ॥ ८२ ॥ राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च
ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥ ८३ ॥ नास्ति
उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति । मङ्गलं चापरं नास्ति य
तिरिच्यते ॥ ८४ ॥ अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च
तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥ ८५ ॥ महेन्द्रार्थ
बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः।स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम
अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयीत यः । तस्याभयां
परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ८७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुष्यस्नानं नामाष्ट
चत्वारिशोऽध्यायः॥ ४८॥

अभ्यन्तर दोष करनेवालेके सिवाय और सबके बन्धन छोडकर देवे॥८१॥
नक्षत्रमें सुख, यश और धनकी बढानेवाली यह शान्ति करनी चाहिये.
मासकी पूर्णिमामें पुष्य नक्षत्र न हो तो वह आधे फलकी देनेवाली है
शान्ति करनी चाहिये सो पहिले कही है ॥ ८२ ॥ राज्यमें उत्पात या
रके उपसर्ग हों अथवा राहु केतुके दर्शनसे या ग्रहोंके सतानेपर पुष्यस्न
चाहिये ॥८३॥ इस पृथ्वीमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इस शान्तिसे
जाय और ऐसा अमंगलभी नहीं है, जो इस शान्तिको लांघनेमें समर्थ होवे
इस कारण राज्यपर बैठनेकी इच्छा करनेवाले,पुत्रका जन्म चाहनेवाले र
अभिषेककी यह विधिही सबसे पहले श्रेष्ठ है ॥८५॥ बडी कीर्तिवाले बृ
इन्द्रके लिये इसको कहा है. यह उत्तम पुष्यस्नानविधि आयुःप्रजाको
और सौभाग्यकी बढानेवाली है ॥८६॥ जो राजा इस विधानसे हाथी औ
स्नान कराता है, पाप छूटकर उसको श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ८७

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुर
वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टचत्वारिंशो

अथैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

पट्टलक्षणम् ।

विस्तरशो निर्दिष्टं पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः । तत्संक्षेपः
यते मयात्र सकलार्थसम्पन्नः ॥ १ ॥ पट्टः शुभदो राज्ञां मध्ये-
ावंगुलानि विस्तीर्णः । सप्त नरेन्द्रमहिष्याः षड् युवराजस्य
दैष्टः ॥ २ ॥ चतुरंगुलविस्तारः पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये । द्वे
प्रसादपट्टः पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ॥ ३ ॥ सर्वे द्विगुणायामा
यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः । सर्वे च शुद्धकाञ्चनविनिर्मिताः
ासो वृद्ध्यै ॥ ४ ॥ पञ्चशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपा-
त्रमहिष्योः । एकशिखः सैन्यपतेः प्रसादपट्टो विना शिखया
५ ॥ क्रियमाणं यदि पत्रं सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य । वृद्धि-
ौ भूमिपतेस्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ॥ ६ ॥ जीवितराज्य-
ाशं करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः । मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो
ाकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ॥ ७ ॥ अशुभनिमित्तोत्पत्तौ

आचार्योंने विस्तारसे पट्टके जो लक्षण कहे हैं, सर्व अर्थवाले वही लक्षण संक्षेपसे
जाते हैं ॥ १ ॥ बीचमें आठ अंगुलके विस्तारवाला मुकुट राजाओंको शुभदायी
ा है; सात अंगुल विस्तारवाला हो तो रानीको और छः अंगुलके विस्तारवाला
ो युवराजको शुभ होता है ॥ २ ॥ बीचमें चार अंगुलके विस्तारवाला मुकुट
ापतिको शुभदायी होता है, दो अंगुलके विस्तारवाला पट्ट प्रसाद-मुकुट कहा
ा है. यह पांच प्रकारके मुकुट कहे गये ॥ ३ ॥ समस्त मुकुटही विस्तारसे दूने
हों और उनका पार्श्व विस्तारसे आधा हो, समस्त शुद्ध कांचनके बने हों तो
को बढाते हैं ॥ ४ ॥ पांच शिखावाला मुकुट राजाको, तीन शिखावाला मुकुट
ाज और रानीको और एक शिखावाला मुकुट सेनापतिको शुभदायी है और
ा शिखाका प्रसाद-मुकुटभी शुभदायी होता है ॥ ५ ॥ जो मुकुटके बनाये हुए
सुखसे फैल जायँ तो राजाकी वृद्धि व जय और प्रजाको सुख सम्पत्तिकी प्राप्ति
ो है ॥६॥ पत्रमें दाग हों तो जीव और राज्यका नाश हो और बीचमें फूटा हुआ
ो त्याग कर देना उचित है, उसकी दोनों बगलें फुटी हों तो विघ्न ागी होता
७ ॥ इस प्रकार अशुभ निमित्तकी उत्पत्तिमें शास्त्रके जाननेवाले शान्तिकी

शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः । शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रवि
भवति ॥ ८ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्सं०पट्टलक्षणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः ।

खड्गलक्षणम् ।

अंगुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशतिं खड्गः । अंगु
नाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥ १ ॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानात
शिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् । सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुध
स्तिकानां च ॥ २ ॥ कृकलासकाककङ्कक्रव्यादकबन्धवृश्चिक
तयः । खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगाः प्रभूताश्च ॥ ३
स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः । अ
इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥ ४ ॥ क्वणितं
णायोक्त पराजयाय प्रवर्तनं कोशात् । स्वयमुद्गीर्णे
ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥ ५ ॥ नाव

आज्ञा दें, जिस मुकुटमें किसी प्रकारके अशुभ चिह्न नहीं होते, उसके
करनेसे राजाका राज्य बढता है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य—पंडितवलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायामेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पचास अंगुलके प्रमाणका खड्ग उत्तम है, पचीस अंगुलके परिमाणका
अधम है. अंगुलिके परिमाणसे इसमें व्रणको जानना चाहिये, यदि विषम अं
परिमाणमें अर्थात् ३ । ५ । ७ । ९ आदिमें व्रण हो तो अशुभ है ॥ १ ॥ श्री
वर्द्धमान, आतपत्र, शिवलिङ्ग, कुंडल, कमल, ध्वज, आयुध और स्वस्तिकका
दाग शुभदायी है ॥ २ ॥ गिरगिट, काक, गिद्ध, क्रव्याद, कबन्ध वा वि
आकारका अथवा बांसके समान बहुतसे दागवाला खड्ग शुभदायी नहीं होता
फूटा हुआ, छोटा, खुटला, वंशछिन्न, दृष्टि और मनको न अच्छा लगनेवाला
शब्दरहित खड्ग अनिष्टकारी है, इससे विपरीत हो तो इष्टफलका देनेवा
॥ ४ ॥ अचानक खड्गमेंसे शब्द हो तो मरणका कारण है, म्यानसे ख
नेपर पराजय, स्वयं म्यानसे निकाल पडे तो युद्ध और प्रकाशमान ह
विजय होती है ॥ ५ ॥ राजाको चाहिये कि वृथा खड्गको न

यान्न विघट्टयेच्च पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम् । देशं न
कथयेत् प्रतिमानयेच्च नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम्
॥ गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च । करवीरप-
ाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ॥ ७ ॥ निष्पन्नो न च्छेद्यो
ः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः । मूले म्रियते स्वामी जननी तस्या-
छिन्ने ॥ ८ ॥ यस्मिन्नत्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत्तद्वदेव खड्गस्य ।
ानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥ ९ ॥ अथवा
ति यदङ्गं प्रष्टा निस्त्रिंशभृतदत्रवार्यं । कोशस्थस्यादेश्यो
ऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥ १० ॥ शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्-
द्वितीये ललाटसंस्पर्शे । भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे
११ ॥ नासोष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसकेषु पञ्चाद्याः । उरसि
ासंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥ १२ ॥ स्तनहृदयोदरकुक्षी-

े या न हिलावे डुलावे, उसमें मुख न देखे, उसका मूल्य न कहे
उत्पत्तिका देश न बतावे और अपवित्र होकर उसको नहीं छुए ॥ ६ ॥
ी जीभके समान आकारवाला, नीले कमल और वंशके पत्रके समान,
े पत्तेके समान, शूलाग्र और मंडलाग्र यही सब खड्ग अच्छे हैं ॥ ७ ॥
कहे हुए प्रमाणवाले खड्गोंका कसौटीसे परीक्षा करना या काटना उचित
, खड्गकी नोक टूट जाय तो खड्गके स्वामीकी और मूठ टूट जाय तो खड्ग
लिककी माता मरे ॥ ८ ॥ जिस प्रकार स्त्रियोंके मुखपर तिल देखकर उनके
ानमें भी तिल कहे जा सकते हैं, वैसेही खड्गकी मूठमें हुए दागोंको देखकर
ें व्रण कहे जा सकते हैं ॥ ९ ॥ खड्गधारी पूछनेवाला (इस खड्गके किस
ं व्रण है बताओ ऐसा पूछकर) जिस अंगको छुए दैवज्ञ उसका निश्चय
इस शस्त्रज्ञानके शास्त्रके अनुसार स्थानमें पडे हुए खड्गमें कहां २ व्रण हैं सो
ेकेगा ॥ १० ॥ जो पूछनेके समय प्रश्नका करनेवाला मस्तकको छुए तो
चाहिये कि खड्गके प्रथम अंगुलमें व्रण है, ललाट छुए तो दूसरे अंगुलमें,
े बीचमें छुए तो तीसरे अंगुलमें, नेत्रोंको छुए तो चौथे अंगुलमें व्रणका
कहना चाहिये ॥ ११ जो प्रश्न करनेवाला नासिका, ओठ, गाल, ठोडी,
गरदन या अंसकन्ध स्थानोंको छुए तो क्रमसे पांचवें, छठे सातवें, आठवें,
दशवें और ग्यारहवें अंगुलमें व्रणका होना बताना चाहिये, उरके छूनेसे
अंगुलमें और दोनो कोखोंके छूनेसे तेरह अंगुलके स्थानमें व्रणका होना
॥ १२ ॥ स्तन, हृदय, उदर, कोख या नाभीका स्पर्श करनेसे क्रमानुसार

नाभीषु चतुर्दशाद्यो ज्ञेयाः । नाभीमूले कटयां गुह्ये चैकोन
तितः ॥ १३ ॥ ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे । ज
च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥ १४ ॥ जङ्घामध्ये गुल
ष्ण्यांपादे तदंगुलीष्वपि च । षड्विंशतिकाद्यावत्त्रिंशदिति
गर्गस्य ॥ १५ ॥ पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बन्ध
एकाद्यंगुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः॥१६॥ सुतलाभः
हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ । क्रमशो विनाशवनिताप्ति
दुःखानि षट्प्रभृति ॥ १७ ॥ लब्धिर्हानिस्त्रीलब्धयो वधो वृ
रणपरितोषाः । ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात् ।
वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युसम्पदोऽस्वत्वम् । ऐश्वर्यमृ
ज्यानि च क्रमात्त्रिंशदिति यावत् ॥ १९ ॥ परतो न विशे
विषमसमुत्थास्तु पापशुभफलदाः । कैश्चिदफलाः प्र

चौदहसे लेकर अठारह अंगुलतकके स्थानमें व्रण बतावे, नाभिकी जडमें, क
गुह्यस्थानके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार उन्नीस वीस और इक्कीस अंगुलमें व्र
है ॥ १३ ॥ दोनों ऊरुके स्पर्श करनेसे २२ वें अंगुलमें और दोनों ऊ
मध्य स्थान स्पर्श करनेसे २३ वें अंगुलमें व्रण होता है, जानुके स्पर्श
और जंघाके स्पर्शसे २५ अंगुलमें व्रण होता है ॥ १४ ॥ उस काल
पूछनेवाला दो जांघोंके मध्यमें, टकना, एडी पांव और पांवोंकी अंगुली
किसी अंगको स्पर्श करे तो क्रमानुसार छब्बीस अंगुलसे लेकर तीस अंगु
स्थानमें व्रणका होना निरूपण करे, यह गर्गाचार्यका मत कहा गया ।
जो खड्गका व्रण एक अंगुलसे लेकर पांच अंगुलतक हो तो क्रमानु
फल होता है,-पुत्रमरण, धनलाभ, धनहानि, सम्पत्ति और बन्धन ॥ १६
लाभ, क्लेश, हस्तिलाभ, पुत्रमरण धनलाभ, विनाश स्त्रीप्राप्ति और चित्तकं
यह क्रमानुसार षडादि अंगुलके व्रणका फल है ॥ १७ ॥ लाभ, हानि,
वध, वृद्धि, मरण और संतोष यह फल क्रमानुसार चौदहसे आदि लेकर
लमें व्रण हो तो उसके फल जानने चाहिये, २१ अंगुलमें व्रण होनेसे
हानि होती है ॥ १८ ॥ धनकी प्राप्ति, आनिर्वाण, धनागम, मृत्यु सम्पत्ति
नता, ऐश्वर्य, मृत्यु और राज्य यह फल क्रमशः वीस अंगुलसे लेकर तीस
तक नौ अंगुलवाले व्रणका फल है ॥ १९ ॥ इसके पीछे और कं
नहीं कहा है तोभी विषम अंगुलमें व्रणका होना अशुभ फल औ
होनेसे शुभ फल देता है और कोई कहते हैं कि तीस अंगुलके

त्परतोऽग्रमिति यावत् ॥ २० ॥ करवीरोत्पलगजमदघृतकुं-
न्दचम्पकसगन्धः । शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदःसदृशगन्धः
॥ कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः । वैदू-
कविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः ॥ २२ ॥ इदमौशनसं च
ानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीताम् । हविषा गुणवत्सुता-
प्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥ २३ ॥ वडवोष्ट्रकरे-
यपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम् । झषपित्तमृगाश्वव-
धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥ २४ ॥ आर्कं पयो हुडु-
गमषीसमेतं पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः । शस्त्रस्य तैल-
स्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः
॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं
सम्यक् छितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य
ंचम् ॥ २६ ॥

ीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं०खड्गलक्षणंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥

किसी स्थानमें ब्रण हो तो किसी प्रकारका विशेष फल नहीं होता ॥२०॥
उत्पल, हाथीका मद, घी, कुंकुम, कुन्द, या चम्पाके समान गन्धवाला खड्ग
शुभ फलदायी होता है, परन्तु गोमूत्र पंक, या मेदकी समान गन्ध आती
अनिष्टकारी होता है ॥२१॥ कूर्प, वसा, रक्त या क्षारके समान गन्ध आनेसे
ौर दुःखका देनेवाला होता है, जो खड्गमें वैदूर्य, सुवर्ण और बिजलीके
चमक हो तो जय और आरोग्यका बढानेवाला होता है ॥ २२ ॥ जिनको
के प्राप्त करनेकी इच्छा है, उनको अपने शस्त्रोंका रुधिरसे पान देना चाहिये
न पुत्रके प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके शस्त्रपर घृतसे पान दें और अक्षय
चाहनेवालेके खड्गपर जलका पान होना चाहिये ऐसा शुक्राचार्यके बनाये
का मत है ॥२३॥ जो घोडी, ऊटनी और हथनीके दूधसे पान दी जाय तो
र्पसे भली भांति अर्थकी सिद्धि होती है, मत्स्यपित्त, मृग, अश्व और छाग
साथ तालमेथीके रसमें पान देनेसे हाथीकी शुंडभी काट डाली जा सकती
२४ ॥ पहिले शस्त्रपर तेल मले फिर आग वृक्षका गोंद, मेषके सींगकी भस्म
कबूतर व चूहेके बीट पिलाकर शस्त्रके ऊपर लेप करे फिर उसको तेज करके
के भी ऊपर मारे तो भी उसकी धार नहीं टूटती है ॥ २५ ॥ कदली वृक्षका
का)क्षार और मट्ठा मिलाकर एक दिन रख छोडे फिर लोहेका बना हुआ खड्ग

अथैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

अंगविद्या

दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदितस्थानाहृतानीक्षता वाच्यं प्रष्टुः
पराङ्मुखदनां चालोक्यं कालं धिया।सर्वज्ञो हि चराचरात्मकत
सर्वदर्शी विभुश्चेष्टाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थि
॥ १ ॥ स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदासर
च्युतशस्तसंज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम् । देवर्षिद्विजसाधुसि
सत्पुष्पसस्योक्षितं सत्स्वादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छ

उसको पिये, फिर उस खड्गको शान देकर पत्थरपरभी मारे तो वह नहीं
और लोहेपरभी मारनेसे वह खड्ग खुटला नहीं होगा ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा
बादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

शास्त्रोंमें कहा हुआ दिशाओंका ज्ञान लाये हुए पदार्थोंके देखनेवाले ज्यो
लोग प्रश्न करनेवालेका अंग, अपना अंग और दूसरेके अंगोंकी घटना
बुद्धिसे शुभ व अशुभ फलको कह सकते हैं. स्थावर जङ्गमादि पदार्थोंका
भलीभांतिसे ज्ञान है, इससे दैवज्ञ सर्वज्ञानी, सब कुछ देखनेवाला, विभु
नारायणजीके समान है. क्योंकि इसी चेष्टा और सम्भाषणके करनेसे
चाहनेवाले पुरुषोंके शुभाशुभ फल दिखाते हैं ॥ १ ॥ जो स्थान फूलरूपी
मुसुकाने युक्त है, बहुतसे फलोंसे भरा हुआ, चिकनी छालवाले, बुरे प
शून्य, श्रेष्ठ नामको प्राप्त हुए वृक्षोंसे युक्त है, बराबर है, जो देवता,
द्विज, और सिद्धोंके रहनेकी वासभूमि है, जहांपर श्रेष्ठ पुरुष और
व्याप्त हैं, स्वादिष्ट जलकी निर्मलता करके उत्पन्न हुए हर्षसे युक्त
नवीन तिनकोंके लगे रहनेसे हरे वर्णवाला स्थानही प्रश्न करनेके लिये

१ अंगविद्यापिटकलक्षणं चेतिद्वावध्यायौ न सर्ववादिसम्मतौ । यतोऽङ्गविद्याप्रारम्भे,,अतः केचि
पठन्ति । आचार्येण प्रागेवोक्तं 'वास्तुविद्याङ्गविद्येति' तस्मादस्माभिर्व्याख्यायते' इति, पिटकलक्ष
च-"अतः परमपि केचित् पिटकलक्षणं पठन्ति । तदप्यस्माभिर्व्याख्यायते' इति टीकाकृता महोत्पले
नैनाध्यायसंख्या च न कृता ।

॥ २ ॥ छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत्
: । क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णमर्मभिः ॥३॥
ानशून्यायतनं चतुष्पथं तथा मनोज्ञं विषमं सदोषरम् । अव-
ङ्गारकपालभस्मभिश्चितं तुषैः शुष्कतृणैर्न शोभनम् ॥ ४ ॥
जितनग्ननापितरिपुबन्धनसूनिकैस्तथा श्वपचैः । कितवयतिपी-
र्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ॥ ५ ॥ प्रागुत्तरैशाश्च दिशः
ताः प्रष्टुर्न वायव्ययमाग्निरक्षः । पूर्वाह्णकालेऽस्ति शुभं न
सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ॥ ६ ॥ यात्राविधाने हि शुभा-
यत् प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम् । दृष्ट्वा पुरो वा जन-
तं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ॥ ७ ॥ अथाङ्गान्यूरोष्ठ-
वृषणपादं च दशना भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखाङ्गुष्ठ-
यत् । सशंखं कक्षांसश्रवणगुदसन्धीति पुरुषे स्त्रियां भ्रूना-
स्फग्वलिकटिसुलेखाङ्गुलिचयम् ॥ ८ ॥ जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके
णयुग्मं जंघे नाभिः कर्णपाली कृकाटी । वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजा-

है ॥ २ ॥ जिस स्थानमें छिन्नभिन्न कीडोंके खाये, कांटेदार, जले हुए, रूखे
कुटिल वृक्ष लगे हों, जो स्थान क्रूर पक्षिओंसे घिरा हुआ हो, बुरे नामवाले,
, बहुत सारे पत्तेही हैं मानो जिनका मर्म ऐसे वृक्ष लगे हों, वह स्थान अशुभ
३ ॥ जो स्थान चौराहा मसानके समान सूने गृहसे युक्त, मनको न भाने-
, टेढा, सदा ऊषर रहनेवाला), जहाँ किसीका वास न हो, कोयला, आद-
खोपडी और सूखे तिनकोंसे व्याप्त है सो शुभदायी नहीं होता है ॥ ४ ॥
ई, नागा, नाई, शत्रु, बन्धन, कसाई, चाण्डाल, शठ, यति और पीडित-
से जो स्थान युक्त है और आयुध और मद्यकी विक्रीका जो स्थान है सो
ारी नहीं है ॥ ५ ॥ पूर्व, उत्तर, ईशानकोण प्रश्न करनेवालेके लिये श्रेष्ठ हैं,
वायु, पश्चिम, दक्षिण और नैर्ऋत दिशा अच्छी नहीं है. रात्रिकाल, दोनों
ा और अपराह्णमें प्रश्न करना शुभ नहीं होता ॥ ६ ॥ यात्राकी विधिमें जो
शुभ निमित्त कहे गये हैं, पूछनवालेके सामने लाये हुए, या उनके हाथ वस्त्रके
देखकर उनका शुभाशुभ करना चाहिये ॥ ७ ॥ ऊरु, होंठ, स्तन, अंडकोश
दांत, भुजा, हाथ, कपोल, केश, गला, नख, अंगूठा, शंख, कन्धा, कान, गुदा
के स्थान यह पुरुषसंज्ञावाची शब्द हैं. भौं, नासिका, स्फिक् (कमरका
पिंड), कमर और सुन्दर रेखावाली अंगुलियें स्त्रीनामवाची हैं और जीभ,

न्वस्थिपार्श्वं हृत्तालनक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥ ९ ॥ नपुंस
च शिरो ललाटमास्याद्यसंज्ञैरपरैश्चिरेण । सिद्धिर्भवेज्जातु
कैर्नो रूक्षक्षतैर्भग्नकृशैश्च पूर्वैः ॥ १० ॥ स्पृष्टे वा चालिते
पादांगुष्ठेऽक्षिरुग्भवेत् । अंगुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते
यम् ॥ ११ ॥ विप्रयोगमुरसि स्वगात्रतः कर्पटाहृतिरनर्थदा
स्यात्प्रियाप्तिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणपादयोजितुः ॥
पादांगुष्ठेन विलिखेद्भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया । हस्तेन पादौ क
त्तस्य दासीमथा च सा ॥ १३ ॥ तालभूर्जपटदर्शनेऽशुकं
येत्कचतुषास्थिभस्मगम् । व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं व
च समवेक्ष्य बन्धनम् ॥ १४ ॥ पिप्पलीमरिचशुण्ठ
लोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः । गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत् पृ
स्तगरकेण चिन्तनम् ॥ १५ ॥ स्त्रीपुरुषदोषपीडितसवाध्वसुता

गर्दन, पिंडिक (पिंडालियें), पाँहियें, जांघ, नाभि, कर्णपाली, कृकाटी (घेंटू
वदन, पीठ, हँसली, जानु, अस्थिपार्श्व, हृदय, तालु, नेत्र, लिंग, छाती त्रिक (घ
बांसके नीचेकी तीन हड्डियां, मस्तक और ललाट यह अंग नपुंसकसंज्ञावा
आस्यादि (मुखादि) छुए जांय तो विलम्बसे सिद्धि होती है, जो पहले क
अंग रूखे, क्षत, टूटे हुए या दुबले हों तो इनके छुए जाने और नपुंसक अंगों
जानेसे कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ पांवका अंगूठा छुआ ज
हिलाया जाय तो प्रश्न करनेवालेको नेत्ररोग हो, अंगुलिके आघात करे तो
शोक और शिरपर आघात होनेसे नृपभय होता है ॥ ११ ॥ प्रश्न करनेवाला छा
छुए तो प्रियवियोग होता है, अपने अंगसे कोई वस्त्र उतार ले तो अनर्थ हो
परन्तु यदि उससे वस्त्र ग्रहण करके पीछेकी ओरको जाय (पछिको) तो
प्यारेकी प्राप्ति हो ॥ १२ ॥ खेतकी चिन्ता हो तो प्रश्न करनेवाला पांवके
पृथ्वीपर कुरेदे और दोनों पांवोंको खुजावे तो उसको दासीकी चिन्ता होगी
ताल या भोजपत्रके देखनेसे अथवा केश, तुषा, अस्थि व भस्मगत द्रव्योंको दे
वस्त्रकी चिन्ता होती है, रस्सीका जाल देखनेसे व्याधि होती है, वल्कल दे
बन्धन होता है ॥ १४ ॥ जो प्रश्न करनेके समय पीपल, मिर्च, सोंठ, मोथा, लोध,
वस्त्र, नेत्रवाला, जीरा, बालछड, सोंफ और तगरका फूल कहा जाय या
किसीका दर्शन हो तो क्रमानुसार स्त्रीदोषनाश, पुरुषदोषनाश, पीडित
सत्यानाश, मार्गका नाश, सुतका नाश, धनका नाश, धान्यका नाश, पुत्र

ानयानाम् । द्विचतुष्पदक्षितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥ १६ ॥
ग्रोधमधुकतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरिजातिफलैः । धनकनकपुरुष-
होशुकरूप्योदुम्बराप्तिरपि करगैः ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्णपात्रं
भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरौ । गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्वि-
ाकरम् ॥ १८ ॥ पशुहस्तिमहिषपङ्कजरजतव्याघ्रैर्लभेत सन्द-
। अविधननिवसनमलयजकौशेयाभरणसंघातम् ॥ १९ ॥
छा वृद्धश्रावकसुपरिव्राड्दर्शने नृभिर्विहिता । मित्रद्यूतार्थभवा
गकानृपसूतिकार्थकृता ॥ २० ॥ शाक्योपाध्यायार्हतनिर्ग्रन्थनि-
त्तनिगमकैवर्तैः । चारश्चमूपतिवणिजां दासीयोद्धापणस्थवध्या-
मु ॥ २१ ॥ तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितः पशुपालनम् । हृद्गतं
छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ॥ २२ ॥ इच्छामि प्रष्टुं भण
यत्वार्यः समादिशेत्युक्ते । संयोगकुटुम्बोत्था लाभैश्वर्योद्गता

योंका नाश, चौपायोंका नाश और पृथ्वीके नाशकी चिन्ता कहनी चाहिये
।५॥१६॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नकर्त्ताके हाथमें बड, महुआ, तेन्दू, जामन
ाखन, आम, बेर और, जायफल हो तो क्रमानुसार धन,सुवर्ण, पुरुष,लोह,वस्त्र,
ी और तांबेकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्ण पात्र और भरे हुए घडेके
नेसे कुटुम्ब बढता है. हाथीकी लीद, गायका गोबर और कुत्तोंकी विष्ठा देखनेसे
युवति और सुहृदोंका विनाशकारी प्रश्न जानना चाहिये ॥ १८ ॥ उस कालमें
हाथी, महिष, पंकज, चांदी और व्याघ्रके दिखाई देनेसे क्रमानुसार मेष, धन,
के ऊनका बना हुआ कंबल, चन्दन, रेशमी वस्त्र और गहनोंके लाभकी चिन्ता
ी है ॥१९॥ वृद्धश्रावक (जैनसंन्यासी) का दर्शन होनेसे मनुष्योंको मित्र, द्यूत
: धनकी चिन्ता, संन्यासीका दर्शन पानेसे वेश्या, राजा, बच्चा और धनकी
ता कहनी चाहिये॥२०॥शाक्य उपाध्याय, अर्हत, निर्ग्रन्थ, निमित्त, निगम और
रके दिखाई देनेसे क्रमानुसार चोर, सेनापति, वणिक्, दासी, योद्धा, दुकानदा-
। द्रव्य और वधसम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ २१ ॥ तापस या कलालके
ाई देनेसे प्रश्नकारीको परदेशमें गये हुए पुरुषकी और पशुपालनकी चिन्ता
ी है और उंछ (भूमिपर गिरे हुए एक२दानेके इकट्ठे करनेका नाम उंछ है) वृत्तिसे
न धारण करनेवाले मुनि आदि दिखाई दें तो विपत्ति पडनेकी चिन्ता होती है
२॥ "मैं पूछनेकी इच्छा करता हूँ" "कहिये" " दर्शन कीजिये " और " आप
। भांतिसे आज्ञा दीजिये " यह वाक्य कहे जानेपर संयोग, कुटुम्बसे उत्पन्न

चिन्ता ॥ २३ ॥ निर्दिशेति गदिते जयाध्वगा प्रत्यवेक्ष्य मम
न्तितं वद । आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति बन्धु
जा ॥२४॥ अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एवं प
गुष्ठांगुलिकलनया दासदासीजनः स्यात् । जंघे प्रेष्यो भवति भ
नी नाभितो हृत्स्वभार्या पाण्यंगुष्ठांगुलिचयकृतस्पर्शने पुत्र
॥२५॥ मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ । बाहू भ्राताथ त
त्नी स्पृष्ट्वा चौरमादिशेत् ॥२६॥ अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यंगस्प
यदि करोति पृच्छकः । श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजन्नधः पातयेत्व
लस्थवस्तु चेत् ॥२७॥ भृशमवनमिताङ्गपरिमोटनतोऽप्यथः
नधृतरिक्तभाण्डमवलोक्य च चौरजनम् । हृतपतितक्षतास्मृता
ष्टभग्नगतोन्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥ २८ ॥ f
दितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः सह मृतिकरं पं
र्तानां समं रुदितक्षुतैः । अवयवमपि स्पृष्ट्वान्तःस्थं

हुआ लाभ और धनकी चिन्ता होती है ॥२३॥"भलीभांतिसे विचारकर मेरा
रथ कहिये" और " बताइये " यह कहे जानेसे जय और मार्गकी चिन्ता हो
और "आप शीघ्रही देखिये" यह बात सब आदमियोंके बीचमें बैठे हुए ज्योति
कही जाय तो बन्धु और चोरकी चिन्ता होती है ॥२४॥ भीतरका अंगस्पर्श
जाय तो स्वजनकी चिन्ता कही जाती है, बाहरका अंगस्पर्श करे तो बाहरके
व्यकी चिन्ता होती है. पांवका अंगूठा या पांवकी अंगुलियें छुई जायँ तो दा
सीजनकी चिन्ता होती है,जंघाके स्पर्शसे प्रेक्षणीय पुरुष,नाभिके स्पर्शसे बहन,
यके स्पर्शसे भार्या,हाथके अंगूठे या उँगलीके स्पर्शसे पुत्र व कन्याकी चिन्ता होत
प्रश्नकर्त्ता पेट छुए तो माता,मस्तक छुए तो गुरु, दांया या बांया हाथ छुए तो
और उसकी भार्याको चोरीके विषयमें बतावे॥२५॥२६॥ जो पूछनेवाला भीतरके
छोडकर बाहिरी अंगोंको छुए अथवा श्लेष्म, मूत्र और विष्ठा त्याग करते २ हाथ
वस्तुको नीचे गिरा देवे, शरीरको बहुत झुकावे या आलस्यमें आकर तोडे, किसी
व्यके हाथमें रीता बर्त्तन देखे, चोरको देखे अथवा प्रश्नके समय हर लिया, गिर
कट गया, भूल गया, नष्ट हो गया, टूट गया, चोरी गया और मर गया आदि
शब्द उत्पन्न हों तो चोरी गई वस्तु फिर नहीं मिलती ॥ २७ ॥ २८ ॥ या
समस्त चिह्न कहे गये जो इन सबके साथ भुस, हड्डी, विष आदि देखनेके

हरेदतिबहु तदा भुक्तवान्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥ २९ ॥
ःस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् । उरःस्पर्शात् षष्टिकान्नं
स्पर्शे च यावकम् ॥ ३० ॥ कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः
तलयवाग्वः । आस्वादयतश्चोष्ठौ लिहतो मधुरं रसं ज्ञेयम्
। विस्पृक्के स्फोटयेज्जिह्वामाम्ले वक्रं विकूणयेत् । कटुतिक्तक-
र्णोर्हिक्केत् ष्ठीवेच्च सैन्धवे ॥ ३२ ॥ श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं
श्रुत्वा क्रव्यादं प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम् । भ्रूगण्डोष्ठस्पर्शने
तद् भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥ ३३ ॥ मूर्द्धगलकेशह-
कर्णजङ्घं बस्तिं च स्पृष्ट्वा । गजमहिषमेषशूकरगोशशमृग-
ृगसुक्तम् ॥ ३४ ॥ दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यमिषं
मुक्तम् । गर्भिण्या गर्भस्य च निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने
॥ पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते पृष्ठे । तज्जन्म

छींकका शब्द हो तो रोगियोंका मरण होता है, जो पूछनेवाला भीतरके
ाको छूकर श्वास लेवे तब भोजन बहुत करनेसे प्रश्न करनेवाला तृप्त हो रहा
बातको दैवज्ञ प्रकाश करे ॥ २० ॥ पूछनेवाला माथेको स्पर्श करे और शूक-
ा दर्शन करे तो शाँठोका चावल इसने खाया है ऐसा कहे, छाती स्पर्श
शाँठी और गर्दन स्पर्श करनेसे जौका अन्न खाया है ॥ ३० ॥ कोख, स्तन,
ीर जानुको प्रश्न करनेवाला छुए तो क्रमानुसार उरद, दूध, तिल व दालका
करना बतावे. दोनों ओठोंके चाटनेसे मधुर रसको जाने ॥ ३१ ॥ जो
ला विष्टम्भी हो या जीभसे ओठोंके स्थानको चाटे अथवा वदनको सकोडे
ाने खट्टा खाया है और कटु, तिक्त, कषाय व गरम द्रव्य खानेसे हिचकी
होती है, सेंधा नोन खानेसे थूकता है ॥ ३२ ॥ जो प्रश्न करनेके समय
त्याग करे, थोडा सूखा, तीखा पदार्थ और मांस खानेवाले पक्षीको देखे
ाका नाम सुने तो उसने मांसका मिला हुआ अन्न भक्षण किया है. भौं, गाल
ओठके स्पर्श करनेसे उस कारके (नीचे लिखे अनुसार) शाकुन पक्षीका मांस
गया है यह कहे ॥ ३३ ॥ मस्तक, गला, केश, ठोडी, कनपटी, जांघ और
के स्पर्श करनेसे क्रमानुसार गज, महिष मेष, शूकर, गाय, खरगोश, मृग
मांस प्रश्नकर्त्ताने भक्षण किया है ॥ ३४ ॥ दुष्टशकुन, दर्शन और श्रवण
ो गोह और मछलीके मांसका खाना कहा जायगा प्रश्न करनेपर गर्भिणीका
पातभी इससे प्रगट हो जाता है ॥ ३५ ॥ गर्भप्रश्नसे पुरुष, स्त्री नपुंसक अंग
छ दीखे अनुमानसे ज्ञात हो पुरस्थित जो स्पर्शित हो उस गर्भसे उसका जन्म

भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने शुभम् ॥३६॥ अंगुष्ठेन भ्रू
वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात् । मध्वाज्याद्यैर्हे
लैरग्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजश्च ॥ ३७ ॥ गर्भयुता
स्याद्दुष्टनिमित्तवशात्तदुदासः कर्षति तज्जठरं यदि पीड
करगे च करेऽपि ॥ ३८ ॥ घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्ट
वदेत् । वामे द्वौ कर्ण एवं वा द्विचतुर्थः श्रुतिस्तने ॥
मूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं
ष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादांगुष्ठे पार्ष्णियुग्मेऽपि कन्या
सव्यासव्योरुसंस्पर्शे सूते कन्ये सुतद्वयम् । स्पृष्टे लला
चतुस्त्रितनया भवेत् ॥४१॥ शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डहनुर
सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥ ४२ ॥

होता है. परन्तु पान; अन्न, पुष्प और फलका दर्शन करना शुभ है ॥
भौं उदर या उंगलीसे स्पर्श करके पूछनेवालेको गर्भकी चिन्ता होती
आदि वा सुवर्ण, रत्न, मूंगा अथवा माता, धाई और पुत्र यह आगे खडे
हे तोभी गर्भकी ही चिन्ताको प्रगट करे ॥३७॥ पेटपर हाथ रक्खे हो
किये हो तो गर्भणी गर्भयुक्त होती है परन्तु दुष्ट निमित्त दिखाई देनेसे
हो जाता है, जो पूछनेवाला दबाकर पेटको खैंचे या हाथसे हाथ मलकर
गर्भका नाश हो जाता है ॥ ३८ ॥ गर्भग्रहण प्रश्नमें प्रश्न करनेवाला
काके दाहिने द्वारको स्पर्श करे तो एक मासके पीछे गर्भ धारण
नासिका और बायें कानको स्पर्श करे तो चार मासके पीछे गर्भ धारण
चोटीकी जडको स्पर्श करनेसे तीन पुत्र और दो कन्या उत्पन्न होंगी,
करनेसे पांच पुत्र और हाथ स्पर्श करनेसे तीन पुत्र जन्म लेंगे,
प्रश्न करनेके समय पांवका अंगूठा अथवा दोनों एडी स्पर्श करे तो
उत्पन्न होती है, ऐसेही कनकी उंगलीके स्पर्शसे पांच कन्या, अनामि
चार, मध्यमाके स्पर्शसे तीन और तर्जनीके स्पर्शसे दो कन्या होंगी
दाहिनी छाती स्पर्श करनेसे दो कन्या और बायां ऊरू स्पर्श क
जन्म लेते हैं, माथेका मध्यभाग स्पर्श करनेसे चार और माथेकी शेष
करनेसे तीन कन्या जन्म लेंगी ॥ ४१ ॥ माथा, ललाट, भौं, कान,

मप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च । स्फिक्पायुसन्ध्यूरु-
जानुजंघेऽथ पादाविति कृत्तिकाद्यौ ॥ ४३ ॥ इति निग-
तद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्म प्रकटमभिमताप्त्यै वीक्ष्य शास्त्राणि
। विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेतन्नरपतिजनताभिः
ऽसौ सदैव ॥ ४४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्गविधानामै-
कपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

पिटकलक्षणम् ।

तरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये । ते क्रमशः
फला वर्णानामग्रजादीनाम् ॥ १ ॥ सुस्निग्धव्यक्तशोभाः
से धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्यमाराद् दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रिय-

---

, गला, दाहिना कन्धा, बांया, कन्धा दोनों हाथ ठोडी, नाल उदर, कुच
बीचमें और दोनों पार्श्व, जठर, कमर, स्फिक (कमरका मांसपिंड),
सन्धि, ऊरुयुगल, दो जानु दोनों छावा और पांव दोनोंमें क्रमानुसार
से लेकर सब नक्षत्र विराजमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सब शास्त्रोंको
ांति विचार कर पंडितोंकी संतुष्टताके लिये यह गात्रस्पर्शलक्षण भलीभांतिसे
ाया, जो अत्यंत बुद्धिमान् और उदार स्वभाववाला दैवज्ञ उसको भलीभांतिसे
ागा तो वह, राजा और प्रजासे सदा पूजित होगा ॥ ४४ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-
-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके क्रमानुसार सफेद, लाल, पीली और
रंगकी (फुनसी) चिकनी और रमणीय हों तो वह क्रमानुसार द्विजादि
सम्बधमें फल प्रकाशित करती है, अन्यथा निष्फल है, अर्थात् सफेद रंगकी
ब्राह्मणोंको फलदायी हैं क्षत्रियोंके लिये लालरंगकी फुनसी फलदायी
॥ शिरमें फुनसी हो तो धन पास आता है, मस्तकपर होनेसे सौभाग्यकी

जातिमात्रके ब्राह्मणादि यहांपर द्विजातिपदके वाच्य नहीं हैं, जन्मराशिके अनुसार जो ब्राह्मणादि
र्ण निश्चय हुए हैं उनकोही समझना चाहिये ।

जनघटनामाशु दुःशीलतां च तन्मध्योत्थाश्च शोकं नयन!
नेत्रयोरिष्टदृष्टिं प्रव्रज्यांशंखदेशेऽश्रुजलनिपतनस्थानगाश्च
न्ताम् ॥ २ ॥ घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चौष्ठयोरन्नलाभं कुर्युस
चुबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे । हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषण
पाने श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥३॥ शिरः
ग्रीवाहृदयकुचपार्श्वोरसि गता अयोघातं घातं सुततनयलाभं
मपि । प्रियप्राप्तिं स्कन्धेऽप्यटनमथ भिक्षार्थमसकृद्विनाशं क
विदधति धनानां बहुसुखम् ॥४॥ दुःखशत्रुनिचयस्य विघातं
हुयुगजा रचयन्ति । संयमं च मणिबन्धनजाता भूषणाद्युप
गोत्थाः ॥५॥ धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि करांगुल्युदरगाः सु
नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम् । धनं धान्यं बस्तौ युवतिम

प्राप्ति, दोनों ओठोंमें हो तो दुर्भगता और प्यारे मनुष्यका समागम होता है
भौंहोंके बीचमें हो या नेत्रपुटमें हो तो शोक होता है, दोनों नेत्रोंमें हो तो
कनपटीमें हो तो संन्यासी करता है, आंसू गिरनेके स्थानमें हो तो चिन्ता
होती है ॥ २ ॥ नासिका और गालमें हो तो वसन और सुतदायी होता है,
अधरमें हो तो अन्न लाभ होता है, ठोडीके तळे हो तो अन्नकी प्राप्ति हो
कपारमें हो तो बहुत धनका लाभ होता है, दोनों ठोडीमें हो तोभी बहुत
लाभ होता है, गळेमें हो तो भूषण, अन्न और पानका लाभ होता है,
उत्पन्न हो तो कर्णभूषण और अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जाता है
मस्तकसन्धि, गरदन, हृदय, कुच, पार्श्व और छातीमें पिटक उत्पन्न हो तो
नुसार शस्त्रघात, आघात सुतलाभ शोक और प्रियकी प्राप्ति होती है
होनेसे वारंवार भिक्षाके लिये भ्रमण और विनाश होता है कोखमें हो त
करके बहुतसे सुख प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ पीठ या दोनों बाहुओंमें उत्पन्न
दुःख और शत्रुओंका नाश होता है, मणिबन्धमें हो तो संयम और दोनों
निकट हो तो भूषणादिकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ हाथमें, अंगुलीमें या
फुनसी हो तो क्रमानुसार धनकी प्राप्ति, सौभाग्य और शोक होता है, ना
तो उत्तमपान व अन्नकी प्राप्ति होती है और उसके नीचे हो तो चोरों करके
हानि होती है, बस्तिमें हो तो धनधान्य, मेढ्रमें हो तो युवति व सुन्दर पु

यान् धनं सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधति ॥ ६ ॥ ऊर्वो-
ङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात् क्षतिम् । शस्त्रेण जघयोगुल्फे-
न्धक्लेशदायिनः ॥ ७ ॥ स्फिक्पार्ष्णिपादजाता धननाशाग-
मनमध्वानम् । बन्धनमंगुलिनिचयेऽगुष्ठे च ज्ञातिलोकतः
म् ॥ ८ ॥ उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्वभिघाताः।
। भवन्ति पुंसां तद्विपरीतास्तु नारीणाम् ॥ ९ ॥ इति पिटक-
गः प्रोक्त आमूर्द्धतोऽयं व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यः ।
। मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्वन्निगदितफलकारि प्राणिनां
स्थम् ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं नाम
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

॥ अंडकोशके ऊपर हो तो धन और सौभाग्यका विधान करता है ॥ ६ ॥
ऊरुमें हो तो सवारी और स्त्रीकी प्राप्ति होती है, दोनों जानुमे हो तो शत्रुओंसे
उठानी पड़ती है, दोनों जांघामें शस्त्रका घाव और गुल्फमें हो तो मार्ग और
का क्लेश होता है ॥ ७ ॥ परन्तु स्फिक (कमरका मांसपिंड), एडी और पांवोंमें
धनका नाश, अयोग्य स्त्रीसे गमन और मार्गका लाभ होता है, अंगुलियोंके
हो तो बन्धन और अंगूठेमें हो तो जातिवाले लोगोंसे पूजाकी प्राप्ति होती
८ ॥ पुरुषके दाहिने भागमें जो पिटक होता है, उसको "उत्पातगण्ड"
हैं, वामभागमें पिटकको "अभिघात" पिटक कहते हैं, ऐसे अर्थात् दक्षिण
पिटकवाले आदमीके भाग्य होता है, परन्तु स्त्रियोंके उलटे अंगमें होनेसे
होता है अर्थात् स्त्रियोंके दाहिने भागके पिटकको "अभिघात" बांए भागके
को "उत्पातगण्ड" कहते हैं, यही वामभागके स्त्रियोंके शुभकारक हैं, अन्यथा
अशुभ फल होता है ॥ ९ ॥ मस्तकके आरंभ करके समस्त अंगके पिटकका
ग अर्थात् फल यह कहा गया, व्रण या तिल (कालेरंगका एक तिल होता है)
दोनोंका फल इसी तरह जानना और मशक या आवर्त नामके जो दो प्रकारके
हैं, वे चिह्न यदि प्राणियोंकी देहमें हों वह भी ऐसेही फल देते हैं ॥ १० ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

वास्तुविद्या.

वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनिपरम्परायातम् । क्रियते मयेदं विदग्धसांवत्सरप्रीत्यै ॥ १ ॥ किमपि किल भूत रुन्धानं रोदसी शरीरेण । तदमरगणेन सहसा विनिगृह्या न्यस्तम् ॥ २ ॥ यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स त तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥ ३ ॥ उत्तममष्ट धिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन । अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सप दैर्घ्येण॥४॥षड्भिःषड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः ।

जो ब्रह्माजीके पाससे मुनि लोगोंके पास आई है पंडित और ज्योतिषी क प्रसन्नताके लिये अब वही वास्तुविद्या कही जाती है ॥ १ ॥ शरीरसे पृथ आकाशका रोकनेवाला कोई एक भूत पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ था, वह मारा जाकर नीचेको मुखकर पृथ्वीपर गिरा ॥ २ ॥ जिस देवताने उसके स्थानका अधिकार प्राप्त किया था, वही देवता उस स्थानका स्वामी है उपरान्त ब्रह्माजीने उस देवमय शरीर भूतको वास्तु पुरुषरूपसे कल्पित किय (संसारमें समस्त मनुष्योंके वास्तुगृहके भेद पांच प्रकारके हैं) उनमें पहला पहलेकी अपेक्षा दूसरा अधम और तिससे तृतीयादि, सबसे पहिले राजाके परिमिणा कहा जाता है, एक शत आठ १०८ (हाथ चौडा और १३ लम्बा होता है, पांच भेदवाले राजाके घरमें यही उत्तम घर है, द्वितीयादि चार प्रकारके गृह क्रमसे लम्बाई और चौडाईमें आठ हाथ कम होंगे, यथा लम्बाईमें १२५ हाथ और चौडाईमें सौ हाथ, तीसरा-लम्बाईमें चौडाईमें ९२ हाथ, चौथा;-लम्बाईमें १०५, चौडाईमें ८४ हाथ, पां लम्बाईमें ९५ और चौडाईमें ७६ हाथका होता है ॥ ४ ॥ सेनापतिका घर ६४ हाथ चौडा होता है और फिर छः भागयुक्त विस्तारही लम्बाई होती है, यथा-पहला, ६४ हाथ चौडा और ७४ हाथ १६ लम्बा होता है, दूसरा,-५८ हाथ चौडा, और ६७ । १६ लम्बा हो तीसरा,-५२ हाथ चौडा और ६० हाथ १६ अंगुल लम्बा. चौथा,-४६ हाथ ५३ हाथ और १६ अंगुल लम्बा होगा है. पांचवां,-४० हाथ चौडा और ४

---

१२४ अंगुलका एक हाथ, और ६० व्यंगुलका एक अंगुल होता है।

स्तारात् षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥ ५ ॥ षष्टिश्चतुर्विहीना वेश्मानि
वन्ति पञ्च सचिवस्य । स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहि-
णाम् ॥ ६ ॥ षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताशीतिः ।
यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥ ७ ॥ नृपसचि-
न्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् । नृपयुवराजविशेषः
ञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥ अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषामेक

---

६ अंगुल लम्बा होता है ॥ ५ ॥ मंत्रियोंके गृह भी पांच प्रकारके होते हैं, उनमें
त्तमगृह ६० हाथ चौडा होता है, फिर ६० से क्रमानुसार चार २ हाथ कम किये
ायँगे. अर्थात् क्रमानुसार ५६ । ५२ । ४८ । ४४ हाथ चौडा हो. चौडाईके साथ
ौडाईका आठवां अंश मिलानेसे लम्बाईका परिमाण निरूपित होगा. उसका परि-
ण यथा;–पहला ६७ । १२, दूसरा, ६३, तीसरा ५८।१२ चौथा ५४ ।०, पांचवां
९ हाथ १२ अंगुल इस की लम्बाई और चौडाईसे आधे भागके परिमाणका गृह
नियोंका होना चाहिये, लम्बाई यथा,–पहला ३३।१८, दूसरा३१।१२, तीसरा२९।
चौथा २७ । ०, पांचवां २४ । १८ ॥ चौडाई यथा,–पहला ३० । दूसरा २८ ।
सरा २६ । चौथा २४ और पांचवां २२ हाथ होता है ॥ ६ ॥ युवराजके गृहभी
च प्रकारके होते हैं, उसमें उत्तम गृह ८० हाथका चौडा होता है, दूसरे गृहोंकी
ौडाई क्रमानुसार छः छः हाथ कम होगी. चौडाईका तीसरा अंश मिलानेसे उनकी
म्बाईका परिमाण निर्णीत होगा. यथा,–पहला८० हाथ चौडा, १०६हाथ१६अंगु
म्बा; दूसरा७४ हाथ चौडा, ९८ हाथ, १६ अंगुल लम्बा, तीसरा ६८ हाथ चौडा
० हाथ१६ अंगुल लम्बा, चौथा ६२ हाथ चौडा, ८२ हाथ १६ अंगुल लम्बा.
चवां ५६ हाथ चौडा और ७४हाथ १६ अंगुल लम्बा. इन उत्तमादि गृहोंसे आधे
रिमाणवाले गृह युवराजके छोटे भ्राताओंके गृह हों, उसके परिमाणकी चौडाई
० । ३७ । ३४ । ३१ । २८ हाथ और लम्बाईका परिमाण यथा,–५३ । ८,४९ ।
४५ । ८,४१ । ८,३७ । ८ हाथ ॥ ७ ॥ राजा और मंत्री इन दोनोंके गृहमें जो
न्तर हो वही सामन्त और श्रेष्ठ राजपुरुषोंके गृहका परिमाण है, उत्तमके क्रमसे
ौडाई यथा,–४८ । ४४ । ४० । ३६ । ३२हाथ और उत्तमके क्रमसे लम्बाई ६७।
२, ६२ । ०, ५६ । १२, ५१ । ०, ४५ । १२ अंगुल है. राजा और युवराजके
ृमें जो अन्तर होता है,वही अन्तर कंचुकी,वेश्या और नाच गाना जाननेवालोंके
ृोंका परिमाण है, उत्तमादि क्रमसे उनकी लम्बाई यथा,–२८ ।८, २६।८,२४।८

कोशरतितुल्यम् । युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम्
चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति । षड्भागयुता
दैवज्ञपुरोधसोभिषजः ॥ १० ॥ वास्तुनि यो विस्तारः स
चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः । शालैकेषु गृहेष्वपि विस्तराद्द्विः
दैर्घ्यम्॥११॥ चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत्स्याच्चतुर्हीनः। आषो
दिति परं न्यूनतरमतीव हीनानाम् ॥ १२ ॥ सदशांशं वि

---

२२ । ८, २० । ८ अंगुल है उसी तरह उत्तमादि क्रमसे चौडाई २८
२४, २२, २० हैं ॥ ८ ॥ समस्त अध्यक्ष और अधिकारी पुरुषोंके गृहका प
कोशगृह और रतिगृहका परिमाण समान है, युवराज और मंत्रीके गृहमें जो
हो वही कर्माध्यक्ष और दूतोंके गृहका परिमाण है. उसके परिमाणमें चौडाई
२० । १८ । १६ । १४ । १२ हाथ. लम्बाई यथा,-३९ । ४, ३५ । १६,
२८ । १६, २५ । ४ ॥९॥ ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्योंके उत्तम घरकी चौड़ा
हाथ हो यह भी पांच प्रकारके हैं, इसही कारण दूसरे क्रमानुसार चार चा
कम होंगे और इनकी छः षड्भागयुक्त चौडाईही इनकी क्रमानुसार लम्
जायगी. चौडाई यथा,-४० ।३६। ३२ । २८ । २४ हाथ हो. लम्बाई यथा
१६, ४२ । ०, ३७ । १६, ३२ । १६, २८ । ०, अंगुल ॥१०॥ गृह जितना
हो उतनाही ऊँचा हो तो शुभदाई है.परन्तु जिन घरोंमें केवल एक शाला हो
लम्बाई चौडाईसे दुगुनी होनी चाहिये ॥ ११ ॥ (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शू
चाण्डालादि हीन जातियोंमें किस २ को किस २ प्रकार वास्तुमें अधिकार
उस वास्तुगृहका परिमाण कितना हो वही अब कहा जाता है) ब्राह्मणा
वर्ण और हीनजातिके लिये उत्तम गृहके व्यासकी चौडाई ३२हाथ होती है
संख्यासे तबतक चार घटाने होंगे कि जबतक १६ संख्या न निकलेगी । त
अंसे ४ घटानेपर १६ निकलने तक पांच अंक होते हैं, यथा-३२ । २८ । २
१६ इन पांच अंकोंमें ही ब्राह्मणजातिके उत्तमादि गृहकी चौडाईका व्या
पांच प्रकारके गृहमें इस जातिका अधिकार है, ब्राह्मणजातिके दूसरे गृहोंकी
ईकी संख्या २८ से १६ बचनेतक ४ अंकमें, क्षत्रिय जातिके गृहका परिमा
अधिकार कहा गया तीसरे अंकसे वैश्यका, चौथे अंकसे शूद्रका और
अन्त्यज (चाण्डालादिहीन) जातिका वास्तुमान और उसका अधिकार
हुआ है, चौडाईके अंक धरे जाते हैं यथा,-

स्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम् । षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य
युतम् ॥१३॥ नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने ।
पतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राजपुरुषाणाम् ॥ १४ ॥ अथ

	उत्तम.	मध्योत्तम,	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ा.	३२	२८	२४	२०	१६
	२८	२४	२०	१६	०
	२४	२०	१६	०	०
	२०	१६	०	०	०
न.	१६	०	०	०	०

से जाना गया कि ब्राह्मणलोग ऐसे पृथु व व्यासयुक्त पांच प्रकारके गृहोंमें
ारी हैं, वैश्य तीन प्रकार, शूद्र दो प्रकार और अन्त्यजजातिवाले एक
के गृहमें अधिकारी हैं ॥ १२ ॥ पहले कही हुई चौडाईके साथ क्रमानुसार
दशवां, आठवां, छठवां और चौथा अंश मिलानेसे ब्राह्मणादि चार वर्णोंके
वनका व्यास और लम्बाईका निर्णय होगा परन्तु अन्त्यजजातिके व्यासमा-
जो चौडाई है, वही लम्बाईके नामसे नियत हुई है, लम्बाईके अंक धरे जाते
ा,-॥ १३ ॥

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ा.	३५।४।४८	३०।१९।१२	२६।९।३६	२२	१७।१४।२४
	३१।१२	२७	२२।१२	१८	०
	२८	२३।१६	१८।८	०	०
	२५	२०	०	०	०
ज.	१६	०	०	०	०

ा और सेनापतिके गृहमें जो अन्तर होगा; वही कोषगृह और रतिगृहका
ण होगा, उसके परिमाणमें चौडाई यथा,-४४ । ४२ । ४० । ३८ । ३६ ।
लम्बाई यथा;- ६० । ८, ५७ । १६, ५४ । ८, ५१ । ८, ४८ । ८ अंगुल
ह वा रतिगृहके साथ सेनापतिके और चार वर्णके वास्तुमानका अंतरमानही
ुषोंके वास्तुगृहका परिमाण होगा अर्थात् राजपुरुष ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण
व्यासको सेनापति-वास्तुमान-व्याससे हीन करके जो शेष रहे उस मानाङ्कसे
गृह-पंचक बनावे, जो राजपुरुष क्षत्री हो तो उसके वास्तुमानको सेनापति
ानके दूसरे अंकसे अधिकारके अनुसार वास्तुमान घटाकर आधिकारानुसार

पारशवादीनां स्वमानसंयोगदलसमं भवनम् । हीनाधिकं स्व
दशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥ १५ ॥ पश्वाश्रमिणाममितं धा
धवह्निरतिगृहाणां च । नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तः
च्छ्रितं परतः ॥ १६ ॥ सेनापतिनृपतीनां सप्ततिसहिते
कृते व्यासे । शाला चतुर्दशहृते पञ्चत्रिंशद्धृतेऽलिन्दः ॥
हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुश्चतुस्त्रित्रिकत्रिकाः शालाः । सप्तदशत्रि
थित्रयोदशकृतांगुलाभ्यधिकाः॥१८॥त्रित्रिद्विद्विसमाः क्षय
दंगुलानि चैतेषाम् । व्येका विंशतिरष्टौ विंशतिरष्टादश त्रित

गृहादि निर्माण करे ॥ १४ ॥ पारशव राजतिलक पाये और अम्बष्ठ आदि ज
गृह निर्माण स्थानमें अपने २ परिमाणके योगजार्द्ध (चौडाई, लम्बाई) त
होगा अर्थात् संकर जातियां जिन दो जातियोंसे उत्पन्न हुई हैं उन दो ज
घरोंकी चौडाई और लम्बाई मिलाकर उसके आधे मानमें उनका गृह-पंचव
सब जातियोंके लिये अपने २ परिमाणकी अपेक्षा हीन या अधिक वास्तुका
शुभदाई होता है ॥ १५ ॥ पशुशाला प्रव्राजिकालय, धान्यागार, शस्त्रागा
शाला और रतिगृह (बैठक) का परिमाण इच्छानुसार किया जा सकता है
कोई गृहभी शत हाथसे ऊँचा न हो, यही शास्त्रकार लोगोंका आ
॥ १६ ॥ सेनापतिका गृह और राजाके गृहके व्यासाङ्क परस्पर जोडक
सत्तर मिलावे, फिर उसको दो जगह रखे एक जगह १४ चौदहसे भाग
जो कुछ प्राप्त हो, वही शाला अर्थात् घरके भीतरका परिमाण है औ
जगहके अंकको १५ पन्द्रहसे भाग करने पर अलिन्द अर्थात् शाल
बाहरी भागका सोपानयुक्त आंगनका परिमाण होगा, यह राजाके लिए
जातिके पुरुषोंके घरके भवनशाला और अलिन्दमान निकालना हो तो रा
सेनापतिके घरके दो व्यासोंके योगफलके साथ (अपने अधिकारानुसार)
व्यासांकहीन करके उसमें (७०) मिलावे, फिर उसको दो जगह रखकर क्र
और १५ पन्द्रहसे भाग करनेपर क्रमानुसार शाला और अलिन्दका परिमाण
आवेगा ॥१७॥ पहले चार श्लोकोंमें जो ब्राह्मणादि चार वर्णोंका गृह व्य
बत्तीस हाथके रूपसे कहा गया है. उसमें क्रमानुसार ४ हाथ, सत्रह अंगुल
हाथ, ३ तीन अंगुल, ३ हाथ, पन्द्रह अंगुल, तीन हाथ, तेरह अंगुल और
चार अंगुलके परिमाणकी शाला बनाई जाय और इन गृहोंका अलिन्द
क्रमानुसार तीन हाथ उन्नीस अंगुल, तीन हाथ आठ अंगुल, दो हाथ बीस

त्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भवनात्। यद्यग्रतो
सा सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥ २० ॥ सायाश्रयमिति पश्चा-
वष्टम्भं तु पार्श्वसंस्थितया। संस्थितमिति च समन्ताच्छा-
पूजिताः सर्वाः ॥ २१ ॥ विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवे-
च्छ्रायः। द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ २२ ॥
त् षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः॥ पक्वेष्टका-
ां दारुकृतानां तु सविकल्पः ॥ २३ ॥ एकादशभागयुतः
तिर्नृपबलेशयोर्व्यासः । उच्छ्रायोऽगुलतुल्यो द्वारस्यार्धेन
म्भः ॥ २४ ॥ विप्रादीनां व्यासात् पञ्चाशोऽष्टादशांगुलस-

। अठराह अंगुल और दो हाथ तीन अंगुलके परिमाणका होगा ॥१८॥१९॥
कहे हुए शालामानके त्रिभागकी स्थानभूमि भवनके बाहर रक्खे, इस
। नाम वीथिका है, जो यह वीथिका वास्तुभवनके पूर्वभागमें हो तो उक्त
। नाम "सोष्णीष" है, यदि वास्तुके पश्चिम ओर वीथिका हो तो उस
ा "सायाश्रय" वास्तु कहते हैं, जो उत्तर अथवा दक्षिण दिशामें वीथिका
उसको "सावष्टम्भ" नामक वास्तु कहते हैं और जो वास्तुभवनके चारों
ऐसी वीथिका हो तो उसको "संस्थित" कहते हैं, इन समस्त वास्तु-
शास्त्रकार लोग पूजा किया करते हैं अर्थात् ऐसी वास्तु अत्यन्त शुभदायी
२० ॥ २१ ॥ उस गृहका जितना विस्तार हो उसको सोलहवें अंशके साथ
ाथ मिलानेसे जितने हाथ हों वही उस घरकी ऊंचाई होगी बाकी चार
के घरोंकी ऊंचाई क्रमानुसार उसकी अपेक्षा बारह भाग करके कम होगी
॥ समस्त गृहोंके व्यासका सोलहवां भागही भीतका परिमाण है, यह
ण पक्की ईंटोंसे बने घरका है, परन्तु काठसे बने घरकी भीतका परिमाण
ुसार कर लेना चाहिये ॥ २३ ॥ राजा और सेनापतिके घरका जो व्यास
के साथ सत्तर मिलाय ११ ग्यारहसे भाग करनेपर जो प्राप्त हो उतने हाथ
प्रधानद्वारका विस्तार होगा विस्तार हस्त परिमाण जितने अंगुल हों, उतने
ह ऊँचा होगा और द्वारविस्तारके अर्द्ध । द्वारका नाम विष्कम्भ माना है
ब्राह्मणादि दूसरी जातिके पुरुषोंके गृहव्यासके पचासमें अठराह अंगुल मिला-
े होगा, वही उस घरके द्वारका परिमाण होगा द्वारपरिमाणका आठवां भाग,

मेतः । साष्टांशो विष्कम्भो द्वारस्य द्विगुण उच्छ्रायः ॥ २
उच्छ्रायहस्तसंख्यापरिमाणान्यंगुलानि बाहुल्यम् । शाखाद्वं
कार्यं सार्द्धं तत्स्यादुदुम्बरयोः ॥ २६ ॥ उच्छ्रायात् सप्तगु
शीतिभागः पृथुत्वमेतेषाम् । नवगुणितेऽशीत्यंशः स्तम्भस्य
शहीनोऽग्रे ॥ २७ ॥ समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टास्त्रिर्द्विव
द्विगुणः । द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तः ॥ २
स्तम्भं विभज्य नवधा वहनं भागो घटोऽस्य भागोन्यः ।
तथोत्तरोष्ठं कुर्याद्भागेन भागेन ॥ २९ ॥ स्तम्भसमं बाहुल्यं
तुलानामुपर्युपर्यासाम् । भवति तुलोपतुलानामूनं पादेन
॥ ३० ॥ अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्र
नृपतिबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चतुर्भिरपि ॥ ३१ ॥ नन्द्य

द्वारका विष्कम्भ और विष्कम्भसे ऊँची द्वारकी उंचाई होगी ॥ २५ ॥ ऊँ
जितने हाथ ऊंचा हो, उतने अंगुल वह चौडा होगा. घरकी दोनों शाखायें
होंगी और शाखाके परिमाणसे डचोढा उदुम्बरका परिमाण है ॥२६॥ जिस
उंचाई जितने हाथ हो उसको सत्रह १७ गुणा करके ८० अस्सीसे भाग करने
प्राप्त हो, वही इसके मूल (नींवकी) चौडाई है, ऊंचाईसे नौ गुनी और अ
विभक्त हस्तपरिमाण अपना दशांश हीन करनेपर जो कुछ बचे, वही स्तम्भके
भागका परिमाण है ॥ २७ ॥ स्तम्भ मध्यभाग चौकोर हो तो उसको "र
कहते हैं अष्टास्र होनेपर उसका नाम "वज्र" है षोडशास्र स्तम्भको "द्वि
द्वात्रिंशदस्रको "प्रलीनक" और वृत्तको "वृत्त" नामक स्तम्भ कहते है
पांच प्रकारके स्तभही शुभ फलदायी हैं ॥ २८ ॥ स्तम्भपरिमाणके नौसे
करनेपर जो लब्ध हो उस समस्तका नाम वहन है, उसमें सबसे नीचे
भागका नाम "वहन" है, अष्टमभागका नाम "घटाग्र" है. सातवें
नाम "पद्म" है छठेका नाम "उत्तरोष्ठ" है और पंचमका नाम "भारत
है; चौथ भागका नाम "तुला" है तीसरे भागका नाम "उपतुला" है,
भागका नाम "अप्रतिषिद्ध" और प्रथम भागका नाम "अलिन्द" है
क्रमानुसार परस्पर चतुर्थांशसे घटाये जायँगे, उस भवनके चारों ओर ऐसा
और द्वार हो, उसको "सर्वतोभद्र" नामक वास्तु कहते हैं यह राजा, रा
पुरुष और देवताओंके लिये मंगलदायी है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिस
शालाके चारों ओर अलिन्दप्रदाक्षिणाके क्रमसे नीचेतक गमन करे,

ः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तरगतैः। द्वारं पश्चिममस्मिन्
शेषाणि कार्याणि ॥ ३२ ॥ द्वारालिन्दोऽन्तगतः प्रदक्षिणो
ुभस्ततश्चान्यः। तद्वच्च वर्द्धमाने द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम्
॥ अपरोऽन्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ।
विवृतश्चान्यः प्राग्द्वारं स्वस्तिकेऽशुभदम् ॥ ३४ ॥ प्राक्प-
वलिन्दावन्तगतौ तदवधिस्थितौ शेषौ। रुचके द्वारं न
त्तरतोऽन्यानि शस्तानि ॥ ३५ ॥ श्रेष्ठं नन्द्यावर्तं सर्वेषां
संज्ञं च। स्वस्तिरुचके मध्ये शेषं शुभदं नृपादीनाम् ॥३६॥
लाहीनं हिरण्यनाभं त्रिशालकं धन्यम्। प्राक्शालया वियुक्तं
द्धिदं वास्तु ॥ ३७ ॥ याम्याहीनं चुल्लीत्रिशालकं वित्त-
मेतत्। पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम् ॥ ३८ ॥
मपरयाम्ये यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले। दण्डाख्यमुदक्पूर्वे

र्त" नामक वास्तु कहते हैं. इसके पश्चिममें द्वार नहीं होगा, और द्वार
रहेंगे ॥ ३२ ॥ जिस वास्तुके अलिन्द प्रदिक्षणाके क्रमसे द्वारके नीचे
गमन करे, वह शुभदायक है, इस वास्तुका नाम "वर्द्धमान" है इसके
द्वार नहीं चाहिये, जिसकी पश्चिमदिशामें एक और पूर्व दिशामें दो
शेषतक हों, और दूसरे दो ओरके अलिन्द उठे हुए हों, और शेष सीमा
, उसको "स्वस्तिक" नामक वास्तु कहते हैं इससे पूर्वद्वार अच्छा नहीं
३४ ॥ जिसके पूर्व पश्चिमके दो अलिन्द अस्त हो जाँय और बाकी दो
मके अलिन्दतक चले जाँय, उसको "रुचक" नामक गृह कहते हैं उससे
अच्छा नहीं और समस्त द्वार शुभदाई हैं, ॥३॥ नन्द्यावर्त और वर्द्धमान
ास्तु सबहीके लिये शुभदायी है, स्वस्तिक और रुचक मध्यम फलदायी
ु केवल राजाओंहीको शुभदायी है ॥ ३६ ॥ जिसके उत्तर ओर शाला न
हिरण्यनाभ" तीन शालावाला "धन्य" और पूर्व दिशामें शाला न
सुक्षेत्र" नामक वास्तु होता है यह शुभदायी है ॥ ३७॥ जिनके दक्षिणमें
ी है उसको "चुल्लीत्रिशालक" कहते हैं यह धनका नाश करता है,
लाहीन वास्तुको "पक्षघ्न" कहाता है, इससे सुतका नाश और वैर होता
॥ जिसके पश्चिम और दक्षिणमें शाला हो उसको "सिद्धार्थ" कहते हैं,
ौर उत्तरमें शाला होनेसे "यमसूर्य" कहते हैं उत्तर और पूर्वमें शाला हो
" और पूर्व व दक्षिणमें शाला हो तो "वात" वास्तु कहते हैं ॥ ३९ ॥ पूर्व

वाताख्यं प्राग्युता याम्या ॥ ३९ ॥ पूर्वापरे तु शाले गृह
दक्षिणोत्तरे काचम् । सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमसूय गृहपतं
॥ ४० ॥ दण्डवधो दण्डाख्ये कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये ।
विनाशश्चुल्ल्यां ज्ञातिविरोधाः स्मृतः काचे ॥ ४१ ॥ एका
विभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः । अन्तस्त्रयोदश सुरा
शद्वाह्यकोष्ठस्थाः ॥ ४२ ॥ शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्रसूर्यसत्या
ऽन्तरिक्षश्च । ऐशान्याद्याः क्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे ।
पूषा वितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभृंगराजमृगाः । पितृदौवा
ग्रीवकुसुमदत्ताम्बुपत्यसुराः ॥ ४४ ॥ शोषोऽथ पापयक्ष्मा
कोणे ततोऽहिमुख्यौ च । भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदिति
रिति क्रमशः ॥ ४५ ॥ मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठकाधिपोऽस्य
स्थितः प्राच्याम् । एकान्तरात् प्रदक्षिणमस्मात्सविता

और पश्चिम दिशामें शालावाले घरको "गृहचुल्ली" नामक और दक्षिण व
शाला हो तो उसको "काच" वास्तु कहते हैं. सिद्धार्थ वास्तुसे धनकी प्राप्ति
है, यमसूर्य वास्तुमें गृहके स्वामीकी मृत्यु होती है. दण्डवास्तुसे दण्ड और वध
वास्तुसे क्लेशका उद्योग, चुल्लीसे वित्तका नाश और काचवास्तुसे ज्ञातविरोध
है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ (वास्तुमंडल दो प्रकारके हैं) एकाशीतिपद और चौंसठपद
एकाशीतिपद वास्तुमंडलके लिये पूर्वायत दश रेखा और उसके ऊपर उत्तराय
रेखा अंकित करनेसे इक्यासी कोठे होंगे, इस एकाशीतिपद वास्तुमंडलमें
चत्वारिंशत् ४५ देवता विराजमान रहते हैं. उसके मध्य (बीचमें) तेरह
बाहर बत्तीस विराजमान रहते हैं. सो ऐसे,-शिखी, पर्जन्य, जयन्त,
सूर्य, सत्य, भृश और अन्तरिक्ष. यह सब देवता ईशानकोणसे क्रमानुसार
भागमें विराजमान हैं. अग्निकोणमें अनिल, उसके उपरान्त क्रमानुसार
भागमें पूषा, वितथ और बृहत, क्षत, यम, गंधर्व, भृंगराज और मृग विरा
हैं. नैऋतकोणसे आरम्भ करके क्रमानुसार दौवारिक (सुग्रीव), कुसुमदत्त,
असुर, शोष और राजयक्ष्मा और वायुकोणसे आरंभ करके क्रमक्रमसे तत, अ
वासुकि, मल्लार, सोम, भुजग, अदिति और दिति यह सब देवता विराजमा
हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ बीचके नौवें कोठेमें ब्रह्माजी विराजमा
ब्रह्माकी पूर्वदिशामें अर्यमा, उसके उपरान्त सविता, विवस्वान्, इन्द्र,

श्च ॥ ४६ ॥ विबुधाधिपतिस्तस्मान्मित्रोऽन्यो राजयक्ष्मनामा
पृथ्वीधरापवत्साविल्येते ब्रह्मणः परिधौ ॥४७॥ आपो नामै-
कोणे हौताशने च सावित्रः । जय इति च नैर्ऋते रुद्र आनि-
यन्तरपदेषु ॥ ४८ ॥ आपस्तथाप वत्सः पर्जन्योऽग्निर्दितिश्च
ऽयम् । एवं कोणे कोणे पदिकाः स्युः पञ्च सुराः ॥ ४९ ॥
ा द्विपदाः शेषास्ते विबुधा विंशतिः समाख्याताः । शेषाश्च-
ोऽन्ये त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते ॥ ५० ॥ पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरु-
मवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी । आपोमुखे स्तनेऽस्यार्यमा
यापवत्सश्च ॥ ५१ ॥ पर्जन्याद्या बाह्या दृक्श्रवणोरःस्थलां-
देवाः । सत्याद्याः पञ्च भुजे हस्ते सविता ससावित्रः ॥५२॥
थो बृहत्क्षतयुतः पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च । ऊरू जानू
स्फिगिति यमाद्यैः परिगृहीताः ॥ ५३ ॥ एते दक्षिणपार्श्वे

क्ष्मा, शेष और आपवत्स नामक देवतालोग प्रदक्षिणाके क्रमसे एक एक
के अन्तरसे ब्रह्माके चारों ओर विराजमान हैं आप नामक देवता ब्रह्माजीके
कोणमें विराजमान हैं. अग्निकोणमें सावित्र, नैर्ऋतिकोणमें जय और वायु-
में रुद्रजी विद्यमान हैं. यह सब भीतर स्थिति करते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥
आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति यह सब वर्ग देवता हैं. इस पंच वर्गसे
पांच देवता विराजमान हैं यह पंचपादिक हैं. अवशिष्ट समस्त बाह्यदेवता
दिक हैं. परन्तु इनकी संख्या बीस है. और अर्यमा आदि जो चार देवता हैं
ह्माके चारों ओर विराजमान हैं, वह त्रिपादिक हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ इन
पुरुषका मुख नीचेको और मस्तक ईशानकोणमें है, इनके मस्तकपर शिखी
है. मुखपर आप, स्तनपर अर्यमा, छातीपर आपवत्स हैं ॥ ५१ ॥ पर्जन्य
बाहरके चार देवता पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र और सूर्य क्रमसे नेत्र, कर्ण, उर-
और स्कंधपर स्थित हैं. सत्य इत्यादि पांच देवता भुजापर स्थित हैं. सविता
सावित्र हाथपर विराज रहे हैं ॥ ५२ ॥ वितथ और बृहत्क्षत पार्श्वपर हैं,
वान् उदरपर है, यम ऊरुपर, गन्धर्व जानुपर, भृंगराज जंघापर और मृग
के ऊपर हैं ॥ ५३ ॥ यह देवता वास्तुपुरुषके दाहिने ओर टिके हैं. इसी
बांई ओर भी देवता स्थित हैं अर्थात् वामस्तनपर पृथ्वी, अधर नेत्रपर दिति
र अदिति, बांई ओरकी छातीपर भुजंग, स्कन्धपर सोम, भुजपर भल्लाट
अहिरोग और पापयक्ष्मा यह पांच स्थित हैं. वामहस्तपर रुद्र और राज-

स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः। मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये
पिताग्निगणः ॥ ५४ ॥ अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च
गास्तिर्यक्। ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्द्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥
अष्टौ च बहिः कोणेष्वर्द्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्द्धाः। उ
ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते च ॥ ५६ ॥ स
वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम्। मर्माणि
विन्द्यान्न परिपीडयेत प्राज्ञः ॥ ५७ ॥ तान्यशुचिभाण
स्तम्भाद्यैः पीडितानि शल्यैश्च। गृहभर्तुस्तत्तुल्ये पी
प्रयच्छन्ति ॥ ५८ ॥ कण्डूयते यदङ्गं गृहपतिना
वामराहुत्याम्। अशुभं भवेन्निमित्तं विकृतिर्वाग्नेः स

यक्ष्मा, पार्श्वपर शेष और असुर, ऊरुपर वरुण, जानुपर कुसुमदन्त,
सुग्रीव और स्फिक्पर दौवारिक हैं यह देवता वास्तुपुरुषके वामभागमें स्थि
वास्तुपुरुषके लिङ्गपर इन्द्र व जयन्त स्थित हैं, हृदयपर ब्रह्मा स्थित हैं और
पिता है. यह नगर, ग्राम, गृह इत्यादिमें इक्यासी पदके वास्तुका विभा
है, अब चौंसठ पदका वास्तु कहते हैं ॥ ५४ ॥ अथवा चौंसठ कोठाका
बनावे अर्थात् नौ रेखा पूर्व पश्चिम और नौ रेखा दक्षिण उत्तरमें खैंचकर चौं
वास्तुमें बनावे और चारों कोनोंमें कर्णके आकार दो तिरछी रेखा खैंचे. इ
ब्रह्मा चार कोठोंका स्वामी है. ब्रह्माके कानोंमें स्थित आठ देवता आपवत्स,
सावित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र ॥ ५५ ॥ और बाहिरके कोन
हुये आठ देवता हैं अग्नि, अंतरिक्ष, वायु मृग, पिता, पाप, यक्ष्मरोग औ
यह सब आधे आधे कोष्ठके स्वामी हैं और इनके दोनों ओर विराजमान
भृश, भृङ्गराज, दौवारिक, शेषनाग और अदिति यह डेढ डेढ पदके स्
और शेष बीस देवता जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितथ, बृहत्क्षत, यम,
सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, मुख्य भल्लाट, सोम, भुजंग, अर्यमा वि
मित्र, पृथ्वीधर यह सब दो दो कोष्ठके स्वामी हैं, यह चौंसठ पदका वास्
है ॥ ५६ ॥ आगे वंशोंके सम्पात जो कहेंगे वह और पदोंके सममध्य यह
मर्म जाने, प्राज्ञ पुरुषको उचित है कि कभी इनको पीडन न करे ॥
वास्तुमें मर्म स्थान, अपवित्र, भाण्ड, कील, स्तम्भ इत्यादि करके और श
आगे कहेंगे उनसे पीडित हो तो घरके स्वामीके उस उस अंगमें अर्थात्
जो जो अंग हो, उसी अंगमें पीडा देते हैं ॥ ५८ ॥ होम अथवा प्रश्न
घरका मालिक अपने जिस अंगको खुजलावे. वास्तुके उस अंगमें शल्य
और अग्नि आदि जिस देवताके. आहुति देनेके समय छींक रोना आदि

५९ ॥ धनहानिर्दारुमये पशुपीडारुग्भयानि चास्थिकृते ।
ये शस्त्रभयं कपालकेशे मृत्युः स्यात् ॥६०॥ अंगारे स्तेन-
स्मानि च विनिर्दिशेत् सदाग्निभयम्। शल्यंहि मर्मसंस्थं सुव-
ाद्दतेऽत्यशुभम् ॥ ६१ ॥ मर्मण्यमर्मगो वा रुणद्ध्यर्थागमं
ुहः । अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो दोषकृद्भवति ॥ ६२ ॥
ुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् । मुख्याद्भृशं
ाच्च भृङ्गमदितेश्च सुग्रीवम् ॥ ६३ ॥ तत्सम्पाता नवये
तिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि । यश्च पदस्याष्टांशस्तत्प्रोक्तं मर्म-
णम् ॥ ६४ ॥ पदहस्तसंख्यया सम्मितानि वंशोऽङ्गुलानि
र्गः । वंशव्यासोऽध्यर्धःशिराप्रमाणं विनिर्दिष्टम् ॥ ६५ ॥
ाच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेद्गृही गृहान्तस्थम् । उच्छिष्टाद्युप-
गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन् ॥ ६६ ॥ दक्षिणभुजेन हीने
ारेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः । वामेऽर्थधान्यहानिःशिरसिगुणैर्हीय-

ो अथवा अग्निमें कुछ विकार उत्पन्न हो तो वह देवता वास्तुपुरुषके जिस
ो, उस अंगको शल्ययुक्त जाने ॥ ५९ ॥ काष्ठका शल्य होनेसे धनहानि
ाका शल्य होनेसे पशुपीडा और रोगभय होता है, लोहेके शल्यसे मृत्यु,
, कपाल और केशोंके शल्यसे होती है ॥ ६० ॥ कोयलोंके शल्यसे चोर-
मके शल्यसे सदा अग्निभय होता है, सुवर्ण और चांदीके सिवाय और कोई
ो वास्तु पुरुषके मर्ममें टिका हो तो अत्यन्त अशुभ होता है ॥ ६१ ॥ जो
ादिके तुष वास्तुपुरुषके मर्मस्थानों या और किसी स्थानमें हो तो धनके
ाको रोकते हैं, नागदंत शुभ है, परन्तु मर्मस्थानमें हो तो दोषकारी होता है
। वास्तुपुरुषमें रोगनामक देवतासे अनिलतक, पितासे शिखी पर्यंत, वित-
तक, मुखसे भृशतक, जयन्तसे भृंगतक और अदितिसे सुग्रीवतक सूत्र
६३ ॥ इन सूत्रोंके नौ संपात वास्तुपुरुषके अतिमर्म कहे हैं, एक पदका
मर्मका परिमाण कहा है ॥ ६४ ॥ पहले कहे छः सूत्रोंका वंशभी कहते
वास्तु विभागके लिये जो पूर्वापर और दक्षिणोत्तर दश दश रेखा की हैं
शिरा कहते हैं, एक पादका विस्तार वास्तुमें जितने हाथ हो, उतने अंगुल
ाका विस्तार होता है और वंशके विस्तारसे डचोढा शिराका विस्तार होता
५ ॥ यदि घरका स्वामी सुख चाहे तो वास्तुके बीचमें स्थित हुए ब्रह्माकी
क्षा करे, ब्रह्माके ऊपर जूंठन इत्यादि डालनेसे घरके मालिकको क्लेश होता
६ ॥ वास्तुपुरुषके दाहिनी भुजा हीन होनेसे धनका नाश व स्त्रीदोष होते
भुजा हीन होनेसे धन और अन्नकी हानि होती है, वास्तुपुरुषका शिर
ो धन आरोग्यादि समस्त गुणोंका नाश होता है ॥ ६७ ॥ वास्तुपुरुष

तेसर्वैः ॥ ६७ ॥ स्त्रीदोषाःसुतमरणं प्रेष्यत्वं चापि कर
अविकलपुरुषे वसतां मानार्थयुतानि सौख्यानि ॥ ६८
गरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः । तेषु च यथानु
विप्रादयो वास्याः ॥ ६९ ॥ वासगृहाणि च विन्द्याद्
मुदग्दिगाद्यानि । दिशतां च यथाभवनं भवन्ति तान्ये
तः ॥ ७० ॥ नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाथवा चतुःष
णि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः ॥ ७१ ॥ अनल
जन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लाभ्यम् । क्रोधपरतानृतत्वं
च पूर्वेण ॥ ७२ ॥ अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपान
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥७३॥ सुतपीडा
धनसुताप्तिः सुतार्थबलसम्पत् । धनसम्पन्नृपतिभयं धन
इत्यपरे ॥७४॥ वधबन्धौ रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगु

चरणरहित हो तो स्त्रीदोष, पुत्रमरण और दासपन होता है, जो
सम्पूर्ण अंग पूर्ण हों तो उस वास्तुमें रहनेवालोंका मान और धनका
॥६८॥ गृह, नगर और ग्रामोंमेंभी ऐसेही यह वास्तु देवता विराज रहे
ग्रामादिमें ब्राह्मणादि वर्णोंको क्रमानुसार बसावे ॥ ६९ ॥ उत्तर, पूर्व,
पश्चिम इन चार दिशाओंमें क्रमानुसार चतुःशाल (चटशाल) घरमें
नगरमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र बसें, वे घर ऐसे बनाये जांय कि
आंगनमें प्रवेश करनेके समय अपने निवासके घर दाहिनी ओर
इक्यासी पदके वास्तुमें नौ गुने सूत्रसे और चौंसठ पदके वास्तुमें आ
विभक्त किये जो अनलादि बत्तीस द्वार हैं, क्रमानुसार उनका फल
॥ ७१ ॥ अग्निसे लेकर अन्तरिक्षतक जो आठ देवता वास्तुपुरुषके पू
उनपर द्वार होय तो क्रमसे अग्निभय, कन्याजन्म, बहुत धन, राजाकी
क्रोधीपन, असत्य बोलना, क्रूरपन, और चौरपन यह फल होते हैं ॥ ७
लेकर मृगतक दक्षिणके आठ देवताओंके पदमें द्वारका फल क्रमसे
दासपन, नीचपन, भोजन, पान और पुत्रोंकी वृद्धि, रौद्र, कृतघ्न, धनहीं
और बलका नाश होता है ॥ ७३ ॥ पितासे लेकर पापपर्यंत पश्चिमके
ताओंपर द्वार रखनेका फल क्रमसे पुत्रपीडा, शत्रुवृद्धि, धन और पुत्रोंके
पुत्र, धन और बलकी प्राप्ति, धन सम्पत्ति, राजभय धनक्षय और रोग
यक्ष्मरोगसे लेकर दितितक उत्तरके आठ देवताओंपर द्वार लिखनेका
बन्धन, शत्रुवृद्धि, पुत्र और धनका लाभ, सब गुणोंकी सम्पत्ति, पुत्र और

धनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रिया नैःस्वम् ॥ ७५ ॥ मार्गतरुको
ऽपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्। उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ७६ ॥ रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदं तरुणा। पंकद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिस्राविणि प्रोक्तः॥७७॥
नापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे। स्तंभेन स्त्रीदोषाः
नाशो ब्रह्मणोऽभिमुखे ॥ ७८ ॥ उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ
हिते स्वयं कुलविनाशः। मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनदं
वम् ॥ ७९ ॥ द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च।
व्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥ ८० ॥ पीडाकरम-
पीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय। बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते
युभिः पीडा ॥८१॥ मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरतिसन्दधीत रूपर्द्ध्या।

ते, पुत्रसे वैर स्त्रीदोष और निर्धनता ये हैं ॥ ७५ ॥ मार्गका वृक्ष, किसी दूसरे
की खुंट, कुंआ, खम्भ, जल निकलनेकी मोरी इनसे विंधा हुआ द्वार अशुभ
ा है अर्थात् घरके द्वारके सन्मुख इनका होना नहीं चाहिये परन्तु घरके द्वारकी
ानी ऊंचाई हो, उससे दूनी पृथ्वी छोडकर जो इनमेंसे किसीका वेध हो तो
दोष नहीं है ॥ ७६ ॥ घरके द्वारके मार्गका वेध हो तो घरके मालिकका
, वृक्षका वेध होनेसे बालकोंका दोष, पंक अर्थात् कीचका वेध होनेसे अर्थात्
के सम्मुख सदा पंक बना रहे तो शोक होता है. मोरीका वेध होनेसे धनका
होता है ॥ ७७ ॥ कूपका वेध होनेसे मृगीरोग, देवताकी मूर्तिका वेध होनेसे
के स्वामीका नाश, स्तम्भका वेध होनेसे स्त्रियोंके दोष और ब्रह्माके सम्मुख द्वार
से कुलका नाश, होता है ॥ ७८ ॥ जिस गृहके द्वारका किवाड बिना खोले ही
जाय उनमें उन्माद रोग होता है. जिसका किवाड आपसेही बन्द हो जाय,
में कुलनाश हो जाता है. अपने परिमाणसे द्वार बडा हो तो राजाका भय और
टा हो तो चोरभय होता है और दुःख देता है ॥७९॥ ठीक द्वारपर दूसरे खण्डका
आवे तो वह शुभ नहीं होता और ओछा द्वारभी शुभ नहीं. बहुत चौडा द्वार
का भय करता है और कुबडा द्वार कुलका नाश करनेवाला होता है ॥८०॥ऊप०
काठसे बहुत दबा हुआ द्वार घरके स्वामीको पीडा करता है. भीतरको झुका हुआ
स्वामीका मरण करता है. बाहरको झुका होय तो गृहस्वामी विदेशमें रहे और
सी दिशाकी ओर देखता हो तो चोरोंसे पीडित होता है॥८१॥ घरके मुख्य द्वारका
और साधारण द्वारोंके समान नहीं करे अर्थात् और द्वारोंसे मुख्यद्वारका रूप श्रेष्ठ

घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥ ८२ ॥ ऐशा-
दिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः । चरकि विदारि
पूतना राक्षसी चेति ॥ ८३ ॥ पुरभवनग्रामाणां ये को
निवसतां दोषाः । श्वपचादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिम
॥ ८४ ॥ याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते ।
दिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ ८५ ॥ आसन्नाः
किनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय । फलिनः प्रजाक्षयकर
ण्यपि वर्जयेदेषाम् ॥ ८६ ॥ छिन्द्याद्यदि न तरूंस्तान् तदन्तरे पू
न्वपेदन्यान् पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसान् शमीशाली ॥
शस्तौषधिद्रुमलतामधुरा सुगन्धा स्निग्धा समान
च मही नराणाम् । अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां धत्ते
किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥ ८८ ॥ सचिवालयेऽर्थनाशो
सुतवधः समीपस्थे । उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति च

होना चाहिये. मुख्य द्वारपर कलश, फल, पत्र, शिवजीके गण आदि मंग
शोभासे शोभित करे अर्थात् इनके चित्र द्वारपर खुदवावे॥८२॥ घरके बाह
आदि चारों कोनोंमें क्रमानुसार चरकी, विदारी, पूतना और राक्षसी यह च
टिके हैं ॥८३॥ घर ग्राम और नगरके जो चारों कोण हैं, उनमें वास करने
अनेक प्रकारके क्लेश होते हैं और उन कोणोंमें जो श्वपच आदि नीच जाति
उनकी वृद्धि होती है ॥ ८४ ॥ पिलखन, वट, गूलर, पीपल यह चार वृक्ष क्र
घरके दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्वमें हो तो अशुभ होते हैं और उत्तर, पूर्व
और पश्चिममें क्रमसे यह वृक्ष उत्पन्न हों तो शुभ है ॥ ८५ ॥ घरके समीप हैं
कांटोंवाले वृक्ष हों तो शत्रुभय करते हैं. आक आदि दूधवाले वृक्ष धनका नाश
आम्रादि फलनेवाले वृक्ष सन्तानका क्षय करते हैं. इन वृक्षोंका काठभी घरमें
॥८६॥ जो घरके समीप यह वृक्ष हों और इनको काटे नहीं तो इनके साथ अ
वृक्ष लगा दे. नागकेशर, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, जांट, शाल यह
हैं ॥ ८७ ॥ उत्तम औषधीवृक्ष और लताओंसे युक्त मधुर सुगंधवाली
समान और छिद्रोंसे रहित भूमिके मार्गमें चलनेवाले पुरुष जो श्रम दूर
क्षणमात्रके लिये उसमें बैठ जांय तो उनकोभी लक्ष्मी देती है. फिर जिन
ऐसी भूमिमें बने हैं और वह पुरुष सदा उनके नीचे वास करते हैं
लक्ष्मीका प्राप्त होना क्या बडी बात है ॥ ८८ ॥ घरके निकट राजाके मंत्री

८९ ॥ चैत्ये भय ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसंकुले विपदः ।
र्यां तु पिपासा कर्माकारे धनविनाशः ॥ ९० ॥ उदगादिप्लव-
ष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव । विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्ये-
म् ॥ ९१ ॥ गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् -
नमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ९२ ॥ श्वभ्रमथ-
बुपूर्णं पदशतमित्वागतस्य यदि नोनम् । तद्धन्य यच्च भवेत्
ान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥ ९३ ॥ आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे
वर्तिरभ्यधिकम् । ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य
स्य ॥ ९४ ॥ श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्मिन् प्रम्लायतेऽनुवर्ण-

तो धनका नाश होता है. दूसरोंको ठगनेवालेका घर पास हो तो पुत्रमरण, देव-
ा मंदिर समीप हो तो चित्तके खेद रहे. चतुष्पथ (चौराहा) समीप हो तो
ीर्ति हो ॥ ८९ ॥ चैत्य अर्थात् प्रधान वृक्ष घरके समीप हो तो स्वामीको ग्रहोंका
है, सर्पकी बांबी और गढोंदार भूमि घरके पास होय तो विपत्ति होवे. घरके
ीम गढा हो तो प्यासका रोग हो और कछुएके समान आकारकी भूमि घरके
ीप हो तो घरके स्वामीके धनका नाश होता है ॥ ९० ॥ उदक्प्लव, (जिस
ीका झुकाव उत्तरकी ओर हो) वह भूमि ब्राह्मणोंके लिये शुभ है. इसी प्रकार
ल्लव, दक्षिण प्लव और पश्चिमप्लव भूमि क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये
दायी होती है, ब्राह्मण सब प्रकारकी भूमिमें वसें, उसका चाहे जिस दिशामें
ी हो और वर्णोंके लिये अनुवर्ण भूमि शुभ है, पूर्वप्लव, दाक्षिणप्लव और
मप्लव क्षत्रियोंको, दक्षिणप्लव और पश्चिमप्लव वैश्योंको और केवल पश्चिमप्लव
द्रोंको शुभ है ॥ ९१ ॥ घरमें एक हाथ चौडा एक हाथ गहरा गढा खोदे, फिर
ीको उसी मट्टीसे पूर्ण करे, जो गढा भरनेमें मट्टी कम हो जाय तो वह घर
ुभ होता है. ठीक ठीक गढा भर जाय तो न शुभ और न अशुभ होता है, और
गढा भर जाय व मट्टी बच रहे तो वह गृह सब प्रकारसे शुभ होता है ॥ ९२ ॥
ली कही हुई रीतिसे गढा खोदकर उसमें जल भरे, सौ पदतक जाकर लौट आवे
ने समयमें यदि गढेका जल कुछभी न घटे वह भूमि शुभ होती है, और
ीकी धूरिसे आढकको भरकर फिर तोले और वह धूरि चौसठ पल हो तो वह
मे भी शुभ है (अन्न नापनेका एक काठका बरतन जिसमें अनुमान चार सेर
न्न आता है, उसको आढक कहते हैं, चालीस मासेका एक पल होता है)
९३ ॥ मट्टीके कच्चे वर्त्तनमें चार बत्तीवाला दीपक डाले, उनमें उत्तरादि बत्तियोंमे
ह्मण इत्यादि चार वर्णोंकी कल्पना कर दीपक जलाय गढेमें रक्खे, जिस वर्णकी
शामें बत्ती बहुत समय पर्यन्त जलती रहे, वह भूमि उस वर्णको शुभदायी है ।९४।

समम् । तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते ।
सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां प्रशस्यते भूमिः । गन्धश्च
यस्या घृतरुधिरान्नाद्यमद्यसमः ॥९६॥ कुशयुक्ता शरबहुला
काशावृता क्रमेण मही । अनुवर्णं वृद्धिकरी मधुरकषायाम्लक
च ॥ ९७ ॥ कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्युषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां
गत्वा महीं गृहपतिः काले सांवत्सरोद्दिष्टे ॥ ९८ ॥ भक्ष्यैर्नां
रैर्दध्य क्षतसुरभिकुसुमधूपैश्च । दैवतपूजां कृत्वा स्थपतीनभ
विप्रांश्च॥९९॥विप्रः स्पृष्ट्वा शीर्षं वक्षश्च क्षत्रियो विशश्चोरू ।
पादौ स्पृष्ट्वा कुर्याद्रेखां गृहारम्भे॥१००॥ अंगुष्ठकेन कुर्यान्म
गुल्याथवा प्रदेशिन्या । कनकमणिरजतमुक्तादधिफलकुसुमा

ब्राह्मण इत्यादि वर्णके रंगके समान अर्थात् सफेद, लाल, पीला और काल
चार फूल लेकर गढेमें सांझ समयसे रक्खे और दूसरे दिन देखे, जिस वर्णका
न कुम्हलाया हो, वह भूमि उस वर्णके लिये शुभ है या भूमिमें अपना मन
वह भूमि शुभ है, उसमें और कुछ विचारनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ९५ ॥
णादि चारों वर्णोंके लिये क्रमानुसार श्वेत, रक्त पीत और कृष्णवर्णकी भूमि
है. जिस भूमिमें घी, रक्त अन्नादि और मद्यके समान गंध हो वह ब्राह्म
वर्णोंके क्रमसे शुभ है ॥ ९६ ॥ जिस भूमिमें कुशा, शर, दूब और कांस
हो वह ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमसे शुभ है और जिस भूमिकी मट्टी
कषैली, आम्ल (खट्टी) और कडवी हो, वह भूमि क्रमानुसार ब्राह्मणादि
वर्णोंके लिये शुभ होती है ॥ ९७ ॥ जिस भूमिमें गृह बनाना हो तो प्रथम उ
हलसे जोतकर उसमें बीज बोवें जब वह बीज पक चुके तो फिर एक रात्री
भूमिमें गौ बैठे और ब्राह्मण उस भूमिकी प्रशंसा करें, ऐसी भूमिमें गृह बन
इच्छा करनेवाला पुरुष ज्योतिषीके बताये मुहूर्तपर जाकर अनेक प्रकारके
पुए आदि भक्ष्य, दही, अक्षत सुगंधयुक्त पुष्प और धूप करके क्षेत्रपाल आदि
ओंका पूजन करके कारीगर गृहारंभकी रेखा करे ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ रेखा क
समय ब्राह्मण अपने शिरको, क्षत्रिय छातीको, वैश्य ऊरुको और शूद्र पै
छूकर रेखा करें ॥ १०० ॥ गृहके आरम्भमें जो गृहपति अंगुष्ठ, मध
प्रदेशिनी (अंगूठेके निकटकी अंगुली) से सुवर्ण, मणि, च

शुभम् ॥ १०१ ॥ शस्त्रेण शस्त्रमृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम् । तस्करभयं तृणेन च काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ॥ १०२॥ वक्रा पादालिखिता शस्त्रभयक्लेशदा विरूपा च । चर्माङ्गारास्थिकृता दन्तेन च कर्तुरशिवाय ॥ १०३ ॥ वैरमपसव्यलिखिता प्रदक्षिणं सम्पदो विनिर्देश्याः । वाचः परुषा निष्ठीवितं क्षुतं चाशुभं कथितम् ॥ १०४ ॥ अर्द्धनिचितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि । अवलोकयेद्गृहपतिः क संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ॥ १०५ ॥ रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवः । संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन्देशेऽस्थि निर्देश्यम् । १०६ ॥ शकुनसमयेऽथवान्ये हस्त्यश्वश्वादयोनुवाशन्ते । तत्प्र-

---

मोती, दही, फल, पुष्प, अक्षत इनमें किसीसे रेखा करे तो शुभ होता है ॥ १०१॥ शस्त्रसे रेखा करे तो शस्त्रसेही गृहस्वामीकी मृत्यु हो, लोहसे करे तो बंधन, भस्मसे करे तो अग्निभय, तिनकेसे करे तो चोरभय और काठसे गृहारम्भ में रेखा करे तो राजभय होता है ॥ १०२ ॥ टेढी, पैरसे खैंची हुई अथवा बुरे रूपकी रेखा हो तो शस्त्रभय और क्लेशदायक है. चमडा, कोयला, अस्थि और दांतसे की हुई रेखा गृहस्वामीका अशुभ करती है ॥१०३॥ जो रेखा दाहिनी ओरसे बांई ओरको खैंची जाय वह वैर करती है, बांई ओरसे दाहिनी ओरको जो रेखा खैंची जाय तो संपत्ति होती है. गृहारंभके समय कोई कठोर वचन कहे,थूके अथवा छींके तो अशुभ कहा है ॥१०४॥ अध बने व संपूर्ण बने गृहमें प्रवेश करता हुआ कारीगर शुभ अशुभ चिह्न देखे, कि घरका मालिक वास्तुपुरुषके किस अंगपर टिका है और अपने किस अंगको छू रहा है ॥१०५॥ उस काल सूर्यके वश जो दीप्त दिशा हो उसमें टिका हुआ पक्षी रूखे शब्द बोलता हो तो जिस स्थानपर गृहपति स्थित हो वहां नीचे हड्डी गडी है और हड्डीभी उस अंगकी है जो अंग गृहस्वामीने उस समय छू रक्खा है, यह जाने उदय होनेके समय सूर्य पूर्वदिशामें रहता है. फिर दिन रातके आठ पहरोंमें क्रमानुसार एक एक प्रहर आठों दिशाओंमें सूर्य गमन करता है. जिस दिशाको सूर्य छोड आया हो, वह दिशा अंगारिणी है. जिसमें स्थित हो वह दीप्ता और जिसमें जानेवाला हो वह धूमिता दिशा कहाती है. इन तीनोंको त्याग बाकी पांच दिशा शांता होती हैं ॥ १०६ ॥ शकुन देखनेके समय दीप्त दिशाकी ओर मुख करके हाथी, घोडा, कुत्ता इत्यादि जीव बोले तो जहां गृहस्वामी टिका है उस स्थानमें उन जीवोंके उसी अंगकी हड्डी जाने जो अंग गृहपतिने छू

भवमस्थि तस्मिंस्तदङ्गसम्भूतमेवेति ॥ १०७ ॥ सूर्य
गर्दभरावोऽस्थिशल्यमाचष्टे । श्वशृगाललंघिते वा
विनिर्देश्यम् ॥ १०८ ॥ दिशि शान्तायां शकुनो
यदा तदा वाच्यः । अर्थस्तस्मिन् स्थाने गृहेश्वरा
॥ १०९ ॥ सूत्रच्छेदे मृत्युः कीले चावाङ्मुखे
गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः ॥ ११०
च्च्युते शिरोरुक् कुलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भे । भग्नेऽ
वधश्च्युते करादृगृहपतेर्मृत्युः ॥ १११ ॥ दक्षिणपूर्वे
पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्
स्थाप्याः ॥ ११२ ॥ छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपवि
स्थाप्यः । स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन
विहगादिभिरवलीनैराकम्पितपतितदुःस्थितैश्च फलम
ध्वजफलसदृशं तस्मिंश्च शुभं विनिर्दिष्टम् ॥

रक्खा है ॥ १०७ ॥ सूत्र डालनेके समय गधा बोले तोभी गृ
हो उसके नीचे हड्डी गडी होती है. जो सूतको कुत्ता व सियार उल
उस स्थानमें शल्य जाने ॥ १०८ ॥ उस समय जो शांत
मुख करके पक्षी मधुर शब्द करें तो पक्षीके बैठनेकी जगह
स्वामी वास्तुपुरुषके जिस अंगपर बैठा है, उस भूमिमें द्रव्य गडा
पसारनेके समय सूत टूट जाय तो गृहके मालिककी मृत्यु हो
समय कीलका मुख नीचेको हो जाय तो बडा रोग हो, गृहस्वामी
स्मरणशक्ति जाती रहे तो उनकी मृत्यु कहना चाहिये ॥ ११० ॥
जानेके समय कंधेसे गिरजाय तो गृहस्वामीको शिरका रोग हो,
कर औंधा हो जाय तो गृहस्वामीके कुलको उपद्रव हो, फूट जाय
मृत्यु हो और हाथसे कलश छूट पडे तो गृहस्वामीकी मृत्यु होत
अग्निकोणमें पूजा करके पहिली शिला स्थापन करे,फिर और शिल
क्रमसे स्थापन करे, इसी प्रकार थंभभी खडे करने चाहिये ॥ १
छत्र, पुष्पमाला और, वस्त्रसे भूषित कर गंधधूपादिसे उसका पूजन
इसी प्रकार द्वार (चौखट) कोभी यत्नसहित खडा करना चाहि
थंभ या द्वारके ऊपर पक्षी इत्यादि बैठे, स्तम्भ अथवा द्वार खडे
कांपे, गिर जांय अथवा ठीक खडे न हों तो उनका फल इन्द्र

त्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुर्गन्धे । वक्रे बन्धुविनाशो
न्ति गर्भाश्च दिङ्मूढे ॥ ११५ ॥ इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं ततः
न्ताद्विवर्धयेत्तुल्यम् ॥ एकोद्देशे दोषः प्रागथवाप्युत्तरे कुर्यात्
१६ ॥ प्राग्भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ।
विनाशः पश्चादुदग्विवृद्धौ मनस्तापः ॥ ११७ ॥ ऐशान्यां
हं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम् । नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करो-
ान्यानि मारुत्याम् ॥ ११८ ॥ प्राच्यादिस्थे सलिले सुत-
ः शिखिभयं रिपुभयं च । स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नस्व्यं वित्ता-
विवृद्धिः ॥ ११९ ॥ खगनिलयभग्नसंशुष्कदग्धदेवालयश्म-
स्थान्। क्षीरतरुधवविभीतकनिम्बारणिवर्जितांश्छिन्द्यात्॥१२०॥
कृतबलिपूजं प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृक्षम् । धन्यमुदक्प्रापतनं

अर्थात् इन्द्रध्वजाध्यायमें जो शुभ अशुभ फल कहा है, वही यहांभी जानना
पे ॥ ११४ ॥ जो वास्तु पूर्व या उत्तर दिशामें ऊंचा हो तो धन और पुत्रोंका
ोता है, दुर्गन्धयुक्त वास्तु हो तो पुत्रमरण, टेढा वास्तु हो तो बंधुनाश और
ें दिग्विभाग न जाना जाय ऐसा वास्तु हो तो उसमें वास करनेवाली स्त्रियोंको
न रहे ॥११५॥ यदि घरकी वृद्धि चाहे तो चारों ओर वास्तुको बराबर बढावे
अधिक न बढावे, जो वास्तुके एक ओर दोष हो अर्थात् बढाव हो तो उसको
अथवा उत्तरमें बढावे ॥११६॥ यदि वास्तु पूर्वकी ओर बढा हो तो मित्रोंके
शत्रुता हो, दक्षिणकी ओर बढा हो तो मृत्युका भय, पश्चिमकी ओर बढे तो
ा नाश, उत्तरकी ओर बढा हो तो चित्तको संताप होता है, पूर्व और उत्तरमें
बढनेका दोष थोडा है इसी कारण पहली आर्यामें लिखा है कि बढाना हो तो
अथवा उत्तरको बढाना चाहिये॥११७॥गृहके ईशानकोणमें देवगृह, अग्निकोणमें
घर, नैर्ऋत्यकोणमें गृहस्थीकी सब सामग्री रखनेका गृह और वायुकोणमें धन
न्न स्थापन करनेका गृह बनाना चाहिये ॥११८॥ गृहके पूर्व आदि दिशाओंमें
स्थित हो तो क्रमानुसार पुत्रमरण अग्निभय, शुभभय, स्त्रियोंमें क्लेश, स्त्रियोंमें
ोलता, निर्धनता, धनवृद्धि और पुत्रवृद्धि यह फल होते हैं॥११९॥ जिनमें पक्षियोंके
ें हों, टूटे हुए, सूखे हुए, जले हुए देवताके मन्दिरमें अथवा श्मशानके वृक्षोंको
जिनमेंसे दूध निकलता हो उनको और वच, बहेडा, नीम और अरलू इन
ों छोडकर वृक्षोंको घरके लिये काटे ॥१२०॥ रात्रिके समय वृक्षको पूजा

न ग्राह्योऽतोऽन्यथा पतितः ॥ १२१ ॥ छेदो यद्यविकारी त
शुभं दारु तद्गृहौपयिकम् । पीते तु मण्डले निर्दिशेत् तरोर्मध्य
गोधाम् ॥ १२२ ॥ मञ्जिष्ठाभे भेको नीले सर्पस्तथारुणे सरट
मुद्गाभेऽश्मा कपिले तु मूषकोऽम्भश्च खड्गाभे ॥ १२३ ॥ धान्
गोगुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् । नोत्तरापरशि
न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ॥ १२४ ॥ भूरिपुष्पा
करं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् । धूपगन्धबलिपूजिता
ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायांवास्तुविद्या नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

बलि देकर दिनमें प्रदक्षिणाके क्रमसे ईशानकोणसे लेकर उस वृक्षको काटे
वृक्ष कटकर उत्तर अथवा पूर्वदिशामें गिरे तो वह शुभ होता है और दिशामें गि
तो उसको ग्रहण न करे ॥१२१॥ काटनेके समय वृक्षके घटनेका स्थान विका
रहित हो तो उस वृक्षका काठ घरके लिये शुभ होता है, वृक्षके छेदमें पीले रंग
मण्डल दिखाई दे तो उस वृक्षमें गोहका रहना कहना चाहिये ॥ १२२
मजीठके सदृश लाल रंगका मण्डल दिखाई दे तो मेंडक, नील रंगका मण्डल
तो सर्प, रक्त वर्णका मण्डल हो तो गिरगिट, मूंगके रंगका अर्थात् हरा मण्ड
दिखाई दे तो पत्थर, कपिल वर्णका मण्डल हो तो चूहा और वृक्षके छेदमें खड्ग
रंगका मण्डल दिखाई पडे तो वृक्षके बीच जलका होना कहना चाहिये ॥ १२३
लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाला पुरुष अन्न गौ, गुरु, अग्नि और देवताके ऊपर शयन
करे और बांसके नीचे शय्या बिछाकरभी न सोवे, उत्तर अथवा पश्चिमको मस्त
करके न सोवे, नग्न अर्थात् धोती खोलकर न सोवे और जलसे भीगे हुए पैर रखक
न सोना चाहिये ॥ १२४ ॥ बहुत पुष्पोंके समूहसे भूषित, तोरणसे युक्त, पू
कलशोंसे शोभायमान और जिसमें धूप, गंध, बलि आदिसे देवताओंका पूजन हुअ
हो और ब्राह्मण जिसमें वेदध्वनि कर रहे हों ऐसे घरमें प्रवेश करना चाहिये ॥१२५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा-
बादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

उदकार्गलम्.

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धि
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ १
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्। ना
रसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥ २ ॥ पुरुहू
नलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः। विज्ञातव्याः क्रम
प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥ ३ ॥ दिक्पतिसंज्ञाश्च शिरा न
मध्ये महाशिरानाम्नी। एताभ्योऽन्या शतशो विनिःसृता नाम
प्रथिताः ॥ ४ ॥ पातालादूर्ध्वशिरा शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिता याः
कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥ ५ ॥ य
वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात्। सार्धे पुरुषे
वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ६ ॥ चिह्नमपि चार्धपुरुषे मं

अब धर्म और यशको देनेवाला उदकार्गल कहते हैं, जिसके जाननेसे भू
स्थित जलका ज्ञान होता है, मनुष्योंके अंगमें जिस प्रकार नाडी स्थित है,
भूमिमेंभी कई ऊँची और कई नीची शिरा हैं ॥ १ ॥ आकाशसे वर्षा होनेपर
जल एकही स्वादका गिरता है, वह भूमि की विशेषतासे अनेक रंग और स्व
हो जाता है, उसकी परीक्षा भूमिके तुल्यही करनी चाहिये अर्थात् जैसी भूमि
वैसाही जल होगा ॥ २ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम
ईशान यह आठ देवता क्रमानुसार पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं ॥ ३ ॥
आठ दिशाओंके स्वामियोंके नामसे आठ शिरा विख्यात हैं, जैसे ऐंद्री, अ
याम्या इत्यादि और बीचमें एक बडी शिरा महाशिराके नामसे विख्यात है
अधिक और भी सैकडों शिरा निकली हैं, वे अपने अपने नामसे विख्यात हैं
पातालसे जो शिरा सीधी ऊपरको निकलती हो वह और पूर्व आदि चारों
ओंमें जो शिरा हो वे शुभ होती हैं, अग्निकोण आदि चार कोणमें जो शिरा
शुभ नहीं होती हैं, अब शिराज्ञान होनेके चिह्न कहते हैं ॥ ५ ॥ जो जलहीन
वेदमजनूंका वृक्ष हो तो उस वृक्षसे पश्चिमको तीन हाथपर डेढ पुरुष नीचे जल
है और वहां पश्चिमकी शिरा वहती है, मनुष्य अपनी भुजा ऊपर खडी करे,
लम्बाईको एक पुरुष कहते हैं, वह एक सौ बीस अंगुल होती है ॥ ६ ॥ वहां य

पाण्डुरोऽथ मृत्पीता । पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति त
मधः ॥ ७ ॥ जम्ब्वाश्चोदगधस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पू
मृल्लोहगन्धिका पाण्डूराथ पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥ ८ ॥ जम्बूवृ
प्राग्वल्मीको यदि भवेत्समीपस्थः । तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं
षद्वये स्वादु ॥ ९ ॥ अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषा
मृद्भवति चात्र नीला दीर्घं कालं बहु च तोयम् ॥ १० ॥ पश्च
दुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे । पुरुषे सितोऽहिरश्माञ्जन
मोऽधः शिरा सुजला ॥ ११ ॥ उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मी
यदि ततोऽर्जुनाद्धस्तैः । त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धस
न्वितैः पश्चात् ॥ १२ ॥ श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा
कृष्णा । पीता सिता ससिकता ततो जलं निर्दिशेदमि
॥ १३ ॥ वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरै

होता है कि आधा पुरुष खोदनेपर कुछ श्वेत रंगका मेंडक निकलता है, फिर
रंगकी मट्टी निकलती है फिर परतदार पत्थर निकलता है उसके नीचे जल होता है।
निर्जल देशमें जो जामुनका वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तरको दो पुरुष नी
पूर्व शिरा होती है वहां खोदनेसे लोहेके समान गन्धवाली मट्टी निकलती है
पांडुरंगकी मट्टी निकलती है और एक पुरुष नीचे मेंडक निकलता है ॥८॥ जामु
वृक्षसे पूर्व दिशामें समीपही सर्पकी बांबी हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण दो
नीचे मधुर जल होता है ॥ ९ ॥ आधा पुरुष खोदनेसे मत्स्य निकलता है, कबूत
रंगका पत्थर निकलता है, नीली मट्टी यहां होती है और जलभी बहुत होता है
अत्यन्त काला रहता है, आचार्यने जहां हाथोंका प्रमाण न कहा, वहां पहला
प्रमाण जानना जैसे यहां प्रमाण नहीं कहा इस कारण पूर्वोक्त तीन हाथ सम
चाहिये ॥१०॥ निर्जल देशमें गूलरका वृक्ष दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पश्चिम अ
पुरुष नीचे शिरा होती है. एक पुरुष नीचे श्वेत सर्प निकलता है, फिर अंजनके स
अत्यन्त कृष्णवर्ण पत्थर निकलता है, उसके नीचे सुन्दर जलवाली शिरा होत
॥११॥ अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ उत्तर जो बांबी दिखाई दे तो उस अर्जुन वृक्षसे तीन
पश्चिम साढेतीन पुरुष नीचे जल होता है ॥ १२ ॥ आधा पुरुष खोदनेपर श्वेत रंग
गोह निकलती है, एक पुरुष नीचे धूसर रंगकी मट्टी निकलती है, फिर काली, पी
और श्वेत मट्टी बालू रेतसे मिली हुई निकलती है, उसके नीचे बहुत जल कह
चाहिये ॥ १३ ॥ बाल्मीकयुक्त निर्गुंडी वृक्ष अर्थात् सिन्धुवारवृक्ष हो तो उससे द

त्रये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥ १४ ॥ रोहित-
ऽर्धनरे मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः। सिकता सशर्क-
क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥ १५॥ पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको
जलं पश्चात्। पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्धनरे
॥ सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति।
त्रये सपादे पुरुषेऽत्र च डुण्डुभिश्चिह्नम् ॥ १७ ॥ बिल्वोदु-
योगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन। पुरुषैस्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णो-
च मण्डूकः ॥ १८ ॥ अर्कोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते
तस्मिन्। पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च
॥ आपाण्डुपीतिका मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः। पुरु-
कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥२०॥ जकपरिहीने देशे
कम्पिल्लको यदा दृश्यः ॥ प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा
प्रथमम् ॥ २१ ॥ मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता चैव दृश्यते

क्षिण सवा दो पुरुष नीचे मीठा और कभी न सूखनेवाला जल होता है ॥१४॥
पुरुष खोदनेपर रोहूमछली निकलती है. फिर क्रमानुसार कपिल रंगकी मट्टी,
रंगकी मट्टी और पत्थरके सूक्ष्म कणोंसे मिला हुआ वालू रेत निकलता है,
नीचे जल होता है ॥ १५ ॥ बेरवृक्षके पूर्व जो वल्मीक हो तो उस वृक्षसे
हाथ पश्चिम तीन पुरुषके नीचे जल कहना चाहिये. आधा पुरुष खोदनेसे
रंगकी छपकिया निकती है ॥ १६ ॥ निर्जल देशमें ढाकवृक्षयुक्त बेरी वृक्ष
उससे पश्चिमको तीन हाथपर सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है वहां एक
खोदनेपर एक प्रकारका निर्विष सर्प निकला है यही चिह्न है ॥१७॥ बेलका
गूलरका पेड यह दोनों जहां इकट्ठे हों. उनसे दक्षिण तीन हाथ छोडकर
पुरुष नीचे जल होता है और आधा पुरुष खोदनेसे काले रंगका मेंढक निक-
है ॥ १८ ॥ आकगूलरवृक्षके अतिनिकट वल्मीक हो तो उस वल्मीकके नीचेही
तीन पुरुष खोदनेसे पश्चिमको वहनेवाली शिरा निकली है ॥ १९ ॥ पाण्डु
पीले रंगकी मट्टी निकलती है. गोरस (गायका मट्ठा) के समान श्वेतरंगका
निकलता है और आधे पुरुष नीचे कुमुदके फूलके सदृश श्वेत रंगका चूहा
ई देता है ॥ २० ॥ निर्जल देशमें कपिलवृक्ष दिखाई दे तो उस वृक्षमें तीन
पूर्वको सवा तीन पुरुषके नीचे दक्षिण शिरा वहती है ॥ २१ ॥ प्रथम नील
लके रंगकी मट्टी निकलती है, फिर कबूतरके रंगकी मट्टी दिखाई पडती है,

तस्मिन् । हस्तेऽजगन्धिमत्स्यो भवति पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥
शोणाकतरोरपरोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य । कुमुदा नाम
सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥ २३ ॥ आसन्नो वल्मीको द
पार्श्वे विभीतकस्य यदि । अध्यर्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया
प्राच्याम् ॥ २४ ॥ तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा
द्धस्ते । तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥२५॥
विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुंकमाभोऽश्मा । अपरस्यां दिशि
शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते ॥ २६ ॥ सकुशासित ऐशान्यां व
को यत्र कोविदारस्य । मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षो
॥ २७ ॥ प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मह
रक्ता कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ २८
यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम् । व
पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवंति चिह्नानि ॥ २९ ॥ पुरुषार्धे मण्
हरितो हरितालसन्निभा भूश्च । पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौ

एक हाथ नीचे मच्छी निकलती है. जिसमें चकोरके समान दुर्गंध आती है,
थोडा और खारा जल निकलता है ॥ २२ ॥ निर्जल देशमें श्योनाकवृक्ष (अ
दिखाई दे तो उसमें दो हाथ वायव्य कोणमें जाकर खोदनेसे तीन पुरुष नीचे क्र
सार शिरा मिलती है॥२३॥ वहेडा वृक्षके समीप वमई हो तो उस वृक्षके दो हाथ
डेढ पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ २४ ॥ बहेडेके वृक्षके पश्चिम दिशामें वमई हो
उस वृक्षसे एक हाथ उत्तरको साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है ॥ २५॥ प्रथम
पुरुष खोदनेपर श्वेत रंगका विश्वंभरक (एक प्रकारका जीव) दिखाई देता
फिर केशरी रंगका पत्थर निकलता है. उसके नीचे पश्चिम दिशाको वहनेवाली शि
निकती है. परन्तु तीन वर्षके पीछे वह शिरा नष्ट हो जाती है अर्थात् जल सूख ज
है ॥ २६ ॥ कोविदारवृक्ष (सप्तपर्ण) के ईशानकोणमें कुश करके युक्त श्वेतरंग
मट्टीकी वमई हो तो वहां कोविदारवृक्ष और वाल्मीकके मध्यमें साढे पांच पुरुष न
बहुत जल होता है ॥ २७ ॥ पहले पुरुषमें कमलपुष्पके मध्य भागके समान रंग
सर्प निकलता है, लाल वर्णकी भूमि आती है फिर कुरुविन्दनामक पत्
निकलता है, यह चिह्न कहने चाहिये ॥ २८ ॥ निर्जल देशमें वमईसे यु
सप्तवर्णवृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पांच पुरुष नीचे जल कह
चाहिये ॥ २९ ॥ यहांभी चिह्न होते हैं कि आध पुरुष खोदनेपर

रा शुभाम्बुवाहा ॥ ३० ॥ सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो
ःश्यः । तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ३१ ॥
तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता । दर्दुरसमा
पाषाणो दृश्यते चात्र ॥ ३२ ॥ यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षि-
संस्थितः करञ्जस्य । हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा
॥ ३३ ॥ कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा ।
या स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्ततस्तोयम् ॥ ३४ ॥ उत्तर
धूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् । परिहृत्य पञ्च हस्तान्
ामपौरुषे प्रथमम् ॥ ३५ ॥ अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा
कुलत्थवर्णोऽश्मा । माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा
॥ ३६ ॥ वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदू-
। पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥ ३७ ॥
ासः पश्चाद् यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् । परतो हस्त-

नेकलता है पीछे हरितालके समान पीले रंगकी भूमि निकलती है, फिर
ामान कृष्णवर्ण पत्थर मिलता है. इन सबके नीचे मधुर जलसंयुक्त उत्तर
ोती है ॥ ३० ॥ चाहे जिस वृक्षके नीचे बैठा हुआ मेडक दिखाई दे तो
ासे एक हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे जल होता है ॥ ३१ ॥ एक पुरुष
ोला निकलता है, फिर क्रमानुसार नीली पीली और श्वेत मट्टी निकलती
मेंडकके सदृश रंगका पत्थर दिखलाई पडता है ॥ ३२ ॥ यदि करंज-
क्षिणमें वल्मीक दिखलाई पडे तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिण साढे तीन
नीचे शिरा होती है ॥ ३३ ॥ आधे पुरुष नीचे कछुवा और फिर
र्वकी शिरासे जल निकलता है, दूसरी स्वादु जलसे युक्त उत्तर शिरा
ी, पहले हरे रंगका पत्थर और उसके नीचे जल होता है ॥ ३४ ॥ महु-
ासे उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पश्चिम पांच हाथ छोडकर साढे आठ
ोचे जल होता है ॥ ३५ ॥ पहला पुरुष खोदनेसे बडा सर्प दिखाई देता
वर्णकी भूमि फिर कुलथीके रंगका पत्थर निकलता है पीछे पूर्वशिरा
ी है; जिसमें सदा झागदार जल वहता है ॥ ३६ ॥ तिलक वृक्षके दक्षिण
ौर दूर्वा करके युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पांच हाथ पश्चिम
ुष नीचे जल होता है और पूर्वशिरा वहती है ॥ ३७ ॥ कदंबवृक्षके पश्चि-
ई हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण पौने छः पुरुष नीचे जल होता

त्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः ॥ ३८ ॥ कौबेरी
वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् । कनकनिभो
मात्रे मृत्तिका पीता ॥ ३९ ॥ वल्मीकसंवृतो यदि ता
नालिकेरो वा । पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः
॥ ४० ॥ याम्येन कपित्थस्याऽहिसंश्रयश्चेदुदग्जल
सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जल पञ्च ॥
रकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटभिदपि च पाषाणः । श्वे
मतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥ ४२ ॥ अश्मन्तकस्य
वा दृश्यतेऽहिनिलयो वा । षड्भिरुदक् तस्य करैः
त्रये तोयम् ॥ ४३ ॥ कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसर
मृत् । आदौ शिरा च याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च
वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेत्ततो जल पूर्वे । हस्तत्रितये
ऽयंशैः पञ्चभिर्भवति ॥४५॥ नीलो भुजगः पुरुषे मृत्पीता
श्चाश्मा॥कृष्णा भूःप्रथमं वारुणीशिरादक्षिणेनान्या॥४६॥

है ॥ ३८ ॥ वहां उत्तरशिरा निकलती है, जल बहुत होता है, परन्तु
गन्ध आता है, एक पुरुष खोदनेसे सुवर्णके रंगका मेंकड और फि
निकलती है ॥ ३९ ॥ बमईसे घिरा हुआ ताडका पेड अथवा नारिय
तो उस वृक्षसे छः हाथ पश्चिमको चार पुरुष नीचे दक्षिणशिरा हो
कैथके वृक्षसे दक्षिण वल्मीक हो तो उस वृक्षसे उत्तर सात हाथ छो
पांच पुरुष नीचे जल मिलता है ॥४१॥ एक पुरुष नीचे चित्रवर्ण
काली मट्टी, परतदार पत्थर फिर श्वेत मृत्तिका निकलती है,
मिलती है ॥ ४२ ॥ अश्मंतकवृक्षके बांई ओर बेरका वृक्ष हो अथव
तो उस अश्मंतकवृक्षसे छः हाथ उत्तरको साढे तीन पुरुष नीचे
॥ ४३ ॥ पहिला पुरुष खोदनेसे कछुआ, फिर धूसरवर्णका पत्थर
हुई मट्टी फिर पहले दक्षिणशिरा निकलती है और पीछे ईशानकोणकी
आती है ॥ ४४ ॥ हरिद्र (हलदुआ) वृक्षकी बांई ओर वल्मीक हो
तीन हाथ पूर्व एक तिहाई सहित पांच पुरुष नीचे जल होता है
पुरुष नीचे नीला सर्प, फिर पीली मट्टी, हरे रंगका पत्थर और काल
लती है, फिर पहले पश्चिमशिरा निकलती है और दूसरी दक्षिणाशि
है ॥ ४६ ॥ निर्जल देशमें जहां बहुत जलवाले देशके चिह्न दिख

देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि।वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मि
जलं पुरुषे ॥ ४७ ॥ भार्ङ्गी त्रिवृता दन्ती शूकरपादी च लक्ष्म
चैव । नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥ ४८
स्निग्धा प्रलम्बशाखा वामनविटपद्रुमाः समीपजलाः। सुषिरा ज
रपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥ ४९ ॥ तिलकाम्रातकवरुण
भल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्कोल्लाः । पिण्डारशिरीषांजनपरूषका व
लाऽतिबलाः ॥ ५० ॥ एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्त
स्तोयम् । हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरस्य ॥५१॥ अ
सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र । तस्मिन् शि
प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं तस्मिन् ॥५२॥ कण्टक्यकण्टकानां
त्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् । खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागः
धनं वा स्यात् ॥५३॥ नदति मही गम्भीरं यस्मिंश्चरणाहता
तस्मिन् । सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥५
वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् । वि

वीरण (गांडर) और दुर्वा जहां अत्यन्त कोमल हों, वहां एक पुरुष नीचे
होता है ॥४७॥ भारंगी, निसोत दंती (दात्यूणी), सूकरपादी, लक्ष्मणा, म
यह औषधि जहां हों इनसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होत
॥ ४८ ॥ जहां स्निग्ध लंबी शाखाओंसे युक्त छोटे २ और फैले हुए वृक्ष हों,
जल समीप होता है और छिद्रयुक्त जर्जर पत्तोंवाले और रूखे वृक्ष जहां हों,
जल नहीं होता ॥ ४९ ॥ जहां तिलक, अंबाडा, वरण, भिलावा बेल, तेंदु, अं
पिंडार, सिरस, अंजन, फालसा, अशोक और अतिबला ॥ ५० ॥ यह पेड अ
स्निग्ध वल्मीकोंसे घिरे हों, वहां इन वृक्षोंसे तीन हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे
होता है ॥५१॥ जिस भूमिमें कहीं तृण न हों और बीचमें एक स्थान तृण
दिखाई दे या सब भूमिमें तृण हो और एक स्थान तृणहीन हो तो उस स
साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है या धन गड़ा होता है, यह कहना च
॥ ५२ ॥ जहां कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष विना कांटेवाला अथवा विना कां
वृक्षोंमें एक वृक्ष कांटेवाला हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिमको एक तिहाई
तीन पुरुष खोदने जलसे अथवा धन निकलता है ॥ ५३ ॥ जहां पैरके ताडन
नेसे भूमिमें गंभीर शब्द हो वहां साढे तीन पुरुषके नीचे जल होता है और
शिरा निकलती है ॥ ५४ ॥ वृक्षकी एक शाखा भूमिकी ओर झुक रही हो

तव्यं शाखातले जल त्रिपुरुषं खात्वा ॥ ५५ ॥ फलकु
यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः भवति । पुरुषैश्च
णोऽधः क्षितिः पीता ॥ ५६ ॥ यदि कण्टकारिका
दृश्यते सितैः कुसुमैः । तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरै
॥ ५७ ॥ खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते दे
पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥ ५८ ॥ यदि भ
कारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा । सव्येन तत्र ह
पुरुषत्रये भवति ॥५९॥ ऊष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा
नरयुग्मे । निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण
यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति । स्निग्ध
वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥ ६१ ॥ मरुदेशे भव
यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि । ग्रीवा करभाणामि
संस्थाः शिरा यान्ति ॥ ६२ ॥ पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल
भवति पश्चात् । उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पु
चिह्नं दर्दुर आदौ मृत्कपिलातः परं भवेद्धरिता भवति

पीली पड गई हो तो उस शाखाके नीचे तीन पुरुष खोदनेसे जल
॥५५॥ जिस पेडके फल और पुष्पोंमें विकार हो, उस वृक्षसे तीन ह
पुरुष नीचे शिरा होती है, नीचे पत्थर निकलता है और भूमि पीले
होती है ॥ ५६ ॥ जहां कटेरीका वृक्ष कांटोंसे रहित और श्वेत पुष्पोंसे
दे उसके नीचे साढे तीन पुरुष खोदनेसे जल निकलता है ॥ ५७ ॥ ।
देशमें खजूरका दो शिवाला वृक्ष हो, वहां उस खजुरसे दो हाथ पश्चिमक
नीचे जल कहना चाहिये ॥ ५८ ॥ श्वेत पुष्पवाला कर्णिकारवृक्ष अ
वृक्ष हो तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥
भूमिमें बाफ अथवा धूंआ निकलता दिखाई दे तो वहां दो पुरुष नीचे
बहनेवाली शिरा कहनी चाहिये ॥ ६० ॥ जिस खेतमें खेती उत्पन्न हो
जाय अथवा बहुत स्निग्ध खेती हो या खेती उत्पन्न होकर पीली पड ज
पुरुष नीचे बहुतही जल होता है ॥६१॥ मारवाड देशमें जिस भांति शि
उसको कहते हैं, ऊंटकी ग्रीवाकी भांति भूमिमें नीची ऊंची शिरा जात
पीलुवृक्ष (जाल) के ईशानकी वल्मीक हो तो उस वल्मीकसे
हाथ पश्चिमको पांच पुरुष नीचे उत्तर बहनेवाली शिरा होती है
वहां खोदनेसे पहिले पुरुषमें मेंडक, फिर कपिल व हरी रं

धाऽश्मा तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥ ६४ ॥ पीलोरेव प्राच
वल्मीकोऽतोऽधः पञ्चभिर्हस्तैः । दिशि याम्यायां तोयं वक्त
सप्तभिः पुरुषैः ॥ ६५ ॥ प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्त
त्रमूर्तिश्च । दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानीयम् ॥ ६६
उत्तरतश्च करीरादहिनिलये दक्षिणे जलं स्वादु । दशभिः पुरुषै
पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥ ६७ ॥ रोहितकस्य पश्चादहिवासः
त्रिभिः करैर्याम्ये । द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शि
॥ ६८ ॥ इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते । खा
चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥ ६९ ॥ यदि वा सु
र्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजंगगृहम् । हस्तद्वये तु याम्ये पञ्चदश
रावसानेऽम्बु ॥ ७० ॥ क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्नि
श्चाश्मा । रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥७
बदरीरोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेद्विना वल्मीकम् । हस्तत्रयेऽम्बु पश्
त षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥ ७२ ॥ सुरसं जलमादौ दक्षिणा शि

और पत्थर निकलता है इन सब चिह्नोंके नीचे जल होता है ॥ ६४ ॥ पीलुवृक्ष
पूर्वदिशामें वल्मीक हो तो उस वृक्षके साढे चार हाथ दक्षिणको सात पुरुष
जल कहना चाहिये ॥६५॥ पहले पुरुषमें श्वेत कृष्ण रंगका एक हाथ लम्बा
फिर बहुतसा खारा जल वहनेवाली दक्षिणशिरा निकलती है ॥ ६६ ॥ करीर
उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षके साढे चार हाथ दक्षिणको दश पुरुष नीचे
जल जानना चाहिये. यहां एक पुरुष खोदनेसे पीले रंगका मेंडक निकलत
॥६७॥ रोहीतकवृक्ष (रुहीडा) के पश्चिममें वल्मीक हो तो उस वृक्षसे तीन
दक्षिणको बारह पुरुष खोदनेसे खारा जल बहनेवाली, पश्चिमाशिरा निकलत
है ॥६८॥ अर्जुनवृक्षके पूर्वमें वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्षसे एक हाथ पश्चि
चौदह पुरुष खोदनेसे शिरा निकलती है.यहां पहिले पुरुषमें कपिल रंगकी गोह दि
देती है ॥६९॥ जो धतूरावृक्षके वामभागमें वल्मीक हो तो उस वृक्षसे दो हाथ
णको पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७० ॥ वह जल खारा होता है आध
नीचे न्योला और तांबेके रंगका पत्थर, लाल रंगकी भूमि मिलती है पीछे
दक्षिणशिरा वहती है ॥७१॥ बेर और रुहीडा यह दोनों वृक्ष जो वल्मीकके वि
इकट्ठे दिखाई दें तो उन वृक्षोंसे तीन हाथ पश्चिमको सोलह पुरुष नीचे जल
है ॥७२॥ यहां जल अत्यन्त मधुर होता है. पहिले दक्षिण शिरा और पीछे

वहति चोत्तरेणान्या । पिष्टनिभः पाषाणो मृच्छ्वेता
नरे ॥ ७३ ॥ सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः करैः पश्चिमे
अष्टादशभिः पुरुषैरैशानि बहुजला च शिरा ॥ ७४
बदरी हस्तत्रयसमिते दिशि प्राच्याम् । विंशत्या पुरुष
मंभोऽत्र सक्षारम् ॥ ७५ ॥ ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ
बिल्वौ वा । हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत्पञ्चविंशत्य
वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति
देयो जलमत्र नरैकर विंशत्या ॥७७॥ भूमि कदम्बकः
यत्र दृश्यते दूर्वा । हस्तत्रयेण याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंश
वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति ।
सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥ ७९ ॥
मध्यात् षोडशभिश्चांगुलैरुदग्वारि । चत्वारिंशत्पुरुष
श्मातः शिरा भवति ॥ ८० ॥ ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिञ्छ
रेण वल्मीकः । पश्चात्पञ्चकरान्ते शतार्धसंख्यकै
॥ ८१ ॥ एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो

उत्तर शिराभी बहती है. आटेके समान श्वेत रंगका पत्थर, श्वेत
आध पुरुष नीचे बिच्छू दिखाई देता है ॥७३॥ जो करीरवृक्षके साथ
तो उन वृक्षोंसे तीन हाथ पश्चिम अठारह पुरुष खोदनेसे जल निकलता
जल बहनेवाली ईशानाशिरा होती है ॥ ७४ ॥ पीलुवृक्षके सहित बेरका वृ
तीन हाथ पूर्वको बीस पुरुष नीचे खारा जल होता है, जो कभी नहीं स
जहां अर्जुनवृक्ष और करीरवृक्ष इकट्ठे हों अथवा अर्जुन वृक्ष और
इकट्ठे हों तो उनसे दो हाथ पश्चिमको पच्चीस पुरुष नीचे जल होता
जो वल्मीकके ऊपर दूब और श्वेत रंगके कुश हों तो उस वल्मीकके
खोदनेसे इक्कीस पुरुष नीचे जल निकलता है ॥ ७७ ॥ जहांपर भू
वृक्ष लगे हों और वल्मीकके ऊपर दूब दिखाई दे, वहां उस कदम्बवृ
दक्षिणको पच्चीस पुरुष नीचे जल होता है ॥ ७८ ॥ तीन वल्मीकों
भांतिके तीन वृक्षोंसे युक्त रुहीडेका वृक्ष हो तो वहां जल कहना चाहि
मध्यम स्थित रुहीडेके वृक्षसे चार हाथ और सोलह अंगुल उत्तरको
खोदनेसे पत्थर निकलता है. उसके नीचे शिरा होती है ॥ ८०
गांठोंवाला शमीवृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक हो तो शमी वृक्ष
पश्चिमको पचास पुरुष नीचे जल होता है ॥ ८१ ॥ एक स्थानमें प

तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥८२॥ सपल
यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ट्या । अर्धनरेऽहिः प्र
सवालुका पीतमृत्परतः ॥ ८३ ॥ वल्मीकेन परिवृत्तः श्वेतो रं
तको भवेद्यस्मिन् । पूर्वेण हस्तमात्रे सप्तत्या मानवैरम्बु ॥ ८
श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः । नरपञ्चक
तया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥ ८५ ॥ मरुदेशे यच्चिह्नं न जा
तजलं विनिर्देश्यम् । जम्बूवेतसपूर्वं ये पुरुषास्ते मरौ द्विगु
॥ ८६ ॥ जम्बूस्त्रिवृत्तामर्वा शिशुमारा सारिवा शिवा श्या
वीरुधयो वाराही ज्यातिष्मती च गरुडवेगा ॥ ८७ ॥ सूक
माषपर्णी व्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये । वल्मीकादुत्तरत
करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥ ८८ ॥ एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूम
पञ्चभिः पुरुषैः । एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥८

उनके मध्यका वल्मीक श्वेत वल्मीकमें पचपन पुरुष खोदनेसे जलकी शिरा
लती है ॥ ८२ ॥ जहां पलाशवृक्षयुक्त शमी वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे पां
पश्चिम साठ पुरुष नीचे जल होता है. प्रथम आध पुरुष खोदनेसे सर्प औ
वालू मिली हुई पीली मट्टी निकलती है ॥ ८३ ॥ जहां वल्मीकसे घिरा हुअ
रंगका रुहीडेका वृक्ष हो वहां उस वृक्षसे एक हाथ पूर्वको सत्तर पुरुष नी
होता है ॥ ८४ ॥ जहां बहुत कांटोंसे युक्त श्वेत शमीवृक्ष हो, वहां उस वृक्ष
हाथ दक्षिणको पचहत्तर पुरुष नीचे जल होता है और आध पुरुष खोदने
निकलता है ॥८५॥ मरुदेशमें जलज्ञानके जो यह चिह्न कहे इन चिह्नोंसे जांग
जल नहीं कहना चाहिये अर्थात् जांगल देशमें इन चिह्नोंसे जलका ज्ञान नहीं
जामन, वेंतमजनूं आदि वृक्षोंके चिह्नोंसे प्रथम जलज्ञान कहा, वह चिह्न म
दिखाई दे तो जितने पुरुष नीचे पहले उन चिह्नोंसे जल कहा, वे पुरुष यहां
कहने योग्य हैं बहुत ही जलवाले देशको अनूपक कहते हैं, जलके अभाववा
मरुस्थल कहलाता है, इन दोनोंसे; अलग जो देश हो अर्थात् जहां बहुत
और अत्यन्त कम जल न हो, वह जांगल देश है. इस भांति तीन प्रकारके दे
हैं ॥ ८६ ॥ जामन, निसोत, मूर्वा शिशुमार, शरिवन, शिवा, श्यामा, वाराही
गरुडवेगा॥८७॥ सूकरिका, मषवन और व्याघ्रपदा (बघनखी) यह औषधी जो
कके ऊपर हों तो उस वल्मीकसे तीन हाथ उत्तरको तीन पुरुष नीचे जल
है॥८८॥तीन पुरुष नीचे जलकी बात अनूप देशमें कहनी चाहिये. जो य

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना । तस्यां य
विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र ॥ ९० ॥ यत्र स्निग्धा निम्न
सवालुका सानुनादिनी वा स्यात । तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पः
भिर्यदि वा ॥ ९१ ॥ स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च
तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात्तद्वदेव वदेत् ॥ ९२ ॥ नमतं
यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे । कीटा वा यत्र विना
लयेन बहवोऽम्बु तत्रापि ॥ ९३ ॥ उष्णा शीता च मही शीतो
ष्णांभस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः । इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको
वा चतुर्हस्तात ॥ ९४ ॥ वल्मीकानां पंक्त्यां यद्येकोऽभ्युच्छ्रिताः
शिरा तदधः शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राऽम्भः॥९५॥
न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः । वटपिप्पलसम-

जांगलदेशमें दिखाई दें तो तीन पुरुषके स्थानमें पांच पुरुष नीचे जल कहे, इनही चिह्नोंको मरुस्थलमें देखनेसे सात पुरुष नीचे जल बतावे॥८९॥एकरंगकी भूमिमें जहां तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्म नहीं हों, ऐसी भूमि जहां विकारयुक्त अर्थात् और प्रकारकी दिखाई दे, वहां पांच पुरुष नीचे जल होता है (भूमिमें एकही मूलसे बहुतसी शाखायुक्त समूहके उत्पन्न होनेको गुल्म कहते हैं) ॥ ९० ॥ जहां स्निग्ध नीची बालु रेतदार या जहां पैर रखनेसे शब्द हो, ऐसी भूमि हो तो वहां साढे चार पुरुष नीचे अथवा पांच पुरुष नीचे जल होता है ॥ ९१ ॥ जहां बहुतसे स्निग्ध वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे दक्षिण चार पुरुष नीचे बहुतसे जलका होना कहना चाहिये और बहुतसे वृक्षोंमें एक वृक्ष विकृत हो अर्थात् इसके फल, पुष्प और प्रकारके हों तो उस वृक्षसे दक्षिणको चार पुरुष नीचे जल होता है॥९२॥ जिस जांगल या जिस अनूप देशमें पांव रखनेसे भूमि दब जाय वहां डेढ पुरुष नीचे जल होता है और जहां बहुतसे कीडे दिखाई दें और उनके रहनेका कोई भट्टक न हो वहांभी डेढ पुरुष नीचे जल होता है ॥ ९३ ॥ जहां सब भूमि गरम हो और एक देशमें ठण्डी हो वहां या जहां सब भूमि शीतल हो और एक जगहमें गरम हो वहां साढे तीन पुरुष नीचे जल रहता है, इन्द्रधनुष मत्स्य या वल्मीक जहां जांगल अथवा अनूप देशमें दिखाई दे, वहां चार हाथ नीचे जल होता है ॥ ९४ ॥ जहां जांगल या अनूप देशमें बहुतसे वल्मीकोंकी पांति हो, उसमें एक वल्मीक सबसे ऊंचा हो तो उस ऊंचे वल्मीकके नीचे चार हाथ खोदनेसे शिरा निकलती है और जहां खेती जमकर सूख जाय या जमेही नहीं, वहांभी चार हाथ नीचे जल होता है ॥ ९५ ॥ वड, पीपल और गूलर यह तीन, वृक्ष जहां इकठे हों,

ये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ॥ ९६ ॥ आग्नेये यदि कोणे ग्राम-
न पुरस्य वा भवति कूपः । नित्यं स करोति भयं दाहं च समा-
षं प्राप्यः ॥ ९७ ॥ नैर्ऋत्यकोणे बालक्षयं वनिताभयं च वायव्ये ।
कत्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥ ९८ ॥ सारस्व-
न मुनिना दकार्गलं यत्कृतं तदवलोक्य । आर्याभिः कृतमेतद्
तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥ ९९ ॥ स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो
शिछद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति । पद्मेक्षुरोशीरकुलाः सगुंड्राः काशाः
शा वा नलिका नलो वा ॥ १०० ॥ खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः
रान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः । छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः
नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥ १०१ ॥ विभीतको वा मदय-
तका वा यत्राऽस्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः । स्यात्पर्वतस्योपरि
र्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥ १०२ ॥ या मौञ्जकैः
शकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्यत्र सशर्करा च । तस्यां प्रभूतं

। इन वृक्षोंके नीचे तीन हाथ खोदनेसे जल निकलता है और जहां बड, पीपल
रों इकट्ठे हों, उनके भी तीन हाथ नीचे खोदनेसे जल निकलता है, इन दोनों
ानोंमें उत्तर शिरा होती है ॥ ९६ ॥ गाँवसे अथवा नगरसे अग्निकोणमें कुआँ
तो नित्य भय देता है और प्रायः ग्राम और नगरमें अग्नि लगती है, जिसमें
ष्य भी जल जाते हैं ॥ ९७ ॥ नैर्ऋत्यकोणमें कुआँ हो तो बालकोंका क्षय होता
वायव्यकोणमें कूप हो तो स्त्रियोंका भय होता है, यह तीन दिशा छोडकर बाकी
व दिशाओंमें कूप शुभ होते हैं ॥ ९८ ॥ सारस्वतमुनिने जो उदकार्गल कहा है,
देखकर यह उदकार्गलभी हमने आर्याछन्दके द्वारा कहा; अब मनुका कहा उद-
र्गलभी वृत्तोंमें कहते हैं ॥ ९९ ॥ वृक्ष, गुल्म और वल्ली जिस भूमिमें स्निग्ध हों
र छिद्रहीन पत्तोंसे युक्त हों, वहां तीन पुरुष नीचे शिरा होती है या स्थलपद्म,
खरू, खस, कुल गंद्र, (शर), काश, कुश, नलिका, नल यह तृण ॥ १०० ॥ और
र्जूर, जामन, अर्जुन, वेतस वृक्ष हों या जहां वृक्ष, गुल्म और बल्ली ऐसे हों जिनमें
। निकले अथवा छत्री, हस्तिकर्णी, नागकेसर, कमल, कदम्ब, नक्तमाल, सिंधु-
र ॥ १०१ ॥ बहेडे और मदयन्तिका जहां हो वहां तीन पुरुष नीचे जल होता है
र जहां एक पर्वतके ऊपर दूसरा पर्वत हो वहांभी ऊपरके पर्वतके मूलमें तीन पुरुष
चे जल होता है ॥ १०२ ॥ मूंज, काश और कुश करके जो भूमि युक्त हो, जहां
थरकी कणिकाओंसे मिली नीली मट्टी हो तो वहां बहुत और मीठा जल होता
जहां काली या लाल मट्टी हो वहांभी बहुत और मधुर जल होता है॥ १०३ ॥ शर्करा

सुरसं च तोयं कृष्णाथवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥ १०३
ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति । अ
लवण प्रदिष्टं मिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥ १०४ ।
कर्णार्जुनबिल्वसर्जाः श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च । छिद्रैः
गुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयंति ॥ १०५ ॥ सूय
धूम्रखरानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा । रक्तां
युताः करीरा रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥ १०६ ॥
म्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा । भृङ्गाञ्जन
लाथवा या ज्ञेया शिला भूरिसमीपतोया ॥ १०७ ॥ प
द्घृतोपमा वा क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा । या सोम
समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च ॥ १०८॥ ता
पृषतैर्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा । भृङ्गोपमांगुष्ठि
वा सूर्याग्निवर्णा च शिला वितोया ॥ १०९ ॥ चन्द्रात

(पत्थरके कणोंसे मिली हुई तांबेके रंगकी) भूमि हो तो उसमें कसैले स
निकलता है, कपिल रंगकी भूमिमें खारा पानी होता है, पांडुरंगकी भूमि
स्वादका जल निकलता है और नीले रंगकी भूमिमें मीठा जल होता है
शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, बिल्व, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट और शीशम
छेदवाले पत्तोंसे युक्त हो और जहां वृक्ष, गुल्म, वेलेंभी छिद्रवाले पत्तों
रूखा हो वहां जल बहुत दूर होता है ॥ १०५ ॥ जो भूमि सूर्य, अग्नि,
गर्दभके रंगकी हो वह भूमि जलहीन होती है और जिस लाल रंगकी
रंगके अंकुरोंदार करीर वृक्ष हों और उन वृक्षोंमें दूध निकलता हो व
नीचे जल होता है ॥ १०६ ॥ वैदूर्य मणि, मुद्ग (मूंग) और मेघवं
शिला कृष्णवर्ण हो वे पके हुए गूलरके समान रंग हो, जो शिला फोड
समान अतिकाले रंगकी निकले या कपिल वर्ण हो उस शिलाके नि
जल होता है ॥ १०७ ॥ जो शिला पारावत (कबूतर), शहत, घृत,
कपडा या जो यज्ञके काममें आनेवाली सोमवेलके समान रंगकी हो
शीघ्रही अक्षय जल करती है ॥ १०८ ॥ तांबेके रंगके बिन्दु अ
बिन्दुओंसे युक्त जो शिला हो, पांडुरंगकी हो, अंगुष्ठिकवृक्षके फूलोंके र
और लाल हो, सूर्य या अग्निके समान रंगवाली हो उस शिलाको नि
योग्य है ॥ १०९ ॥ चन्द्रमाकी चांदनी, स्फटिक, मोती, सुवर्ण औ

नकहेमरूपा याश्चेन्द्रनीलमणिहिंगुलुकाञ्जनाभाः । सूर्योदयांशु-
ालनिभाश्च याः स्युस्ताः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत्
१० ॥ एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च यक्षैश्च नागैश्च सदा-
ुष्टाः । एषांच राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत्कदा-
[॥ १११ ॥ भेदं यदा नैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः सह
ुकानाम् । प्रज्वालयित्वानलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदा-
ते ॥ ११२ ॥ तोयं शृतं मोक्षकभस्मना वा यत्सप्तकृत्वः परि-
ं तत् । कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापि-
ः ॥ ११३ ॥ तक्रकाञ्जिकसुराः सकुलत्था योजितानि बद-
ा च तस्मिन् । सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिला-
केः ॥ ११४ ॥ नम्ब पत्रं त्वक् च नालं तिलानां सापामार्गं
ुकं स्याद्गुडूची । गोमूत्रेण स्रावितः क्षार एषां षट्कृत्वोऽतस्ता-
ो भिद्यतेऽश्मा ॥ ११५ ॥ आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं

के समान रंगकी जो शिला हो, सिंगरफके समान बहुत लाल रंगकी या अंजनके
बहुत काली; उदय होते हुए सूर्यके किरणोंके समान बहुत लाल और
कदार हो अथवा हरितालके तुल्य पीले रंगकी शिला हो तो वह शुभ होती है.
नकरणमें आगे कहा हुआ वृत्त मुनिवचन है अर्थात् प्रामाणिक है ॥ ११० ॥
जो शिला कही यह सब शुभ हैं, इसलिये इन शिलाओंको तोडना योग्य
यह शिला सदा यक्ष और नागोंसे सेवित रहती हैं, जिन राजाओंके राज्यमें
शिला हों उनके राज्यमें कभी अवृष्टि नहीं होती ॥ १११ ॥ कूप आदि
नेके समय शिला निकल आवे और वह फूट न सके तो उसके ऊपर ढाक
तेंदूके काठको जलाकर उस शिलाको लाल कर ले, फिर उसके ऊपर चूनेकी
से मिला हुआ जल छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥ ११२ ॥ महुवा
ी भस्म मिलाय जलको औटावे फिर उसमें शरका खार मिला पीछे अग्निसे
हुई शिलाके ऊपर सात वार उस जलको छिडके तो शिला टूट जाती है
१३ ॥ छाछ, कांजी, मद्य, कुलथी और बेरके फल इन सबको एक बरतनमें
रात्रि रक्खे फिर शिलाको पहले कही कई रीतिसे तपाय इन वस्तुओंसे बार
छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥ ११४ ॥ नींबके पत्ते, नींबकी छाल,
का नाल, अपामार्ग (चिरचिटा), तेंदूके फल गिलोय इनकी भस्मको
से छान ले फिर पत्थरको तपाकर छः वार इसमें छिडके तो वह पत्थर टूट
है ॥११५॥ हुडुमेषके सींगको जलाकर उसकी स्याही कबूतर और चूहेकी

पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः । टङ्कस्य तैलमथितस्य
पानं पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥ ११
कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् । १
चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम्
वापी प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा कल्ल
मेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः । तां चेदिच्छति सार
संपातमावारयेत् पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं
दिभिः ॥११८॥ ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवे
कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुलविमिश्रैश्चावृततीराम् ॥ ११
च नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासञ्चितवारिमार्गम् । व
निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांसुभिरावपेत्तम् ॥१२०॥
मुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः । कतकफलसमा
कूपे प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥ कलुषं कटुकं लवणं विरसं

वीटके साथ पीसकर मिला ले और इन सबको आकके दूधमें डालकर
शस्त्रपर लगावे और फिर तेलसे मथित टंक (पाषाणदारकयंत्र) पर पान
करले. शिलापर मारनेसेभी इस शस्त्रकी धार नहीं टूटेगी ॥११६॥ कदली
छाछ मिलाकर एक दिन रहने दे फिर जिस लोहेमें उसको मिलाकर पा
और वह भलीभांतिसे तेज धारवाला हो जाय तो फिर, वह पत्थरपर भ
नहीं टूटता और लोहेपर लगनेसे भी खुटला नहीं होता ॥ ११७ ॥
मको लम्बी वापीमें जल बहुत कालतक रहता है और दक्षिण उत्तर
नहीं ठहरता क्योंकि पवनसे उठाये हुए बडे तरंगोंसे वह टूट जाती है,
उत्तर लंबी पुष्करणी बनाया चाहे तो जलकी चोटका बचाव करनेके लि
किनारोंको दृढ काष्ठसे बांध दे या पत्थर, ईंट आदिसे चिनवा दे और
समय उसके प्रत्येक मिट्टीके आसारको घोडे हाथी आदिसे रुदवाता जाय
वह मिट्टी दब जाय और जलके धक्केसे नहीं टूटे ॥ १८ ॥ अर्जुन, ब
पिलखन, कदम्ब, निचुल, जामुन, वेतस, नीम (एक प्रकारका कदम्ब),
ताल, अशोक, महुआ और मौलसिरी ये वृक्ष उस वापीके तटपर लगावे।
जल निकलनेके लिये एक ओर एक मार्ग रक्खे. जिसको पत्थरोंसे बँधवाक
कर देवे और उस मार्गको छिद्ररहित काठके तखतेसे ढककर ऊपरसे मिट्टी
दे ॥१२० अंजन (सुरमा), मोथा, खस, राजकोशातकी (बडी तुरई),
और कतक (निर्मल) इन सबका चूर्ण कर कूपमें डाले ॥ १२१ ॥

यदि वाशुभगन्धि भवेत्। तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुग
णैरपरैश्च युतम् ॥ १२२ ॥ हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्त
रोहिण्यः। शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ १
कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने। कुसुमै
धूपैः सम्पूज्य निधापयेत्प्रथमम् ॥ १२४ ॥ मेघोद्भवं प्र
मया प्रदिष्टं ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा। भौमं दक
मिदं कथितं द्वितीयं सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादात् ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० दकार्गलंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः।

वृक्षायुर्वेदः।

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः। यस्
जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ॥ १ ॥ मृद्वी भूः सर्व
हिता तस्यां तिलान् वपेत्। पुष्पितांस्तांश्च गृह्णीयात् क

गदला, कडुआ, खारा, बेस्वाद, या दुर्गन्ध हो तो वह इस चूर्णके डालनेसे
मीठा, सुगन्ध, औरभी कई उत्तम गुणों करके युक्त हो जाता है ॥ १२२
मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनो उत्तरा, रोहिणी, और शतभिषा
कूपका आरंभ करना श्रेष्ठ है ॥ १२३ ॥ वरुणको बलि देकर गंध, पुष्प, धूप,
बड या बेतसके काठके कीलका पूजन करे फिर शिराके स्थानमें प्रथम उस
गाड दे ॥ १२४ ॥ ज्येष्ठ पूर्णिमा होनेसे पीछे वर्षाऋतुमें जो जलका ज्ञान
मेघसम्बन्धी उदकार्गल है; वह हमने बलदेव आदि आचार्योंके मतको देखव
ही कह दिया, वह भूमिसम्बन्धी दूसरा उदकार्गल मुनियोंके प्रसादसे भ
वराहमिहिरने अर्थात् हमने कहा है, उदक शब्द जलका वाचक है और
रुकावटका नाम है, जलकी रुकावट जिस शास्त्रसे जानी जावे वह उदकार्गल
है "नारं नीरं भुवनमुदकं जीवनीयं दकं च" इति हलायुधः ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादव
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥

वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयके ओर पास जो छायासे हीन
चित्तको आनंद नहीं देते, इस कारण जलाशयोंके किनारेपर आराम (
लगावें ॥ १ ॥ कोमल भूमि सब वृक्षोंके लिये अच्छी होती है, जिस भूमि

अत्र श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तष्टीकायामनुल्लेखात्।

थमं भुवि ॥ २ ॥ अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गु
ल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ॥३॥ पनसाशो
म्बूलकुचदाडिमाः । द्राक्षापालीवताश्चैव बीजपूरातिमुक्त
एते द्रुमाः काण्डरोप्या गोमयेन प्रलेपिताः । मूल
स्कन्धे रोपणीयाः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥ अजातशाखांश्शि
शाखान् हिमागमे । वर्षागमे च सुस्कन्धान्यथादि
येत् ॥ ६ ॥ घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः । अ
लिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम् ॥ ७ ॥ शुचिर्भूत्वा
कृत्वा स्नानानुलेपनैः । रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जा
सायंप्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे । वर्षासु च
सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः ॥ ९ ॥ जम्बूवेतसवानीरक
र्जुनाः । बीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमाः ।
वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनस्तथा । तिमिरोऽ
षोडशानूपजाः स्मृताः ॥ ११ ॥ उत्तमं विंशतिर्हस्

लगाना हो पहिले उसमें तिल बोवे, जब वे तिले फूलें तब उनका
भूमिका प्रथम कर्म है ॥ २ ॥ नीबू, अशोक, पुन्नाग, शीरीष और वि
हैं इस कारण बागमें अथवा घरमें पहिले लगाने चाहिये ॥ ३ ॥ ब
केला, जामुन, लिकुच, (बडहर), दाडिम, दाख, पालीवत, बिजौर
इन वृक्षोंकी कलम लेकर उसको गोबरसे लीपकर या दूसरे वृक्षको
डालसे काट उसके ऊपर लगावे ॥ ४ ॥ ५ ॥ जिनके शाखा उत्पन्न
ऐसे वृक्षोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें अपनी दिशाके बीच
लगावे. जिनके शाखा हो गई हो उनको हेमन्तमें और अच्छे २ डा
वर्षा ऋतुमें लगावे ॥ ६ ॥ घृत, खस, तिल, शहत, वायविडंग, दूध
इन सबको पीसकर मूलसे लेकर डालतक वृक्षोंका लेप दे पीछे
स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें लगावे ॥ ७ ॥ पवित्र हो, स्नान अ
वृक्षकी पुजा करें पीछे उस वृक्षको दूसरे स्थानमें लगावे तो वह वृक्ष
करके युक्त लग जाता है अर्थात् सूखता नहीं ॥ ८ ॥ लगाये हुए वृक्षो
सांझ सवेरे दोनों समय सींचने चाहिये, शीतकालमें एक दिनके अ
और वर्षाऋतुमें भूमि सूखनेपर सींचना चाहिये ॥ ९ ॥ जामुन, बे
कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, दाख, बडहर, दाडिम ॥ १० ॥ वंजुल
तिलक, कटहर, तिमिर और अंबाडा यह सोलह वृक्ष अनूपज अर्थात्
वाले देशमें होते हैं ॥ ११ ॥ एक वृक्षसे बीस हाथके अन्तरपर दूसरा

षोडशान्तरम्। स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादश
॥ १२ ॥ अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम्। मिश्रै
न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ॥१३॥ शीतवातातपैः रोगो
पाण्डुपत्रता। अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥
चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम्। विडङ्गघृतपङ्क
सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥ फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गै
र्यवैः। शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥ अ
शकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम्। सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो ग
तुलया सह ॥ १७ ॥ सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वन
वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥ वासरा
दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम्। गोमयेन बहुशो
क्षितं क्रोडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥ मत्स्यशूक
समन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ। क्षीरसंयुतजलाव

जाय तो उत्तम है, सोलह हाथ अंतरपर मध्यम और बारह हाथके अंतरपर
जाय तो अधम होता है ॥ १२ ॥ जो वृक्ष बहुत समीप उत्पन्न हों, परस्प
करें और जिनकी जड मिल जावें वे पीडित होते हैं और इसी कारणसे
नहीं फलते ॥ १३ ॥ बहुत शीत पवन और धूपसे वृक्षोंको रोग हो जात
उनके पत्ते पीले हो जाते, अंकुर नहीं बढते, डाली सूखती और रस टपक
है ॥१४॥ रोगी वृक्षकी इस भांति चिकित्सा करे कि पहले जिस अंगको स
आदि देखे उसको शस्त्रसे काट देवे फिर वायविडंग घृत और कीचको
वृक्षोंके लेप करे पीछे दूध मिले जलसे सींचे ॥ १५ ॥ वृक्षमें फल न लगे त
उडद, मूंग, तिल और जौ दूधमें डालकर औटावे, फिर उस दूधको ठंडा
दूधसे फल और पुष्पोंकी वृद्धिके लिये वृक्षको सींचे ॥ १६ ॥ भेड और
मेंगनका चूर्ण दो आढक, तिल एक आढक, सत्तू एक प्रस्थ, जल एक द
गोमांस एक तुला इन सबको एक पात्रमें डालकर ॥१७॥ सात रात्रितक र
फल और पुष्पोंके लिये इस जलसे वृक्ष, वेल, गुल्म और लताओंको सींचे
चाहे जिस वृक्षके बीजको घृतसे चिकने हाथ करके चुपडे पीछे उसको दूध
इसीभांति नित्य दश दिनतक चिकने हाथसे चुपड दूधमें डालता जाय पी
गोबरसे बहुत बार रूखा करे. सूकर और हरिणके मांसकी उस बीजक
॥१९॥ फिर मत्स्य और सूकरकी वसा (चर्बी) सहित उस बीजको तिल

जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥ २० ॥ तिन्तिडीत्यपि क
व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः । पूतिमांससहितैश्च सेचि
च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥ कपित्थवल्लीकरणाय मूल
धात्रीधववासिकानाम् । पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्य
सहिताष्टमूली ॥ २२ ॥ क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते
स्थाप्य कपित्थबीजम् । दिने दिने शोषितमर्कपादैर्मासं
ततोऽधिरोप्यम् ॥ २३ ॥ हस्तायतं तद्द्विगुणं गभीरं
प्रोक्तजलावपूर्णम् । शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रले
मन्वितेन ॥ २४ ॥ चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च प्रपूरयेन्मृ
रस्थः । मत्स्यामिषाम्भःसहितं च हन्याद् यावद्ध नत्वं
तत्॥२५॥उप्तं च बीजं चतुरंगुलाधो मत्स्याम्भसा मांसज
क्तम्। वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमावृ

की हुई भूमिमें बोवे और दूधयुक्त जलसे सींचे तो उस बीजसे जो वृक्ष
वह फूलोंसमेत उत्पन्न होगा॥२०॥ इमलीके बीजकोभी जो अतिकठोर
उडद, तिल इनका चूर्ण सत्तू और सडा हुआ मांस इन सबसे सेवन व
दीका धूप देवे तो उस बीजमें भी नये अँखुये निकल आवें, बीजों
संदेह क्या है! ॥२१॥ कैथके बीजसे बल्ली करना चाहे तो विष्णुक्रांता,
बासा पत्रोंसहित वेतस और सूर्यमुखी, निसोत और अतिमुक्तक
जड लेवे ॥ २२ ॥ वेतसके पत्तेभी लेवे इन सबको दूधमें डालकर
उस दूधको ठंडा कर उसमें कैथके बीजको डाल दोनों हाथसे सी
जावें इतने कालतक उस दूधमें रक्खे पीछे निकालकर दूधमें सुखा लें
नित्य एक महीनेतक करके पीछे उस बीजको बोवे ॥ २३ ॥ एक
चौडा और दो हाथ गहरा गढा खोदकर और उसको कहे हुये दूध
भरै, जब सूख जाय तो उस गढेको अग्निसे जला दे और शहत
भस्मको मिलाकर उस गढेको लीपे ॥ २४ ॥ मृत्तिकाके अंतरमें
तिल और जौके चूर्ण करके गढेको भर दे फिर मत्स्यमांसयुक्त
उस गढेको चारों ओरसे ठोके, जबतक वह कठिन हो जाय ॥ २५
चार अंगुल नीचे पहले सिद्ध किया कैथका बीज बोवे और मत्स्यजल

शतशोऽङ्कोल्लसम्भूतफलकल्केन भावितम् । एतत्तैलेन वा
श्लेष्मातकफलेन वा ॥ २७ ॥ वापितं करकोन्मिश्रं मृदि
णजन्मकम् । फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम्
श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः । अ
विज्जलाभिश्छायायां सप्तकृत्वेवम् ॥ २९ ॥ माहिषगोम
न्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य । करकाजलमृद्योगे न्युप्त
फलकराणि ॥ ३० ॥ ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्त
नीहस्तम् । उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वृक्षायुर्वेदो नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

जलसे सींचे तो शीघ्रही उत्तम पत्तों करके युक्त वल्ली हो जावे और मंडप
लेवे जिसको देखनेसे सबको विस्मय हो ॥ २६ ॥ अंकोलवृक्षके फल
(गूदे) से, अंकोलफलके तेलसे अथवा लसोडेके फलसे अर्थात् उसके
अथवा तेलसे चाहे जिस बीजको सौ भावना देवे अर्थात् सौ वार सिक्त क
पीछे उसे ओलोंसे भीगी हुई मट्टीमें बोवे तो उसी क्षण जम आता है, फूलों
झुकी हुई लता हो जाती है इसमें क्या अद्भुत है अर्थात् अवश्यही होती
बुद्धिमान् मनुष्य लसोडेके बीज लेकर उनका छिलका उतारे और अंको
बिजली अर्थात् फलके भीतरका पिच्छिल जल उससे छायामें उन बीजों
भावना देवे अर्थात् भावना दे देकर छायामें सुखाता जावे ॥२९॥ फिर उन
भैंसके गोबरसे घिसकर भैंसके सूखे गोबरके ढेरमें रख छोडे फिर जब औ
पर मिट्टी भीज जावे तब उसे ओलेसे भीगी हुई मिट्टीमें उन बीजोंको
एकही दिनमें वृक्ष होकर फल जावेगा ॥ ३० ॥ तीनों उत्तरा, रोहिणी,
रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त य
दिव्य दृष्टिवाले मुनीश्वरोंने वृक्ष लगानेके लिये श्रेष्ठ कहे हैं ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबा
दय-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्याय

अथ षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रासादलक्षणम् ।

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान्विनिवेश्य च देवतायत
शोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥ इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोका
षता । देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ।
द्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च ॥ स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमु
देवता ॥ ३ ॥ सरस्सु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु ।
सकह्लारवीचीविमलवारिषु ॥ ४ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चच
राविषु।पर्यन्तानिचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु॥५॥ क्रौं
कलापाश्च कलहंसकलस्वनाः।नद्यस्तोयांशुका यत्रशफरीवृ
॥ ६ ॥ फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गमश्रोणिमण्डलाः। पु
तोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥ वनोपान्तनदीशै

बहुत जल करके युक्त जलाशय बनाकर और उनके तटपर बाग
और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताका मंदिर बनाना चाहिये ॥ १ ॥ य
इष्ट कहाता है और वापी कूप तडागादि बनाना पूर्त कहाता है,
उत्तम लोक मिलते हैं उनके पानेकी इच्छावाला पुरुष देवमंदिर बनाने
और पूर्त्त दोनोंहीका फल मिलाता है ॥ २ ॥ जल और पवनसे युक्त
किसीके बनाये हुए हों, चाहे स्वाभाविक बने रहें तो उन स्थानोंमें
करते हैं ॥३॥ ऐसे सरोवरमें देवता सदा विहार करते हैं कि जिनमें कम
सूर्य किरण दूर किये हों, हंसपक्षियोंके कंधोंसे प्रेरित श्वेत कमल कि
उसमें है. निर्मल जल जिन सरोवरोंमें भरे हैं ॥ ४ ॥ हंस कारंडव
चक्रवाक जिनमें शब्द कर रहे हैं और किनारोंके निचुलवृक्षोंकी
जलके जीव विश्राम करते हैं ॥ ५ ॥ क्रौंच पक्षी जिनका कांचीकल
हंसोंका मधुर शब्द जिनका शब्द है, जल जिनका वस्त्र है, म
मेखला हैं, किनारोंपर फूले वृक्ष जिनके कर्णपूर हैं, जल थलका सं
श्रोणिमण्डल है, पुलिन जिसके उठे स्तन और हंसही हैं, हा
उस नीचेको वहनेवाली नदियोंके समीपवर्ती स्थानोंमें देवता
हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ वनके निकट नदी पर्वत और झरनोंके समीपकी

पान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ।
भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एव
शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥ चतुःषष्टिपदं कार्यं देव
सदा । द्वारं च मध्यमं तत्र समदिक्स्थं प्रशस्यते ॥ १०
विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायाद्यस्तृती
स्तेन तुल्या कटिः सस्मृता ॥ ११ ॥ विस्ताराध भवेद्गर्भो
योऽन्याः समन्ततः । गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमु
॥ १२ ॥ उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः । वि
पादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥ १३ ॥ त्रिपञ्चसप्त
शाखाभिस्तत्प्रशस्यते । अधः शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ
येत् ॥ १४ ॥ शेषं मङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षस्वस्तिकैर्घटैः ।
पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥ द्वारमानाष्ट

देवता रमण करते हैं और उपवनोंसे युक्त नगरोंमेंभी देवता विहार करते है
ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको जैसी भूमि पहले गृह बनानेके लिये कह आये
भूमि उन वर्णोंका देवताके मंदिर बनानेके अर्थ श्रेष्ठ है ॥९॥ देवमंदिरमें सद
चौसठ पदका वास्तु करना चाहिये, उस देवमंदिरमें मध्यम द्वार सम दिशा
हो तो श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ देवमंदिरका जितना विस्तार हो उससे दूनी उसकी
होती है, ऊँचाईकी तिहाई वरावर देवमंदिरकी कटि होती है, सीढीके ऊप
देवगृहका आरंभ होता हैं उसको कटि कहते हैं ॥११॥ विस्तारसे आधा
है, शेष आधे विस्तारमें चारों ओरकी भीत बनती है. गर्भभी चौथाईके
द्वारका विस्तार और द्वारके विस्तारसे द्विगुण द्वारकी ऊँचाई होती है
द्वारकी ऊँचाईकी चौथाईके बराबर शाखा (चौखटका) बाजू) और
(चौखटके ऊपरके काठ) की चौडाई होती है, शाखाकी चौडाईके चौथा
शाखाओंकी मोटाई होती है ॥१३॥ शाखाकी जितनी चौडाई कही उसके
तीन, पांच, सात अथवा नौ शाखा हों तो द्वार श्रेष्ठ होता है; दोनों श
नीचेके चतुर्थांशमें देवताओंके दो प्रतिहारोंकी मूर्ति खोदनी चाहिये॥१४
ओंके शेष तीन चौथाई अंशोंको हंसादि मंगलदायक पक्षी, वेल, स्वस्तिक
कलश, मिथुन (स्त्रीपुरुषका जोडा), पत्र और लतागणोंसे शोभित करे
द्वारकी ऊँचाईके प्रमाणमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बचे वह पिंडिका
स्थापनका पीठ) सहित देवप्रतिमाकी ऊंचाईका प्रमाण होता है. उस पीठ
प्रतिमाकी ऊँचाईके तीन भाग करके दो भागके बराबर ऊँची प्रतिमा

प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका । द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयां
पिण्डिका॥१६॥मेरुमन्दरकैलासविमानच्छन्दनन्दनाः । समु
गरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः ॥ १७ ॥ गुहराजो वृषो हंसः सर्वतो
घटः । सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः शोडषाष्टाश्रयस्तथा ॥ १८ ॥
विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः संज्ञया मया । यथोक्तानुक्रमेणैव
णानि वदाऽम्यतः ॥ १९ ॥ तत्र षडश्रिमेरुर्द्वादशभौमो विचि
हरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ॥ २० ॥ त्रिं
स्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः । कैलासोऽपि शिख
अष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥ २१ ॥ जालगवाक्षकयुक्तो विमानसंज्ञ
सप्तकायामः । नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्ड
॥ २२ ॥ वृत्तः समुद्रनामा पद्मः पद्माकृतिः शयानष्ट
शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥ २३ ॥ गरुडाकृति
गरुडो नन्दीति च षट् चतुष्कविस्तीर्णः । कार्यश्च सप्तभ

भागके समान ऊंची पिंडिका (पीठ) बनाना चाहिये. यह प्रमाण सब प्रस
लिये कहा है ॥ १६ ॥ मेरु, मदर, कैलास, विमानछंद, नंदन समुद्र, पद्म, ग
नंदिवर्धन, कुंजर, ॥ १७ ॥ गुहराज, वृष, हंस, सर्वोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्
षोडशाश्रि और अष्टाश्रि ॥ १८ ॥ यह बीस नाम हमने प्रासादोंके कहे, अब न
क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं ॥ १९ ॥ छः कोणवाला मेरुनामक प्रासाद होता
उसमें बारह भूमिका खंड होता है और अनेक भांतिके भीतरके गवाक्षों
युक्त होता है; उसमें चार द्वार चारों दिशाओंमें होते हैं और उसका वि
बत्तीस हाथ होता है, चौसठ हाथ ऊंचाई होती है ॥ २० ॥ षट्कोण तीस ह
विस्तारवाला, दश भूमिकाओंसे युक्त और शिखरोंवाला मंदिर प्रासाद होता
कैलास प्रासादभी शिखरोंसे युक्त, अट्ठाईस हाथके विस्तारवाला, आठ भूमिक
करके युक्त और षट्कोण होता है ॥२१॥ जाली झरोखोंदार इक्कीस हाथ विस्ता
और आठ भूमिकाओंसे युक्त षट्कोण विमानछंद नामक प्रासाद होता है,नंदन प्रा
षट्कोण, छः भूमिकाओंसे युक्त, बत्तीस हाथ विस्तारवाला और सोलह अंडों
युक्त होता है ॥२२॥ समुद्रनाम प्रासाद गोल होता है, वे दोनों प्रासाद आठ
चौडे होते हैं,इनके एकही शृंग होता है और दोनों एक २ भूमिकासे युक्त होते हैं ॥२
गरुड प्रासाद गरुडके आकारसाही होता है परन्तु उसके पंख और पूंछ नहीं होते.

अंड प्रासादके ऊपर हुआ करते हैं जिनको शिखर या शृंग कहते हैं।

तोऽण्डैश्च विंशत्या ॥ २४ ॥ कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोड-
ः समन्ततो मूलात् । गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवे-
॥ २५ ॥ वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः ।
साकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥ २६ ॥ द्वारैर्युतश्चतु-
शेखरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः
मश्च ॥ २७ ॥ सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणोऽष्टहस्तवि-
। चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाऽण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥ २८ ॥
ऽङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् । सार्धं हस्तत्रयं चैव
विश्वकर्मणा॥२९॥प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः।

ताद् चौवीस हाथ विस्तारके सात भूमियोंसे युक्त चौवीस अंडोंसे भूषित
ाहिये ॥ २४ ॥ कुंजर प्रासाद हाथीके पीठके आकारका होता है और
ारों ओर सोलह हाथ विस्तारवाला होता है, गुहराज प्रासाद गुह (कार्ति-
आकार बनता है और सोलह हाथ इसका विस्तार होता है. इन दोनों
ी वलभी तीन २ चंद्रशालाओंसे युक्त होती है ॥ २५ ॥ वृष नाम प्रासाद
का और एक शृंगदार होता है. इसका विस्तार बारह हाथ है और यह
रसे गोल (वर्तुल) होता है. हंसप्रसाद हंसपक्षीके आकारके चोंच पंख
से युक्त होता है; यहभी बारह हाथ चौडा, एक भूमिका और एक शृंगसे
ा है, घटनामक प्रासाद कलशके आकारका होता है और आठ हाथ उसका
ोता है, यहभी एक भूमिका और एक शृंगयुक्त होता है ॥ २६ ॥ सर्व-
ाक प्रासाद चारों दिशाओंमें चार द्वारोंसे युक्त बहुत शिखरों करके
बहुत और सुन्दर चद्रशालाओंसे भूषित छब्बीस हाथका विस्तारमें चतु-
पांच भूमिकाओंसे युक्त होता है ॥ २७ ॥ सिंह नामक प्रासाद सिंहकी
द्वारा भूषित, बारह कोणोंसे युक्त और आठ हाथ चौडा होता है, शेष चार
क्ष, चतुष्कोण, षोडशास्र और अष्टास्र अपने नामके समान आकारवाले
ह चारों अंजनरूप होते हैं अर्थात् इनके भीतर अंधकार रहता है, बाहरसे
हीं पहुँचता ॥ २८ ॥ मयके मतसे एक भूमिका प्रमाण एक सौ आठ
ता है और विश्वकर्माने एक २ भूमिका प्रमाण साढे तीन हाथ कहा है
विद्वान् कारीगर मय और विश्वकर्माके मतको एकही कहते हैं उनका यह
कि विश्वकर्माने साढे तीन हाथ अर्थात् चौरासी अंगुल भूमिका प्रमाण
कपोतपालिकाको छोडकर कहा है, जो उसमें कपोतपालिकाका प्रमाण

कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥ ३०
लक्षणमिदं कथितं समासाद्गर्गेणयद्विरचितं तदिहा
मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि तत्संस्मृतिं
कृतोऽधिकारः ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रासादलक्षणं
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

वज्रलेपलक्षणम् ।

आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल
शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥१॥ एतैः सलिल
यितव्योऽष्टभागशेषश्च । अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव
योज्यः ॥ २ ॥ श्रीवासकरसगुग्गुलुभल्लातककुन्दुरू
अतसीबिल्वैश्च युतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥ ३ ।
र्म्यवलभीलिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु । सन्तप्तो दातव्यो
तस्थायी ॥४॥ लाक्षाकुन्दुरुगुग्गुलुगृहधूमकपित्थबि

जोड दिया जावे तो वह मयके कहे प्रमाणके बराब
है ॥ ३० ॥ यह प्रासादलक्षण हमने संक्षेपसे कहा. परन्तु
प्रासादलक्षण रचा है वह सब इसमें आ गया है और मनु, वसिष्ठ,
आदि आचार्योंने जो बडे २ प्रासादलक्षणग्रन्थ रचे हैं उनकी
हमने यहां अधिकार किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदे
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षट्पंचाशत्त

तेंदूके कच्चे फल, कैथके कच्चे फल, सेमलके फूल, सल्लकीवृक्षके
वृक्षकी छाल और वच ॥ १ ॥ इन सबको एक द्रोण जलमें क्वाथ
भाग बच जाय तब उतारे ॥ २ ॥ पीछे उसमें सरलवृक्षका गोंद
मिलावे, कुंदरू (देवदारु वृक्षका निर्यास) राल अलसी और बेल
सबको घोटकर डाले यह वज्रलेप नामक कल्पक है ॥३॥ इस वज्रले
हवेली, वलभी शिवलिंग, देवप्रतिमा, भित्ति और कूपोंमें गर्म करके
हजार वर्ष पर्यंत ठहरता है ॥४॥ लाख, कुंदरू, गूगल, घरके धुंएका जा

नागबलाफलतिन्दुकमदनफलमधूकमञ्जिष्ठाः ॥ ५ ॥ सर्ज
लकानि चेति कल्कः कृतो द्वितीयोऽयम् । वज्राख्यः प्रथमगु
मपि तेष्वेव कार्येषु ॥ ६ ॥ गोमहिषाजविषाणैः खररोम्णा
षचर्मगव्यैश्च । निम्बकपित्थरसैः सह वज्रतरो नाम कल्क
॥ ७ ॥ अष्टौ सीसकभागाः कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः
कथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसङ्घातः ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्रलेपो नाम
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अथाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ।

प्रतिमालक्षणम् ।

जालान्तरगे भानौ यदणुतरं दर्शनं रजो याति । तद्वि
माणुं प्रथमं तद्धि प्रमाणानाम् ॥ १ ॥ परमाणुरजो बाला

बेलकी गिरी, नागबला (गंगेरण) के फल, महुयेके फल, मजीठ ॥५॥
आंवले इन सब वस्तुओंके कल्कको भी पहली भांति सिद्ध किये द्रोण
मिलानेसे दूसरा वज्रलेप सिद्ध होता है, इसमें भी वही गुण है जो पहले वज्र
हैं और यहभी प्रासाद आदिके लेपमें हो पहले वज्रलेपकी भांति काम आ
गौ, भैंस और बकरा इन तीनोंके सींग, गर्दभ, महिष और गौ इन तीन
नींबके फल, कैथके फल और नील इन सबसे पहली भांति तीसरा कल्क
है, इसका नाम वज्रतर है. इसमेंभी पहले कहे हुए गुण हैं और पहले कार्य
आता है॥७॥ आठ भाग सीसा, दो भाग कांसा, एक भाग पीतल इन सबक
गलावे यह मयका कहा हुआ योग है और इसका नाम वज्रसंघात है ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
बादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

जालीके बीचसे सूर्यका प्रकाश आता है, उसमें जो अत्यन्तसूक्ष्म रज दे
है; उसको परमाणु जाने, वही सब प्रमाणोंमें पहला है ॥ १ ॥ आठ प

यूका यवोऽङ्गुलं चेति । अष्टगुणानि यथोत्तरमंगुलमेकं
संख्या ॥ २ ॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः ।
ण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥ ३ ॥ स्वैरंगुलप्र
द्वादशविस्तीर्णमायतं च मुखम् । नग्नजिता तु चतुर्दश है
द्राविडं कथितम् ॥ ४ ॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुला
कर्णौ । द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम् ॥५॥
गुलं ललाटं विस्ताराद् द्व्यंगुलात् परे शंखौ । चतुरंगुलौ तु
कर्णौ तु द्व्यंगुलं पृथुलौ ॥६॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रू
सूत्रेण । कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥७॥ चत
वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम् । अधरोऽङ्गुलप्रमा
स्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥ ८ ॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्रं चतुरंगुल

रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्र की लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यू
यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आ
है. एक अंगुल संख्या होती है ॥ २ ॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अ
घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का
है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ।
जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर
भाग करे. वह एक अंगुल होता है. क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्र
एक सौ आठ अंगुल होती है, प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह
चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है
मान द्राविडदेशका है ॥ ४ ॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन औ
अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये हनु दो २
लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥ ५ ॥ आठ अंगुल
माथा होता है, माथेसे दोनों ओर, परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) ।
कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥
कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अं
करना चाहिये, कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका
भाग नेत्र प्रबन्धके समान करना चाहिये ॥ ७ ॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र
कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचका ओष्ठ एक अंगुल
ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥ ८ ॥ गोच्छा आध अंगुल वि
करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और

कार्यम् विपुलं तु सार्धमङ्गुलं मध्यात्तत्र्यङ्गुलं स्यात्तम् ॥
द्व्यंगुलतुल्यौ नासापुटौ च नासा पुटाग्रतो ज्ञेया। स्याद् द्व
लमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥ १० ॥ द्व्यंगुलमितं
कोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा। दृक् तारापञ्चांशो नेत्रवि
ऽङ्गुलं भवति ॥ ११ ॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धांगुलं
लेखाः। भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भ्रुदैर्घ्येणांगुलचतुष्कम् ॥ १२ ॥
तु केशरेखा भ्रूबन्धसमाङ्गुलार्धविस्तीर्णा। नेत्रान्ते करवीरं
न्यसेदंगुलप्रतिमम् ॥ १३। द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशाया
ऽङ्गुलानि शिरः। द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृ
॥ १४ ॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्घ्येण नग्नजित्प्रो
ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥ १५ ॥ कण
दश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन। नाभीमध्यान्मेढ
च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥ १६ ॥ ऊरू चांगुलमानैश्चतुर्युता विं

मुख अर्थात् नृसिंह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा व
नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो
जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल
रखना चाहिये ॥१०॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, दोनों नेत्र दो २ अंगुल,
तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पंचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौड
अंगुलकी करे ॥११॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अन्ततक दश अंगुल
चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौडाई होना भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल औ
भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥ १२ ॥ माथेके ऊपर वे
भ्रूबन्धके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रखवे, नेत्रके अंत
अंगुलका करवीरकर करे जिसको मूषिकाभी कहते हैं ॥१३॥ बत्तीस अंगुल
चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय तो उस
बारह अंगुल दिखलाई पडता है और बीस अंगुल जो पिछली ओर रहते
दीख नहीं पडते ॥१४॥ नग्नजित् आचार्यने केशरेखासहित मुखका विस्तार
अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इक्कीस
कही है ॥१५॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे,
नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही
कहा है ॥ १६ ॥ ऊरु और जंघा चौवीस २ अंगुल लम्बे
चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाली चार अंगुल पादभी चार अंगुल करे॥

स्तथा जंघे । जानुकपिच्छे चतुरंगले च पादौ च त
द्वादश दीर्घौ षट् पृथुतया च पादौ त्रिकायतांगुष्ठौ
रिणाहौ प्रदेशिनी त्र्यंगुलं दीर्घा ॥ १८ ॥ अष्टांशाष्ट
गुलयः क्रमेण कर्तव्याः । सचतुर्थभागमंगुलमुत्
स्योक्तः ॥ १९ ॥ अंगुष्ठनखः कथितश्चतुर्थभागोनमं
शेषनखानामर्धांगुलं क्रमात् किञ्चिदूनं वा ॥ २० ॥
णाहश्चतुर्दशोक्तस्तु विस्तरः पञ्च । मध्ये तु सप्त वि
हाास्त्रिगुणिताः सप्त ॥ २१ ॥ अष्टौ तु जानुमध्ये वैपु
तु परिणाहः। विपुलौचतुर्दशोरू मध्ये द्विगुणश्च तत्प
कटिरष्टादश विपुला चत्वारिंशच्चतुर्युता परिधौ
नाभिर्वेधेन तथा प्रमाणेन ॥ २३ ॥ चत्वारिंशद् द्वि
मध्येन मध्यपरिणाहः । स्तनयोः षोडश चान्तरमूर्ध्व
लिके ॥२४॥ कार्याविष्टावंसौ द्वादश बाहू तथा प्रबाहू च

बारह अंगुल लम्बे और छः अंगुल चौडे पांव बनाने चाहिये, दोनों
तीन अंगुल लम्बे बनावे और प्रदेशिनी (अंगुष्ठके समीपकी अंगुल
लम्बी रक्खे ॥१८॥ शेष तीन अंगुली प्रदेशिनीसे अष्टांश अष्टांश क
अनुसार बनावे, अंगुष्ठकी ऊँचाई सवा अंगुल कही है, इसी हिसा
लियोंकी ऊँचाई जाने॥१९॥ प्रतिमाका लक्षण जाननेवालोंने अंगूठेके
पौन अंगुल कही है और शेष अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई आध
अथवा क्रमसे किंचित् २ न्यून करता जाय जिसमें अंगुली और न
॥२०॥जंघाके अग्रभागकी विशालता चौदह अंगुल और विस्तार प
है, जंघाके मध्यभागका विस्तार सात अंगुल और विशालता इक्कीस
है ॥२१॥ जानुके मध्यका विस्तार आठ अंगुल और विशालता
होती है, ऊरु मध्यभागमें चौदह अँगुल विस्तीर्ण होते हैं और
उनकी परिधी होती है ॥२२॥ कटिका विस्तार अठारह अंगुल और
चवालीस अंगुल होती है, नाभिका विस्तार और वेध (गहराई) एक
है ॥२३॥ नाभिको बीचमें लेकर मध्यभागका परिणाह बयालीस अं
दोनों स्तनोंका अंतर सोलह अंगुल और स्तनोंके ऊपर तिरछे छः छः
होते हैं ॥ २४ ॥ कंधोंकी लम्बाई गरदनसे लेकर आठ अंगुल रखने
व १६ २ अंगुल लम्बे बाहु और प्रबाहु करने ठीक हैं, बाहुका विस्त

विस्तीर्णा प्रतिबाहु त्वंगुलचतुष्कम् ॥ २५ ॥ षोडश बाहु
परिणाहाद्द्वादशाग्रहस्ते च । विस्तारेण करतलं षडंगुलं
दैर्घ्येण ॥ २६ ॥ पञ्चांगुलानि मध्या प्रदेशिनी मध्यपर्वदलही
अनया तुल्या चानामिका कनिष्ठा तु पर्वोना ॥ २७ ॥ पर्वद्व
गुष्ठः शेषांगुलयस्त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः । नखपरिमाणं कार्यं सर्व
पर्वणोऽर्धेन ॥ २८ ॥ देशानुरूपभूषणवेषालङ्कारमूर्तिभिः का
प्रतिमा लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति ॥ २९ ॥ दशर
नयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम् । द्वादशहान्या शे
प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः ॥ ३० ॥ कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतु
द्विभुज एव वा विष्णुः । श्रीवत्साङ्कितवक्षाः कौस्तुभमणि
तोरस्कः ॥३१॥ अतसीकुसुमश्यामः पीताम्बरनिवसनः प्रसन्नमु

और प्रबाहुका चार अंगुल रखना चाहिये ॥ २५ ॥ बाहुके मूलमें सोलह
अग्रहस्तमें अर्थात् प्रकोष्ठके समीप बारह अंगुल परिणाह रखना चाहिये
हाथेलीकी चौडाई छः अंगुल और लम्बाई सात अंगुल रखनी चाहिये ॥
अंगूठेके समीपकी अंगुली प्रदेशिनी, उसके आगेकी मध्यमा, उसके आगे
मिका और अनामिकाके आगेकी अंगुली कनिष्ठा कहाती है और एक २ अं
तीन तीन पौरुवे होते हैं, मध्यमा पांच अंगुल लम्बी करे, मध्यमाके बिचले
वेका आधा घटा देवे तो प्रदेशिनीकी लम्बाई होती है और प्रदेशिनीके तु
अनामिका होती है, अनामिकामें एक पौरुवा घटानेसे कनिष्ठाकी लम्बाई हो
॥ ७ अंगूठेके दो पौरुवे और शेष चार अंगुलियोंके तीन २ पौरुवे करने
और सब अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई अपने २ पर्वके अर्धके तुल्य करे ॥
अपने २ देशके अनुसार प्रतिमाके भूषण, वेष, अलंकार (शृंगार) और
बनावे, लक्षणयुक्त प्रतिमामें देवताका सान्निध्य होता है, इसीसे वह
वालेकी सब प्रकारसे वृद्धि करती है ॥ २९ ॥ दशरथके
श्रीरामचंद्रकी और विरोचनके पुत्र बलिकी प्रतिमा एक सौ बीस
लम्बी बनावे और सब प्रतिमा एक सौ आठ अंगुल ऊंची उत्तम छियानवें
लम्बी मध्यम, चौरासी अंगुल लम्बी प्रतिमा निकृष्ट होती है, विष्णु भगव
प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज अथवा द्विभुज बनावे, श्रीवत्सनामक चिह्नसे
कौस्तुभमणिसे प्रतिमाके वक्षःस्थलको शोभायमान करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥ अ
पुष्पके समान प्रतिमाका रंग करे, पीत वस्त्र पहिरावे, प्रतिमा प्रसन्नमुख,
किरीट पहने हो और प्रतिमाके दाहिने तीन हाथमें खड्ग, गदा, बाण धारण

कुण्डलकिरीटधारी पीनगलोरः स्थलांसभुजः ॥३२॥ खड्गग
पाणिर्दक्षिणतः शांतिदश्चतुर्थकरः । वामकरेषु च कार्मुकखेटच
शंखश्च ॥ ३३ ॥ अथ च चतुर्भुजमिच्छति शान्तिद एको
धरश्चान्यः । दक्षिणपार्श्वे ह्येवं वामे शंखश्च चक्रञ्च ॥
द्विभुजस्य तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तोऽपरश्च शंखधरः।एवं
प्रतिमा कर्तव्या भूतिमिच्छद्भिः॥३५॥बलदेवो हलपाणिर्मद
लोचनश्च कर्तव्यः । बिभ्रत् कुण्डलमेकं शंखेन्दुमृणालग
॥३६॥एकानंशा कार्या देवी बलदेवकृष्णयोर्मध्ये । कटि
तवामकरा सरोजमितरेण चोद्वहन्ती ॥ ३७ ॥ कार्या च
या वामकराभ्यां सपुस्तकं कमलम् । द्वाभ्यां दक्षि
वरमर्थिष्वक्षसूत्रं च ॥ ३८ ॥ वामेष्वष्टभुजायाः कमण्ड
पमम्बुजं शास्त्रम् । वरशरदर्पणयुक्ताः सव्यभुजाः साक्षर
॥ ३९ ॥ साम्बश्च गदाहस्तः प्रद्युम्नश्चापभृत् सुरूपश्च । अ

और चौथा हाथ शान्तिको देनेवाला अर्थात् अभयमुद्रासे युक्त बनावे, बांई
चार हाथोंमें धनुष, ढाल, चक्र और शंख धारण करावे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥
मूर्ति बनाना चाहे तो दक्षिण तरफसे एक हाथमें शान्ति (वर) देनेके आ
करे और दूसरेमें गदा धारण, करावे बायें तरफके नीचेमें शंख और दूसरेमें
॥ ३४ ॥ द्विभुज मूर्तिका दक्षिण हाथ शांतिकर करे और वाम हस्तमें शंख
करावे, ऐश्वर्यकी चाहनेवाले पुरुष इस भांति विष्णुप्रतिमा बनावें ॥ ३५ ॥
जीकी प्रतिमाके हाथमें हल धारण करावे और मद करके घूर्णित नेत्र प्र
बनावे, कानमें कुंडल धारण करावे, प्रतिमाका वर्ण शंख, चन्द्रमा
मृणाल (कमलकी जड) तुल्य श्वेत करे ॥ ३६ ॥ बलदेव और श्रीकृ
प्रतिमाके बीच एक नंदा देवीकी प्रतिमा बनावे, जिसमें अपना बांया
कटिपर रक्खा हो और दाहिने हाथमें कमल धारण कर रक्खा हो ॥
चतुर्भुज मूर्ति एकानंशाकी बनावे तो दोनों वामहस्तोंमें पुस्तक और
दोनों दाहिने हाथोंमें अर्थियोंको वर और माला धारण करावे ॥ ३८ ॥
नंशाकी अष्टभुज मूर्तिके बांये चार हाथमें कमंडलु, धनुष, कमल और
दाहिने चार हाथोंमें वरमुद्रा, बाण, दर्पण और अक्षसूत्र धारण
॥ ३९ ॥ साम्बकी प्रतिमाको गदा और प्रद्युम्नकी प्रतिमाको धनुष
बाण धारण करावे, यह दोनों प्रतिमा द्विभुज और सुन्दर रूपसे युक्त बना

ौ च कार्ये खेटकनिस्त्रिंशधारिण्यौ ॥ ४० ॥ ब्रह्मा कमण्डलु-
चतुर्मुखः पङ्कजासनस्थश्च । स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो
केतुश्च ॥ ४१ ॥ शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपा-
मू । तिर्यग्ललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥ ४२ ॥
ोः शिरसीन्दुकला वृषध्वजोऽक्षि च तृतीयमप्यूर्ध्वम् । शूलं
: पिनाकं वामार्धं वा गिरिसुतार्धम् ॥ ४३ ॥ पद्माङ्कितकरच-
प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च । पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो
बुद्धः ॥ ४४ ॥ आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमू-
च । दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः ॥ ४५ ॥
ाललाटजंघोरुगण्डवक्षांसि चोन्नतानि रवेः । कुर्यादुदीच्यवेषं
पादादुरो यावत् ॥ ४६ बिभ्राणः स्वकररुहे पाणिभ्यां पङ्कजे

और प्रद्युम्नकी स्त्रियोंकी प्रतिमा खड्ग (ढाल) धारण किये बनावे ॥४०॥
की मूर्तिके एक हाथमें कमंडलु धारण करावे. चार मुख बनावे और कमल-
आसन पर बैठी प्रतिमा बनावे. कार्तिकेयकी प्रतिमा बालकरूप शक्ति (बर्छी)
लिये और मयूरयुक्त ध्वजा धारण किये बनावे ॥४१॥ इन्द्रके हाथी ऐरावतकी
ा शुक्लवर्ण और चार दन्तों करके युक्त बनावे, इन्द्रकी प्रतिमाके हाथमें वज्र
ा करावे और ललाटके बीच स्थित तिरछा तीसरा नेत्र बनावे वह उस प्रति-
चिह्न है ॥४२॥ शिवजीकी प्रतिमाके मस्तकपर चन्द्रकला धारण करावे, ध्वजमें
ा चिह्न करे, ललाटमें खडा तीसरा नेत्र बनावे, एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे
ं पिनाक नामक धनुष धारण करावे अथवा, शिवजीकी प्रतिमाके वाम अर्ध-
में पार्वतीका वाम अर्धभाग बनावे ॥४३॥ बुद्धभगवान्की प्रतिमाके हाथ, पैर
रेखाओंसे चिह्नित करे, प्रतिमा प्रसन्न हो, केश नीचे तक झुके हों, और ऐसी
तिमा होय मानो पद्मासनके ऊपर बैठे जगतके साक्षात् पिता हैं ॥४४॥ जानु-
लम्बे भुजों करके युक्त, श्रीवत्सचिह्नसे शोभित, शान्तस्वरूप, दिगम्बर, तरुण
र उत्तम रूप करके युक्त अर्हतदेव (जिन) की प्रतिमा बनावे ॥ ४५ ॥ सूर्यकी
ाके नासिका, ललाट, जंघा, ऊरु, कपोल और उरःस्थल ऊंचे बनावे. उत्तर
ाके रहनेवाले मनुष्योंका वेष सूर्यकी प्रतिमाका बनावे, पैरोंसे लेकर छातीतक
ा चोलकसे गुप्त रहे ॥ ४६ ॥ दोनों भुजाओंमें नखों सहित दो कमल धारण
वे, मुकुट पहिरावे, मुखको कुंडलोंसे संयुक्त करे, लम्बा हार गलेमें पहिरावे
विहंग अर्थात् सारसनकी कटिमें वेष्टित करे ॥४७॥ कमलके उदरकी कांतिके

मुकुटधारी । कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारो विहङ्ग
कमलोदरद्युतिमुखः कंचुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः । रत्नो
मण्डलश्च कर्तुः शुभकरोऽर्कः ॥ ४८ ॥ सौम्या तु
वसुदा हस्तद्वयेच्छ्रिता प्रतिमा । क्षेमसुभिक्षाय भवेत्
प्रमाणा या ॥ ४९ ॥ नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गा
कर्तुः । शातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायाम् ॥ ५
तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः । वामावनता
णविनता हिनस्त्यायुः ॥ ५१ ॥ अन्धत्वमूर्ध्वदृष्ट
चिन्तामधोमुखी दृष्टिः । सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भ
मम् ॥ ५२ ॥ लिङ्गस्य वृत्तपरिधिं दैर्घ्येणासूत्र्य
विभजेत् । मूले तच्चतुरस्रं मध्ये त्वष्टास्रि वृत्तमतः
चतुरस्रमवनिखाते मध्यं कार्यन्तु पिण्डिकाश्वभ्रे
च्छ्रायेण समा समन्ततः पिण्डका श्वभ्रात् ।

तुल्य मुखकी कांति बनावे, कंचुक करके प्रतिमा गुप्त रहे, मन्दहास
मुख प्रसन्न दीखता हो, रत्नोंसे देदीप्यमान है कान्तिसमूह जिसकी
प्रतिमा बनानेवालोंको शुभ करती है ॥ ४८ ॥ एक हाथ ऊँची सूर्यकी
होती है, दो हाथ ऊँची धन देती है, तीन हाथ ऊँची क्षेम और चार
सुभिक्ष करती है ॥४९॥ अधिक अंगवाली प्रतिमा राजासे भय करती
प्रतिमा बनानेवालेको रोगी रखती है, कृश उदरवाली क्षुधासे भय क
अंगवालीके बनानेसे धनका नाश होता है ॥ ५० ॥ क्षतयुक्त प्रतिमा
शस्त्रसे मृत्यु कहना चाहिये. बांई ओर झुकी हुई प्रतिमा बनानेवालेकी
दाहिनी ओर झुकी प्रतिमा आयुषका नाश करती है ॥ ५१ ॥ प्रतिमा
रको हो तो बनानेवाला अंधा हो जाय और सूर्यकी प्रतिमाकी दृष्टि न
बनानेवालेको चिन्ता हो. यह सूर्यकी प्रतिमाका शुभ अशुभ फल कहा,
फल और प्रतिमाओंकाभी माने ॥५२॥ लिंगकी वृत्तरूप परिधिको ल
नाप कर उस सूत्रके तीन भाग करे और उन भागोंके तुल्य लिंगकेभ
कर लेवे, पीछे लिंगके बीचले तृतीयांशको अष्टास्र और ऊपरके तृती
बनावे ॥५३॥ लिंगके चतुरस्र भागको भूमिमें गाडे, मध्यके अष्टास्रभाग
(जलहरी) के गढेमें रक्खे, शेष वर्तुल तीसरा भाग ऊपर रक्खे, लिं
हुए उस वर्तुल भागकी ऊँचाईके तुल्य गढेसे चारों ओर पिंडिका बना

कृशदीर्घं देशघ्नं पार्श्वविहीनं पुरस्य नाशाय । यस्य क्षतं भ
स्तके विनाशाय तल्लिङ्गम् ॥ ५५ ॥ मातृगणः कर्तव्यः स्वन
वानुरूपकृतचिह्नः । रेवन्तोऽश्वारूढो मृगयाक्रीडादिपरिवारः ॥
दण्डी यमो महिषगो हंसारूढश्च पाशभृद्वरुणः । नरवाहनः
वामकिरीटी बृहत्कुक्षिः ॥ ५७ ॥ प्रमथाधिपो गजमुखः प्र
जठरः कुठारधारी स्यात् । एकविषाणो बिभ्रन्मूलककन्दं सु
दलकन्दम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं०प्रतिमालक्षणं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्या

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

वनप्रवेशः ।

कर्तुरनुकूलदिवसे दैवज्ञविशोधिते शुभनिमित्ते । मङ्गलः
प्रास्थानिकैश्च वनसम्प्रवेशः स्यात् ॥ १ ॥ पितृवनमार्गसुरा

पतला और लंबा शिवलिंग देशका नाश करता है, दोनों ओरसे हीन नगरक
करे, जिस लिंगके मस्तकपर क्षत हो वह लिंग स्वामीका नाश करता है ॥
अपने नाम देवताके तुल्य किये हैं चिह्न जिनके ऐसे मातृगण करने चाहि
ब्राह्मीका रूप ब्रह्माके तुल्य, किये इन्द्राणीका इन्द्रके तुल्य इत्यादि औरभी
परन्तु इनके स्तन आदि अंगभी बनावे जिससे स्त्रीरूपभी शोभित हो, रेवंत
एक पुत्र) की प्रतिमा घोडेपर चढी बनावे और मृगया (आखेट)
परिकर जिसका ऐसा बनावे ॥ ५६ ॥ यमकी प्रतिमाके हाथमें दंड धारण
और महिषपर चढी प्रतिमा बनावे, हंसपर चढी और पाश धारण किये
प्रतिमा बनावे, मनुष्यपर सवार हुई वामभागमें मुकुट धारण किये और ब
वाली कुबेरकी प्रतिमा बनावे ॥ ५७ ॥ गणपतिकी प्रतिमाको हाथीका
लम्बा पेट बनावे, हाथमें फरशा धारण करावे, एक दन्त प्रतिमा बनावे,
और नीलदलकंद धारण किये गणपतिकी प्रतिमा बनावे ॥ ५८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

प्रतिमा बनानेवालेको अनुकूल दिन हो, नक्षत्र अच्छा हो, उस दिन ज्य
बताये शुभ मुहूर्तमें यात्राके समय कहे हुए मंगल और शकुन देखकर
बनानेवाला काठके लिये वनमें प्रवेश करे ॥ १ ॥ श्मशानके मार्ग, देवालय

श्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः । चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाः
सिक्ताश्च ॥ २ ॥ कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमा
रुत्रपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥
वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । ३
गत्वा कुर्यात् पूजां सबलिपुष्पाम् ॥ ४ ॥ सुरदारुच
धूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् । क्षत्रस्याऽरिष्टाश्वत्थख
विवृद्धिकराः ॥ ५ ॥ वैश्यानां जीवकखदिरसिन्धुकस्
शुभफलदाः । तिन्दुककेसरसर्जाऽर्जुनाम्रशालाश्च शूद्रा
लिङ्गं वा प्रतिमा वा द्रुमवत् स्थाप्या यथादिशं यस्मात
च्चिह्नयितव्या दिशो द्रुमस्योर्ध्वमथवाऽधः ॥७॥ परमान्नमो
धिपललोल्लोपिकाभिर्भक्ष्यैः । मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं
॥८॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरगणविनायकाद्यानाम

बाग, तपस्वियोंके आश्रम, चैत्य और नदियोंके सङ्गमस्थानमें उत्प
घडोंके जलसे सिंचे हुए वृक्ष, कुबडे वृक्ष एक वृक्षके सहारेसे उप
बेलोंसे पीडित वृक्ष, बिजलीके मारे वृक्ष, पवन करके तोडे हुए वृक्ष
तोडे हुए, सूखे, अग्निसे जले हुए वृक्ष और मधुनिलय अर्थात् जिन
छत्ता लगा हो ॥ २ ॥ ३ ॥ ऐसे वृक्ष त्यागने चाहिये, इनके का
बनानेमें अशुभ होता है, जिन वृक्षोंके पत्ते, फूल, फल स्निग्ध हों वे वृक्ष
हैं. वनमें इस भांति शुभ वृक्ष देखकर उसके समीप जाय बलि और
उस वृक्षकी पुजा करे ॥ ४ ॥ देवदारु चन्दन शमी और महुआ, यह
णोंके लिये शुभ हैं अर्थात् ब्राह्मण इनके काठकी देवप्रतिमा बनावे ।
खैर और बेल यह क्षत्रियोंको वृद्धि करनेवाले वृक्ष हैं ॥ ५ ॥ जीवक,
और स्यन्दन यह वृक्ष वैश्योंको शुभ फल देते हैं. तेंदू नागकेशर, स
और साल यह शूद्रोंके लिये शुभदायक हैं ॥ ६ ॥ लिंग अथवा
वृक्षकी दिशाओंके अनुसार स्थापित करे, इसी भांति वृक्षके ऊपरके भ
मके पद बनाने चाहिये, इस कारण काटनेसे पहले वृक्षमें चारों
ऊर्ध्वभाग अथवा अधोभागके चिह्न कर देने उचित हैं ॥ ७ ॥ खीर, ल
उल्लोपिका (एक प्रकारका भोजनपदार्थ) आदि भक्ष्य, मद्य, पुष्प,
गन्धसे वृक्षकी पुजा करे ॥८॥ देवता, पितर, पिशाच, राक्षस, नाग, असु

रात्रौ पूजां वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात्॥११॥ अर्चार्थममुकस्य त्वं
परिकल्पितः । नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्संप्रगृह्यताम् ॥
यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयु
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः
वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृ
मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण प्रदक्षिणं शेषमतोऽभिहन्यात् ॥
पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथवोदक् पतेद्यदा वृद्धिकरस्तथा स्यात् ।
यकोणात् क्रमशोऽग्निदाहः क्षुद्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥ १
यन्नोक्तमस्मिन्वनसंप्रवेशे निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः । इन्
वास्तुनि च प्रदिष्टाः पूर्वं मया तेऽत्र तथैव योज्याः ॥१४॥

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वनसंप्रवेशो नामै-
कोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

विनायकादिकी रात्रिके समय पूजा करके वृक्षको स्पर्श करके यह मन्त्र पढे
हे वृक्ष ! तुम अमुक देवताकी पूजाके लिये कल्पित हुए तुमको नमस्का
पूजाको विधिविधानसे ग्रहण करो.इस वृक्षपर जो प्राणी वास करते हैं, वे
पूजाको ग्रहण करके और कहीं वास कल्पित करें आज वह क्षमा करें लि
स्कार करता हूँ. 'अमुकस्य' के स्थानमें षष्ठ्यंत देवताका नाम लगा ले ॥१
प्रभातके समय वृक्षको जलसे सींच कुठारको शहत और घीसे चुपडे और
कुठारसे ईशानकोणमें पहले वृक्षको काटे पीछे प्रदक्षिण क्रमसे शेष वृक्षको
॥१२॥ काटा हुआ वृक्ष जो पूर्व ईशानकोण अथवा उत्तरदिशामें गिरे तो वृ
नेवाला होता है; अग्निकोण आदि पांच दिशाओंमें गिरे तो क्रमसे अग्नि
और घोडोंका नाश यह फल होते हैं ॥ १३ ॥ इस वनप्रवेशाध्यायमें जो वृ
कहा अर्थात् वृक्षके निपात, विच्छेदन. वृक्षगर्भ आदिके शुभ अशुभ फल
वह सब पहले इन्द्रध्वजाध्याय और वास्तुविद्याध्यायमें हम कह आये हैं, उ
यहांभी उनको समझना चाहिये अर्थात् वैसाही शुभ अशुभ फल यहांभी ज

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा-
बादवास्तव्य- पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकाया-
मेकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः ।

प्रतिमाप्रतिष्ठापनम् ।

दिशि सौम्यायां कुर्यादधिवासनमण्डपं बुधः प्रा
चतुष्टययुतं शस्तद्रुमपल्लवच्छन्नम् ॥ १ ॥ पूर्वे भागे
पताकाश्च मण्डपस्योक्ताः । आग्नेय्यां दिशि रिक्ताः कृ
ष्यनैर्ऋतयोः ॥ २ ॥ श्वेता दिश्यपरस्यां वायव्याया
एव । चित्राश्चोत्तरपार्श्वे पीताः पूर्वोत्तरे कार्याः ॥ ३ ॥
लजयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा । लोकाहित
सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥ ४ ॥ रजतमयी कीर्तिकरं
करोति ताम्रमयी । भूलाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाः
॥ ५ ॥ शंकूपहता प्रतिमा प्रधानपुरुषं कुलं च घातय
पहता रोगानुपद्रवांश्चाक्षयान् कुरुते ॥ ६ ॥ मण्
ण्डिलमुपलिप्यास्तीर्य सिकतयाऽथ कुशैः ।

प्रतिष्ठा करनेवाला विद्वान् पूर्वदिशामें अधिवासन नामक प्रतिमाव
नेको मंडप बनावे,वह चारों दिशाओंमें चार तोरणोंसे युक्त हो और
पत्रोंसे ढका हो ॥ १ ॥ उस मंडपकी पूर्वदिशामें पुष्पमाला और
र्णकी लगावे, अग्निकोणमें लाल रंगकी, दक्षिण और नैर्ऋतकोणमें
पश्चिममें श्वेत, वायव्यकोणमें पांडुर, उत्तरमें चित्रवर्ण और मंडपः
शोभाके लिये पीले रंगकी पुष्पमाला और पताका लगानी उ
काठकी और मिट्टीकी देवप्रतिमा आयुष, लक्ष्मी, बल और जय दे
बनाई देवप्रतिमा लोगोंका हित करती है, सुवर्णकी प्रतिमा शरीरपु
चांदीकी कीर्ति करती है, तांबेकी संतानकी वृद्धि करती है. शिला
णकी बनी प्रतिमा अथवा शिवलिंग बहुत भूमिका लाभ क
वह प्रतिमा जिसके किसी अंगमें कील जैसा खडा रह जाय वह
पुरुषका और वंशका नाश करती है और जिस प्रतिमामें गढा
रोग और अनेक प्रकारके उपद्रव करती है ॥ ६ ॥ अधिवासन
स्थंडिल बनाय उसको गोबर आदिसे लिपे, उसके ऊपर बालू रेत
ऊपर कुश बिछाय प्रतिमाको उसके ऊपर सुला दे प्रतिमाका शिर भद्र

ीपधानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥ प्लक्षाश्वत्थोदुम्बरशिरीष-
म्भवैः कषायजलैः । मङ्गलसंज्ञिताभिः सर्वौषधिभिः ॥ ८ ॥
वृषभोद्धृतपर्वतवल्मीकसरित्समागमतटेषु । पद्मसरस्सु च मृ-
सपञ्चगव्यैश्च तीर्थजलैः ॥ ९ ॥ पूर्वशिरस्कां स्नातां सुवर्ण-
म्बुभिश्च ससुगन्धैः । नानातूर्यनिनादैः पुण्याहैर्वेदनिर्घोषैः
० ॥ ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा मन्त्राः प्राग्दक्षिणेऽग्निलिङ्गाश्च ।
ख्या द्विजमुख्यैः पूजास्ते दक्षिणाभिश्च ॥ ११ ॥ यो देवः सं-
प्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजो जुहुयात् । अग्निनिमित्तानि मया
ानीन्द्रध्वजोच्छ्राये ॥ १२ ॥ धूमाकुलोऽपसव्यो मुहुर्मुहुर्वि-
लिङ्गकृन्न शुभः । होतुः स्मृतिलोपो वा प्रसर्पणं वाशुभं प्रोक्तम्
३ ॥ स्नातामभुक्तवस्त्रां स्वलंकृतां पूजितां कुसुमगन्धैः । प्रति-
स्तास्तीर्णायां शय्यायां स्थापकः कुर्यात् ॥ १४ ॥ सुप्तां सुनृ-

सन) के ऊपर रक्खे और प्रतिमाके पांव उपधान तकियाके ऊपर रक्खे ॥ ७ ॥
, पीपर, गूलर, सिरस और बड इन वृक्षोंके पत्तोंका कषायजल कुशाको
लेकर मंगल नामवाली जया, पुनर्नवा, विष्णुक्रांता आदि औषधी ॥ ८ ॥
और वृषकी उदवाडी मृत्तिका, कमलयुक्त सरोवरोंकी मृत्तिका, पंचगव्य
। तीर्थोंके जल ॥ ९ ॥ सुवर्ण और रत्नयुक्त जल इन सबसे प्रतिमाको स्नान
, उसका शिर पूर्वकी ओर करके स्थापन करे उस समय भांति २ के तुरही
बाजे बजें, पुण्याहवाचन और वेदध्वनि ब्राह्मण करें ॥ १० ॥ उत्तम ब्राह्मण
शामें इन्द्रके मंत्र और अग्निकोणमें अग्निके मंत्र जपें, यजमान उन ब्राह्मणोंकी
ासे पूजा करे ॥ ११ जिस देवताकी प्रतिष्ठा करनी हो उसके मंत्रोंसे
ण अग्निमें हवन करे, अग्निके शुभ अशुभ लक्षण हमने इन्द्रध्वजाध्यायमें कहे
१२ ॥ जो हवनके समय अग्नि धूमसे आकुल हो, उसकी ज्वाला बाईं ओर
। हो, वारंवार शब्द करे और उसमें चिनगारी उडे तो वह शुभ नहीं होता, हवन
वालेकी स्मृतिलुप्त हो जाय (मंत्र आदिका स्मरण न रहे) अथवा उसका
ण हो अर्थात् जहां हवन करने पहले बैठा है वहांसे सरक जाय तो भी अशुभ
१३ ॥ प्रतिमाको स्नान करायें नये वस्त्र धारण करायें, भूषण आदिसे
कृत कर, पुष्प और गन्धसे उसका पूजन कर उत्तम भांतिसे बिछी हुई
ाके ऊपर उस प्रतिमाको प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष स्थापन करे ॥ १४ ॥
हुई उस प्रतिमाका नृत्यगीतसहित जागरणों करके इस प्रकार भलीभांति

स्यगीतैर्जागरणैः सम्यगेवमधिवास्य । दैवज्ञसम्प्रदि
स्थापनं कुर्यात् ॥ १५ ॥ अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रानुलेप
निर्घोषैः । प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन ॥
बलिं प्रभूतं सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च । दत्त्वा
विनिक्षिपेत्पिण्डिकाश्वभ्रे ॥ १७ ॥ स्थापकदैवज्ञद्वि
तीन् विशेषतोऽभ्यर्च्य । कल्याणानां भागी भवती
स्वर्गी ॥ १८ ॥ विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवि
सभस्मद्विजान् मातृणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रा नि
शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां वि
मुपाश्रिताः स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥ १९
सितपक्षे शिशिरगभस्तौ च जीववर्गस्थे । लग्ने स्थि
सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतैः ॥ २० ॥ पापैरुपचयसंस
रितिष्यवायुदेवेषु । विकुजे दिनेऽनुकूले देवान

अधिवासन कर ज्योतिषीके बतलाये हुए मुहूर्तमें उसका स्थापन
उस प्रतिमाको पुष्प, वस्त्र और चन्दनादि अनुलेपनोंसे पूजित
मंडपसे उठाय प्रासादसे प्रादक्षिण हो यत्नपूर्वक गर्भगृहमें ले जावे उ
तूर्य आदि बाजे बजाये जावें ॥ १६ ॥ वहां जाय बहुतसा बलि देक
सभ्य अर्थात् उस सभामें स्थित मनुष्योंका वस्त्र दक्षिणा आदिसे पूज
(पीठ) के गढेमें सोनेका टुकडा डाल उसके ऊपर प्रतिमाका स्था
स्थापक (प्रतिष्ठा करनेवाला), ज्योतिषी, ब्राह्मण, सभ्य (कारीगर
विशेष पूजन करे, इस भांति देवप्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष इस लोकमें
भागी होता है और परलोकमें स्वर्गवास पाता है ॥ १८ ॥ विष्णुकी प्र
(वैष्णव) करें, सूर्यकी प्रतिष्ठा मग (शाकद्वीपके रहनेवाले ब्राह्मण
प्रतिष्ठा भस्म धारण करनेवाले ब्राह्मण करें, ब्राह्मी आदि मातृकाओंक
क्रमें अर्थात् उनके पूजनका विधान जाननेवाले ब्राह्मण करें, ब्रह्माकी
ब्राह्मण करें, सर्वहितकी अर्थात् बुद्धकी प्रतिष्ठा शांत चित्तवाले शाक
करें, जिनकी प्रतिष्ठा नग्न (दिगम्बरक्षपणक) करें, जो मनुष्य
उत्तम भक्त होवें उस देवताकी प्रतिष्ठा आदि सब क्रिया स्वकल्पोक्त
॥ १९ ॥ उत्तरायण हो, शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा बृहस्पतिके षड्वर्गमें स्थि
लग्न और स्थिर नवांश हो, सौम्य ग्रह, पंचम, नवम, लग्न, चतु
दशम स्थानमें हों ॥ २० ॥ पापग्रह तृतीय, षष्ठ दशम और एक
हों , दोनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण

शस्तम् ॥ २१ ॥ सामान्यमिदं समासतो लोकानां हितदं
कृतम् । अधिवासनसंनिवेशने सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिष्ठापनं नाम षष्टितमोऽध्यायः

अथैकषष्टितमोऽध्यायः ।

गोलक्षणम् ।

पराशरः प्राह बृहद्रथाय गोलक्षणं यत्क्रियते ततोऽयम्
समासः शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये ।
सास्राविलरूक्षाक्ष्यो मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः । प्रच
पिटविषाणाः करटाः खरसदृशवर्णाः ॥ २ ॥ दशसप्तचतु
प्रलम्बमुण्डानना विनतपृष्ठाः । ह्रस्वस्थूलग्रीवा यवमध्या
खुराश्च ॥ ३ ॥ श्यावातिदीर्घजिह्वा गुल्फैरतितनुभिरतिबृहद्भि

स्वातीनक्षत्र हों, मंगलके सिवाय और वार हो, प्रतिष्ठा करनेवाला अनुकूल
तो ऐसे समयमें देवताका स्थापन शुभ है ॥ २१ ॥ सर्व देव साधारण प्रतिम
विधान लोगोंको कल्याण देनेवाला जो हमने संक्षेपसे कहा है, सूर्यम
अधिवासन और प्रतिष्ठापनविधान विस्तारपूर्वक अलगही है अथवा सावित्र (सं
में सब देवताओंका अधिवासन और प्रतिष्ठापन अलग २ विस्तारसे कहा

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबा
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

पराशरमुनिने अपने शिष्य बृहद्रथको जो गोलक्षण कहा है, उस ग्रंथा
हम संक्षेप करते हैं. सबही गौ शुभलक्षण होती हैं तो भी शास्त्रसे उनके शु
लक्षण कहते हैं ॥१॥ जिन गौओंकी आंखें आंसुओंसे भरी हों, गदली
रूखी हों वह गौ शुभ नहीं होती, मूषकके समान नेत्रवाली भी शु
जिनके सींग हिलते हों और चपटे हों वह गौ शुभ नहीं. काला और ला
हुआ जिनका रंग हो और गधेके तुल्य जिनका रंग हो, वह गौभी शुभ न
है ॥२॥ जिनके मुखमें दस, सात या चार दांत हों, जिनका मुख लम्
मुंड अर्थात् विना सींगका हो, जिनकी पीठ झुकी हुई हो, जिनकी गर

अतिककुदा कृशदेहा नेष्टा हीनाधिकाङ्ग्यश्च ॥ ४ ॥
स्थूलातिलम्बवृषणः शिराततक्रोडः । स्थूलशिरा
स्थानं मेहते यश्च ॥५॥ मार्जाराक्षः कपिलः करटो
द्विजस्यैव । कृष्णोष्ठतालुजिह्वः श्वशनो यूथस्य घात
स्थूलशकृन्मणिशृङ्गः सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च ।
त्याज्यो यूथविनाशावहो वृषभः ॥ ७ ॥ श्यामक
भस्माऽरुणसन्निभो बिडालाक्षः । विप्राणामपि न
वृषभः परिगृहीतः ॥ ८ ॥ ये चोद्धरन्ति पादान्
जिताः कृशग्रीवाः । काचरनयना हीनाश्च पृष्ठत
सहाः ॥ ९ ॥ मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुस्फिजस्ताम्रत

और मोटी हो, जिनका मध्यभाग जौके तुल्य हो अर्थात् बीचसे
जिनके खुर बहुत फट रहे हों, नाभि श्यामरंगकी और बहुत ल
ढँकने बहुत छोटे अथवा बहुत बडे हों, जिनका थूही बहुत ऊँचा ह
सदा दुबला रहे और जिनका कोई अंग हीन अथवा अधिक हो त
होती है ॥३॥ ॥४॥ पहले कहे हुए लक्षणोंसे युक्त वृष हो तो ऐ
नहीं होता और स्थूल बहुत लम्बे हैं अंडकोश जिसके, शिराओं
क्रोड जिसका, स्थूल शिराओं करके व्याप्त हैं कपोल जिसके, त
मेहन करे अर्थात् जिसके दोनोंनेत्रोंसे आंसू टपके और शिश्नसे
बिडालकेसे जिसके नेत्र हों, जिसका कपिल अथवा करट नीलरक्त
ब्राह्मणकोभी शुभ नहीं होता फिर और वर्णोंकी तो बातही क्या है
तालु, जिह्वा काले रंगके हों और जो वृष श्वसन अर्थात् डरनेवाल
यूथका नाश करता है ॥६॥ जिसका गोबर, मणि (लिंगका अग्र
स्थूल हों, श्वेतवर्णका पेट हो और शरीरका रंग कृष्ण और श्वेत
वृष घरमें उत्पन्न हुआ हो तोभी उसका त्यागही करना चाहिये, बलि
नाश करनेवाला होता है ॥७॥ जिसके शरीरमें काले फूल पड रहे
समान जिसके नेत्र हों ऐसा वृष ग्रहण किया हुआ ब्राह्मणोंकोभी
॥८॥ भारके नीचे जोडा हुआ बैल ऐसे पैर उठावे जैसे कर्दममें गडे
यत्नसे उखाडते हैं. जिनकी ग्रीवा दुर्बल हो, नेत्र काचरे हों, पीठ छो
हो वह बैल भार उठानेमें समर्थ नहीं होते हैं ॥९॥ कोमल मिले हुए औ
जिनके ओष्ठ हों,छोटी स्फिक् (कटिस्थमांसपिंड) हों, तांबेके रंगके ताल

तनुह्रस्वोच्चश्रवणाः सुकुक्षयः स्पष्टजंघाश्च ॥ १० ॥ आताम्
तखुरा व्यूढोरस्का बृहत्ककुदयुक्ताः । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वग्रो
स्ताम्रतनुशृङ्गाः ॥ ११ ॥ तनुभूस्पृग्वालधयो रक्तान्तविल
महोच्छ्वासाः । सिंहस्कन्धास्तन्वल्पकम्बलाः पूजिताः सु
॥ १२ ॥ वामावर्तैर्वामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्तैः । शुभदा
न्त्यनडुहो जंघाभिश्चैणकनिभाभिः॥ १३॥ वैदूर्यमल्लिकाबुद्बुदे
स्थूलनेत्रवर्माणः। पार्ष्णिभिरस्फुटिताभिः शस्ताः सर्वेऽपि भाः
॥ १४ ॥ घ्राणोद्देशे सबलिर्मार्जारमुखः सितश्च दक्षिणतः ।
लोत्पललाक्षाभः सुवालधिर्वाजितुल्यजवः ॥ १५ ॥ लम्बैर्वृ
षोदरश्च संक्षिप्तवंक्षणाक्रोडः । ज्ञेयो भाराध्वसहो जवेऽश्वतु
शस्तफलः ॥ १६ ॥ सितवर्णः पिङ्गाक्षस्ताम्रविषाणेक्षणो महा

छोटे पतले और ऊँचे जिनके कान हों सुन्दर पेट हो, सीधा जंघा हो ॥
तांबेके वर्ण और मिले हुए खुर हों छाती दृढ, हो बडा ककुद (थूहि
स्निग्ध (चिकने) कोमल और तनु (पतले) जिनके त्वचा और रोम हों.
रंगके शरीर और सींग हों ॥ ११ ॥ पतली और भूमिको स्पर्श करनेवाली
पूंछ हो, जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों दीर्घ श्वास लेनेवाले हों, सिंहकेसे
कंधे हो पतला और छोटा जिनका गलकंबल, सुन्दर जिनकी गति हो ऐसे
अच्छे होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके वामभागमें बांई ओर घूमें हुए आवर्त (
और दक्षिणभागमें दाहिनी ओर घूमें हुए आवर्त और जिनकी जंघा मेंढव
ओंके समान हों ऐसे बैल शुभ होते हैं ॥ १३ ॥ वैदूर्यमणिके समान जिन
हों, निवारीपुष्पके समान जिनके नेत्र हों, अर्थात् नेत्रोंके बाहर चारों ओ
रेखा हों, जल बुद्बुदके समान जिनके नेत्र हों, जिनके नेत्र और शरीर स्थ
खुरके पिछले भाग जिनके फूटे हुए न हों सो सब बैल शुभ होते हैं और भ
सकते हैं ॥ १४ ॥ जिस बैलकी नांकमें बलि पडे. बिलावके तुल्य जिस
हो, दाहिना भाग जिसका श्वेत हो, कमल (नीलकमल) या लाखके
जिसकी कांति हो. अच्छी पुंछ हो, गगनमें घोडेकासा वेग हो ॥ १५
वृषण हों, मेंढेकासा पेट हो. वंक्षण (पिछली जंघा और वृषणोंका मध्य
और क्रोड (अगली जंघाओंका मध्यभाग) जिसके संकुचित हों ऐसा
उठानेमें और मार्ग चलनेमें समर्थ होता है, घोडेके बराबर जिसका वेग
बैल शुभही होता है ॥ १६ ॥ जिस बैलका श्वेत वर्ण हो, तांबेके रंग

हसो नाम शुभफलो यूथस्य विवर्द्धनः प्रोक्तः ॥ १७
रुधिराताम्रविषाणो रक्तदृक् ककुद्मी च । कल्माषश्च
मचिरात् कुरुते पतिं लक्ष्म्याः ॥१८॥ यो वा सितैक
ष्ठवर्णश्च सोऽपि शस्तफलः । मिश्रफलोऽपि ग्राह्यो य
प्रशस्तोऽस्ति ॥ १९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गोलक्षणं ना
षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

शुनो लक्षणम्.

पादः पञ्चनखास्त्रयोऽग्रचरणः षड्भिर्नखैर्दक्षिणस्ताः
मृगेश्वरगतिर्जिघ्रन् भुवं याति च । लांगूलं ससटं
कर्णौच लम्बौ मृदू यस्य स्यात्स करोति पोष्टु
श्रियं श्वा गृहे ॥ १ ॥ पादे पादे पञ्च पञ्चाग्र पादे वा

और नेत्र हो, बडा मुख हो उसको हंस कहते हैं वह शुभ होता है
यूथकी वृद्धि करता है ॥ १७ ॥ जिस बैलकी पूंछ भूमिका छूती
रंगके जिसके सींग हों, लाल नेत्र हों, ककुद (थूही) करके युक्त हो
अपने स्वामीको शीघ्रही लक्ष्मीवान् कर देता है ॥ १८ ॥ चाहे जिस
हो परन्तु जिसके चारों पैर श्वेत हों वह शुभही होता है. जो केवल शु
बैल न मिले तो मिश्र फल अर्थात् जिसमें कोई लक्षण शुभ और को
ऐसाही बैल लेवे. परन्तु शुभ लक्षण अधिक होने चाहिये ॥ १९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुराद
पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकषष्टितमोऽध्यायः

जिस कुत्तेके तीन पैरोंमें पांच२ नख हों और आगके दाहिने पांवमें
ओष्ठ और नासिकाका अग्रभाग तांबेके तुल्य लाल रंग हो, सिंहके तु
गति हो और भूमिको सूंघता हुआ चले, जिसकी, पूंछ बहुत बालो
रीछकेसे नेत्र हों, दोनों कान लम्बे और कोमल हों ऐसा कुत्ता अपने
वाले स्वामीके घरमें लक्ष्मीको बढाता है ॥ १ ॥ जिस कुत्तेके तीन
२ नख हों और अगले बांये पैरमें छः नख हों और जिसके

षण्नखा मल्लिकाक्ष्याः। वक्रं पुच्छं पिङ्गला लम्बकर्णी या सा
कुक्कुरी पाति पोष्टुः ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० श्वलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः।

कुक्कुटलक्षणम्.

कुक्कुटस्त्वृजुतनूरुहाऽङ्गुलिस्ताम्रवक्त्रनखचूलिकः सितः
सुस्वरमुषात्यये च यो वृद्धिदः स नृपराष्ट्रवाजिनाम् ॥ १ ॥
ग्रीवो यो वा बदरसदृशो वापि विहगो बृहन्मूर्द्धा वर्णैर्भवति
भिर्यश्च रुचिरः। स शस्तः संग्रामे मधुमधुपवर्णश्च ज
शस्तो योऽतोऽन्यः कृशतनुरवः खञ्जचरणः ॥ २ ॥ कुक्कु
मृदुचारुभाषिणी स्निग्धमूर्तिरुचिराननेक्षणा। सा ददाति
महीक्षितां श्रीयशोविजयवीर्यसम्पदः ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृ० कुक्कुटलक्षणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्याय

मल्लिकापुष्पकीसी श्वेत रेखा हो, पूंछ टेढी हो, पिंगलवर्ण हो और लम्बे क
ऐसी कुतिया अपने पोषण करनेवाले राज्यकी रक्षा करती है ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
स्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रवि० भाषाटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६

जिस कुक्कुट (मुर्गा) के पंख और अंगुली सीधी हों, मुख, नख औ
जिसकी तांबेके समान लाल रंग हो, श्वेत वर्ण हो. रात्रिकी समाप्तिमें अच्छ
बोले ऐसा मुरगा राजाके राज्य और घोडोंकी वृद्धि करता है ॥ १
कुक्कुटकी गरदन जौके आकारके समान, पके हुए बेरके समान जिसक
रंग हो, बडा मस्तक हो, बहुतसे श्वेत, पीत, रक्त, कृष्ण आदि रंगोंसे यु
और सुन्दर हो ऐसा कुक्कुट युद्धमें शुभ होता है. शहतके तुल्य जिस
अथवा भ्रमरके तुल्य जिसका रंग हो वह कुक्कुटभी युद्धमें जय करता है
सिवाय जो और भांतिका कुक्कुट हो वह शुभ नहीं होता, जिसका शर
हो, शब्द मंद हो, पैरसे लंगडा हो वह कुक्कुटभी शुभ नहीं होता ॥ २
मुरगी मृदु और सुन्दर शब्द करे, स्निग्ध शरीरवाली, मुख और नेत्र सु

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

कूर्मलक्षणम् ।

स्फटिकरजतवर्णो नीलराजीविचित्रः कलशसदृशमूर्तिश्चार
श्च कूर्मः। अरुणसमवपुर्वा सर्षपाकारचित्रः सकलनृपमहत्त्वं ग
रस्थः करोति ॥ १ ॥ अञ्जनभृङ्गश्यामतनुर्वा बिन्दुविचित्रोऽ
शरीरः । सर्पशिरा या स्थूलगलो यः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रवि
॥ २ ॥ वैदूर्यत्विट् स्थूलकण्ठस्त्रिकोणो गूढच्छिद्रश्चारुवं
शस्तः । क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मणौ वा कार्यः कूर्मो मंग
नरेन्द्रैः ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मलक्षणं
नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

ऐसी कुक्कुटी राजाओंको चिरकालतक लक्ष्मी, यश, विजय, बल और स
देती है ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६

जो कछुआ स्फटिक अथवा चांदीके तुल्य शुक्ल वर्ण हो और नीली रेखा
चित्रित हो, कलशके समान जिसका आकार हो, सुन्दर जिसका वंश (प
हड्डी) हो अथवा लाल रंगका कछुआ हो. और सरसोंके बिन्दुओंसे चित्रि
ऐसा कूर्म घरमें स्थित हो तो सब राजाओंमें बडाई करता है ॥ १ ॥ अञ्ज
भ्रमरके तुल्य जिस कूर्मका श्याम शरीर हो और बिन्दुओंसे विचित्र हो, स
अंग पूर्ण हों, सर्पके समान जिसका शिर हो और गला स्थूल हो ऐसा
राजाओंका राज्य बढानेके लिये होता है ॥ २ ॥ वैदूर्यमणिके समान जिस क
की कांति हो, कंठ स्थूल हो, त्रिकोण आकार हो, सब छिद्र उसके गुप्त हों
पृष्ठवंश सुन्दर हो ऐसे कूर्मको मंगलके लिये राजा अपना क्रीडावापीमें अ
जलसे भरे बडे मटकेमें रक्खे ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥

अथ पंचषष्टितमोऽध्यायः ।

छागलक्षणम्.

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टदन्तास्ये। धन्याः र
वेश्मनि संत्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥१॥ दक्षिणपार्श्वे मण्डल
शुक्लस्य शुभफलं भवति। ऋष्यनिभकृष्णलोहितवर्णानां श्वे
शुभदम् ॥२॥ स्तनवदवलम्बते यः कण्ठेऽजानां मणिः स वि
एकमणिः शुभफलकृद्धन्यतमा द्वित्रिमणयो ये ॥३॥ मुण्डा
शुभदाः सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च। अर्धासिताः सितार्धा
कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ४ ॥ विचरति यूथस्याग्रे प्रथमं चाम
गाहते योऽजः। स शुभः सितमूर्धा वा मूर्धनि वा कृत्तिका

अब बकरेका शुभ अशुभ लक्षण कहते हैं, जिनके नौ या दश या आ
हों वे छाग शुभ होते हैं और घरमें रखने चाहिये. जिनके सात दांत हों उ
रक्खे कारण कि वे अशुभ होते हैं ॥ १ ॥ श्वेत रंगके छागके दाहिने पार्श्व
रंगका मंडल हो तो शुभ होता है. जिस छागका रंग ऋष्यमृगके तुल्य नील
अथवा लाल हो तो उसके दक्षिण पार्श्वमें श्वेतमंडलभी शुभ होता है ॥
छागोंके गलेमें जो स्तनकी भांति लटकता है उसे मणि कहते हैं. जिस छाग
मणि हो वह शुभ फल करता है और जिसको दो अथवा तीन मणि हों वे
बहुतही शुभ होते हैं ॥३॥ विना सींगके सब छाग शुभ होते हैं, जिनका स
श्वेत हो अथवा सब शरीर कृष्ण हो वे छाग शुभ होते हैं, जो छाग आधे का
आधे श्वेत हों वे शुभ होते हैं, जो छाग आधे कपिल और आधे कृष्ण ह
शुभ होते हैं ॥ ४ ॥ जो छाग अपने यूथके आगे चले और सबसे पहले जल
वह शुभ होता है या जिसका शिर श्वेत हो अथवा जिसके शिरमें कृत्तिका न
भांति टीका हो अर्थात् छः बिन्दु हों वह शुभ होता है ऐसे छागका नाम
है ॥ ५ ॥ जिसके कंठ और शिरमें दूसरे रंगके बिन्दु हों, तिलपिष्टके समान
श्वेत और पीत मिला हुआ जिसका रंग और तांबेके तुल्य जिसके ला
हों वह शुभ होता है. जिसके शरीरका रंग श्वेत हो और चारों पैर काले हों

॥ ५ ॥ सपृषतकण्ठशिरा वा तिलपिष्टनिभश्च ताम्रदृक् शस्
कृष्णचरणः सितो वा कृष्णो वा श्वेतचरणो यः ॥६॥ यः कृ
ण्डः श्वेतो मध्ये कृष्णेन भवति पट्टेन । यो वा चरति सः
मन्दं च स शोभनश्छागः ॥७॥ ऋष्यशिरोरुहपादो यो वा
पाण्डुरोऽपरे नीलः । स भवति शुभकृच्छागः श्लोकश्चाप्यत्र ग
॥ ८ ॥ कुट्टकः कुटिलश्चैव जटिलो वामनस्तथा । ते च
श्रियः पुत्रा नालक्ष्मीके वसन्ति वै ॥ ९ ॥ अथाप्रशस्ताः ख
ल्यनादाः प्रदीप्तपुच्छाः कुनखा विवर्णाः । निकृत्तकर्णा द्विपम
काश्च भवन्ति ये चासितताळुजिह्वाः ॥ १० ॥ वर्णैः प्रशस्तैर्म
भिश्च युक्ता मुण्डाश्च ये ताम्रविलोचनाश्च । ते पूजिता वे
मानवानां सौख्यानि कुर्वन्ति यशः श्रियं च ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० छागलक्षणं नाम
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

शरीर काला हो और चारों पैर श्वेत हों वह छागभी शुभ होता है, ऐसे छ
कुटिल कहते हैं ॥६॥ जिस छागके शरीरका रंग श्वेत हो, काले अंड हों और
भागमें काला पट्टा हो तो अशुभ होता है, जो छाग धीरे २ चरे उसके च
समय शब्द हो वह शुभ होता है. ऐसे छागको जटिल कहते हैं ॥ ७ ॥ ऋष्य
समान नीले जिस छागके शिरके बाल और पांव हों और जो छाग अगले
पांडुर वर्ण हो, पिछले भागमें नीले वर्ण हो वह छाग होता है, ऐसे छागको
कहते हैं, इस अर्थमें गर्गमुनिका श्लोक लिखते हैं ॥ ८ ॥ कुट्टक, कुटिल,
और वामन अर्थात् जिनके पहले लक्षण कहे हैं यह चारों छाग लक्ष्मीके पुत्र है
लक्ष्मीहीन स्थानोंमें नहीं रहते अर्थात् जहां ऐसे छाग हों वहां लक्ष्मीका
होता है ॥ ९ ॥ अब अशुभ छाग कहते हैं. जिनका शब्द गायके शब्दके
हो, जिसकी पूंछ टेढी अथवा बहुत उष्ण हो, बुरे नख हों, शरीरका रंग बुर
कान कटे हों, हाथीकासा मस्तक हो, जिनका तालु और जिह्वा काली हो
छाग अशुभ होते हैं ॥१०॥ जो छाग उत्तम रंग और कंठ मणियों करके युत
विना सींगोंके हों और जिनके नेत्र लाल हों, वे छाग मनुष्योंके घरमें शुभ हं
और सुख, यश और लक्ष्मीको करते हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

अश्वलक्षणम्.

दीर्घग्रीवाक्षिकूटस्त्रिकहृदयपृथुस्ताम्रतात्वोष्ठजिह्वः सूक्ष्मत्वक्के-
ालः सुशफगतिमुखो ह्रस्वकर्णौष्ठपुच्छः । जंघाजानूरुवृत्तः सम-
तदशनश्चारुसंस्थानरूपो वाजी सर्वांगशुद्धो भवति नरपतेः शत्रु-
ाय नित्यम् ॥ १ ॥ अश्रुपातहनुगण्डहृद्गलप्रोथशंखकटिब-
जानुनि । मुष्कनाभिककुदे तथा गुदे सव्यकुक्षिचरणेषु चाशु-
॥ २ ॥ ये प्रपाणगलकर्णसंस्थिताः पृष्ठमध्यनयनोपरि स्थि-
। ओष्ठसक्थिभुजकुक्षिपार्श्वगास्ते ललाटसहिताः सुशोभनाः
३ ॥ तेषां प्रपान एको ललाटकेशेषु च ध्रुवावर्तः । रन्ध्रोपर-
मूर्धनि वक्षसि चेति स्मृतौ द्वौ द्वौ षड्भिर्दन्तैः सिताभैर्भवति

जिस घोडेकी ग्रीवा और अक्षिकूट अर्थात् नेत्रोंका कोश दीर्घ हो, त्रिक
ष्ठभाग) और हृदय विस्तीर्ण हो, तालु, ओष्ठ और जीभ तांबेके तुल्य लाल रंगकी
शरीरकी त्वचा, मस्तकके केश और पूंछके बाल सूक्ष्म हों, शफ (सुम्म) गति
मुख सुन्दर हो, कान, ओष्ठ और पूंछ यह तीन अंग छोटे हों, यहां पुच्छ
करके पूंछके बीचकी हड्डीका ग्रहण होता है. जंघा, जानु और ऊरु जिसके
हों सम(बराबर) और श्वेत दंत हो, जिसका आकार और रूप सुन्दर हो ऐसा
ाहो और वह सर्वांग शुद्ध हो अर्थात् किसी अंगमें कोई अशुभ आवर्त्त न हो वह
ा जिस राजाके हो नित्य उसके शत्रुओंका नाश करता है ॥१॥ अश्रुपात जहां
गिरे, हनु मुख, गंड (कपोल) हृदय, गाल, प्रोथा (नासिका अधोभाग), शंख
पटी कर्णके समीप), कटि, बस्ति (नाभि लिंगका मध्यभाग), जानु, अंडकोश,
भे, ककुदा (बाहुके पृष्ठभागमें कृकाटिकाके समीप) गुदा, दक्षिणकुक्षी और पैर
भौंरियोंका होना अशुभ है ॥२॥ जो भौंरी प्रपान (ऊपरके ओष्ठका तल), कंठ
, पीठका मध्यभाग, नेत्रोंके ऊपर भ्रुवोंके समीप, ओष्ठ, सक्थि (पिछला भाग),
(अगले पैर) वामकुक्षि, पार्श्व और ललाट इन स्थानोंमें हो तो शुभ होता है
॥ घोडेके शरीरमें दश भौंरी अवश्य होती हैं, उनको ध्रुवावर्त्त कहते हैं. उनमें एक
र्त प्रपान (ऊपरके ओष्ठका अधोभाग) में और केशोंके नीचे ललाटमें एक आवर्त
ा है, रंध्र (कुक्षि और नाभिका मध्यभाग), उपरंध्र (रंध्रसे ऊपर), मस्तक और
ी इन चार स्थानोंमें दो दो आवर्त होते हैं. इस भांति यह दश ध्रुवावर्त हैं ॥४॥

हयशिशुस्तैः कषायैर्द्विवर्षः सन्दंशैर्मध्यमान्त्यैः पतितसमुदितं
ब्दपश्चाब्दिकोऽश्वः । सन्दंशानुक्रमेण त्रिकपरिगणिताः कालि
पीतशुक्लाः काचा माक्षीकशंखावटचलनमतो दन्तपातं
विद्धि ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० अश्वलक्षणं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

घोडोंकी दंतपंक्तिमें दो दाढोंके बीचके छः दांत श्वेत वर्ण हों तो एक वर्षका होता है. वेही छः दांत कषायरंग (काला और लाल मिला) के हों तो दो घोडा होता है. दोनों दंतपंक्तियोंमें बीचके समान २ दांत संदंश कहता हैं, स दोनों ओरका एक २ दांत मध्य और मध्योंके दोनों ओरका एक २ दांत कहाता है. संदंश गिरकर फिर जमे हों तो चार वर्षका और अंत्य गिरकर जमे हों तो पांच वर्षका अश्व होता है. संदंशके अनुक्रमसे कालिका आदि करके तीन २ वर्ष बढते हैं. इसका यह तात्पर्य है कि, संदशोंके ऊपर क (काले विन्दु) हो तो छः वर्ष, मध्यमोंके ऊपर कालिका होय तो सात वर्ष अंत्योंके ऊपर कालिका हो तो आठ वर्ष अश्वकी अवस्था जानो. इसी संदंशोंपर पीत विन्दु हों तो नौ वर्ष, मध्योंपर पीत विन्दु हों तो दश, पर अं पीत बिन्दु हो तो ग्यारह वर्ष जानना चाहिये. संदंश आदिके ऊपर शुक्ल विन्दु क्रमानुसार बारह तेरह और चौदह वर्ष जानो. संदंश आदिके ऊपर काचके विन्दु होनेसे पन्द्रह सोलह और सत्रह वर्ष क्रमसे जानो. माक्षीक (शहत) विन्दु होनेसे क्रमपूर्वक अठराह उन्नीस और वीस वर्ष जानो. संदंश आदिके शंखरंगके विन्दु होनेसे इक्कीस, बाईस और तेईस वर्ष क्रमसे जानो, संदंश छिद्र होनेसे क्रमपूर्वक चौवीस पच्चीस और छब्वीस वर्ष जानो, संदंश हिलनेसे क्रमपूर्वक सत्ताईस, अठ्ठाईस और उनतीस वर्ष जानो और संदंश दांतोंके गिरनेसे अर्थात् संदंश गिर जाय तो तीस वर्ष, मध्य गिरजाय तो इ वर्ष और अंत्य गिर जाय तो बत्तीस वर्ष अश्वकी उमर होती है, यह घ परमायुष बत्तीस वर्ष हैं इस लिये बत्तीस वर्षतक अवस्था जाननेके चिह्न लिखे हैं

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय मुरादाब ...बलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः।

हस्तिलक्षणम्।

मध्वाभदन्ता सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धाश्च कृशाः क्ष
गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः ॥१॥ व
कक्षावलयः श्लथाश्च लम्बोदरस्त्वग्बृहती गलश्च। स्थू
कुक्षिः सह पेचकेन सैंही च दृङ्मन्दमतङ्गजस्य ॥ २ ॥ मृ
ह्रस्वाधरवालमेढ्रास्तन्वंघ्रिकण्ठद्विजहस्तकर्णाः। स्थूलेक्षण
तथोक्तचिह्नैः सङ्कीर्णना गा्यगतिमिश्रचिह्नाः ॥३॥ पञ्चोन्नति
मृगस्य दैर्घ्यमष्टौ च हस्ताः परिणाहमानम्। एकद्विवृद्धाव
न्दभद्रौ सङ्कीर्णनागोऽनियतप्रमाणः ॥ ४ ॥ भद्रस्य वर्णो

चार प्रकारके हाथी होते हैं, भद्र, मंद, मृग और संकीर्ण, अब क्रमसे
लक्षण कहते हैं, जिन हाथियोंके दांत शहतके रंग हों, शरीरके सब अंग भ
विभक्त हों, न बहुत मोटा और न निर्बल जिनका देह हो, क्षम अर्थात् कार्य
हो, तुल्य अंगोंसे युक्त हो, धनुषके आकार जिनका पृष्ठवंश (पीठकी ह
और सूकरके तुल्य जिनके जघन (कटिभाग) अर्थात् तुल्य हो वह हा
जातिके होते हैं ॥ १ ॥ मंदजातिके हाथीकी छाती और मध्यभागकी व
होती है, पेट लम्बा होता है, चर्म और कंठ स्थूल होता है, कुक्षि औ
(पुच्छमूल) भी स्थूल होता है और सिंहके समान दृष्टि होती है, यह
लक्षण है ॥ २ ॥ मृगजातिके हाथियोंके नीचेका ओष्ठ पुच्छके वाल अ
(लिंग) यह अंग छोटे होते हैं, पैर, कंठ, दांत, शुंड और कर्णभी छोटे
और नेत्र बडे होते हैं, ये मृगके लक्षण हैं. इन तीन जातिके हाथियोंके
कहे वे सब चिह्न जिन हाथियोंमें मिलते हों उनको संकीर्ण जातिके हाथी
चाहिये ॥ ३ ॥ मृगजातिके हाथीकी ऊँचाई पांच हाथ, पूंछ मूलसे लेकर
कुंभतक लम्बाई सात हाथ और मध्यभागकी मोटाई आठ हाथ होती है,
बढानेसे मंदका और दो हाथ बढानेसे भद्रका प्रमाण होता है और नौ
णाह मंदजातिके हाथीका होता है और सात हाथ ऊँचाई नौ हाथ लम
दश हाथ परिणाह भद्रजातिके हाथीका होता है, संकीर्ण जातिके हाथियों
आदिका कुछ नियम नहीं है वे अनियत प्रमाणवाले होते हैं ॥ ४ ॥ भ
हाथीका मद हरे रंगका, मंदजातिके हाथीका मद हलदीके समान पीले रं

मदस्य मन्दस्य हारिद्रकसन्निकाशः । कृष्णो मदः
मृगस्य सङ्कीर्णनागस्य मदो विमिश्रः ॥ ५ ॥ ताम्रोष्ठ
कलविङ्कनेत्राः स्निग्धोन्नताग्रदशनाः पृथुलायतास्याः । च
तनिगूढनिमग्नवंशास्तन्वेकरोमजितकूर्मसमानकुम्भाः ॥
स्तीर्णकर्णहनुनाभिललाटगुह्याः कूर्मोन्नतद्विनवविंशतिभि
रेखात्रयोपचितवृत्तकराः सुवाला धन्याः सुगन्धिमदपुष्क
श्च ॥ ७ ॥ दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः सजलाम्भोदनिनाद
बृहदायतवृत्तकन्धरा धन्या भूमिपतेमतङ्गजाः ॥ ८ ॥ ि
धिकहीननखाङ्गान् कुब्जवामनकमेषविषाणान् । दृश्यकं
ष्करहीनान् श्यावनीलशबलाऽसिततालून् ॥ ९ ॥ स्वल्प
त्कुणषण्ढान् हस्तिनीं च गजलक्षणयुक्ताम् । गर्भिणीं
परदेशं प्रापयेदतिविरूपफलास्ते ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० गजलक्षणं नाम सप्तषष्टितमोऽध्य

मृगजातिके हाथीका मद काले रंगका होता है, संकीर्ण जातिके हाथीक
वर्ण होता है अर्थात् उनमें कई रंग होते हैं ॥ ५ ॥ जिन हाथियोंके
और मुख तांबेके समान लाल रंग हों, नेत्र घरोंमें रहनेवाली चिडियोंके
स्निग्ध और ऊँचे अग्रभाग करके युक्त दांत हों, विस्तीर्ण और लम
धनुषके समान ऊँचा, दीर्घ, निगूढ और निमग्न पृष्ठवंश हो, कूर्मके सम
जिनके कुंभोंके रोमकूपोंमें एक २ सूक्ष्म रोम हों ॥ ६ ॥ कर्ण, हनु, न
गुह्य, लिंग यह अंग विस्तीर्ण हों, कूर्मके समान मध्यसे ऊँचे अठ
बीस नख हों, खडी तीन रेखाओंसे युक्त और गोल शुंड ह
मद शुंडसे निकला हुआ सुगन्धयुक्त हो ऐसे हाथी उत्तम होते
शुंडके अग्रभागको पुष्कर कहते हैं और पुष्करके आगे अंगुली
जिन हाथियोंकी अंगुली दीर्घ हो, पुष्कर लाल रंगकी हो, जलसे भरे
नेकी भांति जिनका बृंहित (हाथीके गलेका शब्द) हो, बडी दीर्घ
जिनकी गरदन हो ऐसे हाथी राजाके लिये शुभ होते हैं ॥ ८ ॥ जो
मस्त नहीं जिनके नख या अंग हीन अधिक हों अर्थात् नख अठ
अथवा बीससे अधिक हों, अंगभी शरीरकी बनिस्बत छोटे बडे हों,
कुब्ज हों, मेढोंके सींगोंके समान दांतवाले हों, जिनके अंडकोश दृश्य
पुष्करसे हीन हो, श्याम रंग, नील रंग चित्रवर्ण और काले रंगका त
हो ॥ ९ ॥ छोटे दांत हों, जो हाथी मत्कुण (मकुना) हों, षंढ हों,

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

पुरुषलक्षणम्.

उन्मानमानगतिसंहतिसारवर्णस्नेहस्वरप्रकृतिसत्त्वमनूकम्
क्षेत्रं मृजां च विधिवत् कुशलोऽवलोक्य सामुद्रविद्वदति या
गतं च ॥१॥ अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदराभौ श्लिष्टांगुलं
रताम्रनखौ सुपार्ष्णी । उष्णौ शिराविरहितौ सुनिगूढगुल्फौ
न्नतौ च चरणौ मनुजेश्वरस्य ॥ २ ॥ शूर्पाकारविरूक्षपाण्
वक्रौ शिरासन्ततौ संशुष्कौ विरलांगुली च चरणौ

और जो हथिनी हाथीके लक्षणोंसे युक्त हो अर्थात् बडे२ दांत उसके हों,
हो इत्यादि और जो हथिनी गर्भिणी हो जाय उसको राजा अपने राज्
भेज दे.राज्यमें रहनेसे यह बहुत बुरा फल करते हैं. जिस हाथीकी छाती अ
संकुचित हो, पीठ ऊँची हो, प्रमाणसे हीन हो और नाभि जिसकी ऊँच
हाथी कुब्ज कहलाता है.लम्बाई और परिणाहमें ठीक हो परंतु ऊँचाई बहु
हो उस हाथीको वामन कहते हैं. जिसमें पूर्ण लक्षण ठीक २ हों परन्तु द
वह हाथी मत्कुण (मकुना) कहाता है. चलनेके समय जिस हाथीके पैर
उसको षंढ कहते हैं ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा
व्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अंगुलात्मक उच्चता, तोल, गमन, संहति (अंगसंधियोंकी सुश्लिष्टत
वर्ण, शब्द, प्रकृति, सत्त्व (एक प्रकारका चित्तका धर्म जिसके होनेसे क
और भय नहीं होता) अनूक (पूर्वजन्म), क्षेत्र जो दश प्रकारके पाद अ
कहेंगे, मृजा (पंचमहाभूतमयी शरीरच्छाया) इन सब बातोंको सामुद्रि
जाननेवाला चतुर पुरुष पहले देखकर मनुष्योंके व्यतीत और भविष्य शु
फल कह सकता है ॥ १ ॥ स्वेद (पसीना) से हीन, कोमल तलोंसे युक्त
मध्य भागके समान कांतिवाले,परस्पर मिली हुई अंगुलियोंसे युक्त, चमक
लाल रंगके नखोंसे युक्त, सुन्दर एडियोंवाले, उष्ण(गरम) शिराओंसे रहि
नाडी न देख पडे), निगूढ गुल्फ (जिनके टकने ऊँचे न हों) और कूर्म
ऊपरसे ऊँचे ऐसे चरण राजाके होते हैं.जिस पुरुषके चरणोंमें ये लक्षण हों
होता है ॥२॥ शूर्प (छाज) के आकार आगेसे चौडे, श्वेतरंगके नखोंसे

दुःखप्रदौ। मार्गायोत्कटकौ कषायसदृशौ वंशस्य विच्छि
ब्रह्मघ्नौ परिपक्वमृद्द्युतितलौ पीतावगम्यारतौ ॥ ३ ॥ प्रविरल
रोमवृत्तजङ्घा द्विरदकरप्रतिमैर्वरोरुभिश्च। उपचितसमजानवश्च
धनरहिताः श्वशृगालतुल्यजङ्घाः ॥४॥ रोमैकैकं कूपके पार्थि
द्वे द्वे ज्ञेये पण्डितश्रोत्रियाणाम्।त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवा दुःखभा
शाश्चैवं निन्दिता मूर्जिताश्च॥५॥निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे सौ
भाग्यमल्पैर्विकटैर्दरिद्राः।स्त्रीनिर्जिताश्चापि भवन्ति निम्नै राज्यं
मांसैश्च महद्भिरायुः॥६॥लिङ्गेऽपि धनवानपत्यरहितः स्थूले वि
धनैर्मेढ्रे वामनते सुतार्थरहितो वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्। दारिद्र्यं वि

नाडियोंसे व्याप्त, सूखे और विरल अंगुलियोंवाले चरण हों तो दरिद्र और दुःख
हैं. मध्यसे ऊँच मेंडकके आकार चरण हों तो सदा मार्गमें चलाते हैं. कषा
(थोडेसे लाल) के चरण हों तो वंशका विच्छे करते अर्थात् जिस पुरुषके व
रंगके चरण हों उसका वंश नहीं चलता. परिपक्व (अग्निमें पकी हुई) मृत्ति
तुल्य जिसके पादतलोंकी कांति हो वह पुरुष ब्रह्महत्या करता है और पीले
चरणवाला पुरुष अगम्या स्त्रीमें आसक्त होता है ॥ ३ ॥ विरल और सूक्ष्म
वाला, गोल हाथीकी शुंडके समान सुन्दर ऊरुवाला, मांसयुक्त और समान ज
वाला यह सब लक्षणोंवाला राजा होता है.श्वान और शृगालके तुल्य जिनकी
हों वे धनहीन होते हैं ॥ ४ ॥ जिनकी जंघाओंके रोमकूपोंमें एक२ रोम हो वे
होते हैं,जिनके एक रोमकूपमें दो दो रोम हों वे पंडित और श्रोत्रिय होते हैं; जि
एक २ रोमकूपमें तीन २ चार २ आदि रोम हों वे मनुष्य निर्धन और दुःखी
हैं. इससे मस्तकके केशोंकाभी शुभ अशुभ फल जाने ॥५॥ जिसकी जानुपर
न हो वह पुरुष प्रवासमें मरता है, छोटे जानुवाला भाग्यवान् होता है. विकट
वाले दरिद्री होते हैं. जिनके जानु निम्न (नीच) हों वे पुरुष स्त्रीजित
हैं, मांसयुक्त जानुवालेको राज्य मिलता है और बडे जानु जिन पुरु
हों वे दीर्घायु होते हैं ॥ ६ ॥ छोटे लिंगवाला पुरुष धनवान् और सं
तहीन होता है. स्थूल लिंगवाला धनहीन होता है. जिसका बांई ओरको
झुका हो वह पुरुष धन और पुत्रोंसे रहित होता है, दाहिनी ओर लिंग झुका

त्वधोऽल्पतनयो लिङ्गे शिरासन्तते स्थूलग्रन्थियुते सु
करोत्यन्तं प्रमेहादिभिः॥७॥कोषनिगूढैर्भूपा दीर्घैर्भग्नैश्च वि
हीनाः।ऋजुवृत्तशेफसो लघुशिरालशिश्नाश्च धनवन्तः॥८॥
त्युरेकवृषणो विषमैः स्त्रीलंपटःसमैः क्षितिपः। ह्रस्वायुश्चोद्ब
म्बवृषणस्य शतमायुः॥ ९ ॥ रक्तैराढ्या मणिभिर्निर्द्रव्याः
श्च मलिनैश्चासुखिनः सशब्दमूत्रा निःस्वा निःशब्दधाराश्च
द्वित्रिचतुर्धाराभिः प्रदक्षिणावर्तवलितमूत्राभिः। पृथ्वीपतय
विकीर्णमूत्राश्च धनहीनाः ॥ ११ ॥ एकैव मूत्रधारा वलित
प्रधानसुतदात्री।स्निग्धोन्नतसममणयो धनवनितारत्नभोक्तार
मणिभिश्च मध्यनिम्नैः कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च।

तो पुत्रवान् होता है, जिसका लिंग नीचेको बहुत झुका हो वह दरिद्री
नाडियोंसे व्याप्त लिंग हो तो वह पुरुष अल्पपुत्रवाला है अर्थात् उसके
होते हैं, स्थूल ग्रंथिसे युक्त जिसका लिंग होता वह सुखी होता है, मृदु
पुरुष प्रमेह आदि रोगोंसे मरता है ॥ ७ ॥ कोश (चर्मकी थैलीसी)
लिंग निगूढ हो वे राजा होते हैं, दीर्घ और टूटे हुए लिंगवाले
होते हैं, सीधे और गोल व छोटे या नाडियोंसे व्याप्त लिंगवाले
वान् होते हैं ॥ ८ ॥ एकही वृषणवाला पुरुष जलमें डूबकर मरता
(छोटे बडे) वृषण हों तो स्त्रीलंपट होता है, वृषण समान हों तो राजा
ऊपरको खींचे हुए वृषणवाला हो तो अल्पायुष होता है और जिस पुरुष
लम्बे हों उसका आयुष सौ वर्ष होता है ॥ ९ ॥ लिंगके अग्रभागको म
हैं, लाल रंगकी मणिवाले पुरुष धनवान् होते हैं, श्वेत और मलिन मणि
धनहीन होते हैं; मूत्र करनेके समय शब्द हों वे पुरुष सुखी होते हैं.
जिनकी मूत्रधारा हो वे निर्धन होते हैं ॥ १० ॥ जिनके मूत्रकी धारा
अथवा चार हों और दक्षिणावर्त करके वे धारा मूत्रको गेरें तो वे पुरुष रा
हैं, मूत्र करनके समय जिसका मूत्र बिखरता हो वे धनहीन होते हैं
एक धार मूत्रकी हो और वह वलित (वेष्टित) हो तो रूपवान् पुत्र देती
पुरुषोंके मणि स्निग्ध, ऊंचे और समान हों वे पुरुष धन, स्त्री और रत्न
करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके मणि मध्यभागमें निम्न हों वे
पिता होते हैं अर्थात् उनके घरमें कन्याही जन्मती हैं और वे पुरुष निर्ध
हैं, जिनके मणि मध्यके ऊँचे हों वे बहुत पशुओंके स्वामी होते

भाजो मध्योन्नतैश्च नात्युल्बणैर्धनिनः ॥ १३ ॥ परिशुष्कब
शीर्षा धनरहिता दुर्भगाश्च विज्ञेयाः । कुसुमसमगंधशुक्रा विज्ञ
ज्ञेया महीपालाः ॥ १४ ॥ मधुगन्धे बहुवित्ता मत्स्यसगन्धे ब
न्यपत्यानि । तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांससगन्धो महाभोगी ॥१
मदिरागन्धे यज्वा क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः । शीघ्रं मैथुनगा
दीर्घायुरतोऽन्यथाल्पायुः ॥ १६ ॥ निःस्वोऽतिस्थूलस्फिक् स
सलस्फिक् सुखान्वितो भवति । व्याघ्रान्तोऽध्यर्धस्फिग्मण्डू
स्फिग्नराधिपतिः ॥ १७ ॥ सिंहकटिर्मनुजेन्द्रः कपिकरभ
टिर्धनैः परित्यक्तः॥समजठरा भोगयुता घटपिठरनिभोदरा निःस्
॥१८॥अविकलपार्श्वा धनिनो निम्नैर्वक्रैश्च भोगसन्त्यक्ताः॥समकु
भोगाढ्या निम्नाभिर्भोगपरिहीनाः ॥ १९ ॥ उन्नतकुक्षाः क्षितिप

स्थूल जिनके भाजे न हों वे धनी होते हैं ॥ १३ ॥ लिंग और नाभिके अन्तर
बस्ति कहते हैं, जिनके बस्तिका उपरिभाग मांसरहित हो वे पुरुष धनहीं
और सब मनुष्योंके अप्रिय होते हैं, पुष्पके समान सुगन्धित वीर्यवाले रा
होते हैं ॥ १४ ॥ शहतके समान गन्ध वीर्यमें हो तो बहुत धनवान्
मत्स्योंके समान गन्ध वीर्यमें हो तो बहुत सन्तान हो, थोडा वीर्य हो
कन्याओंका पिता हो, मांसके समान गन्ध वीर्यमें हो. तो महाभोगी हो ॥ १५
मद्यके समान गन्ध वीर्यमें आती हो तो पुरुष यज्ञ करनेवाला हो, खारके तुल्य ग
वीर्यमें आती हो तो पुरुष दरिद्री हो, शीघ्रही जो पुरुष मैथुन करे वह दीर्घायु
होता है और जो पुरुष बहुत काल पर्यन्त मैथुन करे वह अल्पायुष होता है ॥ १६
जिस पुरुषके स्फिक् (कटिस्थ मांसपिण्ड) अति मोटे हों वह निर्धन होता
सुन्दर मांसयुक्त स्फिक्वाला सुखी होता है, जिस पुरुषके डचोढे हों उसको व्या
मारता है, मेंडकके समान जिसके स्फिक् हों वह पुरुष राजा होता है ॥ १७
सिंहके समान कटिवाला राजा होता है वानर अथवा उष्ट्रके समान कटिवाला धन
हीन होता है, सम (न ऊंचा और न नीचा) उदरवाला पुरुष भोगी होता है
घडे अथवा हांडीके समान पेट हो तो वे पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १८ ॥ कटि
ऊपर चार अंगुल भागको पार्श्व कहते हैं, और उदरके मध्यभागको कक्ष्या कह
हैं, समपार्श्व होनेसे धनी होता है, निम्न और टेढे पार्श्व हों तो धनहीन हो
हैं, जिनकी कक्ष्या सम हो वे पुरुष भोगी होते हैं, निम्न कक्षा हो तो भोगसे ही
होते हैं ॥ १९ ॥ उन्नत कक्ष्या हो तो राजा होते हैं, विषम (घाटबाध) जिनकी
कक्ष्या हो वह मनुष्य कठोर होते हैं, जिन पुरुषोंका उदर सर्पके उदरकी भांति

नाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः सर्पोदरा दरिद्रा भवन्ति बह्वाशि-
श्चैव ॥ २० ॥ परिमण्डलोन्नताभिर्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः
सुखिनः । स्वल्पा त्वदृश्यनिम्ना नाभिः क्लेशावहा भवति ॥ २१ ॥
वलिमध्यगता विषमा शूलाबाधं करोति नैःस्व्यं च । शाठ्यं वामा-
वर्ता करोति मेधां प्रदक्षिणतः ॥ २२ ॥ पार्श्वायता चिरायुषमुप-
रिष्टाच्चेश्वरं गवाढ्यमधः । शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्मनुजेश्वरं कुरुते
॥ २३ ॥ शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासंख्यम् । एक-
द्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विद्यान्नृपं त्ववलिम् ॥ २४ ॥ विषमवलयो
मनुष्या भवन्त्यगम्याभिगामिनः पापाः । ऋजुवलयः सुखभाजः
परदारद्वेषिणश्चैव ॥ २५ ॥ मांसलमृदुभिः पार्श्वैः प्रदक्षिणावर्त-
रोमभिर्भूपाः । विपरीतैर्निर्द्रव्याः सुखपरिहीनाः परप्रेष्याः ॥ २६ ॥

लम्बा हो वे पुरुष दरिद्री होते हैं और बहुत भोजन करते हैं ॥ २० ॥ गोल, और विस्तीर्ण नाभिवाले सुखी होते हैं, छोटी अदृश्य (न देख पडे) और न अर्थात् गहरी न हो ऐसी नाभि दुःखदायक होती है ॥ २१ ॥ जिसकी नाभि वलिके बीच आवे और विषम हो, वह पुरुष शूलीपर चढाया जाता है और धनी होता है, वामावर्त जिसकी नाभि हो वह पुरुष शठ होता है. दक्षिणावर्त हो तो उसकी उत्तम बुद्धि हो. दोनों ओर लम्बी नाभि दीर्घायुष करती है, की नाभि दीर्घ हो तो पुरुषको ऐश्वर्ययुक्त करती है नीचेको लम्बी हो तो भोगोंसे युक्त करती है. कमलकी कर्णिकाके तुल्य नाभि हो तो पुरुषको करती है ॥ २२॥२३ ॥ उदरके मध्यमें जो रेखा हों उनको वलि कहते हैं. पुरुषको एक वलि हो उसकी मृत्यु शस्त्रसे होती है. दो वलि हों तो वह पुरुष स्त्रियोंसे भोग करनेवाला होता है. तीन वलि हों तो आचार्य (उपदेशकर्त्ता) है और चार वलि जिस पुरुषके उदरमें हों उसके बहुत पुत्र होते हैं, जिसका वलिरहित हो वह राजा होता है ॥२४॥ जिनके उदरमें कोई छोटी कोई बडी हो वे पुरुष अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं. जिनके उदरमें सीधी वलि हो वे और परस्त्रीसे विमुख होते हैं ॥२५॥ मांसद्वारा पुष्ट कोमल और दक्षिणावर्त से युक्त जिनके पार्श्व हों वे पुरुष राजा होते हैं और मांससे हीन कठोर और वत रोमोंसे युक्त जिनके पार्श्व हों वे निर्धन सुखसे हीन और दूसरे पुरुषोंके होते हैं ॥२६॥ स्तनके अग्रभागको चूचुक कहते हैं. जिनके चूचुक ऊपरको नहीं हों वे पुरुष सुभग होते हैं. जिनके चूचुक छोटे बडे और लम्बे हों

सुभगा भवन्त्यनुद्बद्धचूचुका निर्धना विषमदीर्घैः । पीनो
मग्नैः क्षितिपतयश्चूचुकैः सुखिनः ॥ २७ ॥ हृदयं समुन्न
वेपनं मांसलं च नृपतीनाम् । अधमानां विपरीतं खर
शिरालं च ॥ २८ ॥ समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरास्त्व
स्तनुभिः विषमं वक्षो येषां ते निःस्वाःशस्त्रनिधनाश्च ।
विषमैर्विषमो जत्रुभिरर्थविहीनोऽस्थिसन्धिपरिणद्धैः । उ
भोगी निम्नैर्निःस्वोऽर्थवान् पीनैः ॥ ३० ॥ चिपिटग्रीवो
शुष्का शिरा च यस्य वा ग्रीवा । महिषग्रीवः शूरः श
वृषसमग्रीवः ॥ ३१ ॥ कम्बुग्रीवो राजा प्रलम्बकण्ठः प्र
भवति । पृष्ठमभग्नमरोमशमर्थवतामशुभदमतोऽन्यत् ॥
अस्वेदनपीनोन्नतसुगन्धिसमरोमसंकुलाः कक्षाः । वि
धनिनामतोऽन्यथार्थविहीनानाम् ॥ ३३ ॥ निर्मांसौ रो
भग्नावल्पौ च निर्धनस्यांसौ । विपुलावव्युच्छिन्नौ सु

वे निर्धन होते हैं. जिनके चूचुक कठिन पुष्ट और निमग्न अर्थात् ऊंचे न हों
होते हैं और सुखी रहते हैं ॥२७॥ ऊंचा, विस्तीर्ण, कंपसे हीन और मांस
राजाओंका होता है और नीचेसे सुकडा हुआ और कृश हृदय अधम
होता है. कठोर, रोमोंसे युक्त और नाडियों करके व्याप्त हृदयभी अधम
होता है ॥ २८ ॥ न ऊंची न नीची छातीवाले धनवान् होते हैं, छोटी छा
पुरुषार्थसे हीन होते हैं. विषम छातीवाले धनहीन होते हैं और शस्त्रसे उन
होता है ॥ २९ ॥ कंधोंके जोडोंको जत्रु कहते हैं, विषम जत्रुवाला पु
होता है; अस्थियोंकी संधिमें बंधे हुए जत्रु हों तो धनहीन होता है. ऊंचे ज
भोगी, निम्न जत्रु हो तो निर्धन और पीन जत्रु हों तो पुरुष
होता है ॥ ३० ॥ चिपटी ग्रीवावाला पुरुष निर्धन होता है, सूखी और ना
युक्त जिसकी ग्रीवा हो वहभी निर्धन होता है, महिषके समान गरदन
शूरवीर होता है, वृषके समान जिसकी ग्रीवा हो उसकी शस्त्रसे मृत्यु है ॥
शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त जिसकी ग्रीवा हो वह राजा होता है, जिसक
लम्बा हो वह खाऊ होता है, धन जोडता नहीं, अभग्न (टूटी हुई नहीं) और
रहित पीठ धनवानोंकी होती है, भग्न और रोमोंसे युक्त पीठ निर्धनोंकी होती है ।
पसीनेसे रहित, पीन, ऊंची, सुगन्धयुक्त, सम और रोमयुक्त कक्षा (कांख) धनवा
होती है और इससे विपरीत कक्षा निर्धनोंकी होती है ॥ ३३ ॥ मांसरहित
व्याप्त, भग्न और छोटे कंधे निर्धनके होते हैं, विस्तीर्ण अभग्न और सुसंलग्न

यवीर्यवताम् ॥ ३४ ॥ करिकरसदृशौ वृत्तावाजान्ववलम्बिनौ पीनौ । बाहू पृथिवीशानामधमानां रोमशौ ह्रस्वौ ॥ ३५ ॥ अंगुलयो दीर्घाश्चिरायुषामवलिताश्च सुभगानाम् । मेधाविनां सूक्ष्माश्चिपिटाः परकर्मनिरतानाम् ॥ ३६ ॥ स्थूलाभिर्धनरहिता बहिर्नताभिश्च शस्त्रनिर्याणाः । कपिसदृशकरा धनिनो व्याघ्रोपमपाणयः पापाः ॥ ३७ ॥ मणिबन्धनैर्निगूढैर्दृढैश्च सुश्लिष्टसन्धिभिर्भूपाः । हीनैर्हस्तच्छेदः श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥ ३८ ॥ पित्तेन विहीना भवन्ति निम्नेन करतलेन नराः । संवृत्तनिम्नेन धनिनः प्रोत्तानकराश्च दातारः ॥ ३९ ॥ विषमैर्विषमा निःस्वाश्च करतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभैः । पीतैरगम्यवनिताभिगामिनो निर्धना रूक्षैः ॥ ४० ॥ तुषसदृशनखाः क्लीबाश्चिपिटैः स्फुटितैश्च वित्तसन्त्यक्ताः । कुनखविवर्णैः परतर्ककाश्च ताम्रैश्च भूपतयः ॥ ४१ ॥

और बली पुरुषोंके होते हैं ॥ ३४ ॥ हस्तीके शुंडके समान वर्तुल, जानुतक लम्बे, मोटे ऐसे बाहु पृथ्वीपतियोंके होते हैं और निर्धनोंके रोमोंसे युक्त, छोटे होते हैं ॥ ३५ ॥ दीर्घायुवाले पुरुषोंकी अंगुली लम्बी होती है सीधी अंगुली सुभग पुरुषोंकी होती है. बुद्धिमानोंकी अंगुली पतली होती है,परसेवा करनेवालोंकी अंगुली चपटी होती हैं ॥३६॥ मोटी अंगुली हों तो निर्धन होते हैं, जिनकी अंगुली बाहरको झुकी हो, उनकी शस्त्रसे मृत्यु होती है. बंदरके तुल्य हाथवाले धनवान् होते हैं. व्याघ्रके तुल्य हाथवाले पापी होते हैं॥३७॥ हस्तके मूलको मणिबंध अर्थात् पहुंचा कहते हैं. जिनके मणिबन्ध निगूढ दृढ व सुश्लिष्ट संधि हों वे राजा होते हैं, हीन मणिबन्ध हों तो उनके हाथ काटे जाते हैं, ढीले और शब्दसे युक्त जिनके मणिबन्ध हों वे निर्धन होते हैं ॥३८॥ जिनकी हथेली निम्न (नीची) हो वह पिताके धनसे रहित होते हैं. सम गोल और निम्न जिनकी हथेली हो, वे धनवान् होते हैं. जिनकी ऊँची हथेली हो वे पुरुष दाता होते हैं ॥३९॥ विषम हथेली जिनकी हो वे विषम और निर्धन होते हैं, लाखके समान लाल रंगकी जिनकी हथेली हो वे ऐश्वर्यवान् होते हैं. पीले रंगकी हथेलीवाले अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं, रूखी हथेलीवाले निर्धन होते हैं ॥४०॥ तुषोंके समान रेखाओंसे युक्त जिनके नख हों वे नपुंसक होते हैं. चपटे और फुटे जिनके नख हों वे निर्धन होते हैं बुरे नखवाले और रंगसे हीन नखवाले पुरुष दूसरेकी बातमें तर्क करनेवाले होते हैं, तांबेके समान लाल रंगके

अंगुष्ठयवैराढ्याः सुतवन्तोऽङ्गुष्ठमूलगैश्च यवैः । दीर्घां
सुभगा दीर्घायुषश्चैव॥४२॥स्निग्धा निम्ना रेखा धनिनां
निःस्वानाम् । विरलांगुलयो निःस्वा धनसञ्चयिनो
॥ ४३ ॥ तिस्रो रेखा मणिबन्धनोत्थिताः करतलोप
मीनयुगाङ्कितपाणिर्नित्यं सत्रप्रदो भवति ॥ ४४ ॥
धनिनां विद्याभाजां तु मीनपुच्छनिभाः । शंखातपत्रशि
श्वपद्मोपमा नृपतेः ॥ ४५ ॥ कलशमृणालपताकांकुशं
वन्ति निधिपालाः । दामनिभाभिश्चाढ्याः स्वस्तिकरू
र्यम् ॥ ४६ ॥ चक्रासिपरशुतोमरशक्तिधनुः कुन्तसन्नि
कुर्वन्ति चमूनाथं यज्वानमुलूखलाकाराः ॥ ४७ ॥ मर
ष्ठागारसन्निभाभिर्महाधनोपेताः । वेदीनिभेन चैवाग्निहो
तीर्थेन ॥ ४८ ॥ वापीदेवकुलाद्यैर्धर्मं कुर्वन्ति च त्रि

जिनके नख हों वे सेनापति होते हैं॥४१॥ अंगुष्ठोंके मध्यमें जिनके जौ
होते हैं. अंगुष्ठमूलमें जौ चिह्न हों तो वे पुत्रवान् होते हैं. जिनकी
पौरुवे लंबे हों वे पुरुष सुभग और दीर्घायु होते हैं ॥४२॥ जिनके हाथ
और गहरी हो वे धनवान् होते हैं, जिनकी रेखा रूखी और निम्न न
होते हैं, जिनके हाथोंकी अंगुली विरल हों वे निर्धनी होते हैं और धन
धनका संचय करते हैं ॥ ४३ ॥ पहुंचेसे निकलकर तीन रेखा जिस
जांय वह राजा होता है, जिसके हाथमें दो मत्स्यरेखा हों वह
देनेवाला होता है ॥ ४४ ॥ वज्रके आकार (मध्यसे पतला और दोनों
रेखा हाथमें हो तो धनवान् होता है, मत्स्यके पुच्छके समान
हो तो विद्वान् होते हैं. शंख, छत्र, पालकी, हाथी, घोडा और कमल
रेखा हाथमें हों तो राजा होते हैं ॥ ४५ ॥ कलश, कमलकी जडके अ
मध्यमें ग्रन्थित युक्त रेखा जिनके हाथमें हों, पताका, अंकुशके आ
जिनके हाथमें हों वे भूमिमें धन गाडते हैं, दाम (रस्सी) आकारकी रे
तो धनाढ्य होते हैं, स्वस्तिकके आकारकी रेखा हो तो ऐश्वर्य होता
चक्र, खड्ग, फरशा, तोमर, बर्छी, धनुष, भालाके आकारकी रेखा
सेनापति होते हैं, ऊखलके आकारकी रेखा हाथमें, हो तो यज्ञ कर
है ॥ ४७ ॥ मकर, ध्वज, कोष्ठागारके आकारकी रेखा हाथमें हो तो
धनवान् होते हैं. वेदीके आकार जिनका ब्रह्मतीर्थ हो वे अग्निहो
(अंगुष्ठमूलको ब्रह्मतीर्थ कहते हैं) ॥ ४८ ॥ वापी, देवमंदिर आ

अंगुष्ठमूलरेखाः पुत्राः स्युर्दारिकाः सूक्ष्माः ॥
रेखाः प्रदेशनीगाः शतायुषां कल्पनीयमूनाभिः ।
द्रुमपतनं बहुरेखारेखिणो निःस्वाः ॥ ५० ॥ अति
श्चिबुकैर्निर्द्रव्या मांसलैर्धनोपेताः । बिम्बोपमैरवक्रैरधरै
भिरस्वाः ॥ ५१ ॥ ओष्ठैः स्फुटितविखण्डितविवर्णरूक्षैः
रित्यक्ताः । स्निग्धा घनाश्च दशना सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाः
॥ ५२ ॥ जिह्वा रक्ता दीर्घा श्लक्ष्णा सुसमा च भोगि
श्वेता कृष्णा परुषा निर्द्रव्याणां तथा तालु ॥ ५३ ॥ व
संवृतममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् । विपरीतं क्लेशभु
मुखं दुर्भगाणां च ॥ ५४ ॥ स्त्रीमुखमनपत्यानां श
मण्डलं परिज्ञेयम् । दीर्घं निर्द्रव्याणां भीरुमुखाः पापकर्मा

आकारकी रेखा हो और त्रिकोण रेखा हो तो वे धर्म करते हैं, अंगुष्ठ
संतानकी है, उनमें जितनी रेखा सूक्ष्म हों उतनी कन्या होती हैं, जि
स्थूल हों उतने पुत्र होते हैं ॥४९॥ तर्जनी अंगुलीतक जिनकी रेखा प
वर्षका आयु पाते हैं, छोटी रेखा हो तो अनुमानसे आयु जाने, टूटी
हो तो वृक्षसे गिरे, जिनके हाथमें बहुत रेखा हों अथवा रेखा न हों वे
हैं ॥५०॥ बहुत कृश और लंबी ठोडी हो तो निर्धन होते हैं, मांससे
हों तो धनवान् होते हैं, कन्दूरीके समान रक्तवर्ण और अवक्र नीचेक
तो राजा होते हैं, छोटा अधर (नीचेका ओष्ठ) हो तो निर्धन होते हैं ॥
हुए, खंडित, बुरे रंगके और रूखे ओष्ठ हों तो वे पुरुष धनहीन होते
घन (गहरे) तीखी डाढोंसे युक्त और समान दांत शुभ होते हैं ॥ ५२ ॥
लंबी, श्लक्ष्ण और समान जीभ हो तो भोगी होते हैं, श्वेत, कृष्ण और
हो तो धनहीन होते हैं, यही लक्षण तालुकाभी जाने ॥५३॥ सौम्य, संव
श्लक्ष्ण और सम वक्र (चेहरा) राजाओंका होता है, इससे विरुद्ध अथ
असंवृत, अश्लक्ष्ण और विषम वक्र क्लेश भोगनेवाले पुरुषोंका होता है,
हुआ मुख दुर्भग पुरुषोंका होता है ॥ ५४ ॥ स्त्रीकासा मुख जिन पुरु
संतानसे हीन होते हैं, गोल मुखवाले पुरुष शठ होते हैं, लंबे मुखवाले
हैं, भयभीत दीख पडे वह पापी होते हैं ॥५५॥ धूर्तोंका मुख चौखुंटा

---

१ इस रेखाका छिन्न स्थान अनुपात करके जितने वर्षोंके अंशमें मिलेगा, उतने वर्षोंमें वह

चतुरश्रं धूर्तानां निम्नं वक्त्रं च तनयरहितानाम् । कृपणान
ह्रस्वं सम्पूर्णं भोगिनां कान्तम् ॥ ५६ ॥ अस्फुटिताग्रं
श्मश्रु शुभं मृदु च सन्नतं चैव । रक्तैः परुषैश्चौराः श्मश्रुभि
विज्ञेयाः ॥ ५७ ॥ निर्मांसैः कर्णैः पापमृत्यवश्चर्पटैः सुबहुभ
कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः शंकुश्रवणाश्चमूपतयः ॥ ५८ ॥ र
कर्णा दीर्घायुषस्तु धनभागिनो विपुलकर्णाः । क्रूराः शि
द्भैर्व्यालम्बैर्मांसलैःसुखिनः ॥ ५९ ॥ भोगी त्वनिम्नगण्डो
सम्पूर्णमांसगण्डो यः । सुखभाक् शुकसमनासश्चिरजीवी
नासश्च ॥ ६० ॥ छिन्नानुरूपयागम्यगामिनो दीर्घया तु स
ग्यम् । आकुञ्चितया चौरःस्त्रीमृत्युः स्याच्चिपिटनासः ॥६१॥
नोऽग्रवक्रनासा दक्षिणावक्राः प्रभक्षणाः क्रूराः ।ऋज्वी स्वल्पि
सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ॥ ६२ ॥ धनिनां क्षुतं सकृद्

निम्न मुख पुत्रहीन पुरुषोंका होता है, कंजूसोंका मुख बहुत छोटा होता है,
और मनोहर जिनका मुख हो वे भोगी होते हैं ॥५६॥ जिनके बाल आगेसे
हों, स्निग्ध हों, कोमल, सन्नत अर्थात भली भांति नीचेको झुकी हुई दाढी
शुभ है, लालरंगकी रूखी और अल्प दाढी जिनकी हो वे चोर होते हैं ॥
जिनके कर्ण मांसरहित हों उनकी मृत्यु पापकर्मसे होती है, चपटे कानवाले
भोगी होते हैं, छोटे कानोंवाले कृपण होते हैं, शंकुके तुल्य आगेसे तीखे क
सेनापति होते हैं, ॥५८॥ रोमोंसे युक्त कर्ण हों तो दीर्घायु पाते हैं, बडे का
धनवान् होते हैं, नाडियोंसे व्याप्त कानवाले हों तो वे पुरुष क्रूर होते हैं. लम्
मांससे पुष्ट कानवाले सुखी होते है ॥५९॥ जिसके कपोल ऊँचे हों वह भोगी
है, मांससे पुष्ट जिसके गंड हो वह राजाका मंत्री होता है, शुक (तोते) के
जिसकी नासिका हो वह भोगी होता है. सूखी अर्थात् निर्मांस जिसकी ना
होय वह दीर्घजीवी होता है ॥६०॥ जिसकी नासिका कटीसी दिखाई दे वे अ
स्त्रीसे गमन करनेवाले होते हैं, लम्बी नासिका हो तो सौभाग्य होता है. आ
(ऊपरको खींची हुई) नासिकावाला चोर होता है. चपटी नासिकावाला स्त्रीसे
मारा जाता है, आगेसे टेढी जिनकी नासिका होवे वे धनी होते हैं, दाहिनी
टेढी जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी ओर टेढी जिनकी नासिका
खाऊ और क्रूर होते हैं, सीधी छोटे छिद्रोंसे युक्त सुन्दर पुटोंवाली नासिक
ग्यवान् होते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ एक वार छीके वे धनवान् होते हैं. दो

पिण्डितं ह्लादि सानुनादं च । दीर्घायुषां प्रमुक्तं विज्ञेयं संह
॥६३॥ पद्मदलाभैर्धनिनो रक्तान्तविलोचनः श्रियोभाजः ।
पिङ्गलैर्महार्था मार्जारविलोचनाः पापाः ॥६४॥ हरिणाक्षा
ललोचनाश्चजिह्मैश्च लोचनैश्चौराः । क्रूराः केकरनेत्रा गज
दृशश्चमूपतयः ॥ ६५ ॥ ऐश्वर्यं गम्भीरैर्नीलोत्पलकान्ति
विद्वांसः । अतिकृष्णतारकाणामक्ष्णामुत्पाटनं भवति ॥
मन्त्रित्वं स्थूलदृशां श्यावाक्षाणां च भवति सौभाग्यम् ।
दृङ्निःस्वानां स्निग्धा विपुलार्थभोगवताम् ॥ ६७ ॥ अभ्युन्न
रल्पायुषो विशालोन्नताभिरतिसुखिनः । विषमभ्रुवो दरिद्रा
न्दुनतभ्रुवः सधनाः ॥ ६८ ॥ दीर्घसंसक्ताभिर्धनिनः खण्ड
परिहीनाः । मध्यविनतभ्रुवो ये ते सक्ताः स्त्रीष्वगम्यासु ॥
उन्नतविपुलं शंखैर्धन्या निम्नैः सुतार्थसन्त्यक्ताः । विषमल
विधना धनवन्तोऽर्धेन्दुसदृशेन ॥ ७० ॥ शुक्तिविशालैरा

वार मिला हुआ ह्लादि अनुनाद करके युक्त प्रयुक्त (अतिदीर्घ) और
पुरुष छींके वे दीर्घायु होते हैं ॥ ६३ ॥ कमलदलके तुल्य नेत्रवाले धनवान्
जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों वे लक्ष्मीवान् होते हैं, शहतके तुल्य पिंगल
नेत्रवाले बडे धनवान् होते हैं. बिल्लीके तुल्य कंजे नेत्र हों तो पापी होते हैं
हरिणके तुल्य नेत्र हों और गोल नेत्र हों और जिह्म (अचल) नेत्र जिन
चोर होते हैं, भेंगे नेत्र हों वे क्रूर होते हैं, हाथीके तुल्य नेत्र हों तो सेनापति
॥६५॥ गहरे नेत्र हों तो ऐश्वर्य होता है, नीले कमलके समान कान्तिके नेत्र
पुरुषोंके होते हैं, जिन नेत्रोंका तारा अति कृष्ण हो वे नेत्र उखाडे जाते हैं ।
मोटे नेत्र हों तो राजाके मंत्री होते हैं, कपिश रंगके नेत्र हों तो सौभाग्य
जिनके नेत्र दीन हों वे निर्धन होते हैं, स्निग्ध और बडे नेत्रवाले धनवा
भोगी होते हैं ॥ ६७ ॥ मध्यसे जिनकी भ्रू ऊँची हो वे अल्पायु होते हैं
और ऊँची भ्रू हो तो अतिसुखी होते हैं, छोटी बडी भ्रू हो तो दरिद्री
बालचन्द्रमाकी भांति जिनकी झुकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं ॥ ६८ ।
और परस्पर न मिली हुई जिनकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं. टूटी हुई भ्रू
धनहीन होते हैं. मध्यसे जिनकी भ्रू न हो वे पुरुष अगम्या स्त्रियोंमें
होते हैं ॥ ६९ ॥ ऊँची और बडी कनपटी हों तो धनी होते हैं, निम्न
तो पुत्र और धनसे हीन होते हैं. जिनका ललाट टेढा हो वे निर्धन होते हैं
चन्द्रके तुल्य जिनका ललाट हो वे धनवान् होते हैं ॥ ७० ॥ सीपके

शिरासन्ततैरधर्मरता । उन्नतशिराभिराढ्याः स्वस्तिव
भिश्च ॥ ७१ ॥ निम्नललाटा वधबन्धभागिनः क्रूरक
अभ्युन्नतैश्च भूपाः कृपणाः स्युः संवृत्तललाटाः ॥ ७
मदीनमनश्रु स्निग्धं च शुभावहं मनुष्याणाम् । रू
गाश्रु चैव न शुभप्रदं पुंसाम् ॥७३॥ हसितं शुभदमव
लितलोचनं च पापस्य । दुष्टस्य हसितमसकृत्त सोः
त्प्रान्ते ॥ ७४ ॥ तिस्रो रेखाः शतजीविनां ललाटा
यदि ताः । चतसृभिरवनीशश्च नवतिश्चायुः सपञ्चाब
विच्छिन्नाभिश्चागम्यगामिनो नवतिरप्यरेखेण । केश
रेखाभिरशीतिवर्षायुः ॥ ७६ ॥ पञ्चभिरायुः सप्ततिः
ताभिरपि षष्टिः । बहुरेखेन शतार्धं चत्वारिंशच्च वक्र
त्रिंशद्भ्रूलग्नाभिर्विंशतिकश्चैव वामवक्राभिः ।

विस्तीर्ण जिनके ललाट हों उनको आचार्यता होती है, नाडियों
ललाट हो वे अधर्म करनेमें तैयार रहते हैं, ललाटके बीच ऊँची
स्वस्तिककी भांति स्थित हो वे पुरुष धनाढ्य होते हैं ॥ ७१ ।
निम्न हों वे वध और बन्धनके भागी होते हैं और क्रूर कर्म करने
ऊँचे ललाट हों वे पुरुष राजा होते हैं. गोल ललाट होनेसे कृपण हो
दीनतासे हीन, अश्रुओंसे हीन और स्निग्ध रोदन (रोना) मनुष
है. रूक्ष, दीन और बहुत अश्रुओं करके युक्त रोदन पुरुषोंको शुभद
हँसनेके समय शरीर न कांपे तो हँसना शुभ होता है, नेत्र मूँदकर
होते हैं, दोषयुक्त पुरुष वारंवार हँसता है, हँसनेके अन्तमें वारंवार
युक्त पुरुषका लक्षण है ॥ ७४ ॥ ललाटमें लम्बी रेखा तीन हो
शत वर्ष होता है और चार रेखा ललाटमें हो तो राजा होता है
आयुष होता है ॥ ७५ ॥ टूटी हुई रेखा ललाटमें हो तो पुरु
गमन करनेवाले होते हैं और नब्बे वर्ष उनका आयुष होता है,
रेखा न हो तो भी नब्बे वर्ष आयुष होता है, केशोंकी जहां उ
केशांत कहते हैं, ललाटमें केशांततक रेखा पहुँची हो तो अस्सी व
है ॥ ७६ ॥ पांच रेखा ललाटमें हों तो सत्तर वर्षकी आयु होती है,
अग्र मिल गये हों तो साठ वर्षकी आयु होती है, छः सात अ
ललाटमें हों तो पचास वर्षकी आयु होती है, टेढी रेखा ललाटमें
वर्षकी आयु होती है ॥ ७७ ॥ भ्रूसे रेखा लग जाय तो तीस वर्ष

स्वल्पायुर्न्यूनाभिश्चान्तरे कल्प्यम् ॥ ७८ ॥ परिमण्डलैर्गवा
श्छत्राकारैः शिरोभिरवनीशाः । चिपिटैः पितृमातृघ्नाः करो
रसां चिरान्मृत्युः ॥ ७९ ॥ घटमूर्धा ध्यानरुचिर्द्विमस्तकः
कृच्छ्रैस्त्यक्तः । निम्नं तु शिरो महतां बहुनिम्नमनर्थदं
॥८०॥ एकैकभवैः स्निग्धैः कृष्णैराकुञ्चितैरभिन्नाग्रैः।मृदुभिर्न
बहुभिः केशैः सुखभाग् नरेन्द्रो वा ॥ ८१ ॥ बहुमूलवि
पिला स्थूलस्फुटिताग्रपरुषह्रस्वाश्च । अतिकुटिलाश्चातिघ
मूर्धजा वित्तहीनानाम् ॥ ८२ ॥ यद्यद्गात्रं रूक्षं मांसविहीनं
वनद्धं च । तत्तदनिष्टं प्रोक्तं विपरीतमतः शुभं सर्वम् ॥
त्रिषु विपुलो गम्भीरस्त्रिष्वेव षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वः । सप्तसु रक्तो
पञ्चसु दीर्घश्च सूक्ष्मश्च ॥ ८४ ॥ उरो ललाटं वदनं च

है. वामभागमें टेढी रेखा हो तो बीस वर्षकी आयु होती है. छोटी रेखा हो
वर्षसेही कम आयु होती है. न्यून रेखा अर्थात् एक दो रेखा हों तोभी बीससे
आयु होती है, इन रेखाओंसे मध्यमें कल्पना करे आयु जान लो. जैसा ती
होनेसे सौ वर्ष और चार रेखा होनेसे पिचानवें वर्षकी आयु कहना, साढे ती
होनेसे साढे सतानवें वर्ष आयुकी कल्पना करनी चाहिये, ऐसेही औरभी ज
गोल शिर जिनका हो वे बहुत गायोंसे युक्त होते हैं, छत्रके आकार
विस्तीर्ण शिर हो तो राजा होते हैं. चपटे शिरके पुरुष माता पिताका वध
करोटिके आकार जिनका शिर हो वे बहुत दिन जीते हैं ॥ ७९ ॥ घटके
जिनका शिर हो वे पापी और निर्धन होते हैं. निम्न शिर जिनका हो वे
पुरुष होते हैं परन्तु अतिनिम्न हो तो अनर्थ करता है ॥८०॥ एक रोमकूपमें
रोम उत्पन्न हों, कृष्ण, स्निग्ध, आकुंचित (थोडेसे कुटिल) अग्र जिनके, न
हुए, कोमल और बहुत घने नहीं ऐसे केश जिन मनुष्योंके हों वे सुखी होते है
राजा होते हैं ॥८१॥ एक २ रोमकूपसे बहुतसे उत्पन्न हुए हों, कोई बडे
कपिल रंग, मोटे, आगेसे फटे हुए, रूखे, छोटे व बहुत कुटिल और बहुत
निर्धनोंके होते हैं ॥८२॥ जो जो अंग रूखा, मांससे हीन और नाडियोंसे
वह अंग अशुभ होता और जो अंग स्निग्ध, पुष्ट और नाडियोंसे रहित हो
होता है ॥८३॥ जिसके अंग विस्तीर्ण हों, तीन अंग गंभीर हों छः अंग ऊँचे
अंग ह्रस्व (छोटे) हों, सात अंग रक्तवर्ण हों, पांच अंग दीर्घ हों और पांच अं
हों वह राजा होता है ॥८४॥ छाती, ललाट और वदन यह तीन अंग

विस्तीर्णमेतत्त्रितयं प्रशस्तम् । नाभिः स्वरः सत्त्वमिति गम्भीरमेतत्त्रितयं नराणाम् ॥८५॥ वक्षोऽथ कक्षा नखनासि कृकाटिका चेति षडुन्नतानि । ह्रस्वानि चत्वारि च लिङ्ग ग्रीवा च जंघे च हितप्रदानि ॥८६॥ नेत्रान्तपादकरताल जिह्वा रक्ता नखाश्च खलु सप्त सुखावहानि । सूक्ष्माणि पञ्च नांगुलिपर्वकेशाः साकं त्वचा कररुहाश्च न दुःखितानाम् । हनुलोचनबाहुनासिकाः स्तनयोरन्तरमत्र पञ्चमम् । इति दी तु पञ्चकं न भवत्येव नृणामभूभृताम् ॥ ८८ ॥ इति छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती लक्ष्या मनुष्यपशु लक्षणज्ञैः । तेजोगुणान् बहिरपि प्रविकाशयन्ती दीपप्रभा करत्नघटस्थितेव ॥ ८९ ॥ स्निग्धद्विजत्वङ्नखरोमकेश सुगन्धा च महीसमुत्था । तुष्ट्यर्थलाभाभ्युदयान् धर्मस्य चाहन्यहनि प्रवृत्तिम् ॥ ९० ॥ स्निग्धा सिता रिता नयनाभिरामा सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान् कर

हों तो श्रेष्ठ होते हैं. नाभि, शब्द और सत्त्व (एक प्रकारका चितका गुण) गंभीर हों तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ होते हैं ॥८५॥ छाती, कक्ष्या (शरीरका मध्यभाग नासिका, मुख, कृकाटिका (घेंटू) ये छः अंग ऊंचे चाहिये, लिंग, पीठ, गरद जंघा यह चार ह्रस्व हों तो शुभ होते हैं ॥ ८६ ॥ नेत्रोंके अंत, पादतल, हस्त अधर (नीचेका ओष्ठ), जिह्वा, नख यह सात अंग रक्तवर्ण हों तो सुख दांत, अंगुलियोंके पोरुवे, केश, त्वचा (चर्म), नख यह पांच सूक्ष्म (पतले पुरुषोंके नहीं होते अर्थात् यह पांच जिनके सूक्ष्म हों वे सुखी रहते हैं ॥ हनु, नेत्र, भुजा, नासिका. दोनों स्तनोंका मध्यभाग यह पांच अंग दीर्घ रा बिना और मनुष्योंके नहीं होते. यह शरीरके अंगोंका शुभ अशुभ फल कहा लक्षण जाननेवाले पुरुषोंको मनुष्य, पशु और पक्षियोंमें शुभ अशुभ फल करती हुई और स्फटिक रत्नके घटमें स्थित दीपप्रभाकी भांति शरीरके भीत होकरभी तेजके गुणोंको बाहर प्रकाश करती हुई छाया (शरीरकांति) देख है ८९॥ जिस समय पुरुष आदिक ऊपर भूमिकी छाया हो तब उसके दांत नख, रोम, शिरके केश स्निग्ध रहते हैं और शरीरमें सुगंध रहती है वह छाया तुष्टि (चित्तपरितोष), धनका लाभ, अभ्युदय करती है दिन २ प्रवृत्ति करती है ॥ ९० ॥ जलकी छाया स्निग्ध, श्वेत, स्वच्छ और हरी व प्रिय लगनेवाली होती है. वह छाया सौभाग्य सब मनुष्योंकी प्रियता,

र्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया फलं तनुभृतां शुभमा-
ति ॥ ९१ ॥ चण्डाधृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः
ापैः। आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छि-
स्य धत्ते ॥ ९२ ॥ मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था
रति वधबन्धव्याध्यनर्थार्थनाशान्। स्फटिकसदृशरूपा भाग्य-
त्युदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ९३ ॥
ाः क्रमेण कुजलाग्न्यनिलाम्बरोत्थाः केचिद्वदन्ति दश ताश्च
नुपूर्व्या। सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोडुपानां तुल्यास्तु लक्षणफ-
ति तत्समासः ॥९४॥ इति मृजाः ॥ करिवृषरथौघभेरीमृदङ्ग-
ाब्दनिस्वना भूपाः।गर्दभजर्जररूक्षस्वराश्च धनसौख्यसन्त्यक्ताः
९ ॥ इति स्वरः ॥ सप्त भवन्ति च सारा मेदोमज्जात्वगस्थि-

सुख और अभ्युदय करती है, सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाली होती है और
की भांति पुरुष आदि जवोंको शुभ फल देती है ॥ ९१ ॥ अग्निकी छाया
धशील) अधृष्या (जिसका कोई तिरस्कार न कर सके), कमल, सुवर्ण
अग्निके तुल्य वर्ण, तेज पराक्रम और प्रतापसे युक्त होती है, ऐसी अग्निकी
जीवोंको जय देती है शीघ्रही वांछित अर्थकी सिद्धि करती है ॥ ९२ ॥
ी छाया मलीन, रूखी, काली और दुर्गन्धयुक्त होती है, वह छाया मरण
, रोग, अनर्थ और धनका नाश करती है. आकाशकी छाया स्फटिकके
। अति निर्मल होती है, वह छाया भाग्ययुक्त और अति उदार होती है
कल्याणोंका मानों निधान होती है और स्वच्छ होती है ॥ ९३ ॥ क्रमसे
जल, अग्नि, वायु और आकाशकी पांच छाया कही और गर्गादि
मुनि दश छाया कहते हैं, उनके मतमें पांच छाया तो भूमि आदिकी
पांच छाया सूर्य, विष्णु इन्द्र, यम और चन्द्रकी हैं, परन्तु इन छायाओंके
। और फल भूमि आदिकी छायाओंके बराबरही है कारण हमने दश
ाका संक्षेप करके पांच छाया रक्खी हैं, यह मृजा (पंचमहाभूतमयी छाया)
क्षण कहा है ॥ ९४ ॥ हाथी, वृष रथसमूह, भेरी, मृदंग, सिंह और मेघके
जिनका शब्द हो वे भूप होते हैं, जर्जर और रूखा जिनका स्वर हो वे धन,
सुखसे हीन होते हैं. यह स्वरका लक्षण कहा ॥ ९५ ॥ मेद (अस्थियोंके
का स्नेह), मज्जा (कपालके भीतरका स्नेह,), त्वचा (चर्म), अस्थि, वीर्य
(और मांस यह सात प्राणियोंके शरीरमें सार होते हैं, अब संक्षेपसे इनका

शुक्राणि । रुधिरं मांसं चेति प्राणभृतां तत्समासफलम्
ताल्वोष्ठदन्तपालीजिह्वानेत्रान्तपायुकरचरणैः । रक्तैस्तु
बहुसुखवनितार्थपुत्रयुता: ॥ ९७ ॥ स्निग्धत्वग्वा धनिनो
सुभगाविचक्षणास्तनुभिः । मज्जामेदस्साराःसुशरीराःपुत्रा
॥९८॥स्थूलास्थिरस्थिसारोबलवान् विद्यान्तगःसुरूपश्च॥इ
बहुगुरुशुक्राःसुभगाविद्वांसो रूपवन्तश्च ९९ ॥ उपचितदेह
धनी सुरूपश्च मांससारो यः । संघात इति च सुश्लिष्ट
सुखभुजो ज्ञेयाः॥१००॥इति संहतिः॥स्नेहःपञ्चसु लक्ष्यो व
दन्तनेत्रनखसंस्थः । सुतधनसौभाग्ययुताः स्निग्धैस्तैर्निर्ध
॥१०१॥इति स्नेहः॥द्युतिमान्वर्णःस्निग्धःक्षितिपानां मध्यम
वतामृरूक्षो धनहीनानां शुद्धःशुभदो न सङ्कीर्णः॥१०२॥इ
साध्यमनूकं वक्राद्गोवृषशार्दूलसिंहगरुडमुखाः । अ

फल कहा जाता है ॥ ९६ ॥ जिनके तालु, ओठ, दंत, मांस, जिह्वा, नेत्र
गुदा, हाथ, पैर रक्तवर्ण हों वह रुधिर सारवाले पुरुष बहुत सुख, स्त्री,
पुत्रोंसे युक्त होते हैं ॥ ९७ ॥ चिकनी त्वचा हो तो धनी होता है. कोम
हो तो सुभग होते हैं और पतली त्वचा हो तो पंडित होते है, मज्जा
जिनके शरीरमें सार हो उनका देह सुन्दर होता है ॥ ९८ ॥ अस्थि
शरीरमें हाड मोटे होते हैं. वह पुरुष बलवान्, विद्याके अंतको पहुँचनेवा
सुरूप होता है. जिनका वीर्य बहुत और गाढा होवे वीर्यसार होते हैं,
पुरुष सुभग विद्वान् और रूपवान् होते हैं ॥ ९९ ॥ पुष्टशरीरवाला प्राणि
होता है, मांससार मनुष्य विद्वान्, धनवान् और सुरूप होता है, यह सार
कहा, अंगोंकी संधियोंकी सुश्लिष्टताको संघात कहते हैं संघातवाले पुरुष
होते हैं ॥ १०० ॥ वचन, जीभ, दांत, नेत्र और नख इन पांचोंमें स्नि
देखना चाहते हैं, ये पांचों जिनके स्निग्ध हों वे पुत्र, धन और सौभाग्य
होते हैं और वह रूक्ष हों तो निर्धन होते हैं ॥ ११ ॥ गौर श्याम चाहे जि
रंगका शरीर हो, परन्तु वह वर्ण, स्निग्ध और कांतिमान् राजाओंका
मध्यम (न रूखा न स्निग्ध) वर्ण पुत्र और धनवालोंका होता है रूक्ष व
हीन पुरुषोंका होता है. स्निग्ध वर्ण शुभ होता है, संकीर्ण (कहीं रूक्ष कहीं
वर्ण शुभ नहीं होता, यह वर्णका लक्षण कहा ॥ १०२ ॥ मुखको देखकर
जानो, गौ, बैल, व्याघ्र, सिंह और गरुडके तुल्य जिनका मुख हो उनका

तापा जितरिपवो मानवेंद्राश्च ॥ १०३ ॥ वानरमहिषव
ह्यवदनाः सुतार्थसुखभाजः । गर्दभकरभप्रतिमैर्मुखैः
निःस्वसुखाः ॥ १०४ ॥ इत्यनूकम् ॥ अष्टशतं षण्णवतिः
चतुरशीतिरिति पुंसाम् । उत्तमसमहीनानामंगुलसंख्या
॥ १०५ ॥ इत्युन्मानम् ॥ भारार्धतनुः सुखभाक् तु
दुःखभागभवत्यूनः । भारोऽतीवाढ्यानामध्यर्धःसर्वधरणीशः
विंशतिवर्षा नारी पुरुषः खलु पञ्चविंशतिभिरब्दैः । अर्हो
न्मानं जीवितभागे चतुर्थे वा ॥ १०७ ॥ इति मानम् ।
शिख्यनिलाम्बरः सुरनररक्षःपिशाचकतिरश्चाम् । सत्त्वे
पुरुषो लक्षण मेतद्भवत्येषाम् ॥ १०८ ॥ महीस्वभावः
गन्धः सम्भोगवान् सुश्वसनः स्थिरश्च । तोयस्वभावो
पायी प्रियाभिभाषी रसभोजनश्च ॥ १०९ ॥ अग्निप्रकृ

शुभ होता है और वे पुरुष अप्रतिहत प्रताप व शत्रुओंको जीतनेवाले
होते हैं ॥ १०३ ॥ बंदर, महिष, सूकर और बकरेके तुल्य जिनके मुख
धन और सुखसे युक्त होते हैं, इनका पूर्वजन्म मध्यम है, गर्दभ और
जिनके मुख और शरीर हों, वे पुरुष निर्धन और सुखहीन होते हैं, इन
अशुभ है, यह अनूक (पूर्वजन्म) का लक्षण कहा है ॥१०४॥ अपने अं
सौ आठ अंगुल ऊंचा हो वह पुरुष उत्तम होता है, छयानवें अंगुल
मध्यम, चौरासी अंगुल ऊँचा अधम होता है, यह ऊँचाईका लक्षण क
अग्रसे शिरके मध्यम भागतक मापना चाहिये ॥१०५॥ दो हजार फल
होता है. जिस पुरुका बोझ आधा भार हो वह सुख भोगता है; इससे
दुःखी रहता है, एक भार (दो हजार पल) जिनका बोझ हो वे अ
होते हैं. डेढ भार (तीन हजार पल) जिनके शरीरका बोझ हो वे च
होते हैं॥१०६॥ बीस वर्षकी अवस्थामें स्त्री और पचीस वर्षकी अवस्थामें
और तौलने चाहिये अथवा गणित आदिसे जितना उनका आयु नि
उसकी चौथाई बीतचुके उस समय नापे और तोले ॥१०७॥ भूमि, जल,
आकाश, देवता, मनुष्य, राक्षस, पिशाच और पशु पक्षी इनका सत्त्व
पुरुषमें होता है उनका यह लक्षण कहते हैं ॥ १०८ ॥ पृथ्वीकी
मनुष्यकी सुन्दर कमलादि पुष्पोंके समान गंध होती है, वह पुरुष भो
श्वासवाला और स्थिरस्वभावी होता है, जलप्रकृतिका मनुष्य बहुत

लोऽतितीक्ष्णश्चण्डः क्षुधालुर्बहुभोजनश्च । वायोः स्वभा
कृतश्च क्षिप्रं च कोपस्य वशं प्रयाति ॥ ११० ॥ खप्रकृ
विवृतास्यः शब्दगतेः कुशलः सुषिराङ्गः । त्यागयुतः पु
कोपः स्नेहरतश्च भवेत् सुरसत्त्वः ॥ १११ ॥ मर्त्यसत्त्वसंयु
भूषणप्रियः । संविभागशीलवान्नित्यमेव मानवः ॥ ११२
प्रकोपः खलचेष्टितश्च पापश्च सत्त्वेन निशाचराणाम् । पि
त्त्वश्चपलो मलाक्तो बहुप्रलापी च समुल्बणाङ्गः ॥ ११३
क्षुधालुर्बहुभुक् च यः स्याज्ज्ञेयः स सत्त्वेन नरस्तिरश्च
नराणां प्रकृतिः प्रदिष्टा यल्लक्षणज्ञाः प्रवदन्ति सत्त्वम् ॥
इति प्रकृतिः ॥ शार्दूलहंससमदद्विपगोपतीनां तुल्या
गतिभिः शिखिनां च भूपाः । येषां च शब्दरहितं स्तिमि
तेऽपीश्वरा द्रुतपरिप्लुतगा दरिद्राः ॥ ११५ ॥ इति गतिः
स्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य पानं तृषापरिगतस्य भये

मीठा बोलनेवाला और मधुर आदि रस भोजन करनेमें रुचिवान् होता
अग्निप्रकृतिका मनुष्य चपल, अतितीक्ष्ण और क्रूर होता है. क्षुधाको नहीं
बहुत भोजन करता है. वायुप्रकृतिका मनुष्य चंचल, दुर्बल और शीघ्रही
हो जाता है ॥११०॥ आकाशप्रकृतिका मनुष्य सब काममें निपुण, खुले
शब्दगति (गीतविद्या) में कुशल और उसके अंग छिद्रयुक्त होते हैं. दे
मनुष्य त्यागी, अल्पक्रोध और प्रीतियुक्त होता है ॥१११॥ मनुष्यप्रकृतिवे
गीत और भूषण प्रिय होते हैं. वह नित्य बांधवोंके ऊपर उपकार करने
शीलवान् होता है ॥ ११२ ॥ राक्षस प्रकृतिका मनुष्य बहुत क्रोधी, दुष्ट
पापी होता है. पिशाच प्रकृतिका मनुष्य चंचल, मलीन शरीर, बहुत
और स्थूल अंगोंसे युक्त होता है ॥ ११३ ॥ तिर्यक्प्रकृतिका मनुष्य
भूंख न सहनेवाला और बहुत भोजन करनेवाला जानना चाहिये, इस
ष्योंकी प्रकृति कही. जिस प्रकृतिको पुरुषलक्षण जाननेवाले विद्वान् सत
यह प्रतिका लक्षण कहा ॥ ११४ ॥ शार्दूल, हंस, मस्त हाथी, बैल
समान जिनकी गति हो वे राजा होते हैं. जिनकी गति शब्दरहित
वे भी धनवान् होते हैं. शीघ्र और मेंडककी भांति उछलते हुए पुरुष
पुरुष दरिद्री होते हैं. यह गतिका लक्षण कहा ॥११५॥ थके हुए को या
भूंखेको भोजन, प्यासेको जल आदि पान और भयके समय रक्षा य

। यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले धन्यं खलु तं नरलक्षणज्ञाः
६ ॥ पुरुषलक्षणमुक्तमिदं मया मुनिमतान्यवलोक्य समा-
। इदमधीत्य नरो नृपसम्मतो भवति सर्वजनस्य च
: ॥ ११७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुरुषलक्षणं नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः।

पंचमहापुरुषलक्षणम्।

ाराग्रहैर्बलयुतैः स्वक्षेत्रस्वोच्चगैश्चतुष्टयगैः। पञ्च पुरुषाः प्रश-
जायन्ते तानहं वक्ष्ये ॥ १ ॥ जीवेन भवति हंसः सौरेण शशः
रुचकश्च। भद्रो बुधेन बलिना मालव्यो दैत्यपूज्येन ॥२॥
महीनं सूर्याच्छारीरं मानसं च चन्द्रबलात्। यद्राशिभेदयु-
ौ तल्लक्षणः स पुमान् ॥ ३ ॥ तद्धातुमहाभूतप्रकृतिद्युतिव-

ुरुषको अवसरके ऊपर प्राप्त हों मनुष्य लक्षणवाले उस पुरुषको धन्य (शुभ-
) कहते हैं ॥ ११६ ॥ अनेक मुनियोंके मत देखकर संक्षेपसे यह पुरुष लक्षण
कहा, इसको पढकर मनुष्य राजाका मान्य और सब मनुष्योंका प्यारा
है ॥ ११७ ॥

ीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
ेडतबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

म आदि पांच ग्रह स्थान, दिक, चेष्टा और कालबलसे युक्त हों अपने राशि
उच्चमें स्थित होकर लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम स्थानमें बैठें तौ पांच उत्तम
उत्पन्न होते हैं उनको हम कहते हैं ॥१॥ बृहस्पति बलवान् होकर स्वाराशि
स्वोच्चमें स्थित होकर जिसके केंद्रमें बैठे हों; वह पुरुष हंस होता है, शनैश्चरके
शश होता है, मंगलसे रुचक, बुध बलवान् हो तो भद्र और शुक्रके होनेसे
य नाम पुरुष होता है ॥ २ ॥ सूर्यके बलसे उस पुरुषका परिपूर्ण सत्व और
े बलसे शरीरके व मनके गुण होते हैं, सूर्य, चन्द्र जिस ग्रहके राशि, द्रेष्काण
, द्वादशांश, त्रिंशांशमें बैठे हो उस ग्रहके धातु, महाभूत, प्रकृति, कांति, वर्ण,
रूप आदि लक्षणोंसे युक्त वह पुरुष होता है, बलयुक्त सूर्य, चन्द्र जिस ग्रहके

र्णसत्त्वरूपाद्यैः। अबलरवीन्दुयुतैस्तैः सङ्कीर्णा लक्षणैः पु
भौमात्सत्त्वं गुरुता बुधात्सुरेज्यात्स्वरः सितात्स्नेहः। व
देषां गुणदोषैः साध्वसाधुत्वम् ॥ ५ ॥ सङ्कीर्णाः स्युर्न नृ
तेषां भवंति सुखभाजः। रिपुगृहनीचोच्चच्युतसत्पापनि
॥ ६ ॥ षण्णवतिरंगुलानां व्यायामो दीर्घता च हंसस्य
चकभद्रमालव्यसंज्ञिताख्यंगुलविवृद्ध्या ॥ ७ ॥ यः सा
स्य दया स्थिरत्वं सत्त्वार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः। र
काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः ॥ ८ ॥ त
वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः।
सत्त्वरजस्तमोभिर्मिश्रास्तु ते सप्त सह प्रभेदैः ॥ ९ ।
नागनासासमभुजयुगलो जानुसम्प्राप्तहस्तो मांसैः पूण
समरुचिरतनुर्मध्यभागे कृशश्च। पञ्चाष्टौचोर्ध्वमा

राशिभेदमें बैठे, उस ग्रहके धातु आदि लक्षणों करके युक्त वह पुरुष
निर्बल सूर्य चन्द्र होकर राशिभेदमें बैठे तो संकीर्ण (मिले हुए) लक्षणों
पुरुष होते हैं॥३॥४॥ मंगलसे शौर्य, बुधसे गुरुता, बृहस्पतिसे स्वर, शुक्र
शनैश्चरसे कांति होती है, भौम आदि ग्रह बलवान् हों तो सत्त्वादि अ
निर्बल हों तो सत्त्वादिका अभाव होता है ॥५॥ संकीर्ण लक्षणवाले
नहीं होते, केवल पूर्वोक्त भौमादि ग्रहोंकी दशामें सुख भोगते हैं, शत्रु
नीचसे और उच्चसे निकलना शुभ ग्रह और पाप ग्रहोंकी दृष्टि इन सब
पुरुषोंकी संकीर्णता होती है ॥६॥ छियानवें अंगुल ऊंचाई और छि
व्यायाम (दोनों भुजा पसारकर चौडाई) हंसका होता है, इनमें तीन
बढाते जांय तो क्रमानुसार शश, रुचक, भद्र और मालव्यकी ऊंचाई अ
मान होता है ॥ ७ ॥ सात्त्विक पुरुषको दया, स्थिरता, जीवोंके साथ सर
और देवताओंमें भक्ति होती है, रजोगुणी पुरुष काव्य, नृत्यगीतादि
और स्त्रियोंमें आसक्त ओर अत्यन्त शूरवीर होता है ॥८॥ तमोगुणी पु
ठगनेवाला, मूर्ख आलसी, क्रोधी और बहुत सोनेवाला होता है, सत्त्व,
तीनों गुण मिलनेसे मिश्र स्वभावके पुरुष होते हैं, जैसा सत्त्वरज, सत्त्वतम,
रजतम चार भेद यह और तीन भेद एक २ गुण करके पहले कहे इस भां
रके पुरुष होते हैं॥९॥मालव्यपुरुषके दोनों हाथ हाथीकी शुंडके समान हो

विवरमपि त्र्यंगुलोनं च तिर्यग् दीप्ताक्षं सत्कपोलं समशि
नातिमांसाधरोष्ठम् ॥ १० ॥ मालवान् समरुकच्छसुराष्ट्रा
सिन्धुविषयप्रभृतींश्च। विक्रमार्जितधनोऽवति राजा पारि
लयः कृतबुद्धिः ॥ ११ ॥ सप्ततिवर्षो मालव्योऽयं त्यक्ष्यति
कप्राणांस्तीर्थे। लक्षणमेतत् सम्यक् प्रोक्तं शेषनराणां चा
॥१२॥ उपचितसमवृत्तलम्बबाहुर्भुजयुगलप्रमितः समुच्छ्र
मृदुतनुघनरोमनद्धगण्डो भवति नरः खलु लक्षणेन भद्रः।
त्वक्शुक्रसारः पृथुपीनवक्षाः सत्त्वाधिको व्याघ्रमुखः स्थि
क्षमान्वितो धर्मपरः कृतज्ञो गजेन्द्रगामी बहुशास्त्रवेत्ता।
प्राज्ञो वपुष्मान् सुललाटशंखः कलास्वभिज्ञो धृतिमान् सु

उसके हाथ पहुँचते हैं अंगोंकी सब संधि मांससे पुष्ट होती हैं. शरीर स
होता है, मध्यभाग कृश होता है, ऊर्ध्वमान करके ठोडीसे ललाटत
ऊंचाई तेरह अंगुल होती है और ठोडीसे कर्ण छिद्रतक तिरछी चौडाई
होती है. उस पुरुषका मुख दीप्त नेत्र, सुन्दर कपोल, समान और श्वेत
नीचेके ओष्ठ करके युक्त होता है ॥१०॥ वह मालव्य पुरुष मालव,
(भरुच), सुराष्ट्र (सूरत) लाट, सिंधु आदि देशोंका पालन करता है, प
संपादन करता है, राजा होता है, पारियात्र पर्वतमें निवास करनेवालोंव
करता वं शुभ बुद्धियुक्त होता है ॥ ११॥ सत्तर वर्ष आयु भोगकर य
पुरुष भली भांति तीर्थपर प्राण त्यागता है, मालव्यका लक्षण अच्छे प्र
अब भद्रादि शेष मनुष्योंका लक्षण कहते हैं ॥ १२ ॥ भद्र पुरुषके पुष्ट
गोल और लम्बे बाहु होते हैं, भुजा पसारनेसे जितनी चौडाई हो उतनी
ऊंचाई होती है; कोमल सूक्ष्म और घने रोमोंसे युक्त उसके कपोल हं
लक्षणोंसे बुधके योगसे भद्रसंज्ञक पुरुष होता है ॥१३॥ भद्रपुरुष त्वकसा
सार होता है, विस्तीर्ण और पुष्ट वक्षस्थलवाला होता है, सत्त्व अधिक
व्याघ्रके समान मुखवाला स्थिरस्वभाव, क्षमायुक्त, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गजे
गतिवाला और बहुत शास्त्र जाननेवाला ॥१४॥ बुद्धिमान्, सुन्दर शरीर
ललाट और कनपटीवाला, नृत्य गीत आदि कलाओंमें अभिज्ञ, धैर्ययु
कमलगर्भके समान कांतियुक्त, हस्तपादों करके युक्त, योगी, सुंदर
समान और मिले हुए भ्रुओं करके युक्त होता है ॥ १५ ॥ नये जलसे

सरोजगर्भद्युतिपाणिपादो योगी सुनासः समसंहतभ्रूः ॥१५॥ न
म्बुसिक्तावनिपत्रकुंकुमद्विपेन्द्रदानागुरुतुल्यगंधता । शिरोरुहा
कजकृष्णकुञ्चितास्तुरङ्गनागोपमगूढगुह्यता ॥ १६ ॥ हलमुशल
दासिशंखचक्रद्विपमकराब्जरथाङ्कितांघ्रिहस्तः । विभवमपि ज
ऽस्य बोभुजीति क्षमति हि न स्वजनं स्वतन्त्रबुद्धिः ॥ १७
अंगुलानि नवतिश्च षडूनान्युच्छ्रयेण तुलयापि हि भारः । म
देशनृपतिर्यदि पुष्टारुच्यादयोऽस्य सकलावनिनाथः ॥१८॥ भुक
सम्यग्वसुधां शौर्येणोपार्जितामशीत्यब्दः । तीर्थे प्राणांस्त्यक्
भद्रो देवालयं याति ॥ १९ ॥ ईषद्दन्तुरकस्तनुद्विजनखः व
क्षणः शीघ्रगो विद्याधातुवणिक्क्रियासु निरतः सम्पूर्ण
ण्डः शठः । सेनानीः प्रियमैथुनः परजनस्त्रीसक्तचित्तश्च
शूरो मातृहितो वनाचलनदीदुर्गेषु सक्तः शशः ॥ २०
दीर्घोऽङ्गुलानां शतमष्टहीनं साशङ्कचेष्टःपररन्ध्रविच्चासारोऽस्य म
निभृतप्रचारः शशो ह्ययं नातिगुरुःप्रदिष्टः॥२१॥मध्ये कृशः ख

भूमिकी गंधके समान, पत्र (तजपत्र) केशर, हाथीका मद, अगर या इनके गंध श
शरीरमें हो, शिरके केश एक २ रोमकूपमें एक २ उत्पन्न हों, काले और कुंचित
घोडे अथवा हाथीके तुल्य उसका गुह्य (लिंग) गुप्त रहे ॥१६॥ हल, मूसल,
खड्ग, शंख, चक्र, हाथी, मकर, कमल और रथके तुल्य रेखा उसके हाथ
होती हैं. इसके ऐश्वर्यको औरभी मनुष्य भोगते हैं, अपने बन्धुजनोंको नहीं स
और स्वच्छन्दचारी होता है ॥१७॥ चौरासी अंगुल ऊंचा होता है, उस पुरुषके
रका भार, एक तुला, (दो हजार पल) होता है, वह मध्यदेशका राजा होता है.
तीन २ अंगुलकी वृद्धिसे शशादि, पुरुषोंकी ऊंचाई एक सौ आठ अंगुलतक
यदि वह एक सौ आठ अंगुल ऊंचाई इस भद्र पुरुषकी हो तो चक्रवर्ती
होता है ॥ १८ ॥ शौर्यसे सम्पादन करे हुए भूमंडलको भली भांति भोग
अस्सी वर्षकी अवस्थामें तीर्थपर प्राण त्यागकर भद्र पुरुष स्वर्गको जात
॥ १९ ॥ शनैश्चरके योगसे उत्पन्न हुए शशनामक पुरुषके दांत कुछ ऊंचे,
और दांत कुछ छोटे हों, नेत्रकोश पुष्ट हों तो शीघ्रगामी होता है, वि
धातु और व्यापार आदिमें आसक्त होता, पुष्ट कपोलवाला स्वकार्यसा
सेनाका अधिपति, प्रियमैथुन, परस्त्रीसक्त, चञ्चल, शूर, माताका
वन, पर्वत, नदी और किलामें आसक्त होता है ॥ २० ॥ शशपुरुष बानवें अं
ऊंचा होता है, सब कार्योंमें शंकित, औरोंसे छिद्र जाननेवाला है, मज्जा
स्थिरगति और बहुत स्थूल नहीं होता है ॥ २१ ॥ शशपुरुषका मध्य

वङ्गवीणापर्यंङ्कमालामुरजाऽनुरूपाः । शूलोपमाश्चोर्ध्वगताश्च
गाः शशस्य पादोपगताः करे वा ॥ २२ ॥ प्रात्यन्तिको माण्ड-
कोऽथवायं स्फिक्स्रावशूलाऽभिभवार्तमूर्तिः । एवं शशः सप्तति-
यनोऽयं वैवस्वतस्यालयमभ्युपैति ॥ २३ ॥ रक्तं पीनकपोलमु-
नसं वक्त्रं सुवर्णोपमं वृत्तं चास्य शिरोऽक्षिणी मधुनिभे सर्वे च
का नखाः । स्रग्दामांकुशशंखमत्स्ययुगुलक्रत्वङ्गकुम्भांबुजैश्चिह्नै-
कलस्वनः सुचरणो हंसः प्रसन्नेन्द्रियः ॥ २४ ॥ रतिरम्भसि शुक्र-
रता द्विगुणे चाष्टशतैः पलैर्मितिः । परिमाणमथास्य षड्युता
तिः सम्परिकीर्तिता बुधैः ॥ २५ ॥ भुनक्ति हंसः खसशूरसे-
न् गान्धारगङ्गायमुनान्तरालम् । शतं दशोनं शरदां नृपत्वं कृत्वा
नान्ते समुपैति मृत्युम् ॥ २६ ॥ सुभ्रूकेशो रक्तश्यामः कम्बु-
वो व्यादीर्घास्यः । शूरः क्रूरः श्रेष्ठो मन्त्री चौरस्वामी व्याया-

---

श होता है, उसके पैरोंमें अथवा हाथोंमें ढाल, तलवार, वीणा, माला, मृदंग
र त्रिशूलके आकारकी रेखा व ऊर्ध्व रेखा होती है ॥ २२ ॥ शशपुरुष म्लेच्छ
शका राजा होता है या और कहीं मांडालिक राजा होता है, स्फिक्, स्राव और
लकी पीडा द्वारा पीडित शरीर रहता है, इस प्रकार यह शशपुरुष सत्तर वर्षकी
वस्थामें मृत्युके वश होता है ॥ २३ ॥ बृहस्पतिके योगसे उत्पन्न हुए शशपुरुषका
ख रक्तवर्ण, पुष्ट कपोलोंसे युक्त, ऊँची नासिकावाला, सुवर्णके समान कांतियुक्त
ोल शिरवाला, शहतके रंगके समान नेत्र होते हैं, सब नख रक्तवर्ण होते हैं, माला,
स्सा; अंकुश, शंख, दो मत्स्य, यज्ञके अंग, स्रुक् आदि, कलश और कमलके
रेखा उसके हाथ पैरोंमें होती हैं, हंसके समान मधुर स्वर, सुन्दर चरणवाला
ौर उसकी सब इन्द्रियां निर्मल होती हैं ॥ २४ ॥ इस हंस पुरुषकी जलमें प्रीति होती
, शुक्रसार होता है, छियानवें अंगुल इसकी ऊँचाई पंडितोंने कही है ॥ २५ ॥ हंस
ुरुष खश, शूरसेन गांधार, कंधार और अंतर्वेद देशको भोगता है, नब्बे वर्ष राज्य
ोगकर वनमें मृत्युके वश होता है ॥ २६ ॥ भौमके योगसे उत्पन्न हुआ रुचक
ाम पुरुष सुन्दर भौं और केशोंसे युक्त होता है, रक्तश्यामवाला, शंखके तुल्य
ीवावाला और लम्बे मुख करके युक्त, शूर, क्रूर, श्रेष्ठ मंत्री, चोरोंका स्वामी और
रिश्रमी होता है ॥ २७ ॥ रुचकके मुखकी जितनी लम्बाई हो वही मध्यभागकी
चतुरस्रताका प्रमाण होता है. मुखकी ऊँचाईका चौगुना करनेसे मध्यभागकी

मी च ॥ २७ ॥ यन्मात्रमास्यं रुचकस्य दीर्घं मध्यप्रदेशे च
रस्तता सा । तनुच्छविः शोणितमांससारो हन्ता द्विषां साहसा
द्धकार्यः ॥ २८ ॥ खट्वाङ्गवीणावृषचापवज्रशक्तीन्दुशूलाङ्कित
णिपादः । भक्तो गुरुब्राह्मणदेवतानां शताङ्गुलः स्यात्तु सहस्रम
॥ २९ ॥ मन्त्राभिचारकुशलः कृशजानुजंघो विन्ध्यं ससह्यगि
मुज्जयिनीं च भुक्त्वा । सम्प्राप्य सप्ततिसमा रुचको नरेन्द्रः शस्
मृत्युमुपयात्यथ वानलेन ॥ ३० ॥ पञ्चापरे वामनको जघ
कुब्जोऽपरो मण्डलकोऽथ सामी । पूर्वोक्तभूपानुचरा भवन्ति सं
र्णसंज्ञाः शृणु लक्षणैस्तान् ॥ ३१ ॥ सम्पूर्णाङ्गो वामनो भग्न
किञ्चिच्चोरुमध्यकक्षान्तरेषु । ख्यातो राज्ञो ह्येष भद्रानुजीवी स्
तो दाता वासुदेवस्य भक्तः ॥ ३२ ॥ मालव्यसेवी तु जघ
नामा खण्डेन्दुतुल्यश्रवणः सुगन्धिः । शुक्रेण सारः पिशु
कविश्च रूक्षच्छविः स्थूलकराङ्गुलीकः ॥ ३३ ॥ क्रूरो ध

मोटाई होती है, थोडी कांतिवाला, रुधिर मांससार होता है, शत्रुओंको मारनेव
और उसके कार्य साहससे सिद्ध होते हैं ॥ २८ ॥ खट्वांग, वीणा, वृष, ध
वज्र, बर्छी, चन्द्रमा और त्रिशूलके आकारकी रेखाओंसे रुचक पुरुषके हाथ,
चिह्नित होते हैं, गुरु, ब्राह्मण और देवताओंका भक्त होता है; सौ अंगुल
होता है और उसके शरीरका भार एक हजार पल होता है ॥ २९ ॥ वह रु
पुरुष मन्त्र और मारण उच्चाटनादि आभिचार कर्ममें कुशल होता है, उसके
और जंघा कृश होते हैं, विन्ध्याचल, सह्याद्रि और उज्जयिनीके देशोंमें राज्य
कर सत्तर वर्षकी आयुमें रुचक राजा शस्त्रसे या अग्निसे मृत्युको प्राप्त होत
॥ ३० ॥ इन पांच महापुरुषोंको छोड और पांच पुरुष संकीर्ण संज्ञाके होते
वामनक, जघन्य, कुब्ज, मंडलक और सामी यह पूर्वोक्त पांच राजाओंके से
होते हैं, अब इन पांचोंके लक्षण सुनो ॥ ३१ ॥ वामनके सब अंग संपूर्ण होते
पीठ टूटी होती है, उरु, मध्यभाग और कक्ष्यान्तरमें किंचित् (असम्पूर्ण)
है, वह वामन नामक पुरुष प्रसिद्ध होता है, पांच राजाओंके बीच भद्रन
राजाका अनुजीवी होता है. स्फीत, दाता और नारायणका भक्त होता है ॥ ३
जघन्य नामक पुरुष मालव्यराजाका सेवक होता है, उसके कर्ण अर्धचन्द्रके ह
होते हैं, सुन्दर गंधसे युक्त होता है. शुक्रसार होता है, पिशुन (सूचक) और
होता हैं. शरीरकांति रूखी होती है, उसके हाथोंकी अंगुली मोटी होती हैं ॥ ३
वह पुरुष क्रूर, धनवान्, स्थूल बुद्धि और प्रसिद्ध होता है, तांबेके रंगसा उसका

थूलमतिः प्रतीतस्ताम्रच्छविः स्यात्परिहासशीलः।उरोऽङ्घ्रिहस्ते-
ऽसिशक्तिपाशपरश्वधाङ्कश्च जघन्यनामा ॥ ३४ ॥ कुब्जो नाम्ना
ः स शुद्धो ह्यधस्तात् क्षीणः किञ्चित्पूर्वकाये नतश्च। हंसासेवी
ास्तिकोऽर्थैरुपेतो विद्वाञ्छूरः सूचकः स्यात् कृतज्ञः ॥ ३५ ॥
ळास्वभिज्ञः कलहप्रियश्च प्रभूतभृत्यः प्रमदाजितश्च। सम्पूज्य
ोकं प्रजहात्यकस्मात् कुब्जोऽयमुक्तः सततोद्यतश्च ॥ ३६ ॥
ण्डलकनामधेयो रुचकानुचरोऽभिचारवित्कुशलः। कृत्यावेता-
ादिषु कर्मसु विद्यासु चानुरतः ॥ ३७ ॥ वृद्धाकरः खररूक्षमू-
ंजः शत्रुनाशने कुशलः। द्विजदेवयज्ञयोगप्रसक्तधीः स्त्रीजितो
ातिमान् ॥ ३८ ॥ सामीति यः सोऽतिविरूपदेहः शशानुगामी
लु दुर्भगश्च। दाता महारम्भसमाप्तकार्यो गुणैः शशस्यैव भवेत्
मानः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चमहापुरुषलक्षणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

ोता है, हँसनेमें उसकी रुचि रहती है, उस जघन्य नाम पुरुषके छाती, पैर और ाथमें तरवार, बर्छी, पाश और परशुके आकारकी रेखा होती हैं ॥ ३४ ॥ कुब्ज ामक पुरुष नाभिसे नीचे परिपूर्णांग और नाभिसे ऊपर कुछ क्षीण और नत ोता है, हंसनामक राजाका सेवन करता है, वह नास्तिक, धनवान्, विद्वान्, क्रूर ूचक और कृतज्ञ होता है ॥ ३५ ॥ कुब्ज पुरुष कलाओंमें अभिज्ञ, कलहप्रिय हुत सेवकोंसे युक्त, स्त्रीजित होते हैं, लोकका सत्कार करके अकस्मात् छोड ेता है. यह कहा हुआ कुब्जपुरुष सब कालमें उत्साहयुक्त रहता है ॥ ३६ ॥ ंडलक नामक पुरुष रुचक नाम राजाका सेवक होता है, अभिचार कर्म जानने ाला. कुशल, कृत्या, वेतालोत्थापन आदि कर्मोंमें और विद्याओंमें अनुरागी होता है ॥ ३७ ॥ वृद्धके तुल्य आकारवाला, कठोर और रूखे केशवाला, शत्रु-नाश करनेमें कुशल ब्राह्मण, देवता, यज्ञ और योगमें बुद्धि लगानेवाला, स्त्रीजित और बुद्धिमान् होता है ॥ ३८ ॥ सामीनामक पुरुष अतिकुरूपदेह होता है वह शश-नामक राजाको सेवक, दानी, बडे २ कार्योंका आरंभ करके उन कार्योंको समाप्त करता है, गुणों करके शशके ही समान वह सामी पुरुष होता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः ।

स्त्रीलक्षणम्.

स्निग्धोन्नताग्रतनुताम्रनखौ कुमार्याः पादौ समोपचितचा
गूढगुल्फौ । श्लिष्टांगुली कमलकान्तितलौ च यस्यास्तामुद्वह
भुवोऽधिपतित्वमिच्छेत् ॥ १ ॥ मत्स्यांकुशाब्जयववज्रहलाि
ह्यावस्वेदनौ मृदुतलौ चरणौ प्रशस्तौ । जंघे च रोमरहिते वि
सुवृत्ते जानुद्वयं सममनुल्बणसन्धिदेशम् ॥ २ ॥ ऊरू घनौ
करप्रतिमावरोमावश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं च गुह्यम् । श्रोणील
मुरु कूर्मसमुन्नतं च गूढो मणिश्च विपुलां श्रियमादधाति ॥
विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो गुरुश्च धत्ते रसनाकलापम् ।
गंभीरा विपुलाङ्गनानां प्रदक्षिणावर्तगता प्रशस्ता ॥ ४ ॥
स्त्रियास्त्रिवलियुक्तमरोमशं च वृत्तौ घनावविषमौ कठिणावुर
रोमापवर्जितमुरो मृदु चाङ्गनानां ग्रीवा च कम्बुनिचित
खानि धत्ते ॥ ५ ॥ बन्धुजीवकुसुमोपमोऽधरो मांसलो रु

जो भूमिपति होना चाहे तो जिस कन्याके पांव स्निग्ध, ऊँचे और
पतले, लाल रगके नखोंवाले, समान, पुष्ट, सुन्दर, छिपे हुए गुल्फों (टंकनो
युक्त अंगुली परस्पर श्लिष्ट हों और कमलकी कांतिके तुल्य जिनके तलोंकी
हो उससे विवाह करे ॥ १ ॥ मत्स्य, अंकुश, कमल, जौ वज्र, हल और
आकारकी जिनमें रेखा हों, पसीना नहीं आता हो, कोमल जिनके तल ह
चरण श्रेष्ठ होते हैं, रोमरहित, नाडियोंसे रहित, सुन्दर, गोल जंघा हों
जानु समान हों और उनकी संधि (जोड) स्थूल न हो, दोनों ऊरु पुष्ट ह
शुंडके आकार और रोमहीन हों पीपलके पत्तेके आकार और विस्तीर्ण गुह्य
हो श्रोणी (कटि) उपरि भाग विस्तीर्ण और कूर्मके समान उन्नत हो मा
ऐसे लक्षण हों तो बहुत लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ ३ ॥ विस्तीर्ण मांस
और भारी नितम्बवाली, कांचीकलापयुक्त, गंभीर विस्तीर्ण और दक्षि
नाभिवाली स्त्रियें शुभ होती हैं ॥ ४ ॥ स्त्रीका मध्यभाग त्रिवलीसे युक्त,
हीन, दोनों स्तन गोल पुष्ट, समान और कठोर हों, रोमरहित और कोमल
गरदन शंखके तुल्य, तीन रेखाओंसे युक्त हो तो धन और सुख देती है
बधुजीवपुष्प (गुलदुपहरी) के तुल्य अतिरक्तवर्ण, मांसल, सुन्दर बिम्ब
रूपको धारण करनेवाला अधर (नीचेका ओष्ठ) हो, कुंदपुष्पकी

बिम्बरूपभृत् । कुन्दकुड्मलनिभाः समा द्विजा योषितां प
स्वामितार्थदाः ॥ ६ ॥ दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टहंसवल्गु प्रभ
तमदीनमनल्पसौख्यम् । नासा समा समपुटा रुचिरा प्रश
दृङ्नीलनीरजदलद्युतिहारिणी च ॥ ७ ॥ नो सङ्गते नातिपृ
लम्बे शस्ते भ्रुवौ बालशशाङ्कवक्रे । अर्धेन्दुसंस्थानमरोमशं
शस्तं ललाटं न नतं न तुङ्गम् ॥ ८ ॥ कर्णयुग्ममपि युक्तम
शस्यते मृदु समं समाहितम् । स्निग्धनीलमृदुकुंचितैकजा मू
सुखकराः समं शिरः ॥ ९ ॥ भृङ्गारासनवाजिकुञ्जररथश्रीवृक्ष
षुभिर्मालाकुण्डलचामरांकुशयवैः शैलैर्ध्वजैस्तोरणैः । मत्स्य
स्तिकवेदिकाव्यजनकैः शंखातपत्राम्बुजैः पादे पाणितलेऽपि
युवतयो गच्छन्ति राज्ञीपदम् ॥ १० ॥ निगूढ मणिबन्धनौ
णपद्मगर्भोपमौ करौ नृपतियोषितां तनुविकृष्टपर्वांगुली । न
मति नोन्नतं करतलं सुरेखान्वितं करोत्यविधवां चिरं सुतसु
सम्भोगिनीम् ॥ ११ ॥ मध्यांगुलिं या मणिबन्धनोत्था रेखा

तुल्य और समान दांत हों तो स्त्रियोंको पति सुख और बहुत धन देनेवा
हैं ॥ ६ ॥ सरलतायुक्त, शठतासे रहित, कोकिल और हंसके शब्दके तुल्य व
और दीनतासे रहित वचनवाली बहुत सुख देती है. समान, सम पुटोंसे युक्त
नासिकावाली श्रेष्ठ होती है, नीलकमलके दलोंकी कांतिको हरनेवाली दृष्टि श्
है ॥ ७॥ दोनों मिले न हों, बहुत चौडे, लम्बे न हों और बालचन्द्रके आ
भ्रू हों तो शुभ होते हैं. अर्धचन्द्रके आकार, रोमहीन, न नीचा और न ऊँच
शुभ होता है॥८॥ दोनों कान थोडे मांस करके युक्त हों, कोमल, समान औ
हों तो शुभ होते हैं. स्निग्ध, अतिकृष्णवर्ण, कोमल, कुंचित, एक२ रोमकूपमें
उत्पन्न ऐसे केश सुख करते हैं. शिरभी सम, न निम्न हो न उन्नत हो तो शु
है ॥९॥ जिन स्त्रियोंके पांवतलोंमें अथवा हस्ततलोंमें भृंगार (झारी), आस
हाथी, रथ, बिल्ववृक्ष, यज्ञस्तंभ, बाण, माला, कुंडल, चामर, अंकुश, यव, प
तोरण, मत्स्य, स्वस्तिक, यज्ञवेदी, व्यजन (पंखा), शंख, छत्र और कमलके
रकी रेखा हों वे स्त्री राजाकी रानी होती हैं ॥१०॥ निगूढ मणिबंधन अर्थात्
पहुँचे ऊँचे न हों, नवीन कमलके गर्भसमान पतले और लंबे पोरुवोंवाली अं
युक्त हाथ रानियोंके होते हैं, न बहुत नीचा न ऊंचा और उत्तम रेखाओंसे यु
जिस स्त्रीकी हो वह विधवा नहीं होती और बहुत काल पुत्रसुख और धन
करती है ॥ ११ ॥ स्त्रीके अथवा पुरुषके हाथमें पहुँचेसे निकलकर मध्य

पाणितलेऽङ्गनायाः। ऊर्ध्वस्थिता पादतलेऽथवा या पुंसोऽथव
राज्यसुखाय सा स्यात् ॥ १२ ॥ कनिष्ठिकामूलभवा गता य
प्रदेशिनीमध्यमिकान्तरालम्। करोति रेखा परमायुषः सा प्रमा
णमूना तु तदूनमायुः ॥ १३ ॥ अंगुष्ठमूले प्रसवस्य रेखाः पुत्र
वहत्यः प्रमदास्तु तन्व्यः। अच्छिन्नमध्य बृहदायुषां ताः स्वल्पा
युषां छिन्नलघुप्रमाणाः ॥ १४ ॥ इतीदमुक्तं शुभमङ्गनानामत
विपर्यस्तमनिष्टमुक्तम्। विशेषतोऽनिष्टफलानि यानि समासतस्ता
न्यनुकीर्तयामि ॥ १५ ॥ कनिष्ठिका वा तदनन्तरा वा मह
न यस्याः स्पृशति स्त्रियाः स्यात्। गताथवांगुष्ठमतीत्य यस्य
प्रदेशिनी सा कुलटातिपापा ॥ १६ ॥ उद्बद्धाभ्यां पिण्डिक
भ्यां शिराले शुष्के जङ्घे रोमशे चातिमांसे।वामावर्तं निम्नमल्पं
गुह्यं कुम्भाकारं चोदरं दुखितानाम् ॥ १७ ॥ ह्रस्वयातिनिःस्वत
दीर्घया कुलक्षयः। ग्रीवया पृथूत्थया योषितः प्रचण्डता ॥ १८

लतिक जो रेखा जाय या पादतलमें जो ऊर्ध्वरेखा हो वह रेखा राज्यसुख करत
है ॥ १२ ॥ कनिष्ठाके मूलसे निकलकर मध्यमाके मध्यभागतक जो रेखा जा
उससे आयुषका प्रमाण होता है. जो वह रेखा पूरी हो तो आयुष पूरा होती
और न्यून रेखा हो तो उसके अनुसार आयुषभी कम जाने ॥ १३ ॥ अंगुष्ठ
मूलमें संतानकी रेखा होती हैं, उनमें बडी रेखा पुत्रोंकी, छोटी रेखा कन्याओंक
होती हैं. मध्यमें जो रेखा टूटी न हो वे दीर्घ आयुवालोंकी होती हैं, टूटी औ
छोटी रेखा अल्पायु संतानकी होती है ॥ १४ ॥ स्त्रियोंके शुभ लक्षण कहे, इस
विरुद्ध लक्षण हों तो अशुभ होते हैं. विशेष करके जो अशुभ लक्षण हैं उनको ह
संक्षेपसे कहते हैं ॥ १५ ॥ जिस स्त्रीके पैरकी कनिष्ठा अथवा कनिष्ठाके समीपक
अंगुली अनामिका भूमिको स्पर्श न करे या जिसके पैरकी तर्जनी अंगूठेसे अधिक
लम्बी हो वह स्त्री व्यभिचारिणी और पापिनी होती है ॥ १६ ॥ ऊपरको खिंच
हुई पिंडलियोंसे युक्त, नाडियोंसे व्याप्त, सूखी, रोमोंसे व्याप्त अथवा बहुत पु
जंघा जिन स्त्रियोंकी हो, वामवर्तवाले रोमोंसे युक्त, निम्न और छोटी गुह्य (भग
जिनकी हो, घटके आकार जिनका पेट हो वे स्त्री दुःख भोगती हैं ॥ १७
जिस स्त्रीकी गरदन छोटी हो वह निर्धन होती है, बहुत लम्बी गर्दनवालीसे कुलक्ष
होता है. जिसकी ग्रीवा मोटी हो वह स्त्री क्रूर स्वभाववाली होती है ॥ १८

नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा सा दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च। कूपौ यस्या गण्डयोश्च मितेषु निःसन्दिग्धं बन्धकीं तां वदन्ति ॥ १९ ॥ प्रविलम्बिनि देवरं ललाटे श्वशुरं हन्त्युदरे स्फिजोः पतिं च। अतिरोमचयान्वितोत्तरोष्ठी न शुभा भर्तुरतीव या च दीर्घा ॥ २० ॥ स्तनौ सरोमौ मलिनोल्बणौ च क्लेशं दधाते विषमौ च कर्णौ। स्थूलाः कराला विषमाश्च दन्ताः क्लेशाय चौर्याय च कृष्णमांसाः ॥ २१ ॥ क्रव्यादरूपैर्वृककाककङ्कसरीसृपोलूकसमानचिह्नैः। शुष्कैः सिरालैर्विषमैश्च हस्तैर्भवन्ति नार्यः सुखवित्तहीनाः ॥ २२ ॥ या तूत्तरोष्ठेन समुन्नतेन रूक्षाग्रकेशी कलहप्रिया सा। प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ॥ २३ ॥ पादौ सगुल्फौ प्रथमं प्रदिष्टौ जंघे द्वितीयं च सजानुचक्रे। मेढ्रोरुमुष्कं च ततस्तृतीयं नाभिः कटिश्चेति चतुर्थमाहुः ॥ २४ ॥ उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमतः स्तनान्वितम्।

जिस स्त्रीके नेत्र केकर (भैंगे) अथवा पिंगल हों वह स्त्री और जिसके नेत्र श्याम रंगके और चंचल हों वह स्त्री व्यभिचारिणी होती है हँसनेके समय जिस स्त्रीके गालोंमें गढे पडें वह स्त्री निःसंदेह व्यभिचारिणी होती है ॥ १९ ॥ जिसका ललाट लंबा हो वह स्त्री देवरको मारती है, उदर लंबा हो तो निश्चय श्वशुरको, जिस स्त्रीके स्फिक लम्बे हों वह पतिको मारती है, जिस स्त्रीके ऊपरके ओष्ठपर बहुत रोम हों और जो स्त्री बहुत लम्बी हो वह पतिके लिये शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥ जिस स्त्रीके स्तन और कर्ण रोमयुक्त, मलिन, उत्कृष्ट और छोटे, बडे हों वह स्त्री क्लेश भोगती है, काले मांससे युक्त जिसके दांत हों वह चोर होती है ॥ २१ ॥ मांस खाने वाले गीध आदि पक्षी, भेडिया, काक कंक, सर्प, उल्लूके आकारकी जिन स्त्रियोंके हाथमें रेखा हो, जिनके हाथ सूखे, नाडियोंसे व्याप्त और विषम हों वे स्त्री सुख और धनसे हीन होती है ॥ २२ ॥ जिस स्त्रीका ऊपरका ओष्ठ ऊंचा हो और केशोंके अग्र रूखे हों वह स्त्री कलहप्रिया होती है, प्रायः कुरूपा स्त्रियोंमें दोष होते हैं, उत्तम रूपवालियोंमें गुण होते हैं ॥ २३ ॥ दशाभागके लिये शरीरके दश भाग कहते हैं. पाद और टकने पहला भाग, जानुचक्रों सहित जंघा दूसरा भाग, लिंग ऊरु, वृषण तीसरा भाग, नाभि, कटि चौथा भाग ॥ २४ ॥ उदर पांचवां भाग स्तनसहित हृदय छठा भाग, कंधे और जत्रु (कंधोकी संधि) सातवां भाग, और

अथ सप्तममंसजत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्दरे ॥ २५ ॥
नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा । अशुभेष्व
दशाफलं चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० स्त्रीलक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

वस्त्रच्छेदलक्षणम्.

वस्त्रस्य कोणेषु वसन्ति देवा नराश्च पाशान्तदशान्तम
शेषास्त्रयश्चात्र निशाचरांशास्तथैव शय्यासनपादुकासु ॥ १ ॥
मषीगोमयकर्दमाद्यैश्छिन्ने प्रदग्धे स्फुटिते च विन्द्यात् । पुष्टं
ऽल्पमल्पतरं च भुक्ते पापं शुभं वाधिकमुत्तरीये ॥ २ ॥
क्षसांशेष्वथवापि मृत्युः पुञ्जन्म तेजश्च मनुष्यभागे । भाग
राणामथ भोगवृद्धिः प्रान्तेषु सर्वत्र वदन्त्यनित्यम् ॥

और ग्रीवा आठवां भाग ॥ २५ ॥ भ्रूसहित नेत्र नवम भाग और ललाटसहि
दशवां भाग है, पांव आदिके अंग अशुभ लक्षणोंसे युक्त हों तो उनकी व
फल शुभ होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

नये वस्त्रके नौ भाग करके विचार करे, वस्त्रके कोणोंके चार भागोंमें पाशांतके दो भागोंमें मनुष्य और मध्यके तीन भागोंमें राक्षस वसते हैं. मूलको पाशांत और अग्रको दशांत कहते हैं, ऐसेही शय्या, आसन और ऊँकेभी नौ भाग करके फलका विचार करे ॥ १ ॥ नया वस्त्र स्याही, कर्दम आदिसे लिप्त हो, कट जाय, जल जाय या फट जाय तो पूरा अशुभ होता है. कुछ पुराना वस्त्र हो तो थोडा अशुभ होता और बहुत पुराना व तो बहुत कम अशुभ फल होता है, उपरने (ऊपर ओढनेका वस्त्र,) में फल अधिक होता है ॥ २ ॥ राक्षसोंके भागोंमें वस्त्रमें छेद आदि हों तो स्वामीको रोग हो या मृत्यु हो, मनुष्यभागोंमें छेद आदि हों तो पुत्रज और कांति हो, देवताओंके भागोंमें छेद आदि हों तो भोगोंकी वृद्धि हो भागके प्रान्तोंमें छेद आदि हों तो गर्गादि मुनि उसका अनिष्ट फल कहते हैं

कङ्कप्लुवोलूककपोतकाकक्रव्यादगोमायुखरोष्ट्रसर्पैः । छेदाकृतिर्दैव
तभागगापि पुंसां भयं मृत्युसमं करोति ॥ ४ ॥ छत्रध्वजस्वस्ति
कवर्धमानश्रीवृक्षकुम्भांबुजतोरणाद्यैः । छेदाकृतिर्नैर्ऋतभागगा
पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीम् ॥ ५ ॥ प्रभूतवस्त्रदाश्विनी भरण
थापहारिणी । प्रदह्यतेऽग्निदैवते प्रजेश्वरेऽर्थसिद्धयः ॥ ६ ॥ मृगे
मूषकाद्भयं व्यसुत्वमेव शाङ्करे । पुनर्वसौ शुभागमस्तदग्रभे ध
र्युतिः ॥ ७ ॥ भुजङ्गभे विलुप्यते मघासु मृत्युमादिशेत् । भग
ह्वये नृपाद्भयं धनागमाय चोत्तरा ॥ ८ ॥ करेण कर्मसिद्ध
शुभागमस्तु चित्रया । शुभं च भोज्यमानिले द्विदैवते जनप्रि
॥ ९ ॥ सुहृद्युतिश्च मित्रभे पुरन्दरेऽम्बरक्षयः । जलप्लुतिश्च नैर्ऋ
रुजो जलाधिदैवते ॥ १० ॥ मिष्टमन्नमथ विश्वदैवते वैष्णवे भव
नेत्ररोगता । धान्यलब्धिमपि वासवे विदुर्वारुणे विषकृतं म
द्भयम् ॥ ११ ॥ भद्रपदासु भयं सलिलोत्थं तत्परश्च भवेत्सु
लब्धिः । रत्नयुतिं कथयन्ति च पौष्णे योऽभिनवाम्बरमिच्छ

कंकपक्षी, मेंडक, उल्लू, कपोत, काक, मांस खानेवाले गृध्रादि, जम्बुक, गधे,
और सर्पके आकारका छेद देवताओंके भागमेंभी हो तोभी पुरुषोंको मृत्युके स
भय करता है और भागोंमें हो तो क्या कहना है ॥ ४ ॥ छत्र, ध्वज, स्वस्ति
वर्धमान, (मट्टीका सिकोरा), बिल्ववृक्ष, कलश, कमल, तोरणादिके आका
छेद राक्षसभागमें पुरुषोंको शीघ्रही लक्ष्मी देता है और भागोंमें हो तब तो
नाहीं क्या है ॥ ५ ॥ अश्विनी नक्षत्रमें नया वस्त्र पहरनेसे बहुत वस्त्र मिलते
भरणीमें पहरनेसे वस्त्रोंकी हानि होती है, कृत्तिकामें वस्त्र दग्ध हो जाना, रोहि
धनप्राप्ति ॥ ६ ॥ मृगशिरामें वस्त्रको मूषकका भय, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसुमें शु
प्राप्ति, पुष्यमें धनलाभ ॥ ७ ॥ आश्लेषामें पहरनेसे वस्त्रका नष्ट हो जाना, मघा
त्रमें मृत्यु, पूर्वाफाल्गुनीमें राजासे भय, उत्तराफाल्गुनीमें धनकी प्राप्ति ॥ ८ ॥ ह
कार्य सिद्धि होती है, चित्रामें शुभकी प्राप्ति, स्वातिमें उत्तम भोजनका मि
विशाखामें मनुष्योंका प्रिय ॥ ९ ॥ अनुराधामें मित्रका समागम, ज्येष्ठामें व
क्षय, मूलमें जलमें डूबना, पूर्वाषाढामें रोग होना ॥ १० ॥ उत्तराषाढामें मीठे
नका मिलना, श्रवणमें नेत्ररोग, धनिष्ठामें अन्नका लाभ, शतभिषामें विषका
भय ॥ ११ ॥ पूर्वाभाद्रपदामें जलका भय, उत्तराभाद्रपदामें पुत्रलाभ और रेवती
त्रमें जो पुरुष नया वस्त्र धारण करे तो उसको रत्नलाभ होता है ॥ १२ ॥ ब्राह

भोक्तुम् ॥ १२ ॥ विप्रमतादथ भूपतिदत्तं यच्च विवाहविधाव
लब्धम् । तेषु गुणै रहितेष्वपि भोक्तुं नूतनमम्बरमिष्टफलं स
॥ १३ ॥ भोक्तुं नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते । विवाहे र
सन्माने ब्राह्मणानां च सम्मते ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० वस्त्रच्छेदलक्षणंनामैकसप्ततितमोऽध्याय

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

चामरलक्षणम् ।

देवैश्चमर्यः किल बालहेतोः सृष्टा हिमक्ष्माधरकन्दरेषु । अ
तद्वर्णाश्च भवन्ति तासां कृष्णाश्च लांगूलभवाः सिताश्च ॥
स्नेही मृदुत्वं बहुबालता च वैशद्यमल्पास्थिनिबन्धनत्वम् ।
कल्यं च तेषां गुणसम्पदुक्ता विद्धाल्पलुप्तानि न शोभनानि ॥
अध्यर्धहस्तप्रमितोऽस्यदण्डो हस्तोऽथवारत्निसमोऽथ वान्यः ।
ष्ठाच्छुभात् काञ्चनरूप्यगुप्ताद्रत्नैर्विचित्रश्च हिताय राज्ञाम् ॥

आज्ञासे बुरे नक्षत्रमेंभी नये वस्त्रका धारण करना शुभही फल देता है, राजाका
हुआ वस्त्र, विवाहमें प्राप्त हुआ वस्त्र बुरे नक्षत्रमेंभी ग्रहण कर लेवे तो शुभही
देता है ॥ १३ ॥ विवाहमें, राजाके सत्कारमें और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे बुरे न
वस्त्रका धारण करना शुभही फल देता है ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७

देवताओंने हिमालय पर्वतकी कन्दराओंमें चामरोंके लिये चामरी (चमर
उत्पन्न किये हैं. उनकी पूंछके बाल पीले, काले और श्वेत होते हैं ॥ १ ॥
रोंके बाल स्निग्ध, कोमल और बहुत हों, विशद अर्थात् निर्मल और
उलझे हुए न हों, उनके बीचकी हड्डी छोटी हो, जिसमें बाल लगे रहते है
श्वेतवर्णके बाल हों, यह उन चामरोंके गुणोंकी सम्पत्ति कही है, ऐसे बा
होते हैं और चामरके बाल विद्ध (टूटे और फटे हुए), छोटे और लुप्त (
हुए) शुभ नहीं होते ॥ २ ॥ उस चामरका दंड डेढ हाथ, एक हाथ या
तुल्य लंबा बनावे, उत्तम काष्ठका दंड बनाये सुवर्ण या चांदीसे मढ उसपर
जड, यह दण्ड राजाओंको शुभ होता है (मुट्ठी बंधे हाथको रत्नि कहते हैं)

यष्ट्यातपत्रांकुशवेत्रचापवितानकुन्तध्वजचामराणाम् । व्याप
तन्त्रीमधुकृष्णवर्णा वर्णक्रमेणैव हिताय दण्डाः ॥ ४ ॥ मातृ
नकुलक्षयावहा रोगमृत्युजननाश्च पर्वभिः । द्व्यादिभिर्द्विकविवर्
क्रमाद् द्वादशान्तविरतैः समैः फलम् ॥ ५ ॥ यात्राप्रसिद्धिर्द्वि
विनाशो लाभः प्रभूतो वसुधागमश्च । वृद्धिः पशूनामभिवा
तातिरुयाद्येष्वयुग्मेषु तदीश्वराणाम् ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० चामरलक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

छत्रलक्षणम् ।

निचितं तु हंसपक्षैः कृकवाकुमयूरसारसानां च । दौ
नवेन तु समन्ततश्छादितं शुक्लम् ॥ १ ॥ मुक्ताफलैरुपचितं

लाठी, छत्र, अंकुश, वेत्र (छडी), धनुष, वितान (चंदोवा), भाला ध्वज चामर इन सबके दंड ब्राह्मणोंको बनाने चाहिये, क्षत्रियोंको तंत्री (तांत) के (पीले और लाल रंग मिले), वैश्योंको शहतके रंग और शूद्रोंको काले रंगके बनाने उचित हैं ॥ ४ ॥ इन दंडोंके दो पर्व (पोरुओं) से लेकर दो २ बढाते तो बारह पर्वतक सम पर्वोंके यह फल क्रमसे होते हैं, जैसे दो पर्वका दंड माताका क्षय, चार पर्व हो तो भूमिक्षय, छः पर्व हो तो धनक्षय, आठ पर्व तो मृत्यु कुलक्षय, दश पर्वका हो तो रोगकी उत्पत्ति और बारह पर्वका दंड मृत्यु होती है ॥ ५ ॥ तीन पोरुओंसे लेकर दो २ पोरुओंकी वृद्धिसे विषम यह फल क्रमसे उनके स्वामियोंको होते हैं, जैसा तीन पर्वका दंड होनेसे जय, पांच पर्वका होनेसे शत्रुओंका नाश, सात पर्वका होनेसे बहुतसा लाभ नौ पर्वका होनेसे भूमिका लाभ, ग्यारह पर्वका होनेसे पशुओंकी वृद्धि और पर्वका दंड होनेसे अभिष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबा स्तव्य--पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥

हंस, मुरगा, मयूर सारस पक्षीके पंखोंसे बना, नये दुकूल (दुपट्टे) से और ढका, श्वेतवर्ण, मोतियोंसे व्याप्त ॥ १ ॥ चारों ओर लटकती हुई मो मालाओंसे युक्त, स्फटिककी मूठसे शोभित छत्र बनावे और छः हाथ लम्

म्बमालाविलं स्फटिकमूलम् । षड्ढस्तशुद्धहैमं नवपर्वनगैकदण्डं च ॥ २ ॥ दण्डार्धविस्तृतं तत् समावृतं रत्नविभुषितमुदग्रम् नृपतेस्तदातपत्रं कल्याणपरं विजयदं च ॥ ३ ॥ युवराजनृपतिपत्न्याः सेनापतिदण्डनायकानां च । दण्डोऽर्धपञ्चहस्तः समपञ्चकृतार्धविस्तारः ॥४॥ अन्येषामुष्णघ्नं प्रसादपट्टैर्विभूषितशिरस्कम् । व्यालम्बिरत्नमालं छत्रं कार्यं च मायूरम् ॥ ५ ॥ अन्येषां च नराणां शीतातपवारणं तु चतुरस्रम् । समवृत्तदण्डयुक्तं छत्रं कार्यं तु विप्राणाम् ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० छत्रलक्षणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

स्त्रीप्रशंसा ।

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्ज्वला राजसुखस्य सारः ॥१॥ रत्नानि

काष्ठका दंड सोनेसे मढा, नौ या सात पर्वोंसे युक्त छत्रको लगावे ॥२॥ दंडके अर्धभागके तुल्य (तीन हाथ) छत्रका व्यास रक्खे, वह छत्र सुश्लिष्टसंधि, रत्नोंसे भूषित और उन्नत हो ऐसा छत्र राजाको कल्याण करता और विजय देता ॥ ३ ॥ युवराज, राजाकी रानी, सेनापति और दंडनायक (कोतवाल) के छत्रका दंड साढे चार हाथ, और छत्रका व्यास अढाई हाथ होता है ॥ ४ ॥ युवराजादिको छोड राजपुत्रादिके लिये मयूरपक्षोंका बना प्रसादपट्ट गोपट्टलक्षणाध्यायमें कह आये हैं, तिनसे भूषित हुआ है शिर जिसका, रत्नमाला जिसमें लटकती हैं ऐसा छत्र धूपकी निवृत्तिके लिते होता है ॥ ५ ॥ साधारण मनुष्योंके लिये शीत और धूपको रोकनेवाला चतुरस्र छत्र होता है और ब्राह्मणोंके लिये चारों ओरसे गोल और दंडयुक्त छत्र बनाना उचित है ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

राजा सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत ले परन्तु उसमें अपनी राजधानीका नगरही सार है. उस नगरमें अपना गृहसार, गृहमें अपने रहनेका एक मुख्य स्थान सार, उस स्थानमें शय्या सार और उस शय्याके रत्नोंसे भूषित स्त्री सार है, राजसुखमें इतनाही सार है और सब पदार्थ सारहीन हैं ॥ १ ॥ रत्नोंको स्त्री भूषि

विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या। चेतो व
हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गात् ॥ २ ॥ आ
विनिगूहतां रिपुबलं जेतुं समुत्तिष्ठतां तन्त्रं चिन्तयतां कृताकृत
व्यापारशाखाकुलम्। मन्त्रिप्रोक्तनिषेविनां क्षितिभुजामाशङ्कि
र्वतो दुःखाम्भोनिधिवर्तिनां सुखलवः कान्तासमालिङ्गनम् ॥
श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणाह्लादजननं न रत्नं स्त्रीभ्योऽ
क्वचिदपि कृतं लोकपतिना। तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौख्
च ततो गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ॥
येऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुणान्विहाय
दुर्जना मे मनसो वितर्कः सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम् ॥
प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषोऽस्ति यो नाचरितो मनुष
धार्ष्ट्येन पुम्भिः प्रमदा निरस्ता गुणाधिकास्ता मनुनात्र च
॥ ६ ॥ सोमस्तासामदाच्छौचं गन्धर्वाः शिक्षितां गिरम्। अ

करती है. रत्नकांतिसे स्त्रियें भूषित नहीं होतीं, कारण कि, स्त्री विना रत्न
तो भी चित्तको हर लेती है और रत्न स्त्रियोंके अंगका संग किये विना चि
हर सकते ॥२॥ हर्ष, शोक आदिके आकारको छिपाते हुए, शत्रुबल जीतने
उठते हुए, किये न किये सैकडों व्यवहारोंकी शाखाओंसे व्याकुल, राज
चिंतवन करते हुए, मंत्रियोंकी कही नीतिपर चलते हुए, पुत्र स्त्री आदिसेभी
रहते हुए, दुःखसमुद्रमें डूबे हुए, राजाओंके अर्थ स्त्रीका आलिंगन कर
थोडासा सुख है ॥ ३ ॥ विधाताने स्त्रियोंके सिवाय और कहीं कोई ऐस
निर्माण नहीं किया जिसके सुनने, स्पर्श करने, देखने या स्मरण करनेहीसे
आल्हाद हो जाय, धर्म और अर्थका सेवन स्त्रीकेही लिये करते हैं, पुत्रोंव
विषयसुखोंका लाभ स्त्रीसेहि होता है. स्त्री घरकी लक्ष्मी है, इसलिये मान
ऐश्वर्यसे सब समय स्त्रियोंका सत्कार करना उचित है ॥ ४ ॥ यह हमार
निश्चय है कि जो पुरुष स्त्रियोंके गुणोंको छोड वैराग्य मार्ग द्वारा उन
कहते हैं वे पुरुष दुष्ट हैं इसी कारण उन दुष्टोंके वे वचनभी प्रामाणिक नहीं
आप विरक्त हैं तो आपही सत्य कहें कि, स्त्रियोंमें ऐसा कोनसा दोष है ज
षने पहलेही न किया हो (सब दोष पहले पुरुषोंने किये पीछे स्त्रीयोंने
सीखे) पुरुषोंने धृष्टतासे स्त्रीयोंको जीत लिया, वास्तवमें पुरुषोंसे स्त्रियोंमें
गुण हैं. धर्मशास्त्रके मुख्य आचार्य मनुने भी इस विषयमें यह कहा है॥६॥ च
शुद्धता, गंधर्वोंने शिक्षित वचन दिये और अग्निने सर्वभक्षित्व स्त्रियोंको दि

सर्वभक्षित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणाः प
मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः।अजाश्वा मुखतो मेध्या स्त्रियो मे
स्तु सर्वतः ॥ ८ ॥ स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हि
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥९॥ जामयो
गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्
समन्ततः ॥ १० ॥ जाया वा स्याज्जनित्री वा सम्भवः स्त्री
नृणाम् । हे कृतघ्नास्तयोर्निन्दां कुर्वतां वः कुतः सुखम् ॥
दम्पत्योर्व्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः । नरा न तमवे
तेनात्र वरमङ्गनाः॥१२॥बहिर्लोम्ना तु षण्मासान् वेष्टितः खरच
दारातिक्रमणे भिक्षां देहीत्युक्त्वा विशुद्ध्यति ॥१३॥ न शते
वर्षाणामपैति मदनाशयः।तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण ये
॥१४॥ अहो धाष्टर्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः।मुष्णत
चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम् ॥ १५ ॥ पुरुषश

इसलिये स्त्री सुवर्ण तुल्य हैं ॥ ७ ॥ ब्राह्मणोंके पैर, गौओंकी पीठ और
घोडोंका मुख पवित्र है और स्त्रियोंके सब अंगही पवित्र हैं ॥ ८ ॥ स्त्रियोंके
कोई दूसरा पदार्थ पवित्र नहीं है, वह कभी दूषित नहीं हो सकती हैं, क्योंकि
महीने उनका ऋतु होता है जो कि उनके सब पाप हर लेता है ॥ ९ ।
आदर की हुई कुलस्त्री जिन घरोंको शाप देती है वे घर मानो कृत्यासे ह
चारों ओरसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ भार्या हो या माता हो
उत्पत्ति स्त्रियोंसेही होती है अर्थात् भार्यासे पुत्ररूप करके उत्पन्न और
साक्षात् आप उत्पन्न होता है, हे कृतघ्न पुरुषो ! भार्या और माताकी निन्दा
तुम्हारा भला कहांसे होगा ॥ ११ ॥ स्त्रीपुरुषोंको परस्पर पुरुषोंको पर
और स्त्रीको परपुरुषके संगमें तुल्यही दोष धर्मशास्त्रमें कहा है; परन्तु पुरुष
संगमें कुछ दोष नहीं देखते और स्त्री परपुरुषमें दोष देखती है, इसलिये
स्त्रियां उत्तम हैं ॥ १२ ॥ जो पुरुष अपनी भार्याको छोड दूसरी स्त्रीका संग
पुरुष बाहरकी ओरसे रोमोंवाले गर्दभका चमडा ओढकर छः महीनेतक
देही) यह कहे अर्थात् भीख मांगता फिरे तब शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ सौ वर्ष
नेपर भी पुरुषोंकी कामवासना नहीं छुटती परन्तु शरीरकी शक्ति घट जाने
निवृत्त होते और स्त्री धैर्यसे निवृत्त होती है ॥ १४ ॥ देखो ! निर्दोष स्त्रियों
करते हुए दुष्टोंकी दुष्टता ऐसी है जैसे चोरी करते हुए चोर और
पुरुष (घरके स्वामी आदि) को कहते हों कि अरे चोर !
यह सब धर्मशास्त्रके वाक्य हैं ॥ १५ ॥ पुरुष

ानि कामिनीनां कुरुते यानि रहो न तानि पश्चात्। सुकृतज्ञत-
ाङ्गना गतासूनवगूह्य प्रविशन्ति सप्तजिह्वम् ॥ १६ ॥ स्त्रीरत्न-
ागोऽस्ति नरस्य यस्य निःस्वोऽपि स्वं प्रत्यवनीश्वरोऽसौ। राज्य-
य सारोऽशनमङ्गनाश्च तृष्णानलोद्दीपनदारुशेषम् ॥ १७॥ कामिनीं
थमयौवनान्वितां मन्दवल्गुमृदुपीडितस्वनाम्। उत्स्तनीं समव-
म्ब्य या रतिः सा न धातृभवनेऽस्ति मे मतिः ॥ १८ ॥ तत्र
रमुनिसिद्धचारणैर्मान्यमानपितृसेव्यसेवनात्। ब्रूत धातृभवनेऽस्ति
ि सुखं यद्रहः समवलम्ब्य न स्त्रियम् ॥ १९ ॥ आब्रह्मकीटान्त-
दं निबद्धं पुंस्त्रीप्रयोगेण जगत्समस्तम्। व्रीडात्र का यत्र चतु-
खत्वमीशोऽपि लोभाद्गमितो युवत्याः ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपुरचिन्तायां
स्त्रीप्रशंसा नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

कर एकांतमें स्त्रियोंको जो मीठे २ वचन बोलता है तैसे वचन मनसे नहीं बोलता
ौर स्त्री अपनी कृतज्ञतासे मृतपतिको आलिंगन कर अग्निमें प्रवेश करती है
१६ ॥ उत्तम स्त्रीको भोगनेवाला निर्धनभी राजा है, क्योंकि राज्यका सार भोजन
ौर उत्तम स्त्री यह दोही हैं और सब हाथी, घोडे, रत्न, सुवर्णादि सामग्री तृष्णा
प अग्निको प्रज्वलित करनेको काष्ठ हैं ॥ १७ ॥ हमारी तो यह बुद्धि है कि नये
ौवनवाली, मंद, सुन्दर, कोमल और स्तब्ध शब्द करती हुई, ऊंचे स्तनोंवाली
ामिनीको आलिंगन करनेसे जो सुख होता है, सो सुख ब्रह्मलोकमेंभी नहीं ॥ १८ ॥
ह्मलोकमें देवता, मुनि सिद्ध और चारण मान्योंका मान और सेव्योंका सेवन
रते हैं, इससे बढकर और ब्रह्मलोकमें ऐसा कौनसा सुख है, स्त्रीको एकान्तमें
ालिंगन करनेसे न प्राप्त हो ॥ १९ ॥ ब्रह्मासे लेकर कीडे मकोडेतक सब जगत्
ीपुरुषकी प्रयोगसे बंधा है, इसमें क्या लज्जा, जहां जगत्प्रभु महादेवजी भी स्त्रीको
खनेके लोभसे चतुर्मुख हो गये ॥ २० ॥

ति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्सं तायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

---

१ दृष्टांत है कि, एक समय पार्वतीको अंकमें लिये महादेवजी कैलासमें विराजमान थे, उस समय
ालोत्तमा नाम अप्सरा महादेवजीकी प्रदक्षिणा करने लगी तब पार्वतीके भयसे महादेवजी चारों ओर मुख
रकर तो उसका मुख न देख सके परन्तु जिधर वह जाती उसी ओर नया मुख उत्पन्न करते गये इस प्रकार
[illegible]

अथ पंचसप्ततितमोऽध्यायः ।

सौभाग्यकरणम् ।

जात्यं मनोभवसुखं सुभगस्य सर्वमाभासमात्रमितरस्य वियोगात् । चित्तेन भावयति दूरगतापि यं स्त्री गर्भं बिभर्ति पुरुषस्य तस्य ॥ १ ॥ भंक्त्वा काण्डं पादपस्योप्तमुर्व्यां वास्यां नान्यतामेति यद्वत् । एवं ह्यात्मा जायते स्त्रीषु भूयः तस्मिन् क्षेत्रयोगाद्विशेषः ॥ २ ॥ आत्मा सहैति मनस इन्द्रियेण स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एष शीघ्रः । योगोऽ मनसः किमगम्यमस्ति यस्मिन्मनो व्रजति तत्र गतोऽयम ॥ ३ ॥ आत्मायमात्मनिगतो हृदयेऽतिसूक्ष्मो ग्राह्योऽ मनसा सतताभियोगात् । यो यं विचिन्तयति याति स यत्वं यस्मादतः सुभगेव गता युवत्यः ॥ ४ ॥ दाक्षिण्य सुभगत्वहेतुर्विद्वेषणं तद्विपरीतचेष्टा । मन्त्रौषधाद्यैः कुहक

सुभग पुरुषको सब कामदेवका सुख श्रेष्ठ है और स्त्रीका चित्त अनुरक्त न दुर्भग पुरुषको रतिमें सुखका आभास मात्र होता है, वास्तविक सुख नहीं रतिके समय दूर स्थितभी स्त्री चित्तसे जिस पुरुषका ध्यान करे, उसीके गर्भ धारण करती है ॥ १ ॥ जिस वृक्षका कलम अथवा बीज भूमिमें बों वृक्ष जमता है दूसरा वृक्ष नहीं इसी प्रकार स्त्रियोंमेंभी फिरभी संता आत्माही उत्पन्न होता है, केवल क्षेत्रके योगसे कुछ विशेष होता है, जैसा क्षेत्रमें वृक्षादि उत्तम होते, किसीमें सामान्य होते हैं ऐसेही स्त्रियोंमेंभी योग्य है ॥ २ ॥ आत्मा मनके साथ और मन इन्द्रियके साथ जाता इन्द्रियें अपने विषय शब्द आदिके साथ जाती हैं, यह आत्माके जानेक क्रम और यही योग है. मनको कोई स्थान अगम्य नहीं और जहां मन वहां यह आत्मा चला जाता है ॥ ३ ॥ अतिसूक्ष्मरूप यह जीवात्मा हृद मात्माके बीच स्थित है, निरन्तर अभ्याससे निश्चल चित्तसे उसका ग्रहण चाहिये, जो जिसका चिन्तन करे वह तन्मय हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीभी पुरुषकाही चिन्तन करती है ॥ ४ ॥ स्त्रियोंके चित्तके अनुकूल आचरण सौ मुख्य हेतु है अर्थात् दाक्षिण्यसे पुरुष सुभग होता है और स्त्रियोंके विपरीत आचरण करनेपर विद्वेषण होता है अर्थात् वह पुरुष दुर्भग हो शीकरण आदिके लिये मंत्र औषध और भी इन्द्रजालादि कुहक प्रयोग

गैर्भवन्ति दोषा बहवो न शर्म ॥ ५ ॥ वाल्लभ्यमायाति वि
मानं दौर्भाग्यमापायतेऽभिमानः । कृच्छ्रेण संसाधयतेऽभि
कार्याण्ययत्नेन वदन् प्रियाणि ॥ ६ ॥ तेजो न तद्यत्प्रियस
सत्वं वाक्यं न चानिष्टमसत्प्रणीतम् । कार्यस्य गत्वान्तमनुद्धत
तेजस्विनस्ते न विकत्थना ये ॥ ७ ॥ यः सार्वजन्यं सुभगत्व
छेद्गुणान् स सर्वस्य वदेत्परोक्षे । प्राप्नोति दोषानसतोऽप्यनेक
परस्य यो दोषकथां करोति ॥ ८ ॥ सर्वोपकारानुगतस्य लं
सर्वोपकारानुगतो नरस्य । कृत्वोपकारं द्विशतां विपत्सु या कं
रल्पेन न सा शुभेन ॥ ९ ॥ तृणैरिवाग्निः सुतरां विवृद्धिमाच्छ
मानोऽपि गुणोऽभ्युपैति । स केवलं दुर्जनभावमेति हन्तुं गु
वाञ्छति यः परस्य ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सौभाग्यकरणं नाम पञ्चसततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

अनेक दोषही उत्पन्न होते हैं, भला नहीं होता अर्थात् स्त्रीवशीकरणका मुख्य
दाक्षिण्य है, मंत्र औषध आदि नहीं ॥ ५ ॥ अहंकारको छोडनेसे मनुष्य स
प्रिय हो जाता हैं, अहंकारसे पुरुष सबको अप्रिय होता है अभिमानी पुरुष
कार्य कष्टसे साधता और मीठा बोलनेवाला पुरुष सहजमें कार्य सिद्ध कर ले
॥ ६ ॥ विना विचारे करनेमें प्रीति तेज नहीं है और दुष्टोंके कहे दुर्वचनभी श्रे
जो पुरुष कार्यको समाप्त करकेभी आभिमान न करे वे तेजस्वी होते हैं. वाचाल
तेजस्वी नहीं होते ॥ ७ ॥ सबका प्यारा होना चाहनेवाला पुरुष परोक्षमें सबकी
करे, जो पराई निन्दा करते हैं उनके ऊपर अकारण ही अनेक दोष मनुष्य लग
हैं ॥ ८ ॥ सबके ऊपर उपकार करनेमें जो पुरुष तत्पर है उसके ऊपर सब मनु
उपकार करते हैं, शत्रुके ऊपर विपत्तिकालमें उपकार करनेसे जो कीर्ति होती
थोडे पुण्यका फल नहीं है अर्थात् किसी बडे पुण्यसे ही ऐसा योग आ
है ॥ ९ मनुष्य चाहे जितने सज्जनोंके गुणोंको छिपावे परन्तु उनके गुण
ढके हुए अग्नि ति वृद्धिकोही प्राप्त होते हैं. जो पराये गुणोंको मिटाया
है वही केवल दुर्जनताको प्राप्त हो जाता है और गुण किसीके मिटाये नह
सकते ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वा
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

कान्दर्पिकम् ।

रक्तेऽधिके स्त्री पुरुषस्तु शुक्रे नपुंसकं शोणितशुक्रसाम्ये
यस्मादतः शुक्रविवृद्धिदानि निषेविनव्यानि रसायनानि ॥ १
हर्म्यपृष्ठमुडुनाथरश्मयः सोत्पलं मधु मदालसा प्रिया । वल्लकी
स्मरकथा रहः स्रजो वर्ग एष मदनस्य वागुरा ॥ २ ॥ माक्षिक
धातुमधुपारदलोहचूर्णपथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि योऽद्यात्
सैकानि विंशतिरहानि जरान्वितोऽपि सोऽशीतिकोऽपि रमयत्य
बलां युवेव ॥ ३ ॥ क्षीरं शृतं यः कपिकच्छुमूलैः पिबेत् क्ष
स्त्रीषु न सोऽभ्युपैति । माषान् पयःसर्पिषि वा विपक्वान् षड्मास
मात्रांश्च पयोऽनुपानान् ॥४॥ विदारिकायाः स्वरसेन चूर्णं मुहुर्मु
र्भावितशोषितं च । शृतेन दुग्धेन सशर्करेण पिबेत्स यस्य प्रमद
प्रभूताः ॥ ५ ॥ धात्रीफलानां स्वरसेन चूर्णं सुभावितक्षौद्रसित

गर्भधारणके समय स्त्रीका रज अधिक हों तो कन्या, पुरुषका वीर्य अधिक तो पुत्र और दोनों तुल्य हों तो नपुंसक उत्पन्न होता है, इस कारण वीर्य बढानेवाले रसायन सेवन करने चाहिये ॥ १ ॥ महलकी छत्त, चन्द्रमाके किर नीलोत्पलसहित मद्य अर्थात् मदसे भरे पानपात्रमें नील कमल रक्खा हो, मद कर आलस्ययुक्ता प्राणप्रिया, वीणा, कामदेवकी चर्चा, एकांत, पुष्पमाला यह र सामग्री कामदेवके बांधनेकी रस्सी है ॥ २ ॥ सोनामक्खी, शहत, पारा, लोहचू शिलाजीत, वायविडंग और घृतको जो पुरुष (सब वस्तुओंको समभाग ले चूर्ण शहत व घृतमें मिलाय गोली कर उन गोलियोंको) इक्कीस दिन खाय तो अ वर्षका वृद्धभी तरुण पुरुषकी भांति स्त्रीसे रमण करता है ॥ ३ ॥ कौंचकी ज साथ औटाकर दूधको पीनेवाला पुरुष स्त्रीसंग करनेमें क्षीण नहीं होता दूधसे निकले घृतमें उडदोंको पकावे, पीछे छः ग्रास उन उडदोंको भक्षण क ऊपरसे दूध पीवे तो स्त्रीसंग करनेसे क्षीण नहीं होवे ॥ ४ ॥ विदारीकंदके चूर्ण विदारीकंदकेही रसकी वारंवार भावना देकर सुखाता जाय, उस चूर्णको भक्षण व ऊपरसे औटाया हुआ दूध मिश्री डालकर पीना चाहिये जिस पुरुषके ब स्त्री हों ॥ ५ ॥ आमलेके चूर्णमें आमलेके रसकी वार २ भावना देकर सुख फिर उस चूर्णमें शहत और मिश्री मिलाकर चाटे व ऊपरसे अपनी अग्निके अ

युक्तम् । लीढ्वानु पीत्वा च पयोऽग्निशक्त्या कामं निकामं
ृषो निषेवेत् ॥ ६ ॥ क्षीरेण बस्ताण्डयुजा शृतेन संप्लाव्य कामी
ुशस्तिलान् यः । सुशोषितानत्ति पिबेत्पयश्च तस्याग्रतः किं
ङ्कः करोति ॥ ७ ॥ माषसूपसहितेन सर्पिषा षष्टिकौदनमदन्ति
नराः । क्षीरमप्यनु पिबन्ति तासु ते शर्वरीषु मदनेन शेरते
८ ॥ तिलाश्वगन्धाकपिकच्छुमूलैर्विदारिकाषष्टिकपिष्टयोगः ।
ाजेन पिष्टः पयसा घृतेन पक्त्वा भवेच्छष्कुलिकातिवृष्या ॥९॥
रेण वा गोक्षुरकोपयोगं विदारिकाकन्दकभक्षणं वा । कुर्वन्न
देद्यदि जीर्यतेऽस्य मन्दाग्निता चेदिदमत्र चूर्णम् ॥ १० ॥ साज-
दलवणा हरीतकी शृङ्गवेरसहिता च पिप्पली । मद्यतक्रतरलो-
गवारिभिश्चूर्णपानमुदराग्निदीपनम् ॥ ११ ॥ अत्यम्लतिक्तलव-
ानि कटूनि वात्ति क्षारातिशाकबहुलानि च भोजनानि । इवच्छु-

र जितना पच सके उतना दूध पीवे तो बहुत मैथुन कर सकता है ॥ ६ ॥ बक-
अंडेको दूधमें डाल औटावे, पीछे उस दूधकी तिलोंमें बहुत वार भावना
और सुखावे जो कामी पुरुष उन तिलोंको भक्षण कर ऊपरसे दूध पीवे
ाके आगे चिडाभी क्या कर सकता है ॥ ७ ॥ जिन रातोंमें घृतसे युक्त
दकी दालके साथ सट्ठीके चावलोंका भात खाकर जो पुरुष पीछे दूध पीते
वे उन रात्रियोंमें कामदेवके साथ शयन करते अर्थात् रात्रिभर उनको कामो-
ान होता है और बहुत स्त्रीसंग करते हैं ॥ ८ ॥ तिल, असगंध, कौंचकी जड
ारीकंद इन सबको बराबर ले चूर्ण कर सबके समान साठीके चावलोंका
चा मिलावे पीछे उसको बकरीके दूधमें उसनकर पुरी बनाय बकरीके घृतमें
कर वह पूरी अति वृष्य होती है ॥ ९ ॥ गोखरूका चूर्ण खाकर दूध पिये या
ारीकंदका चूर्ण भक्षण कर दूध पिये तो स्त्रीसंगसे क्षीण न हो परन्तु यह चूर्ण
पच जावे तो मन्दाग्नि हो अर्थात् चूर्ण न पच सके तो पहले इस चूर्णका सेवन
जो कहते हैं ॥ १० ॥ अजवायन, लवण, हरड, सोंठ, पीपल इनको सम भाग
कर चूर्ण करे पीछे उस चूर्णको मद्य, तक्र (छांछ) कांजी अथवा गरम जलके
ुपानसे लेवे यह चूर्ण जठराग्निको दीपन करता है ॥ ११ ॥ जो पुरुष बहुत
ई, बहुत तिक्त, बहुत लवणसे युक्त अथवा बहुत कटु लाल मिरच आदिसे युक्त
जन करे और बहुत क्षार अथवा बहुत शाक करके युक्त भोजन करे वह पुरुष

ऋवीर्यरहितः स करोत्यनेकान् व्याजान् जरन्निव युवाप्यबला
मवाप्य ॥ १२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपुरचिन्तायां
कादर्पिकं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

गन्धयुक्तिः ।

स्रग्गन्धधूपाम्बरभूषणाद्यं न शोभते शुक्लशिरोरुहस्य । यस्म
दतो मूर्द्धजरागसेवां कुर्याद्यथैवाञ्जनभूषणानाम् ॥ १ ॥ लौहे पा
तण्डुलान् कोद्रवाणां शुक्ते पक्काँल्लोहचूर्णेन साकम् । पिष्टान् सूक्ष्
मूर्ध्नि शुक्ताम्लकेशे दत्त्वा तिष्ठेद्वेष्टयित्वार्द्रपत्रैः ॥ २ ॥ या
द्वितीये प्रहरे विहाय दद्याच्छिरस्यामलकप्रलेपम् । सञ्छाद्य पत्रैःप्र
रद्वयेन प्रक्षालितं कार्ष्ण्यमुपैति शीर्षम् ॥ ३ ॥ पश्चाच्छिरःस्नानसुगन्
तैलैर्लौहाम्लगन्धं शिरसोऽपनीय । हृद्यैश्च गन्धैर्विविधैश्च धूपैरन्

हृष्टि, वीर्य और बलसे हीन होकर स्त्रीसंगके समय वृद्धकी भीति अनेक व्य
(बहाने) करता है, वह स्त्रीके कामका नहीं रहता ॥ १२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
स्तव्य पंडितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६

श्वेत केशोंवाले पुरुषको माला, गन्ध (अतर आदि), धूप, वस्त्र, भूषणादि न
शोभित होते, इससे आंखोंमें अंजन डालने और भूषण पहरनेमें यत्न करने
भांति केश रंगनेका भी यत्न करना चाहिये ॥ १ ॥ लोहके पात्रमें सिर्केके
कोदोंके चावल रांधे, फिर उन चावलोंमें लोहचून मिलाय बहुत सूक्ष्म पीसकर र
पश्चात् केशोंको सिर्केसे खट्टे कर उनपर पहले पीसकर रक्खा हुआ
करे और ऊपर अंडादिके हरे पत्ते लपेटकर बैठे ॥ २ ॥ दो पहर बीतनेके उपर
इस लेपको धोय आमलोंका लेप कर पत्तोंसे लपेटे, फिर दो पहर बैठा रहे
शिरको धोवे तो कृष्णवर्णके केश हो जाते हैं ॥ ३ ॥ केश काले होनेके
शिरःस्नान, सुगन्ध तेल, मनोहर गन्ध और भांति २ धूपोंकरके शिरसे लोहे
सिर्केका दुर्गन्ध दूर करके अंतःपुरमें जाय अपनी रानियोंके साथ राजा राज

राज्यसुखं निषेवेत् ॥ ४ ॥ त्वक्कुष्ठरेणुनलिकास्पृक्कारसतगर-
ळकैस्तुल्यैः। केसरपत्रविमिश्रैर्नरपतियोग्यं शिरः स्नानम् ॥५॥
ञ्जिष्ठया व्याघ्रनखेन शुक्त्या त्वचा सकुष्ठेन रसेन चूर्णः। तैलेन
तोऽर्कमयूखततः करोति तच्चम्पकगन्धि तैलम् ॥ ६ ॥ तुल्यैः
तुरुष्कवालतगरैर्गन्धः स्मरोद्दीपनः सव्यामो बकुलोऽयमेव
ट्काहिंगुप्रधूपान्वितः । कुष्ठेनोत्पलगन्धिकः समलयः पूर्वो
च्चम्पको जातीत्वक्सहितोऽतिमुक्तक इति ज्ञेयः सकुस्तुम्बुरुः
७ ॥ शतकुन्दुरुकौ पादेनार्धेन नखतुरुष्कौ च । मलयप्रियंगु-
गौ गन्धो धूप्यो गुडनखेन ॥ ८ ॥ गुग्गुलुवालकलाक्षामुस्तान-
ार्कराः क्रमाद्धूपः। अन्यो मांसीवालकतुरुष्कनखचन्दनैः पिण्डः
९ ॥ हरीतकीशंखघनद्रवाम्बुभिर्गुडोत्पलैः शैलकमुस्तकान्वितैः।
ान्तपादादिविवर्धितैः क्रमाद् भवन्ति धूपा बहवो मनोहराः

ाका सेवन करे ॥ ४ ॥ दालचीनी, कूठ, रेणुका, नालिका, स्पृक्का, बोल, तगर,
ाला, नागकेशर, गंधपत्र इनको सम भाग ले पीसकर शिरमें लगाय शिर
ो यह राजाओंके योग्य शिरःस्नान कहा है ॥ ५ ॥ मंजीठ, व्याघ्रनख, शक्ति,
चिनी, कूठ और बोल इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर मीठे तेलमें डाल,
में तपावे तो उस तेलमें चंपेकी पुष्पोंकी गन्ध होजाती है ॥ ६ ॥ पत्र, सिह्लक,
ाला और तगरको सम भाग मिलावे तो कामदेवको उद्दीपन करनेवाला गंध
ा है. इस गंधमें व्याम (गंधद्रव्यविशेष) मिलावे और कटुका (गुग्गुल) का
देवे तो मौलसिरीपुष्पके समान गंधवाला गधद्रव्य बनता है, इसमें कूठ
ानेसे नील कमलके तुल्य गंध हो जाती है, श्वेत चन्दन मिलानेसे चंपेके तुल्य
होती है, इसमें जायफल, दालचीनी और धनिया मिला दे तो अतिमुक्तकपुष्पके
ान गंध हो जाती है ॥७॥ सौंफ, कुंदरक (देवदारु वृक्षका निर्यास) यह दोनों एक
र्थांश नख और सिह्लक यह दोनों अर्ध अर्थात् दो चतुर्थांश, श्वेत चन्दन और
प्रियंगु यह दोनों एक चतुर्थांश,लेकर गंधद्रव्य बनावे और इसको गुडका व नखका
दे ॥८॥ गूगल नेत्रवाला, लाख, मोथा, नख और खांड इन सबको बराबर लेकर
बनावे. बालछड, नेत्रवाला, सिह्लक, नख और चन्दन सम भाग लेनेसे दूसरा
धूप बनता है, ॥ ९ ॥ हरड, शंख, नख, द्रव (बोल), नेत्रवाला, गुड, कूठ
क, मोथा इन नौ द्रव्योंको एक पादसे लेकर नौ तक बढावे, जैसे हरड एक
ा, शंख दो भाग, नख तीन भाग, इत्यादि एक और गुड कूठको पाद आदि
नेसे दूसरा शैलक और मोथेकी पादवृद्धिसे तीसरा या हरड एक भाग शंख

॥ १० ॥ भागैश्चतुर्भिः सितशैलमुस्ताः श्रीसर्जभागौ नखगु
च । कर्पूरबोधो मधुपिण्डितोऽयं कोपच्छदो नाम नरेन्द्रधूपः॥
त्वगुशीरपत्रभागैः सूक्ष्मैलार्धेन संयुतैश्चूर्णः । पटवासः प्रव
मृगकर्पूरप्रबोधेन ॥ १२ ॥ घनवालकशैलेयककर्चूरोशीरन
ष्पाणि । व्याघ्रनखस्पृक्कागुरुदमनकनखतगरधान्यानि ॥ १
र्पूरचोरमलयैः स्वेच्छापरिवर्तितैश्चतुर्भिरतः । एकद्वित्रिच
भागै न्धार्णवो भवति॥१४॥अत्युल्बणगन्धत्वादेकांशो नित
धान्यानाम्।कर्पूरस्य तदूनो नैतौ द्वित्र्यादिभिर्देयौ॥१५॥श्रीसर्ज
नखैस्ते धूपयितव्याः क्रमान्न पिण्डस्थैः।बोधःकस्तूरिकया देयाः
रसंयुतया॥१६॥अत्र सहस्रचतुष्टयमन्यानि च सप्ततिसहस्राणि
शतानि सप्त विंशतियुक्तानि गन्धानाम्॥१७॥एकैकमेकभागं I

दो भाग यह एक धूप हुआ, इसमें नखके तीन भाग मिलानेसे दूसरा धूप
चार भाग मिलानेसे तीसरा धूप ऐसेही बहुतसे मनोहर धूप बन ज
॥ १० ॥ खांड शैलय और मोथा इनसे चौगुना श्रीवास और सर्ज (
दो भाग, नख और गुग्गुल दो भाग इनको पीसकर कर्पूरका बोध देवे
कर्पूरके चूर्णसे उसको सुगन्धित करे, फिर शहत मिलाय पिंड कर लेवे, यह
च्छदनाम धूप राजाओंके योग्य होता है ॥ ११ ॥ दालचीनी, खश, गंधपत्र
तीन भाग और सबसे आधी छोटी इलायची लेकर सबका चूर्ण कर और
व कपूरका बोध दे, यह उत्तम पटवास अर्थात् वस्त्रोंको सुगंधित करनेवाला
बनता है ॥ १२ ॥ मोथा, नेत्रवाला, शैलेयक, कचूर, खस, नागकेसरके
व्याघ्रनख, स्पृका और अगुरु, दमनक, नख, तगर, धानियां ॥ १३ ॥ कपूर
और श्वेत चंदन यह सोलह गंधद्रव्य हैं इनमेंसे चाहे जौनसे चार द्रव्य
उनके एक, दो, तीन और चार भाग अदल बदल कर लेनेसे गंधार्णव
है ॥ १४ ॥ धानियेमें अति उत्कटगंध होता है इस कारण धनियोंका नित्य
भाग लेना चाहिये और कपूरभी बहुत उत्कटगंध होता है, इसलिये एक
सेभी कम लेना उचित है, इन दोनोंके कभी दो, तीन भाग न लेवे, नहीं
द्रव्योंके गंधको दबा लेते हैं ॥ १५ ॥ सब गंधद्रव्योंको श्रीवास, राल, गुड
नखका धूप दे परन्तु इन चारोंका अलग २ धूप दे सबको मिलाकर न
पीछेसे कर्पूर और कस्तूरिका बोध दे ॥ १६ ॥ इन गंधद्रव्योंसे एक लाख च
हजार सात सौ बीस प्रकारके गंध बनते हैं ॥ १७ ॥ एक द्रव्यका एक २

र्भागिकैर्युतं द्रव्यैः। षड्गन्धकरं तद्वत् द्वित्रिचतुर्भागिकं कुरुते
१८॥ द्रव्यचतुष्टययोगाद्गन्धचतुर्विंशतिर्यथैकस्य। एवं शेषा-
णपि षण्णवतिः सर्वपिण्डोऽत्र ॥१९॥ षोडशके द्रव्यगणे चतु-
र्विकल्पेन भिद्यमानानाम्। अष्टादश जायन्ते शतानि सहितानि
ात्या ॥ २० ॥ षण्णवतिभेदभिन्नश्चतुर्विकल्पो गणो यतस्त-
त्। षण्णवतिगुणः कार्यः सा संख्या भवति गन्धानाम्॥२१॥
ग पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्यं प्रवदन्ति संख्याम्।
ठाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः॥२२॥
ोन्द्रियाष्टभागैरगुरुः पत्रं तुरुष्कशैलेयौ। विषयाष्टपक्षदहनाः
गुमुस्तारसाः केशः ॥ २३ ॥ स्पृक्कात्वक्तगराणां मांस्याश्च कृते-

अन्य द्रव्योंके दो, तीन और चार भाग ले तो छः प्रकारके गंध होते हैं. इसी
उस द्रव्यके क्रमसे दो, तीन और चार भाग ले और अन्य द्रव्योंके आदि
ाग मिलावे तो छः गंध होते हैं ॥ १८ ॥ चार द्रव्योंके मेलसे एक द्रव्यके
सि भेद होंगे, यह सब मिलकर छियानवें भेद होते हैं ॥ १९ ॥ सोलह प्रकारके
गंधद्रव्य कहे उनसे चार २ द्रव्य लेकर भेद करे तो एक हजार आठ सौ
ीस गंध होते हैं॥ २० ॥ चार द्रव्यके गंधसे छियानवें भेद कह आये हैं और
हजार आठ सौ वीस भेद चार २ द्रव्यके मिलानेसे होते हैं इसलिये छियान-
अठराह सौ बीसको गुण दे तो पूर्वोक्त गंधसंख्या १७४७२० सिद्ध हुई॥ २१॥
ोंके भेद जाननेके लिये गणितका प्रकार और प्रस्तार दोनों कहते हैं, सब जितने
हों उनकी संख्यातक एकसे लेकर नीचेसे ऊपरको खडी पंक्ति लिख पीछे
के एकको अपने ऊपरके दोमें जोडे तो हुए तीन, फिर इन तीनको अपने
के तीनमें जोडे हुए छः, उनको अपने ऊपरके चारमें जोडे हुए दश, इस प्रकार
का संकलन करता आवे, अंतकी संख्याको छोड दे पीछे इस संकलित पंक्तिका
लन करे अंत्य संख्या छोड देवे इस भांति उतनी पंक्तियोंमें संकलन करता
जितने २ द्रव्य लेकर भेद जानना चाहता है तो पिछली पंक्तिके ऊपर अंत्यकी
याको छोड जो संख्या होगी वही भेदसंख्या जानो ॥ २२ ॥ अगर, पत्र (गंध-
), तुरुष्क (सिह्लक), शैलेय इन चारोंके दो, तीन, पांच और आठ भाग लेवे,
गु, मोथा, रस, (वाले), केश हीवेर इनके पांच, दो, आठ और तीन भाग
३ ॥ स्पृक्का, त्वक्, तगर, मांसी इनके चार एक, सात और छः भाग, श्वेत
न, नख, श्रीवास, कुंदरू इनके सात, छः चार और एक भाग ले ॥ २४ ॥ इन

कसप्तषड्भागाः । सप्ततुवेदचन्द्रैर्मलयनखश्रीकतुरुष्का
षोडशके कच्छपुटे यथा तथा मिश्रितैश्चतुर्द्रव्यैः । येऽ
भागास्तेऽस्मिन् गन्धादयो योगाः ॥ २५ ॥ नखतगरतुरु
जातीकर्पूरमृगकृतोद्बोधाः । गुडनखधूप्या गन्धाः कर्तव्याः
भद्राः ॥ २६ ॥ जातीफलमृगकर्पूरबोधितैः ससहकारमधु
बहवोऽत्र पारिजातश्चतुर्भिरिच्छापरिगृहीतैः ॥ २७ ॥
श्रीवासकसमन्विता येऽत्र धूपयोगास्तैः । श्रीसर्जरस
स्नानानि सवालकत्वग्भिः ॥२८॥ रोध्रोशीरनतागुरुमुस्तापि
पथ्याः।नवकोष्ठात्कच्छपुटाद् द्रव्यत्रितयं समुद्धृत्य॥२९॥च
रुष्कभागौ शुक्तार्धं पादिका तु शतपुष्पा । कुट्टहिंगुलगु
केसरगन्धाश्चतुरशीतिः ॥३०॥ सप्ताहं गोमूत्रे हरीतकीचू

सोलह द्रव्योंके कच्छपुटमें जैसा नीचे लिखा है जिन २ भागोंका योग
हो उन २ चार द्रव्योंके उतने २ भाग लेकर अनेक प्रकार गंधयोग
॥ २५ ॥ पीछे उन गंधोंको नख, तगर, सिह्लकसे युक्त करे जाती (ज
कर्पूर, कस्तूरीसे उनका उद्बोधन करे और, गुड व नखकी धूप देदे.
सब ओर जोडनेसे योग अठारह होते हैं इसलिये इन गंधोंको सर्वतोभद्र
॥ २६ ॥ इसी कच्छपुटमें चाहे जौनसे चार द्रव्य लेकर उनको जायफल
और कपूरसे सुवासित करे और सहकार (बहुत सुगंधयुक्त आम्र का
शहतमें उनको भिगोवे तो पारिजातफूलसमान गंधवाले अनेक गंध बनते
सब मुखवास हैं अर्थात् इन पारिजातगंधोंसे मुख सुगंधयुक्त होता है ॥२
कच्छपुटमें जितने गंध कहे उनमें सर्ज रस (राल) और श्रीवासके मिलाने
प्रकारके धूप बनते हैं और उनसे श्रीवास और सर्जरस न मिलावे और
दालचीनी मिला देवे तो स्नानके योग्य चूर्ण बनते हैं अर्थात् उनको शि
लगाय स्नान करे ॥ २८ ॥ लोध, खस, तगर, अगुरु, मोथा, पत्र, प्रि
(परिपेलव नाम गंध द्रव्य), हरड इन नौ द्रव्योंके कच्छपुटसे चाहे जो त
लेकर गंध बनावे ॥२९॥ उनमें एक भाग चंदन, एक भाग सिह्लक आधा
और एक भागका चतुर्थांश सौंफ मिलाकर गुग्गुल और गुडका धूप उनको
यह बकुलपुष्पके तुल्य गंधवाले चौरासी गंधद्रव्य बनते हैं, नौ द्रव्योंसे तीन
लेकर गंध बनाते तो चौरासी भेद होते हैं;यह पूर्वोक्त रीतसे प्रस्तार करके
चाहिये॥३०॥दाँतोनको लेकर हरडे चूर्णयुक्त गोमूत्रमें,सात दिन भिगोकर पी

क्षिप्तश । गन्धोदके च भूयो विनिक्षिपेद्दन्तकाष्ठानि ॥ ३१
एलात्वक्पत्राञ्जनमधुमरिचैर्नागपुष्पकुष्ठैश्च । गन्धाम्भः क
कश्चित्कालं स्थितान्यस्मिन् ॥ ३२ ॥ जातीफलपत्रैलाकर्पूरैः
यमैकशिखिभागैः । अवचूर्णितानि भानोर्मरीचिभिः शोषणीय
॥ ३३ ॥ वर्णप्रसादं वदनस्य कांतिं वैशद्यमास्यस्य सुगन्
च । संसेवितुः श्रोत्रसुखां च वाचं कुर्वन्ति काष्ठान्यसकृद्भवा
॥ ३४ ॥ कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति सौभाग्यमाव
वक्त्रसुगन्धितां च । ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगां
म्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति ॥ ३५ ॥ युक्तेन चूर्णेन क
रागं रागक्षयं पूगफलातिरिक्तम् । चूर्णाधिकं वक्त्रविगन्ध
पत्राधिकं साधु करोति गन्धम् ॥ ३६ ॥ पत्राधिकं निशि
सफलं दिवा च प्रोक्तान्यथाकरणमस्य विडम्बनैव । कक्कोलपू
वलीफलपारिजातैरामोदितं मदमुदामुदितं करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपुरचिन्तायां
गन्धयुक्तिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

गंधोदकमें डाले ॥ ३१ ॥ इलायची, त्वक्, पत्र, अंजन, शहत, काली मिरच
केसर और कूठ इन सबको सम भाग लेकर गंधजल बनावे, उस गंधजल
समय उन दंतकाष्ठोंको भिगोय रक्खे ॥३२॥ पीछे जायफल चार भाग, पत्र
इलायची एक भाग और कपूर तीन भाग लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण कर
काष्ठोंसे ऊपर मसल दे, पीछे उनको धूपमें सुखाकर रक्खे॥३३॥ पहले जो
सिद्ध किये उनको सेवन करनेवाले पुरुषके शरीरका रंग उत्तम होता है,
कांति उत्तम होती है, भीतरसे मुख निर्मल व सुगंधयुक्त होता है, और उस
वाणी मीठी हो जाती है कि,जिसके सुननेसे सुख होता है ॥३४॥पान कामदे
करनेवाला है,रूपको उत्पन्न करता,सौभाग्यको करता,मुखको सुगंधयुक्त कर
करता, कफके रोगोंको हरता है, पान खानेसे और जो पहले दंतकाष्ठके
वे भी होते हैं ॥ ३५ ॥ पानमें ठीक चूना लगनेसे (न बहुत हो और न थो
राग (रंग) करता है, सुपारी अधिक हो तो रागका क्षय होता है, चूना
होनेसे मुखमें दुर्गन्ध करता है और पान अधिक हो तो मुखमें उत्तम गंध
॥ ३६ ॥ रात्रिको पान खाय तो सुपारी थोडी डाले और पान अधिक रक
खाय तो सुपारी अधिक डाले और पान थोडा रक्खे तो उत्तम होता

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

स्त्रीपुरुषसमायोगः ।

शस्त्रेण वेणीविनिगूहितेन विदूरथं स्वा महिषी जघान । विष प्रदिग्धेन च नूपुरेण देवी विरक्ता किल काशिराजम् ॥ १ ॥ एवं विरक्ता जनयन्ति दोषान् प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्तितैः किम् । रक्ता विरक्ताः पुरुषैरतोऽर्थात परीक्षितव्याः प्रमदाः प्रयत्नात ॥ २ ॥ स्नेहं मनोभवकृतं कथयन्ति भावा नाभीभुजस्तनविभूषणदर्शनानि । वस्त्राभिसंयमनकेशविमोक्षणानि भ्रूक्षेपकाम्पतकटाक्षनिरीक्षणानि ॥ ३ ॥ उच्चैः ष्ठीवनमुत्कटप्रहसितं शय्यासनोत्सर्पणं यात्रास्फोटनजृम्भणानि सुलभद्रव्यालपसम्प्रार्थना । बालालिङ्गनचुम्बनान्यभिमुखे सख्याः समालोकनं दृक्पातश्च पराङ्मुखे गुणकथा कर्णस्य कण्डूयनम् ॥ ४ ॥

विपरीत रीतिसे पान खाया तो पान खाना विडंबना है. कक्कोल, सुपारी, लवलीफल और पारिजातसे तांबूल खानेवाले पुरुषको मदके हर्ष करके पान खाना प्रसन्न करता है ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

विदूरथराजाकी रानीने अपनी चोटीमें विनिगूहित (छिपाये हुए) शस्त्रसे अपने पतिको मार डाला था और काशीराजकी रानीने विरक्त होकर विष मिले हुए नूपुरसे अपने स्वामीका नाश किया ॥ १ ॥ विरक्त स्त्रियें इस प्रकार प्राण नाश करनेवाले दोष उठा खडे करती हैं, फिर और दोषके कथन करनेकी क्या आवश्यकता है, इस कारण अतियत्नके साथ पुरुषोंको स्त्रियोंके विरक्त या अविरक्तपनकी परीक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥ अनुरक्तके समस्त भाव कामदेवसे उत्पन्न हुआ स्नेह प्रकट करते हैं. स्त्रियें नाभि, भुज, छातियें और गहने दिखाती हैं, वस्त्र पहिरना, केश बांधना, बालोंका खोल देना, भौं चढाना, कम्पित कटाक्षसे देखना यह समस्त चिह्न प्रकाशित किया करती हैं ॥ ३ ॥ ऊँचे स्वरसे खखारना, ठट्ठा मारकर हँसना, शय्या और आसनके निकट जाना, अंगोंका तोडना, जँभाई लेना, थोडीसी सुलभ वस्तुका मांगना, सन्मुखके बैठे हुए बालकका चिपटाना और चूमना, सखीके सामने प्यारेको देखना, सखी दूसरी ओरको मुख करे तो प्यारेकी ओर कनखियोंसे देखना प्यारेके गुणोंका बखान करना, कान खुजाना यह सब अनुरक्तके चिह्न हैं ॥ ४ ॥

दमां च विद्यादनुरक्तचेष्टां प्रियाणि वक्ति स्वधनं ददाति। वि
क्य संहृष्यति वीतरोषा प्रमार्ष्टि दोषान् गुणकीर्तनेन ॥ ५
तन्मित्रपूजा तदरिद्विषत्वं कृतस्मृतिः प्रोषितदौर्मनस्यम्। स्तनं
दानान्युपगूहनं च स्वेदोऽथ चुम्बाप्रथमाभियोगः ॥ ६ ॥ वि
चेष्टा भृकुटीमुखत्वं पराङ्मुखत्वं कृतविस्मृतिश्च। असम्भ
दुष्परितोषता च तद्विष्टमैत्री परुषं च वाक्यम् ॥ ७ ॥ स्पृष्ट्वा
वालोक्य धुनोति गात्रं करोति गर्वं न रुणद्धि यान्तम्। चु
विरामे वदनं प्रमार्ष्टि पश्चात्समुत्तिष्ठति पूर्वसुप्ता ॥ ८ ॥ भि
णिका प्रव्रजिता धात्री कुमारिका रजिका। मालाकारी दुष्टा
सखी नापिती दूत्यः ॥ ९ ॥ कुलजनविनाशहेतुर्दूत्यो यस्मा
प्रयत्नेन। ताभ्यः स्त्रियोऽभिरक्ष्या वंशयशोमानवृद्ध्यर्थम् ॥

अनुरक्त स्त्री प्यारे वचन कहती हैं, अपना धन देती हैं, देखनेसे हर्षित हो
और क्रोधहीन होकर सब दोषोंको गुण कहकर भली भांति छिपाती हैं ॥
पतिके मित्रोंकी पूजा करना, पतिके शत्रुसे द्वेष करना, पतिकी याद करना,
परदेश जानेपर मनमें दुःख पाना, आलिंगन आदिके लिये स्तन और
लिये अधरका दान करना, पहली वार स्वामीके मिलनेसे पसीनेका आ
अपने आपही पहले पतिका मुख चूमना यह अनुरागिणी स्त्रियोंकी चेष्टा हैं
भृकुटीका चढाना, मुख फेर लेना, प्यारेको भूल जाना, अनादर करना, अ
षित रहना, जो स्वामीका शत्रु हो उसके साथ मित्रता करना, कठोर वचन
॥ ७ ॥ पतिको छूकर या देखकर शरीरको कम्पायमान करना, गर्व
(अर्थात् ऐसी बातोंको करना कि तुम हो क्या, मेरी समान कोई सुन्दर नह
चलते हुए स्वामीको न बिठलाना, पतिके चूम लेनेपर मुँहको पोंछ ड
स्वामीके सोनेसे पहले सोना और पीछे उठना यह सब चेष्टा विरक्त स्त्रीक
॥ ८ ॥ भिखारिन, सन्यासिन, दासी, धाई, धोबन, मालन, दुष्टाङ्गना; (
खुतरी आदि लक्षणयुक्त स्त्री), सखी और नायन यह दूती होती हैं ॥
कुलके मनुष्योंका नाश करनेके लिये यह दूतियां कारण हैं. इस कारण

१-३८४ प्रकारके नायिकाभेदोंमें जो बालिका, मध्या, प्रगल्भा और वाराङ्गनादि भेदसे
विरक्ताके लक्षण हैं, सो सब साहित्यदर्पणके तीसरे परिच्छेदके १५४ व १५५ सूत्रमें देखने चाहि

रात्रौ विहारजागररोगव्यपदेशपरगृहेक्षणिकाः। व्यसनोत्सवाश्च स
सहेतवस्तेषु रक्ष्याश्च ॥ ११ ॥ आदौ नेच्छति नोज्झति स्मर
व्रीडाविमिश्रालसा मध्ये ह्रीपरिवर्जिताभ्युपरमे लज्जाविनम्राः
भावैर्नैकविधैः करोत्यभिनयं भूयश्च या सादरा बुद्ध्वा पुम्प्र
च यानुचरति ग्लानेतरैश्चेष्टितैः॥१२॥स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवे
शिण्यविज्ञानविलासपूर्वाः। स्त्रीरत्नसंज्ञा च गुणान्वितासु स्त्रीव्य
योऽन्याश्चतुरस्य पुंसः॥१३॥न ग्राम्यवर्णैर्मलदिग्धकाया निन्द्य
सम्बन्धिकथां च कुर्यात्। न चान्यकार्यस्मरणं रहःस्था मनं

साथ वंश, यश और मान बढानेके लिये इन दूतियोंके पंजेसे स्त्रियोंको ब
चाहिये ॥ १० ॥ रात्रिके समय गृहके बाहर जाना या जागनेके लिये र
मिस करना (तबियतके अच्छे न होनेका बहाना करना), पराये घरका
विपत्ति और व्याह आदि उत्सवोंमें जाना यह समस्त समय स्त्रियोंके संकेत
इस कारण इनमेंभी स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ११ ॥ आगे जो
मिले हुए आलस्यसे युक्त हो, सुरतकी बात नहीं करती और उसको छोडभी
सकती, रतिके बीचमें लाजको छोड देती है, रतिके समाप्त हो जानेपर
नीचा मुख कर लेती है. जो स्त्री आदरके साथ अनेकप्रकारकी रतिक्रियाक
करती है और पुरुषका स्वभाव जानकर ग्लानियुक्त चेष्टाके साथ आचरण क
अर्थात् स्वामीके दुःखित होनेसे दुःखी और सुखयुक्त होनेसे सुखी होती है.
स्त्रीके साथ रति करना उचित है ॥ १२ ॥ यौवन (जवानी), रूप,
चतुराई, विज्ञान और विलासादि समस्त गुणोंके होनेसे स्त्रियोंकी रत्न
होती है अर्थात् वह रत्नही समझी जाती हैं और चतुर पुरुषके लिये इससे
रीत गुणवाली स्त्रियां व्याधिकी समान हो जाती हैं ॥ १३ ॥ गंवारी बोली
नेवाली या अंगोंके मलीन रखनेवाली स्त्रीके साथ निन्दनीय अंगोंके सम्ब
(गुदादिकी) बातचीत करना उचित नहीं और एकान्तस्थानमें बैठी हु
जो और किसी कार्यको सोच रही हो उसके साथभी स्मरकथा (र

---

१ "लेख्यप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः। दूतीसम्प्रेषणैर्नार्याः भावाभिव्यक्तिरिष्यते ॥"
[साहि]त्यदर्पण तीसरा परिच्छेद ॥ अर्थ-चिट्ठी भेजना, श्रेष्ठ स्नेह दिखाना, मृदुवचन कहना अथव
भेजनेसेही स्त्रियां अपने अभिप्रायको प्रगट करती हैं.

मूलं हरदग्धमूर्तेः ॥ १४ ॥ श्वासं मनुष्येण समं त्यजन्ती बाहूपधानस्तनदानदक्षा । सुगन्धकेशा सुसमीपरागा सुप्तेऽनुसुप्ता प्रथमं विबुद्धा ॥ १५ ॥ दुष्टस्वभावाः परिवर्जनीया विमर्दकालेषु च न क्षमा याः । यासामसृग्वासितनीलपीतमाताम्रवर्णं च न ताः प्रशस्ताः ॥१६॥ या स्वप्नशीला बहुरक्तपित्ता प्रवाहिनी वातकफातिरिक्ता।महाशना स्वेदयुताङ्गदुष्टा या ह्रस्वकेशी पलितान्विता च ॥ १७ ॥ मांसानि यस्याश्च चलन्ति नार्या महोदरा खिङ्खिमिनी च या स्यात् । स्त्रीलक्षणे याः कथिताश्च पापास्ताभिर्न कुर्यात्सह कामधर्मम् ॥ १८ ॥ शशशोणितसङ्काशं लाक्षारससन्निकाशमथवा यत् । प्रक्षालितं विरज्यति यच्चासृक्तद्भवेच्छुद्धम् ॥ १९ ॥ यच्छब्दवेदनावर्जितं त्र्यहात्सन्निवर्तते रक्तम् । तत पुरुषसम्प्रयोगादविचारं गर्भतां याति ॥ २० ॥ न दिनत्रयं निषेवेत् स्नानं

(बातचीत) का कहना उचित नहीं. क्योंकि मनही कामदेवका मूल है ॥ १४ ॥ जो स्त्री पुरुषके साथ बराबर श्वास छोडते २ अपनी बांहके तकियेपर पतिका मस्तक रखकर स्तनोंसे छातीको पीडीत करनेवाली, केशोंको सुगन्धित रखनेवाली सदा निकट रहकर जो सुन्दर अनुराग करे, स्वामीके सोजानेपर सोनेवाली और स्वामीके जागनेसे पहले जागनेवाली ही अनुरागिणी है ॥ १५ ॥ रतिके समय विमर्दको न सहनेवाली, दुष्टस्वभावसे युक्त स्त्रीका त्यागनाही ठीक है. जिन स्त्रियोंके ऋतुका रुधिर काला, नीला, पीला व कुछेक लाल रंगका होता है, वह भी श्रेष्ठ नहीं है ॥ १६ ॥ बहुत सोनेवाली, बहुत रक्त (या) पित्तवाली, जिसके शरीरमें वात कफ अधिक होय, प्रवाहिणी (ऋतुके समय जिसके बहुत रुधिर निकले) बहुत भोजन करनेवाली, जिसका शरीर सदा पसीनेसे युक्त रहे, छोटे केशवाली श्वेत केशवाली, दूषित अंगवाली ॥ १७ ॥ जिस स्त्रीके शरीरका मांस ढीला हो जो मिनामिनी और बडे पेटवाली हो और स्त्रियोंके लक्षण जिनके अच्छे न हों तिनके साथ कामधर्म न करे ॥ १८ ॥ जिस स्त्रीके ऋतुका रुधिर खरगोश (खरहे) के रुधिरके समान या लाखके रंगके समान रंगवाला हो, जिसका दाग धोनेसे छट जाय सो शुभ होता है ॥ १९ ॥ जो रुधिर शब्द और पीडाहीन होकर तीन दिनके पीछे बिलकुल बंद हो जाय, सो रुधिर पुरुष समागम होनेके हेतुसे निश्चयही गर्भताको प्राप्त होता है ॥ २० ॥ ऋतुकालमें तीन दिनतक स्

माल्यानुलेपनं च स्त्री। स्नायाच्चतुर्थदिवसे शास्त्रोक्तेनोपदेशेन २
पुष्यस्नानौषधयो याः कथितास्ताभिरम्बुमिश्राभिः । स्नायात्त
मन्त्रः स एव यस्तत्र निर्दिष्टः ॥२२॥युग्मासु किल मनुष्या नि
नार्यो भवन्ति विषमासु । दीर्घायुषः सुरूपाः सुखिनश्च विकृ
ग्मासु ॥ २३ ॥ दक्षिणपार्श्वे पुरुषो वामे नारी यमावुभयसंस्थ
यदुदरमध्योपगतं नपुंसकं तन्निबोद्धव्यम् ॥ २४ ॥ केन्द्रत्रिको
शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते । पापैस्त्रिलाभारिग
यायात् पुज्जन्मयोगेषु च संम्प्रयोगम् ॥ २५ ॥ न नखदशन
क्षतानि कुर्यादृतुसमये पुरुषः स्त्रियाः कथञ्चित् । ऋतुरपि
षट् च वासराणि प्रथमनिशात्रितयं न तत्र गम्यम् ॥ २६ ॥
इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० पुंस्त्रीसमायोगो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७

माला और अनुलेपनका व्यवहार करना स्त्रीको नहीं चाहिये. फिर चौथे
शास्त्रमें कहे हुए उपदेशके अनुसार स्नान करना उचित है ॥ २१ ॥ पुष्यस्न
अध्यायमें जिन औषधियोंका वर्णन कर आये हैं. उन सबके जलसे स्नान
और जो मंत्र वहांपर कहे हैं, उनहींका पढना आवश्यकीय है ॥ २२ ॥ य
युग्म (छठी आदि सम) रात्रियोंमें पुरुषका संयोग होनेसे पुत्र और विषम (पां
सातवीं आदि) रात्रियोंमें पुरुषका संयोग होनेसे कन्या उत्पन्न होती है और
अयुग्मा (आठवीं दशवीं आदि दूसरी सम) रात्रियोंमें पुरुषका संग होनेसे
आयुवाले, रूपवान् और सुखी पुत्रोंका जन्म होता है ॥ २३ ॥ स्त्रीके दक्षिणपा
गर्भ हो तो पुरुष, वाम पार्श्वमें हो तो कन्या, दोनों ओर हो तो दो गर्भ
जो गर्भ उदरके बीचमें हो तिसको नपुंसक जानना चाहिये ॥ २
केन्द्र या त्रिकोणमें शुभ ग्रह हों, लग्न और चन्द्रमा शुभग्रहोंसे युक्त हो पा
तीसरे, ग्यारहवें और छठे घरमें हों उस समय स्त्रीका संग करना चाहिये ॥२
ऋतुकालमें पुरुषको किंचित्भी नख या दांतोंसे स्त्रियोंके अंगोंको क्षत नहीं
चाहिये, सोलह दिनतक ऋतु रहती है, तिसमें पहली तीन रातोंमें ही ऋतु
स्त्रीके सांथ गमन न करे ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादव
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

शय्यासनलक्षणम्.

सर्वस्य सर्वकालं यस्मादुपयोगमेति शास्त्रमिदम् । राज्ञां विशेतोऽतः शयनासनलक्षणं वक्ष्ये ॥ १ ॥ असनस्यन्दनचन्दनहरिसुरदारुतिन्दुकीशालाः । काश्मर्यञ्जनपद्मकशाका वा शिंशपा च शुभाः ॥ २ ॥ अशनिजलानिलहस्तिप्रपातिता मधुविहङ्गकृतनिलयाः । चैत्यश्मशानपथिजोर्ध्वशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ॥ ३ ॥ कण्टकिनो वा ये स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च । सुरभवनजाश्च न शुभा ये चापरयाम्यदिक्पतिताः ॥ ४ ॥ प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात् कुलविनाशः । व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्च नैकविधाः ॥ ५ ॥ पूर्वं च्छिन्नं यदि वा दारु भवेत्तत्परीक्ष्यमारम्भे । यद्यारोहेत्तस्मिन् कुमारकः पुत्रपशुदं तत् ॥ ६ ॥ सितकुसुममत्तवारणदध्यक्षतपूर्णकुम्भरत्नानि । मंगल्यान्यन्यानि

जिस करके सर्वकालमें सबको उपयोगी होनेवाला यह शास्त्र तिसके उद्देश्यका जतानेवाला है, इसी कारण इसमें राजाओंके शय्यासनलक्षण कहे जायँगे ॥ १ ॥ असन, स्यंदन, हरिद्रा (हलदुआ), देवदारु, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अंजन, पद्मक शाक या शीसमके वृक्षका काठ आसन और चौकीके लिये शुभदायी है ॥ २ ॥ जो वृक्ष बिजली, जल, वायु या हाथी करके गिरा दिये गये हों, जिनमें मधुमक्खियोंके छत्ते या पक्षियोंके घोंसले हों, जो चैत्य, श्मशान और मार्गमें उत्पन्न हुए हों; जिनके ऊपर सूखी बेल लिपटी हुई हो ॥३॥ जिन वृक्षोंमें काँटे हों, जो वृक्ष महानदीके संगमस्थानमें या देवमंदिरमें उत्पन्न हुए हों, जो वृक्ष काटे जानेपर पश्चिम और दक्षिण दिशाकी ओरको गिर गये हों ऐसे वृक्ष शय्या और आसनके लिये शुभदायी नहीं हैं ॥४॥ वर्जनीय वृक्षके बने हुए आसन या शयनका व्यवहार करनेसे कुलका नाश हो जाता है, इससे व्याधिभय खर्च और क्लेशादि अनेक प्रकारके अनर्थ होते हैं ॥५॥ जो पहलेका कटा हुआ वृक्ष पडा हो तो आरम्भमें (गढनेके समय) तिसकी परीक्षा करनी चाहिये. जो उसपर कोई कुमार (लडका) चढे तो वह काठ पुत्र और पशुका देनेवाला होगा ॥६॥ शय्या आसन बनानेके आरम्भमें सफेद फूल, मतवाला हाथी

च दृष्ट्वारम्भे शुभं ज्ञेयम् ॥ ७ ॥ कर्मांगुलं यवाष्टकमुदरासक्तं
परित्यक्तम् । अंगुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता ।
नवतिः सैव षडूना द्वादशहीना त्रिषट्कहीना च । नृपपुत्रमन्त्रि
लपतिपुरोधसां स्युर्यथासंख्यम् ॥ ९ ॥ अर्धमतोऽष्टांशोनं वि
म्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः । आयामत्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकु
शिराः ॥ १० ॥ यः सर्वः श्रीपर्ण्याः पर्यंको निर्मितः स धनद
असनकृतो रोगहरस्तिन्दुकसारेण वित्तकरः ॥ ११ ॥ यः के
शिंशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः । चन्दनमयो रि
धर्मयशोदीर्घजीवितकृत् ॥ १२ ॥ यः पद्मकपर्यंकः स द
मायुः श्रियं श्रुतं वित्तम् । कुरुते शालेन कृतः कल्याणं श
रचितश्च ॥ १३ ॥ केवलचन्दनरचितं काञ्चनगुप्तं विचि
त्नयुतम् । अध्यासन् पर्यङ्कं विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः ॥ १
अन्येन समायुक्ता न तिन्दुका शिंशुपा च शुभफलदा ।

दही अक्षत भरा हुआ घडा, रत्न और दूसरे मंगलद्रव्योंका देखना शुभकारी
॥८॥तुषहीन आठ जौका पेट मिलाकर बराबर रखनेसे एक अंगुल होगा, इसका
कर्मांगुल है. ऐसे शत अंगुलकी लम्बी शय्या राजाओंके जयका कारण होती है
राजपुत्र, मंत्री. सेनापति और पुरोहितोंकी शय्या क्रमानुसार नब्बे, चौरासी, अ
और बहत्तर अंगुल लम्बी बनानी चाहिये ॥९॥ शय्याका लम्बाईके आधेमें अ
आठवां अंश घटा देनेसे जो बचे वह शय्याकी चौडाई हुई. दीर्घताके एक तृत
शकी तुल्य कुक्षि और शिरके साथ पादोच्छ्राय अर्थात् ऊंचाई होगी. यह विश्वक
कहा है. ॥१०॥ श्रीपर्णी या तिन्दुकसारके बने हुए समस्त पलंग धनदान कर
और असन वृक्षके काठका बना हुआ पलंग रोगको हरता है ॥११॥ केवल श
मके काठका बना हुआ पलंग अनेक भांतिकी वृद्धि करता है. चन्दनका पलंग
नाशक होनेके सिवाय धर्म, यश, और बडे आयुको देता है ॥१२॥ पद्मका बना
पलंग दीर्घायु,श्री,श्रुत और वित्त देता है, शाल या साखूका बना हुआ पलंग कल्य
कारी, होता है ॥१३॥ केवल चन्दके बने, सुवर्णसे मढे और विचित्र र
जडे पलंगपर सोनेवाले राजाका देवता लोगभी पूजन करते हैं ॥ १
तिन्दुकी, शीशम, श्रीपर्णी, देवदारु, और असन वृक्षके काठमें दूसरा

र्ी न च देवदारुवृक्षो न चाप्यसनः ॥ १५ ॥ शुभदौ तु
ाालौ परस्परं संयुतौ पृथक् चैव । तद्वत्पृथक् प्रशस्तौ सहितौ
रेद्रककदम्बौ ॥ १६ ॥ सर्वः स्यन्दनरचितो न शुभः प्राणान्
ते चाम्बकृतः । असनोऽन्यदारुसहितः क्षिप्रं दोषान् करोति
॥१७॥ अम्बस्यन्दनचन्दनवृक्षाणां स्यन्दनाच्छुभाः पादाः ।
रुणा शयनासनमिष्टफलं भवति सर्वेण ॥ १८ ॥ गजदन्तः
। प्रोक्ततरूणां प्रशस्यते योगे । कार्योऽलङ्कारविधिर्गजदन्तेन
तेन ॥ १९ ॥ दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पये-
म् । अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥२०॥
ःसवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु । छेदे दृष्टेष्वारोग्यविज-
वृद्धिसौख्यानि ॥ २१ ॥ प्रहरणसदृशेषु जयो नद्यावर्ते प्रन-
ाप्तिः । लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः॥२२॥

ठाकर पलंग बनावे तो वह पलंग या चौकी शुभदायक है ॥ १५ ॥ सागू और
ष्ठका परस्पर मिलना या अलग रहनाभी शुभदायी है, वैसेही हरिद्रक और
कठका मिलना या अलग रहनाभी अच्छा और शुभदायी है ॥१६॥ स्यन्दन-
काठके बने सब प्रकारके पलंग ही शुभदायी नहीं हैं, अंबवृक्षके काठका
प्राण लेता है, असनमें दूसरे काठको मिलाया जाय तो वह शीघ्र बहुतसे
उत्पन्न करता है ॥१७॥ अम्ब, स्यन्दन और चन्दन इन तीनों वृक्षोंके काठसे
लंगोंके पाये स्यन्दनवृक्षके काठसे बनें तो शुभ होते हैं और बाकी सब
के फलवाले वृक्षोंके काठ करके शय्या और आसन बनें तो इष्टफलकी प्राप्ती
है ॥१८॥ ऊपर कहे हुए सब प्रकारके वृक्षोंके साथ हाथीदांतका संयोग श्रेष्ठ
है, श्रेष्ठ हाथी दांत करके तिसकी अलंकारविधिका करना उचित है ॥ १९ ॥
न्तके मूलमें जितने अंगुलकी परिधि हों तिससे दूने अंगुल मूलकी ओरसे
कर शेषभागसे समस्त रचना करे परन्तु अनूपचर (जलमायदेशचर) हाथियोंके
कुछ अधिक और पर्वतचारी हाथियोंके विषयमें कुछ कम छोडना चाहिये॥२०॥
ीदान्तमें काटनेके समय श्रीवत्स, वर्द्धमान (मिट्टीका सिकोरा) छत्र, ध्वज और
रके समान चिह्न दिखाई देनेसे आरोग्य, विजय, धनकी वृद्धि और सुख होते
२१ ॥ शस्त्राकार चिह्न होनेसे जय, नद्यावर्त जैसा नदीमें चारों तरफसे किसी
गह जल घूमता रहता है उस आकारका चिह्न होनेसे नष्ट हुए देशकी प्राप्ति और

स्त्रीरूपे स्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः । कुम्भेन
प्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन ॥ २३ ॥ कृकलासकपिभुजङ्गेष
क्षव्याधयो रिपुवशत्वम् । गृध्रोलूकध्वांक्षश्येनाकारेषु ज
॥ २४ ॥ पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत् सुते रक्ते
श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥ २५ ॥ शुक्लः समः सु
स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः । अशुभशुभच्छेदा ये शयने
तथा फलदाः ॥ २६ ॥ ईषायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रं प्रश
चायः । अपसव्यैकदिगग्रे भवति भयं भूतसञ्जनितम् ॥
एकेनावाक्छिरसा भवति हि पादेन पादवैकल्यम् । द्वा
जीर्यतेऽन्नं त्रिचतुर्भिः क्लेशवधबन्धाः ॥ २८ ॥ सुषिरेऽथवा
ग्रन्थौ पादस्य शीर्षगे व्याधिः । पादे कुम्भौ यश्च ग्रन्थौ

ढेलेक आकारका चिह्न होनेसे पहले प्राप्त हुए देशकीही सम्प्राप्ति होती है ॥
पाचिह्न होनेसे अपना नाश, भृङ्गार (झारी) के समान चिह्न उठे तो पुत्रकी
होती है.घडेका चिह्न होनेसे रत्नकी प्राप्ति और दंडका चिह्न होनेसे यात्रामें वि
है ॥ २३ ॥ गिरगट, वानर या सर्पके समान चिह्न होनेसे दुर्भिक्ष, व्याधि औ
शत्व होता है. गिद्ध उल्लू,काक और बाजके समान चिह्न होनेसे मनुष्योंमें म
है ॥ २४ ॥ हाथीदांतके काटनेपर पाश या कबन्धका चिह्न निकले तो
मृत्यु, रुधिर निकलनेसे मनुष्योंपर विपत्ति और काला श्याव (काला पी
हुआ), रूखा और दुर्गन्धयुक्त होनेसे अशुभकारी होता है ॥ २५ ॥
छिद्र बराबर,शुक्ल, सुगन्धित वा स्निग्ध हो तो शुभकारी होता है, यह आस
जानो.आसनके पक्षमें जो शुभकारी और अशुभकारी छेद कहे सो शय्याके भी
फलदायी हैं ॥२६॥ ईषायोगमें प्रदक्षिणा श्रेष्ठ है यह आचार्यलोगोंने
की है और तिससे विपरीत काष्ठोंका योग होना या शिर पाद काष्ठोंके अग्रव
दिशामें हो तो ऐसे पलंगपर सोनेवालेको भूतसे उत्पन्न हुआ भय होता है
शय्या वा आसनका एक पाया अधोमुख हो (काठके मूलकी ओर पाये
बनाया जाय काठके अग्रकी ओर पायेका मूल) तो पादोंकी विकल
पाये अधोमुख हों तो उसपर सोनेवालेको अन्न नहीं पचता, तीन और च
अधोमुख हों तो क्लेश, वध और बन्धन होता है ॥ २८ ॥ पायेका शि
युक्त अथवा बुरे रंगकी गांठसे युक्त हो तो व्याधि होती है. पायेके कुं

१ पलंगके दोनों ओरकी दो पट्टी और दो तरफके दो सेरुओंको ईषा कहते हैं.

रोगः ॥ २९ ॥ कुम्भाधस्ताज्जंघा तत्र कृतो जंघयोःकरोति
। तस्याश्चाधारोऽधःक्षयकृद्द्रव्यस्य तत्र कृतः ॥ ३० ॥ खुर-
ग्रो ग्रन्थिः खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः । ईषाशीर्षण्योश्च
गसंस्थो भवेन्न शुभः ॥ ३१ ॥ निष्कुटमथ कोलाक्षं सूकर-
च वत्सनाभं च । कालकमन्यधुन्धुकमिति कथितश्छिद्रसं-
॥३२॥ घटवत्सुषिरं मध्ये सङ्कटमास्ये च निष्कुटं छिद्रम् ।
ात्रमाषमात्रं नीलं छिद्रं च कोलाक्षम् ॥ ३३ ॥ सूकरनयनं
ं विवर्णमध्यर्द्धपर्वदीर्घं च । वामावर्तं भिन्नं पर्वमितं वत्सना-
ामम् ॥ ३४ ॥ कालकसंज्ञं कृष्णं धुन्धुकमिति यद्भवेद्भिनि-
म् । दारुसवर्णं छिद्रं न तथा पापं समुद्दिष्टम् ॥३५॥ निष्कु-
द्रव्यक्षयस्तु कोलेक्षणे कुलध्वंसः । शस्त्रभयं सूकरके रोग-
वत्सनाभाख्ये ॥ ३६ ॥ कालकधुन्धुकसंज्ञं कीटैर्विद्धं च न

उदररोग होता है ॥ २९ ॥ कुम्भके नीचेवाले काष्ठभागको जंघा कहते हैं
बनाया या जो पलंगमें लगाया जाय तो सोनेवालेकी जंघाओंमें भय उत्पन्न
है. जंघाके बीचले भागको आधार कहते हैं इस आधारमें गांठ होनेसे धनका
होता है ॥ ३० ॥ पायेके खुरमें जो गांठ हो तो खुरवाले जीवोंकी पीडाका
ा कहा है. ईषा और शीर्षदेश (सिरहानेका सेरुआ) के तिहाई भागपर
हो तो शुभ नहीं होता ॥३१॥ निष्कुट, कोलाक्ष, शूकरनयन, वत्सनाभ, कालक
धुन्धुक संक्षेपसे यह छिद्रोंके नाम कहे गये ॥३२॥ छेदके बीचमें घडेके समान
और तंगमुखका आकार हो तो वह निष्कुट नामक छिद्र है और मटर या
बराबर और नीले रंगका छेद कोलाक्ष कहाता है ॥३३॥ विषम, विवर्ण और
ोरुआ लम्बा छेद शूकरनयन, एक पोरुआ लम्बा वामावर्त छिद्र वत्सनाभ
े प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥ काले रंगका छेद कालक नामसे विख्यात है और जो विशे-
ो निर्भिन्न हो वह धुन्धुक नामवाला कहाता है. परन्तु काठके समान रंगवाले छेदसे
भांति अशुभ उदय नहीं होता ॥३५॥ निष्कुट नामवाला छेद होनेसे धनका नाश
क्षण (सूकरके नेत्रके आकार) से कुलध्वंस. शूकरके सरीखे छिद्रसे शस्त्रभय और
ाभ नामक छेदसे रोगभय होता है, और घुना हुआ कालक व धुन्धुक
ाला छेदभी शुभदायी नहीं होता, जिसमें गांठें बहुतसी हों ऐसा सब प्रकारका

शुभदं छिद्रम् । सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं सर्वत्र न शोभनं दारु ॥ ३७
एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम् । त्रिभिरात्मजवृ
करं चतुर्भिरथो यशश्चाग्र्यम् ॥ ३८ ॥ पञ्चवनस्पतिरचिते पञ्च
याति तत्र यः शेते। षट्सप्ताष्टतरूणां काष्ठैर्घटिते कुलविनाशः॥ ३

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० शय्यासनलक्षणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः।

अथाशीतितमोऽध्यायः ।

वज्रपरीक्षा.

रत्नेन शुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन । यस्माद
परीक्ष्यं दैवं रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः ॥ १ ॥ द्विपहयवनितादीनां स्वगु
विशेषेण रत्नशब्दोऽस्ति । इह तूपलरत्नानामधिकारो वज्रपूर्वाण

काठ सर्वत्रही शुभदायी नहीं होता ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ एक वृक्षके काठका बना हु पलंग धन्य अर्थात् अच्छा है. दो वृक्षोंके काठका बना हुआ पलंग धन्यतर अ बहुतही अच्छा है. तीन वृक्षोंके काठका बना हुआ पलंग पुत्रोंको बढानेवाला चार वृक्षोंका बना हुआ पलंग उत्तम अर्थ यशको देनेवाला है ॥ ३८ ॥ प वृक्षोंके काठसे बनेहुए पलंगपर जो मनुष्य सोता है उसकी इतिश्री हो जाती और छः सात या आठ वृक्षोंके काठसे बने हुए पलंग पर शयन करनेसे कुल नाश हो जाता है ॥ ३९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य--पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

शुभ रत्न धारण करनेसे राजाओंका कल्याण होता है, अशुभ रत्न धारण कर अशुभ होता है, इसी कारण रत्न जाननेवाले पंडितों करके रत्नाश्रित दैवकी परी करना चाहिये ॥ १ ॥ हाथी, अश्व, वनिता आदि समस्त पदार्थोंमें ही अपने २ गु विशेषसे रत्न शब्द प्रयोग होता तो है (जैसे गजरत्न, अश्वरत्न, रमणी इत्यादि) परन्तु यहांपर रत्नशब्दसे हीरकादि पाषाणरत्नोंकाही अधिकार है ॥ किसीका मत है कि बलनामक दैत्यसेही रत्नोंकी उत्पत्ति है, कोई कहते हैं धीचमुनिकी अस्थिसे रत्न उत्पन्न हुए हैं, कोई कहते हैं कि मिट्टीके स्वभ

॥ रत्नानि बलाद्दैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि । केचि-
स्वभावाद्वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ॥३॥ वज्रेन्द्रनीलमरकत-
नपद्मरागरुधिराख्याः । वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फ-
ाशिकान्ताः ॥ ४ ॥ सौगन्धिकगोमेदकशंखमहानीलपुष्परा-
गाः । ब्रह्ममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रवालानि ॥ ५ ॥
टे विशुद्धं शिरीषकुसुमोपमं च कौशलकम् । सौराष्ट्रकमा-
कृष्णं सौपारकं वज्रम् ॥ ६ ॥ ईषत्ताम्रं हिमवति मतङ्गजं
ष्पसङ्काशम् । आपीतं च कलिङ्गे श्यामं पौण्ड्रेषु सम्भूतम्
॥ ऐन्द्रं षडस्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च । कदली-
डनिकाशं वैष्णवमिति सर्वसंस्थानम् ॥ ८ ॥ वारुणमबलागु-
मं भवेत् कर्णिकारपुष्पनिभम् । शृङ्गाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षि
च हौतभुजम् ॥ ९ ॥ वायव्यं च यवोपममशोककुसुमप्रभं
दृष्टम् । स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकरसम्भवस्त्रिविधः
० ॥ रक्तं पीतं च शुभं राजन्यानां सितं द्विजातीनाम् ।

मस्त रत्नोंमें विचित्रता पैदा हुई है ॥३॥ वज्र (हीरा), इन्द्रनील (नीलम)
(पन्ना), करकेनत, लाल, रुधिर, वैदूर्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिक-
ान्त ॥ ४ ॥ सौगन्धिक, गोमेदक, शंख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्यो-
, शस्यक, मोती, मूंगा इन सबको रत्न कहते हैं ॥ ५ ॥ वेणानदीके किनारे,
शुद्ध हीरा उत्पन्न होता है, शिरीषफूलके समान हीरा कोशलदेशमें उत्पन्न होता
छेक लाल रंगका हीरा सुराष्ट्र (सूरत) देशमें उत्पन्न होता है. काले रंगका
सूपारक देशमें पैदा होता है ॥ ६ ॥ हिमवान् पर्वतपर उत्पन्न हुआ हीरा
लाल रंगका होता है, वल्लके फूलके समान हीरेका मतङ्गज नाम है कुछेक
रंगका हीरा कलिंग देशमें उत्पन्न होता है. पौण्ड्रदेशमें उत्पन्न हुआ रत्न श्याम-
होता है ॥ ७ ॥ छः कोणवाले हीरेका इन्द्र देवता होता है, शुक्लवर्ण हीरेका
देवता होता है, सर्पाकार मुखवाले, काले या कदलीके काण्डकी नाईं (नीला
पीला) रंगवाला हीरा विष्णुदैवत है अर्थात् विष्णुजी इसके देवता हैं. सबके
और आकारका विषय कहा गया॥८॥स्त्रीकी भगके समान आकारवाला हीरा
होता है, यह कर्णिकारके पुष्पके समानभी होता है. सिंघाडेके समान या
के नेत्रके समान हीरेका अग्नि देवता है ॥ ९ ॥ अशोकके फूलके समान रंग-
या जौके समान समस्त हीरोंका वायव्य नाम है, नदी आदिके प्रवाह, खान
प्रकीर्णक (किसी २ भूमिके ऊपर बिखरे हुए) यह तीन आकर हीरोंकी

शरीषं वैश्यानां शुद्राणां शस्यतेऽसिनिभम् ॥ ११ ॥ सित
र्षकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु शत्या। तुलितस्य द्वे लक्षे
द्विद्व्यनिते चैतत् ॥ १२ ॥ पादत्र्यंशार्धोनं त्रिभागपञ्चां
शांशाश्च। भागश्च पञ्चविंशः शतिकः साहस्रिकश्चेति ॥
सर्वद्रव्याभेद्यं लघ्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्। तडिद
क्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम् ॥ १४ ॥ काकपदमक्षिकाके
तुयुक्तानि शर्कराविद्धम्। द्विगुणास्रि दिग्धकलुषत्रस्तविशी
न शुभानि ॥ १५ ॥ यानि च बुदबुददलिताग्रचिपिटवासी
दीर्घाणि। सर्वेषां चैतेषां मूल्याद्भागोऽष्टमो हानिः ॥ १६
त किञ्चिदपि धारयितव्यमेके पुत्रार्थिनीभिरबलाभिरु
तज्ज्ञाः। शृङ्गाटकत्रिपुटधान्यकवत्स्थितं यच्छ्रोणीनिभं च

उत्पत्तिके हैं ॥ १० ॥ लाल और पीले रंगका हीरा क्षत्रियोंको शुभदायी
रंगका हीरा ब्राह्मणोंको शुभकारी है. शिरिष सुमनके समान हरे रंगका हीर
को और खड्गके समान नीले रंगका हीरा शूद्रोंको शुभ फल देता है ॥ ११
सरसोंके आठ दानोंके समान एक चावल होता है ऐसे बीस चावलभर
तोलमें हो उसका मूल्य लाख रुपया होता है. जो दो २ चावलभर
अर्थात् १८।१६।१४ इत्यादि चावलभर हो तो क्रमानुसार पहले कहे हुए
पाद, तिहाई, आधा, त्रिभागयुत, पांचवां अंश, सोलहवां अंश, पच्चीसवां अंश
अंश और सहस्रांश मोल होगा ॥१२॥१३॥ जो हीरा किसी वस्तुसे न टूटे,
जलमें भी किरणके समान तैरता रहे,स्निग्ध और बिजली, अग्नि वा इंद्रधनुष
रंगवाला हो वह हितकारी होता है ॥१४॥ जिन हीरोंमें काकपद, मक्खी, के
युक्त चिह्न रहें अथवा जो कंकरसे विद्ध हों, जिनके सब कोनोंमें दो दो सूत
दिग्ध, मलीन, कान्तिहीन और जर्जर हों वे हीरे शुभदायी नहीं हैं ॥१५॥ या
पानीके बबूलेके समान आगेसे फटे हुए, चिपटे या वासीफलके समान लम्बे ह
भी शुभदाई नहीं हैं. इन समस्त चिह्नवाले हीरोंका मूल्य पहले ठहरे हुए
अपेक्षा क्रमानुसार अष्टमांश घटानेसे ठीक होगा अर्थात् पहले कहे हुए काक
चिह्नवाले हीरेका जो मूल्य हो, मक्खीके चिह्नसे युक्त हीरेका मोल उसके
अष्टम भाग हीन होगा ॥ १६ ॥ हीरेके तत्त्वको जाननेवाले कोई २ पंडि
हैं कि पुत्र चाहनेवाली स्त्रियोंको साधारण हीराभी धारण करना उचि
सिंघाडे, त्रिपुट, धान्य या श्रोणिके समान हीरेका धारण करना पुत्र चा

तनयार्थिनीनाम् ॥ १७ ॥ स्वजनविभव जीवितक्षयं जनयति मनिष्टलक्षणम् । अशनिविषभयारिनाशनं शुभमुरुभोगकं भूभृताम् ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० वज्रपरीक्षा नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८

अथैकाशीतितमोऽध्यायः ।

मुक्ताफलपरीक्षा.

द्विपभुजगशुक्तिशंखाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि । मुक्ताफ तेषां बहुसाधु च शुक्तिजं भवति ॥१॥ सिंहलकपारलौकि राष्ट्रकताम्रपर्णिपारशवाः । कौबेरपाण्ड्यवाटकहैमा इत्याकरा ॥ २ ॥ बहुसंस्थानाः स्निग्धा हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः ताम्राः श्वेतास्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः ॥ ३ ॥ कृष्णाः पीताः सशर्कराः पारलौकिका विषमाः । न स्थूला नात्यल्प नीतनिभाश्च सौराष्ट्राः ॥ ४ ॥ ज्योतिष्मन्तः शुभ्रा गुरवोऽ

स्त्रियोंके लिये शुभ है ॥ १७ ॥ बुरे लक्षणवाले हीरेके धारण करनेसे र भाई, बन्धु, धन और प्राणकी हानि होती है और शुभ लक्षणवाले हीरेके करनेसे वज्रभय, विष व शत्रुका नाश हो जाता है और भोगकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामशीतितमोऽध्यायः

हाथी, सर्प, सीपी, शंख, बादल, बांस, मत्स्य और शूकरसे मोती उ हैं. उन सबमें सीपीसे निकला हुआ मोतीही अत्यन्त श्रेष्ठ होता है ॥ १ लक, पारलौकिक, सौराष्ट्रक, ताम्रपर्णि, पारशव, कौबेर, पाण्ड्यवाटक ये आठ स्थान मोतियोंके आकर हैं ॥ २ ॥ अनेक आकारवाले, स्निग समान श्वेतरंगके और स्थूल मोती सिंहलदेशमें उत्पन्न होते हैं. कुछेक ल या काली, कांतिसे हीन, श्वेत रंगके मोतियोंका ताम्र नाम है ॥ ३ श्वेत या पीले रंगके, कंकडयुक्त और विषम मुक्ता पारलौकिक नामसे प्र बहुत मोटे न बहुत छोटे और मक्खनके समान कान्तिमान् मोती सौ प्रसिद्ध हैं ॥४॥ तेजमान्, श्वेतवर्ण, भारी अत्यंत महागुणवाले मोती प

गुणाश्च पारशवाः । लघु जर्जरं दधिनिभं बृहद्विसंस्थानमपि हैमम् ॥ ५ ॥ विषमं कृष्णं श्वेतं लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत् । निम्बफलत्रिपुटधान्यकचूर्णाः स्युः पाण्ड्यवाटभवाः ॥ ६ ॥ अतसीकुसुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कसङ्काशम् । हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति ॥ ७ ॥ परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम् । निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम् ॥ ८ ॥ माषचतुष्टयधृतस्यैकस्य शताहतास्त्रिपञ्चाशत । कार्षापणा निगदिता मूल्यं तेजोगुणयुतस्य ॥ ९ ॥ माषकदलहान्यातो द्वात्रिंशद्विशतिस्त्रयोदश च । अष्टौ शतानि च शतत्रयं त्रिपञ्चाशता सहितम् ॥ १० ॥ पञ्चत्रिंशं शतमिति चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः । सार्धास्तिस्रो गुञ्जाः सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम् ॥ ११ ॥ गुञ्जात्रयस्य मूल्यं पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य । रूपकपञ्चत्रिंशत् त्रयस्य गुंजार्धहीनस्य ॥ १२ ॥ पलदशभागो धरणं तद्यदि

छोटे जर्जर, दहीके समान कान्तिवाले, बडे और श्रेष्ठ आकारके मोती हैम नामसे प्रसिद्ध हैं ॥५॥ काले या श्वेत रंगके, विषम, और लघु प्रमाण तेजस्वी मुक्ताफल कौबेर नामसे ख्यात हैं और पाण्ड्यावाटदेशका उत्पन्न हुआ मोति त्रिपुट और धनियेके चूर्णके समान होता है ॥ ६ ॥ वैष्णव मोती (जिसके देवता विष्णुजी हों वह) अलसीके फूलके समान श्यामवर्ण, इन्द्रदेवतावाला मोती चन्द्रमाके समान, वरुणदेवतावाला मोती हरितालके रंगके समान प्रभावाला और यमदैवत मोती काले रंगका होता है ॥ ७ ॥ वायुदैवत मोती पके हुए अनारके बीजके समान, चोंटली या तांबेके समान रंगवाला और आग्नेय मुक्ताफल धुआंरहित अग्नि और कमलके समान कान्तिमान् हुआ करता है ॥ ८ ॥ तोलमें चार मासेका जो हो, तेज और गुणयुक्त हो ऐसे एक मोतीका मोल ५३०० रुपये हैं ॥ ९ ॥ आधे माषेकी हानिके अनुसार अर्थात् पहले कहे प्रमाणसे आधा माषा कम या अधिक होनेपर मोतीका मोल क्रमसे ३२०० । २००० । १३०० । ८०० । ३५३ रुपया कम या अधिक होगा ॥ १० ॥ चार चोंटलीभरका मोती पंचत्रिंशशत (१३५) नवति (९०) रुपयेके मोलका है और साढे तीन चोंटलीभरका मोती सत्तर (७०) रुपयेका होता है ॥ ११ ॥ तीन चोंटलीभरके गुणयुक्त मोतीका मोल ५० रुपये और ढाई चोंटलीभरके मोतीका मोल ३५ रुपये होता है ॥ ११ ॥ एक पलके दशवें भागको धरण[1] कहते हैं जो एक धरणपर तेरह मोती चढें

[1] पांच रत्तीका एक माषा, सोलह माषेका एक कर्ष और चार कर्षका एक पल है, पलके दशवें भागको धरण कहते हैं.

मुक्तास्त्रयोदश सुरूपाः । त्रिशती सपञ्चविंशा रूपकं संख्याः
मूल्यम् ॥ १३ ॥ षोडशकस्य द्विशती विंशतिरूपस्य सप्त
सशता । यत्पञ्चविंशतिधृतं तस्य शतं त्रिशता सहितम् ॥ १४
त्रिंशत् सप्ततिमूल्या चत्वारिंशच्छतार्द्धमूल्या च । षष्टिः पञ्चे
वा धरणं पञ्चाष्टकं मूल्यम् ॥ १५ ॥ मुक्ताशीत्यास्त्रिशत्शत
सा पञ्चरूपकविहीना । द्वित्रिचतुष्पञ्चशता द्वादशषट्पञ्चकत्रि
यम् ॥ १६ ॥ पिक्कापिच्चार्घा रवकः सिक्थं त्रयोदशाद्याना
संज्ञः परतो निगराश्चूर्णाश्चाशीतिपूर्वाणाम् ॥ १७ ॥ एतद्गुण
क्तानां धरणधृतानां प्रकीर्तितं मूल्यम् । परिकल्प्यमन्तराले ह
गुणानां क्षयः कार्यः ॥ १८ ॥ कृष्णश्वेतकपीतकताम्राणामी
पिच विषमाणाम् । त्र्यंशोनं विषमकपीतयोश्च षड्भागदलहं
॥ १९ ॥ ऐरावतकुलजातानां पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु । ये च

तो उनका मोल २२५ रु० होगा ॥ १३ ॥ एक धरणपर सोलह मोती च
उनका मोल २०० रु० होगा. एक धरणपर बीस मोती चढें तो उनका मोल
रुपये होंगे. एक धरणपर पच्चीस चढें तो उनका मोल १३० रुपये होंगे.
तोलपर तीस मोती चढें तो ७० रु० मोल हुआ. एक धरणपर ४० मोती
मोल ५० रुपये होंगे. एक धरणपर ४५ या ६० मोती चढें तो चालीस
मोल होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ एक धरणपर अस्सी मोती चढें तो मोल ३
हुआ. एक धरणपर १०० मोती चढें तो २५ रु० के हुए. एक धरणके २००
१२ रु० के, धरणके ३०० मोती ६ रु० के, धरणके ४०० मोती ५
धरणके ५०० मोती तीन रुपयेके होते हैं ॥ १६ ॥ धरणके १३ मोती पिक्क
मोती पिच्चा, २५ मोती अर्घ, ३० मोती रवक, ४० मोती सिक्थ और एक
पर चढे हुए पचपन मोती निगर कहलाते हैं ॥ इससे आगे अस्सी आदि
एक धरणपर चढें तो उनको चूर्ण कहते हैं ॥ १७ ॥ यह धरणसे तोले हुए
युक्त मोतियोंका वर्णन किया गया. इनके बीचमें हो तो त्रैराशिक करके
वृद्धिके अनुसार मूल्य नियत करे ॥ १८ ॥ कुछेक काले, कुछेक सफेद,
पीले, कुछेक लाल और विषम मोतियोंका एक तिहाई अंश घटाकर ठी
होगा. विषम और पीला रंग होनेपर तो षष्ठांशहीन मूल्य होगा ॥ १९ ॥
सोमवारके दिन, पुष्य व श्रवण नक्षत्रमें, ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए जिन
योंका जन्म हुआ है और जिन भद्रहाथियोंने उत्तरायण कालमें चंद्रम

रायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वोश्च भद्रेभाः ॥ २० ॥ तेषां किल उ
मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु । बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसं
प्रभायुक्ताः ॥ २१ ॥ नैषामर्घः कार्यो न च वेधोऽस्तीव ते
युक्ताः । सुतविजयारोग्यकरा महापवित्रा धृता राज्ञाम् ॥
दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं बहुगुणं च वाराहम् । तिमिजं म
क्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च ॥ २३ ॥ वर्षोपलवज्जातं व
न्धाच्च सप्तमाद्भ्रष्टम् । ह्रियते किल ख व्यैस्तडित्प्रभं मेघ
तम् ॥ २४ ॥ तक्षकवासुकिकुलजाः कामगमा ये च पन्न
षाम् । स्निग्धा नीलद्युतयो भवन्ति मुक्ताः फणस्यान्ते ॥
शस्तेऽवनिप्रदेशे रजतमये स्थिते च यदि । वर्षति देवोऽक
तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम् ॥ २६ ॥ अपहरति विषमलक्ष्मी
यति शत्रून्यशो विकाशयति । भौजङ्गं नृपतीनां धृतम
विजयदं च ॥ २७ ॥ कर्पूरस्फटिकनिभं चिपिटं

ग्रहण समयमें जन्म लिया है ॥ २० ॥ उनके दन्तकोषोंमें, कुम्भोंमें बडे २
प्रकारके कान्तियुक्त बहुतसे मोती निकलते हैं ॥ २१ ॥ इनका आंकना
इनमें छिद्र करना उचित नहीं है, यह अत्यन्त प्रभायुक्त, महापवित्र हैं. रा
इनको धारण करनेसे सुत, विजय और आरोग्य पाते हैं ॥ २२ ॥वराहके द
चन्द्रमाकी कांतिके समान प्रभावाला,बहुतसे गुणोंसे युक्त वाराहमुक्ताफल औ
रसे उत्पन्न हुआ मछलीके नेत्रके समान द्युतिमान् बहुतसे गुणोंसे युक्त पवित्र
बडा मोती तिमिज नामसे ख्यात होता है ॥२३॥ सातवें वायुस्कन्धसे गिरा हुअ
लीके समान चमकीला,वर्षाके ओलेके समान मेघसे उत्पन्न हुए मोतीको ऊपर
रही स्वर्गके देवता लोग हरण कर लेते हैं ॥२४॥ तक्षक और वासुकिनागके
उत्पन्न हुए इच्छाचारी जो सर्प हैं उनके फनोंके अग्रभागमें नीली द्युतिवाले
मोती उत्पन्न होते हैं ॥ २५॥ नागसे उत्पन्न हुए मोतीकी यह परीक्षा है कि,
भूमिके बीच चांदीके पात्रमें उस मोतीके रख देनेसे अचानक वर्षा होने लग
॥२६॥ सर्पसे उत्पन्न हुआ मोती,विना मोल किये धारण करनेसे राजाओंके
और अलक्ष्मीको हर लेता है, शत्रुओंको भय करता है, यशका विस्तार क
और विजयदायी है ॥ २७ ॥ बाससे उत्पन्न हुआ मोती कपूर और वि
समान दीप्तिमान्, आकारसे चपटा, विषम होता है और शंखसे उत्पन्न

च वेणुजं ज्ञेयम् । शंखोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुचिरं च ॥ २८ ॥ शंखतिमिवेणुवारणवराहभुजगाभ्रजान्यवेध्यानि । अमितगुणत्वाच्चैषामर्घः शास्त्रे न निर्दिष्टः ॥ २९ ॥ एतानि सर्वाणि महागुणानि सुतार्थसौभाग्ययशस्कराणि । रुक्छोकहन्तॄणि च पार्थिवानां मुक्ताफलानीप्सितकामदानि ॥३०॥ सुरभूषणं लतानां सहस्रमष्टोत्तरं चतुर्हस्तम् । इन्द्रच्छन्दो नाम्ना विजयच्छन्दस्तदर्धेन ॥ ३१ ॥ शतमष्टयुतं हारो देवच्छन्दो ह्यशीतिरेकयुता। अष्टाष्टकोऽर्धहारो रश्मिकलापश्च नवषट्कः ॥ ३२ ॥ द्वात्रिंशता तु गुच्छो विंशत्या कीर्तितोऽर्धगुच्छाख्यः । षोडशभिर्माणवको द्वादशभिश्चार्धमाणवकः ॥ ३३ ॥ मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः पञ्चलतो हारफलकमित्युक्तम् । सप्तविंशतिमुक्ता हस्तो नक्षत्रमालेति ॥ ३४ अंतरमणिसंयुक्ता मणिसोपानं सुवर्णगुलकैर्वा । तरलकमणिमध्यं तद्विज्ञेयं चाटुकारमिति ॥ ३५ ॥ एकावली नाम यथेष्टसंख्य

मोती चंद्रमाके समान दीप्तिमान् गोल, प्रकाशित और मनोहर होनेसे जाना जाता है ॥२८॥ शंख, तिमि, वेणु, वारण, वराह, भुजंग और बादलसे उत्पन्न हुए सभी मोती अवेधनीय (छिद्र करनेके योग्य नहीं) हैं और अत्यन्त गुणशाली होनेसे शास्त्रमें उनका आंकना नहीं कहा ॥२९॥ महागुणों करके युक्त यह समस्त मोती राजाओंको पुत्र, धन, सौभाग्य और यश देनेवाले हैं, रोग शोकके हरनेवाले और मनोवाञ्छाको देते हैं ॥३०॥ एक हजार आठ लडीकी परिमाणमें अर्थात् लंबाई जो चार हाथ हो ऐसी मोतियोंकी मालाका नाम इन्द्रच्छन्द है, यह माला देवताओंका भूषण है, दो हाथकी लंबी मालाका नाम विजयच्छन्द है ॥३१॥ एक सौ आठ लडीका या इक्यासी लडीका देवच्छन्द हार होता है, चौसठ लडीका अर्धहार और चउवन लडीके हारका नाम रश्मिकलाप है ॥३२॥ ३२ लडीके हारका नाम गुच्छ है, २० लडीके हारका नाम अर्द्धगुच्छ है, १६ लडीके हारका नाम माणवक है और १२ लडीका अर्द्धमाणव हार कहलता है ॥३३॥ आठ लडीके हारका नाम मन्दर है, पांच लडीके हारका नाम फलक है, सत्ताईस मोतियोंकी माला हाथभर लम्बी हो तो वह नक्षत्रमाला[1] कहलाती है ॥३४॥ मुक्तामालाके बीच २ में मणियें पिरोई जायँ तो मणिसोपान नामक और सुवर्णके दानोंसे युक्त चंचल मध्यमणि हो तो चाटुकार नामक माला होती है ॥ ३५ ॥ जितने चाहे उतने मोतियोंसे युक्त, हाथभरकी लम्बी और कोई विशेष मोती बीचमें न हो

1 इसका दूसरा नाम वनमाला है ।

हस्तप्रमाणा मणिविप्रयुक्ता । संयोजिता या मणिना
यष्टीति सा भूषणविद्भिरुक्ता ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० मुक्ताफलपरीक्षानामैकाशीतितमोऽध्याय

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

पद्मरागपरीक्षा ।

सौगन्धिककुरुविन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः । स
कजा भ्रमराञ्जनाब्जजम्बूरसद्युतयः ॥ १ ॥ कुरुविन्दभवाः
मन्दद्युतयश्च धातुभिर्विद्धाः । स्फटिकभवा द्युतिमन्तो
विशुद्धाश्च ॥ २ ॥ स्निग्धः प्रभानुलेपी स्वच्छोऽर्चिष्मा
सुसंस्थानः । अन्तः प्रभोऽतिरागो मणिरत्नगुणाः सम
॥ ३ ॥ कलुषा मन्दद्युतयो लेखाकीर्णाः सधातवः खण्डाः दु
मनोज्ञाः सशर्कराश्चेति मणिदोषाः ॥ ४ ॥ भ्रमरशिखि

माला एकावली कहलाती है और बीचमें मणि हो तो यष्टि नाम होत
गहनोंके लक्षण जाननेवालोंने कहा है ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकाशीतितमोऽध्यायः

सौगंधिक, कुरुविन्द और स्फटिक इन तीन भांतिके पत्थरोंसे पद्मराग
का जन्म होता है, सौगन्धिक पाषाणसे उत्पन्न हुए लाल भ्रमर, अंजन,
जामुनफलके समान कान्तिमान् होते हैं ॥ १ ॥ कुरुविन्द पत्थरसे
पद्मराग अनेक रंगवाले, मन्द कान्तिसे युक्त और धातुओंसे दागी होते
कसे उत्पन्न हुए पद्मराग अनेक रंगवाले, कान्तिमान् और शुद्ध हो
स्निग्ध, अपनी प्रभासे चमकता हुआ, स्वच्छ, कान्तिमान्, भारी, शुभ
भीतरही कान्तिसे युक्त और बहुत रंगवाला यह समस्त पद्मराग मणि
युक्त है ॥ ३ ॥ कलुष (मलीन), धुंधली कान्तिसे युक्त, रेखाओंसे
कादि धातुओंसे युक्त, खंडित, बिंधनेके अयोग्य और कंकरदार पद्म
नहीं होता, यही मणियोंके दोष हैं ॥ ४ ॥ भ्रमर और मोरके कंठके स

दीपशिखासप्रभो भुजङ्गानाम् । भवति मणिः किल मूर्द्धनि योऽन-
र्घेयः स विज्ञेयः ॥ ५ ॥ यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य दोषा
भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित् । राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य
देवः शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात् ॥ ६ ॥ षड्विंशतिः
सहस्राण्येकस्य मणेः पलप्रमाणस्य । कर्षत्रयस्य विंषतिरुपदिष्टा
पद्मरागस्य ॥७॥ अर्धपलस्य द्वादश कर्षस्यैकस्य षट्सहस्राणि ।
यच्चाष्टमाषकधृतं तस्य सहस्रत्रयं मूल्यम् ॥ ८ ॥ माषकचतुष्टयं
दशशतक्रयं द्वौ तु पञ्चशतमूल्यौ । परिकल्प्यमन्तराले मूल्यं
हीनाधिकगुणानाम् ॥ ९ ॥ वर्णन्यूनस्यार्धं तेजोहीनस्य मूल्यम-
ष्टांशः । अल्पगुणो बहुदोषो मूल्यात् प्राप्नोति विंशांशम् ॥ १० ॥
आधूम्रं व्रणबहुलं स्वल्पगुणं चाप्नुयाद्विंशकं भागम् । इतिपद्म-
रागमूल्यं पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टम् ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० पद्मरागपरीक्षानाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

वाला दीपककी शिखाके समान कान्तिमान् मणि सर्पोंके मस्तकमें उत्पन्न होती है
वह अमोल होती है ॥ ५ ॥ जो राजा उस अनमोल मणिको धारण करता है
उसको कभीभी विष या रोगकृत दोष प्राप्त नहीं हो सकता. उस मणिके प्रभावसे
देवता लोग नित्य उसके राज्यमें वर्षा करते हैं और उसके शत्रुओंकाभी नाश हो
जाता है ॥ ६ ॥ तोलमें एक पलभर पद्मरागका मोल २६००० छब्बीस हजार
रुपया, तीन कर्षभर पद्मरागका मोल बीस हजार रुपया कहा है ॥ ७ ॥ तोलमें
आधे पलभर पद्मरागका मोल बारह हजार, एक कर्ष भर तोलके पद्मरागका
मोल छः हजार रुपया आठ मासे भर पद्मरागका मोल तीन हजार रुपया होगा
॥ ८ ॥ चार मासेभर पद्मरागका मोल एक हजार रुपया, दो मासेभर पद्मरागका
मोल पांच सौ रुपया होगा. गुणकी अधिकताई और कमताईके अनुसार उस
मणिके मूल्यको जांचना चाहिये ॥ ९ ॥ कम रंगवाले पद्मरागका मोल आधा होता
है, तेजरहित पद्मरागका मोल आठवां हिस्सा, थोडे गुण और बहुतसे दोषयुक्त
पद्मरागका मोल बीसवां हिस्सा होगा ॥ १० ॥ कुछेक धूमल रंगका बहुतसे व्रण-
वाला, थोडे गुणोंसे युक्त पद्मराग मोलका बीसवां भाग पाता है. ऐसा पूर्वाचार्योंने
भली भांति उपदेश किया है ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-
स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

मरकतपरीक्षा.

शुकवंशपत्रकदलीशिरीषकुसुमप्रभं गुणोपेतम्
सुरपितृकार्यें मरकतमतीव शुभदं नृणां विधृत
इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० मरकतपरीक्षा नाम त्र्यशीतितमो

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

दीपलणक्षम् ।

वामावर्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः
व्रजति विमलस्नेहवर्त्यन्वितोऽपि । दीपः पापं कथया
वान् वेपनश्च व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद्यश्च नाशं प्र
दीपः संतमूर्तिरायततनुर्निर्वेपनो दीप्तिमान् । निःशब्दो
क्षिणगतिर्वैदूर्यहेमद्युतिः । लक्ष्मीं क्षिप्रमभिव्यनक्ति
द्यतं दीप्यते शेषं लक्षणमग्निलक्षणसमं योज्यं यथायु
इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० दीपलक्षणं नाम चतुरशीतितमोऽध्

तोता, बांसका पत्ता, केला और शिरीष के फूलके समान प्रभावा
कत (पन्ना) सुरकार्यमें धारण किये जानेपर अतीव शुभ फल दे

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमु
पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्र्यशीतितमोः

जिसकी शिखा बांई ओरको घूमती हो, मलीन किरणोंसे युक्त
रियाँ निकलती हों छोटी (छोटी शिखावाले) हों, निर्मल तेल
होकरभी शीघ्र बुझ जाय, कम्पायमान और शब्दयुक्त हो; जिसके
हों, विना कीट पतंगके गिरे विना पवनके चले शीघ्र नाशको प्र
पाप फलको प्रकाशित करता है ॥ १ ॥ मिली हुई शिखावाला
कम्पनहीन, दीप्तिमान्, शब्दहीन सुन्दर जिसकी लू दक्षिण
वैदूर्य और सुवर्णके समान जिसकी ज्योति हो, जो रुचिर और

अथ पंचाशीतितमोऽध्यायः ।

दन्तकाष्ठलक्षणम् ।

वल्लीलतागुल्मतरुप्रभेदैः स्युर्दन्तकाष्ठानि सहस्रशो यैः
नि वाच्यान्यति तत्प्रसङ्गो माभूदतो वच्म्यथ कामिकानि
अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान्न पत्रैश्च समन्वितानि ।
पर्वाणि न पाटितानि न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा वा
वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराःवृ
प्रचुरं च तेजः पुत्रा मधूके ककुभे प्रियत्वम् ॥ ३ ॥ लक्ष्म
च तथा करञ्जे प्लक्षेऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात् । मा
याति जनस्य जात्यां प्राधान्यमश्वत्थतरौ वदन्ति ॥ ४ ।

पावे. वह दीपक शीघ्रही लक्ष्मीके आनेको प्रकाशित करता है. बाकी सम
अग्निके लक्षणसे युक्तिके अनुसार मिलाकर फलको प्रगट करे ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमु
दाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकाय
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

वल्ली, लता, गुल्म और वृक्षोंके भेदसे हजार प्रकारके दन्तवन होते हैं
जो समस्त फल कथन किये जा सकते हैं उनके प्रसंगको बहुत न बढा
अभीष्ट फलदायक दंतकाष्ठ कहे जाते हैं ॥१॥ पहले न जाने हुए, पत्तोंसे
अर्थात् दो आदि सम पर्वयुक्त, फटा हुआ, वृक्षपरही सूख गया हुआ अ
रहित इन सब दन्तकाष्ठोंसे दन्तधावन न करे ॥२॥ वैकङ्कत, नारियल औ
वृक्षके दन्तकाष्ठसे ब्राह्मी द्युति प्राप्त होती है,क्षेमवृक्षकी दँतौनसे उत्तम भा
वटवृक्षके दन्तकाष्ठसे वृद्धि, आकके पेडके दन्तौनसे बहुतसे तेजकी वृद्धि
काष्ठसे दन्तधावन करनेपर पुत्रलाभ और अर्जुनवृक्षकी दन्तौन करनेसे
होता है ॥ ३ ॥ शिरीष और करञ्जके काठकी दन्तवन हो तो लक्ष्मी प्र
पिलखनके काष्ठसे दन्तधावन करनेपर मनोरथ सिद्ध होता है. चमेलीके
व्यवहार करनेसे मनुष्यको मान मिलता है और पीपल वृक्षके दन्तकाष्ठ
करनेसे प्रधानताकी प्राप्तिको प्रकाशित करता है ॥४॥ बेर और कटेरीके

ग्यमायुर्बदरीबृहत्योरैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे । द्रव्याणि
न्यतिमुक्तके स्युः प्राप्नोति तान्येव पुनः कदम्बे ॥ ५ ॥ निम्बे
प्तिः करवीरेऽन्नलब्धिर्भाण्डीरे स्यादिदमेव प्रभूतम् । शम्यां
नपहन्त्यर्जुने च श्यामायां च द्विषतामेव नाशः ॥ ६ ॥ शाले
कर्णे च वदन्ति गौरवं सभद्रदारावपि चाटरूषके । वाल्लभ्यम
ति जनस्य सर्वतः प्रियंग्वपामार्गसजम्बुदाडिमैः ॥ ७ ॥ उदङ्
प्राङ्मुख एव वाब्दं कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य । अद्यादनिन्
सुखोपविष्टः प्रक्षाल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे ॥ ८ ॥ अभिमुखप
प्रशान्तदिक्स्थं शुभमनिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत् । अशुभ
तोऽन्यथा प्रदिष्टं स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम् ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० दंतकाष्ठलक्षणंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥

आरोग्य और आयु, बेल और खैरवृक्षकी दंतवनसे ऐश्वर्यकी वृद्धि और अति
दंतवनसे समस्त इष्टवस्तुकी प्राप्ति होती है और कदम्बवृक्षकाभी यही फल है ।
नीमके दन्तकाष्ठसे धनकी प्राप्ति, कनेरसे अन्नलाभ और भाण्डीर वृक्षके क
दन्तवनका व्यवहार करनेसेभी बहुत अन्नकी प्राप्ति होती है. शमीवृक्षके काठकी
धावनका व्यवहार करनेसे शत्रुओंको मारता है और अर्जुनवृक्षका दन्तकाष्ठ द्वे
रियोंका नाश करता है ॥६॥ शाल और अश्वकर्ण वृक्षका दन्तकाष्ठ सन्मान दे
देवदारु और बांसकी दन्तवन करनेसे सन्मान होता है. प्रियंगु, चिरचिटा,
और दाडिमके वृक्षसे दन्तकाष्ठ बनाया जाय तो मनुष्यको सब प्रकारसे प्रिय
प्राप्ति होती है॥७॥ पूर्वकी ओर या उत्तरकी ओर मुख कर भलीभांतिसे जल
कामना हृदयमें रख सुखसे बैठकर, निन्दारहित दन्तकाष्ठसे दन्तधावन करे,
उसको धोकर पवित्र स्थानमें फेंक दे ॥ ८ ॥ फेंका हुआ काष्ठ शान्त दिशामें
सामने गिरनेसे शुभकारी और खडा हो जाय तो अति शुभकारी होता है.
विरुद्ध (न शांत दिशामें गिरे न खडा हो तो) अशुभकारी कहा जाता है.
जो फेंका हुआ दन्तकाष्ठ खडा होकर गिर जाय तो उस दिन मीठा अन्नदान
है ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः ।

शाकुन–मिश्रफलाध्यायः ।

यच्छुक्रशक्रवागीशकपिष्ठलगरुत्मताम् । मतेभ्यः प्राह ऋषभं भागुरेर्देवलस्य च ॥ १ ॥ भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः ॥ २ ॥ सप्तर्षीणं मतं यच्च संस्कृतं प्राकृतं च यत् । यानि चोक्तानि गर्गाद्यैर्यात्राकारैश्च ३ ॥ तानि दृष्ट्वा चकारेमं सर्वशाकुनसंग्रहम् वराहमिहिरः प्रीत्या शिष्याणां ज्ञानमुत्तमम् ॥४॥ अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् । यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥५॥ ग्रामारण्याम्बुभूव्योमद्युनिशोभयचारिणः । रुतयातेक्षितोक्तेषु ग्राह्याः स्त्रीपुन्नपुंसकाः ॥ ६ ॥ पृथग्जात्यनवस्थानादेषां व्यक्तिर्न लक्ष्यते । सामान्यलक्षणोद्देशे श्लोकावृषिकृता विमं ॥ ७ ॥ पीनोन्नतविकृष्टांसाः पृथुग्रीवा सुवक्षसः । स्वल्पगम्भीरविरुताः पुमांसः स्थिरविक्रमाः ॥ ८ ॥ तनूरस्कशिरोग्रीवा सूक्ष्मा

शुक्र, इन्द्र, बृहस्पति, कपिष्ठल और गरुडके मतमें ऋषभने जो कुछ भागुरि और देवलसे कहा है उसको देखकर ॥ १ ॥ भरद्वाजके मतको निहार, उज्जयिनी महाराजाधिराज श्रीद्रव्यवर्द्धनने जो कुछ कहा और प्राकृत व संस्कृत विरचित सा र्षियोंका मत और गर्गादि यात्राकारियोंने जो कुछ कहा है, उस सबको देखक (मुझ) वराहमिहिरने शिष्योंकी प्रसन्नताके लिये उत्तम ज्ञानयुक्त सर्वशाकुनसंग्र बनाया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ मनुष्योंने पूर्वजन्ममें जो शुभ अशुभ कर्म किये है गमनके समय पक्षी आदि उस कर्मके पाकको प्रकाशित करते हैं, यही शाकु है ॥ ५ ॥ गाँवमें रहनेवाले, वनचर, जलचर, पृथ्वीचर, आकाशचारी, दिवाचारी निशाचारी और दिन रात्रि दोनोंमें विचरनेवाले जीवोंकी गति, दृष्टिसे, शब्दसे औ उक्तिसे,स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाने जाते हैं ॥ ६ ॥ पृथक् जाति और अन स्थाके कारणसे इन जीवोंमें कौन पुरुष, कौन स्त्री और कौन नपुंसक है इसक प्रकाश दिखाई नहीं देता, इस कारण इनके साधारण लक्षण कहकर ऋषिलोगों यह दो श्लोक बनाये हैं ॥ ७ ॥ जो जीव स्थूल, ऊंचे और विस्तीर्ण कंधवाले विशाल गरदन, सुन्दर छातीवाले, कुछेक गंभीर स्वरवाले, स्थिरविक्रमवाले हों, व जीव पुरुष अर्थात् नर हैं ॥ ८ ॥ दुर्बल छाती, दुर्बल मस्तक और दुर्बल गरद

स्यपदविक्रमाः । प्रसक्तमृदुभाषिण्यः स्त्रियोऽतोऽन्यन्नपुंसकम् ।
ग्रामारण्यप्रचाराद्यं लोकादेवोपलक्षयेत् । सञ्चिक्षिप्सुरहं वच्मि
ग्रामात्रप्रयोजनम् ॥१०॥ पथ्यात्मानं नृपं सैन्ये पुरे चोद्दिश्य
ताम् । सार्थेप्रधानं साम्यं स्याज्जातिविद्यावयोऽधिकम् ॥११॥
प्राप्तैष्यदर्केषु फलं दिक्षु तथाविधम् । अङ्गारिदीप्तधूमि
स्ताश्च शान्तास्ततोऽपरा ॥१२॥ तत्पञ्चमदिशां तुल्यं शुभं
ल्यमादिशेत् । परिशेषयोर्दिशोर्वाच्यं यथासन्नं शुभाशुभम्॥
शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्चिराद्दुन्नतदूरगैः । स्थानवृद्ध्यु पघाताच्च
द्ब्रूयात् फलं पुनः ॥ १४ ॥ क्षणतिथ्युडुवाताकैं

वाले, छोटे मुखवाले, छोटे पांवबाले, थोडे विक्रमवाले, सदा मधुर शब्द कर
जीवोंको स्त्री समझना चाहिये और जिनमें स्त्री, पुरुष दोनोंके लक्षण मिलें
नपुंसक समझना चाहिये ॥ ९ ॥ गांवका कौनसा शकुन है, वनका कौनसा
है सो लोकव्यवहारसे जान पडेगा. मैं संक्षेपकारी हूँ इस कारण केवल
प्रयोजनका विषय कहूंगा ॥ १० ॥ मार्गमें अपनेपर, सेनामें राजापर, पुरमें
(नगरस्वामी) पर और वाणिज्यमें प्रधानपर, बराबरवालोंमें जाति विद्या
अवस्थामें जो बडा हो उसपर शकुनका फल होता है ॥ ११ ॥ सूर्योदयसे
दिन चढेतक ईशानी दिशा मुक्तसूर्या. पूर्वदिशा प्राप्तसूर्या, आग्नेयी दिशा
त्सूर्या होती है, ऐसेही आठ पहरमें एक २ पहर सूर्य उदयसे लेकर पूर्वादि
ओंमें घूमता है, जिस दिशासे सूर्य चला आया हो, वह सूर्यने छोडी गई
अंगारिणी कहलाती है. जिसमें सूर्य स्थित हो वह प्राप्तसूर्या दिशा दीप्ता
है. सूर्य जिसमें जानेवाला हो वह एष्यत्सूर्या दिशा धूमिता नामवाली है.
पांच दिशामें शान्ता होती हैं मुक्तसूर्यामें अपशकुन हो तो उसका फल
चुका जाने, प्राप्तसूर्यामें अशकुनका फल उसही दिन होता है, एष्यत्सूर्यामें
कुनके फलका आगे होना जानना चाहिये ॥ १२ ॥ अंगारितादि दिश
पांचवीं दिशाओंका शुभाशुभ समस्त फल सब कालमें बराबर होता है औ
दो दिशाओंका फल निकटकी दिशाके अनुसार कहे ॥ १३ ॥ निकट और
हुए शकुनका फल शीघ्र, ऊँचे और दूरपर हुए शकुनका फल विलम्बमें हो
स्थानकी वृद्धि और उपघातके हेतु करके वैसाही फल शकुन प्रकाशित क
अर्थात् वह शकुन जिस स्थानपर बैठा हो और वह स्थान नित्य बढता हो
वृक्ष हो तो उस शकुनका फल शुभ होता है और नित्य घटनेवाले स
शकुनका बैठना अशुभ फलदायक है ॥ १४ ॥ क्षण, तिथि, नक्षत्र,

दीप्तो यथोत्तरम् । क्रियादीप्तो गतिस्थानभावस्वरविचेष्टितैः
दशधैवं प्रशान्तोऽपि सौम्यस्तृणफलाशनः । मांसामेध्
रौद्रो विमिश्रोऽन्नाशनः स्मृतः ॥ १६ ॥ हर्म्यप्रासादमङ्गल्य
स्थानसंस्थिताः । श्रेष्ठामधुरसक्षीरफलपुष्पद्रुमेषु च ॥
स्वकाले गिरितोयस्था बलिनो द्युनिशाचराः । क्लीबस्त्रीपुरु
बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १८ ॥ जवजातिबलस्थानहर्षसत्त्व
न्विताः । स्वभूमावनुलोमाश्च तदूनाः स्युर्विवर्जिताः ॥
कुक्कुटेभपिरिल्यश्च शिखिवञ्जुलछिक्कराः । बलिनः सिंह
कूटपूरी च पूर्वतः ॥ २० ॥ क्रोष्टुकोलूकहारीतकाककोकर्क्षपि
कपोतरुदिताक्रन्दक्रूरशब्दाश्च याम्यतः ॥ २१ ॥ गोशशक्रौ
माशहंसोत्क्रोशकपिञ्जलाः । बिडालोत्सववादित्रगीत
वारुणाः ॥ २२ ॥ शतपत्रकुरङ्गाखुमृगैकशफकोकिलाः

और सूर्य करके उत्तरोत्तर यह पांच देवदीप्त कहाते हैं गति, स्थान, भाव,
चेष्टा, इनके दीप्त होनेसे क्रमानुसार क्रियादीप्त होती है, दीप्तके यह दश
हैं ॥१५॥ ऊपर कहे हुए दश प्रकारके तृण और फल खानेवाले शकुन सौ
शान्त होते हैं, मांस विष्ठादिक अपवित्र पदार्थ खानेवाले शकुन रौद्र अन्न
शकुनका नाम मिश्र (न सौम्य न रौद्र) है ॥१६॥ महल, देवतादिके मं
मंगलद्रव्य या रमणीय स्थानपर शकुन बैठे हों या मधु, रस, दूध, फल,
वृक्षपर शकुन बैठे हों तो श्रेष्ठ होते हैं ॥१७॥ दिनके शकुन अपने कालमें
ऊपर अर्थात् ऊंचेपर बैठे हों. रात्रिके शकुन जलके समीप बैठे हों तो बल
हैं. इन जीवोंमें क्लीबसे स्त्री पुरुष बलवान् होते हैं ॥१८॥ जव (गति) जा
स्थान, हर्ष, सत्त्व, और स्वरयुक्त होनेपर बलवान् वा अपनी भूमिसे
गति होनेपर और वेगादिसे हीन होनेपर बलरहित होते हैं, ॥ १९ ॥ मुर्गा
पिरिली, मोर, वंजुल, छिक्कर, सिंहनाद (पक्षी) और करायिका यह समस्त
पूर्वदेशामें बलवान् होते हैं ॥२०॥ क्रोष्टु (शृगाल), उल्लू, हारीत (तोत
चक्रवाक, ऋक्षु, पिंगला (एकाप्रकारका पक्षी), कबूतर यह सब जीव
और क्रूर शब्द करते हुए दक्षिण दिशामें बलवान् होते हैं ॥ २१ ॥ पश्चि
खरहा, क्रौञ्चपक्षी, लोमडी, हंस, कुररपक्षी, कपिञ्जल (श्वेत तीतर), वि
सब जीव और उत्सव, बाजे, गीत और हास्य बली होते हैं ॥ २२
(दार्वाघाट) पक्षी, हरिण, चूहा मृग, घोडा, कोकिल, नीलकंठ, सेह,

न्त्यकपुण्याहघण्टाशंखरवा उदक् ॥ २३ ॥ न ग्राम्योऽर
ग्राह्यो नारण्यो ग्रामसंस्थितः । दिवाचरो न शर्वर्यां न च
श्चरो दिवा ॥ २४ ॥ द्वन्द्वरोगार्दितत्रस्ताः कलहामिषकांक्षि
आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः शकुनाः क्वचित् ॥ २५ ॥
ताश्वाजबालेयकुरङ्गोष्ट्रमृगाः शशः । निष्फलाः शिशिरे
वसन्ते काककोकिलौ ॥ २६ ॥ न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूक
कादयः । शरद्यब्जादगोक्रौञ्चाः श्रावणे हस्तिचातकौ ॥ २
व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिसहिषाः सबिलेशयाः । हेमन्ते निष्फला
बालाः सर्वे त्रिमानुषाः ॥ २८ ॥ ऐन्द्रानलदिशोर्मध्ये त्रि
गेषु व्यवस्थिताः । कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रद
॥ २९ ॥ शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा स्त्री याम्यानलदिगन्तरे
तश्चापि मातङ्गगोपधर्मसमाश्रयाः ॥ ३० ॥ नैर्ऋतीवा
मध्ये प्रमदासूतितस्कराः । शौण्डिकः शाकुनी हिंस्रो वाय

शंख और घंटेके बजनेपर उत्तर दिशामें बलवान् होते हैं ॥२३॥ गांवमें बनके श
होना और वनमें ग्रामके शकुनका होना ग्रहण नहीं करना चाहिये. रात्रिमें
शकुनका होना और दिनके शकुनका रात्रिमें माननाभी उचित नहीं ॥२४॥
(नरमादाका जोडा), रोगपीडित, त्रासित, झगडा और मांसके अभिलाषी,
दूसरे किनारेके और मस्त शकुनोंको कभी नहीं मानना चाहिये ॥२५॥ रो
बकरा, गधा, घोडा, हरिण, ऊंट, मृग और खरहा इनको शिशिरकालमें
मानना चाहिये और बसन्तसमयमें काग, कोयलो निष्फल माने ॥ २६ ॥
मासमें, शूकर, कूकर, भेडिये आदि, शरत्कालमें बगले, गौ और क्रौञ्च,
मासमें, हाथी और चातक अर्थात पपीहे ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥
हेमन्तमें व्याघ्र, रीछ, बन्दर, चीता, भैंसा, सर्प, बालक और समस्त
मनुष्य निष्फल होते हैं ॥ २८ ॥ पूर्व और अग्निकोणके त्रिभागमें प्रदा
क्रमसे कोशाध्यक्ष, अग्निजीवी (लुहारादि) और तपस्वी यह तीन स्थित हैं
दक्षिण और अग्निकोणके मध्य त्रिभागमें कारीगर, भिक्षुक और नंगी स्
तीन हैं. दक्षिण और नैर्ऋत्यके मध्यवाले तीन भागमें हाथी, गोप और
लोग विराजमान हैं ॥ ३० ॥ पश्चिम और नैर्ऋत्यदिशाके बिचले तीन
उत्तम स्त्री, प्रसूता स्त्री और चोर, वायव्य और पश्चिमके मध्य तीन

श्चिमान्तरे ॥३१॥ विषघातकगोस्वामिकुहकज्ञास्ततः परम्
वानीक्षणीकश्च मालाकारः परं ततः ॥ ३२ ॥ वैष्णवश्च
वाजिनां रक्षणे रतः । एवं द्वात्रिंशतो भेदाः पूर्वदिग्भिः स
॥ ३३ ॥ राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः । ग
क्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम् ॥ ३४ ॥ गच्छतस्ति
पि दिशि यस्यां व्यवस्थितः । विरौति शकुनो वाच्यस्त
समागमः ॥३५॥ भिन्नभैरवदीनार्तपरुषक्षामजर्जराः । स्वर
शुभाः शान्ता हृष्टप्रकृतिपूरिताः ॥ ३६ ॥ शिवा श्या
छुच्छुः पिङ्गला गृहगोधिका । सूकरी परपुष्टा च पुन्नामान
मतः ॥ ३७ ॥ स्त्रीसंज्ञा भासभषककपिश्रीकर्णछिक्कराः ।
श्रीकण्ठपिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ॥ ३८ ॥ क्ष्वेडास्फ
ण्याहगीतशंखाम्बुनिः स्वनाः । सतूर्याध्ययनाः पुंवत स्त्री

कलाल, चिडीमार और हिंसाकरनेवाले स्थित हैं ॥ ३१ ॥ वायव्य और
बिचले तीन भागोंमें विषघातक गोस्वामी (घोषी) और इन्द्रजालका उ
यह तीन स्थित हैं. उत्तर व ईशानके मध्य तीन भागोंमें धनवान्, इक्षणवि
और माली स्थित हैं ॥ ३२ ईशान और पूर्वके बिचले तीन भागोंमें
चरक (एक बौद्धोंका भेद है) और घोडोंकी रक्षा करनेवाले स्थित
प्रकार पूर्व दिशा आदिके साथ ३२ प्रकारके भेद कहे हैं ॥ ३३
राजपुत्र, सेनापति, शेठ, गुप्तचर, ब्राह्मण और गजाध्यक्ष यह आठ
और प्रदक्षिणाके क्रमसे क्षत्रियादि वर्ण (क्षत्रिय. वैश्य, शूद्र ब्राह्मण.
चार दिशामें स्थित जानें ॥ ३४ ॥ गमन करते हुए अथवा स्थित पुरु
ओरको स्थित होकर शकुन शब्द करे, उसके द्वारा पहली कही हुई
उत्पन्न हुई वस्तुके साथ समागम होना कहा जाता है ॥ ३५ ॥ भिन्न
दीन, आर्त कठोर, क्षाम और जर्जर शब्द शुभ नहीं होते, परन्तु श
हृष्ट प्रकृति जीवोंसे किये जानेपर शुभ होते हैं ॥ ३६ ॥ बांईओरसे गीदड
कलहकारिका, छछूंदर, छपकिया, शूकरी और कोकिला और पुरुषशक
पक्षी शुभ हैं ॥ ३७ ॥ भासपक्षी, भषक, बन्दर, श्रीकर्णपक्षी, छिक्कर
श्रीकंठ, पिप्पीक. रुरुमृग और वाज यह स्त्रीसंज्ञक हैं, यह दक्षिणमें
॥ ३८ ॥ क्ष्वेड (मुखका शब्द), आस्फोटित (बांह ठोंकनेका शब्द)
वाचन शब्द, गीत, शंख वा जलका शब्द, तुरहीका नाद, पढनेका शब्द अ
शकुन और समस्त स्त्रीके समान शब्द, यह सब अपनी दिशामें होनेसे

गिरः शुभाः ॥ ३९ ॥ ग्रामौ मध्यमषड्जौ तु गान्धारश्चे
भनाः । षड्जमध्यमगान्धारा ऋषभश्च स्वरा हिताः ॥४०
कीर्तनहृष्टेषु भारद्वाजाजबर्हिणः । धन्या नकुलचाषौ च स
पदोऽग्रतः ॥ ४१ ॥ जाहकाहिशशक्रोडगोधानां कीर्तनं
रुतसन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः ॥४२॥ ओजाःप्रदक्षिण
मृगाः सनकुलाण्डजाः । चाषः सनकुलो वामो भृगुराहा
॥ ४३ ॥ छिक्करः कूटपूरी च पिरिली चाह्नि दक्षिणाः । अ
सदा शस्ता दंष्ट्रिणः सबिलेशयाः ॥ ४४ ॥ श्रेष्ठे हयसिते
शवमांसे च दक्षिणे । कन्यकादधिनी पश्चादुदग्गोविप्रसाधव
जालश्वचरणौ नेष्टौ प्राग्याम्यौ शस्त्रघातकौ । पश्चादासव
खलासनहलान्युदक् ॥ ४६ ॥ कर्मसङ्गमयुद्धेषु प्रवेशे नष्टम
यानव्यस्तगता ग्राह्या विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥४७॥ दिवा प्र
द्राह्याःकुरङ्गरुरुवानराः।अह्नश्च प्रथमे भागे चाषवञ्जुलकुक्कु

होते हैं ॥ ३९ ॥ मध्यम, षड्ज और गान्धाररूप तीन ग्राम अत्यन्त
और षड्ज, मध्यम गांधार, ऋषभस्वर हितकारी हैं ॥ ४० ॥ भारद्वाज,
और मोरोंका शब्द कीर्तन या दृष्टिके अग्रभागमें धन्य है और नेवला,
और गिरगिट यात्राके समय इनका आगे आना पापप्रद है ॥ ४१ ॥ जा
शशक, सूअर और गोह यात्राके समय इनका नाम लेना शुभकारी
यात्राके समय इनका रोना और दर्शन इष्टकर नहीं है, वानर और री
इससे उलटा है ॥ ४२ ॥ भृगुजी कहते हैं कि अपराह्णमें मृग, नेवला अं
उत्पन्न हुए जीवोंका अर्थात् शकुनोंका विषम होकर प्रदक्षिणाके भाव
होना कल्याणकारी है और नेवलेके साथ नीलकंठ पक्षीका बांई ओ
शुभफलका देनेवाला है ॥ ४३ ॥ दिनके समय दाहिनी और छिक्करमृग,
पिरिली और सब कालमें दाहिने मार्गमें सर्प और दाढवाले जीवोंका आन
कारी होता है ॥ ४४ ॥ पूर्वमें अश्व और चीनी, दक्षिणमें शव (मुरद
मांस, पश्चिममें कन्या और दहि, उत्तरदिशामें गौ विप्र और साधुलोग
देनेवाला हैं ॥ ४५ ॥ पूर्व और दक्षिणदिशामें जाल, कुक्कुरचरण, शस्त्र अं
पश्चिममें आसव और षण्ढ, उत्तरदिशामें खल, आसन और हल शुभ
॥ ४६ ॥ कर्म, संगम और युद्धमें प्रवेश करनेके समय और हराये द्रव्य
नेमें यात्रामें कही हुई विधि उलटी होय तो शुभदायी है अर्थात् यात्रामें
शुभ या अशुभ नियत किया है, वह इस स्थानमें क्रमानुसार
अशुभ होंगे. उनमें विशेष कहे जाते हैं ॥ ४७ ॥ हरिण, रुरु, और

शर्वरीभागे नप्तृकोलूकपिङ्गलाः । सर्वं एव विपर्यस्ता
ार्थेषु योषिताम् ॥ ४९ ॥ नृपसंदर्शने ग्राह्याः प्रवेशेऽपि
ग् । गिर्यरण्यप्रवेशे च नदीनां चावगाहने ॥ ५० ॥ वाम-
। शस्तौ यौ तु तावग्रपृष्ठगौ । क्रियादीप्तौ विनाशाय यातुः
ज्ञितौ ॥ ५१ ॥ तावेव तु यथाभागं प्रशान्तरुतचेष्टितौ ।
शकुनद्वारसंज्ञितावर्थसिद्धये ॥ ५२ ॥ केचित्तु शकुनद्वार-
ःुभयतः स्थितैः । शकुनैरेकजातीयैः शान्तचेष्टाविरा
। ५३ ॥ विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति । स विरो-
। यातुग्राह्यो वा बलवत्तरः ॥ ५४ ॥ पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा
ास्थानिको भवेत् । सुखेन सिद्धिमाचष्टे प्रवेशे तद्विपर्ययः
। विसर्ज्य शकुनः पूर्वं स एव निरुणद्धि चेत् प्राह यातुर-
डमरं रोगमेव वा ॥ ५६ ॥ अपसव्यास्तु शकुना दीप्ता

ाधानके समान हों तो यहां दिनके समय शुभ हैं, पूर्वाह्नमें नीलकंठ,
र कुक्कुट प्रस्थानवत् (यात्रातुल्य) ग्रहण किये जायंगे ॥ ४८ ॥ रात्रिके
नप्तृक,उल्लू और पिंगला शुभ गिनने चाहिये, परन्तु स्त्रियोंके लिये सब
टे ग्रहण करने चाहिये ॥ ४९ ॥ राजाका दर्शन करनेको या गृहके
नेपर भी समस्त शकुन यात्राके समान ग्रहण करने चाहिये और पर्वत-
के समय या वनमें प्रवेश करनेके समय, नदी उतरनेके समयभी यात्राके
कुनोंको देखना चाहिये ॥ ५० ॥ क्रियादीप्त शकुन दो वाम और दक्षिण
ाय तो कल्याणकर होते हैं, वह दोनोंही आगे और पीछे हो जानेपर
ःवाले हो जाते हैं, जो कि यात्रा करनेवालेके विनाशका कारण है ॥५१॥
वही दोनों शकुन यथाभागमें स्थित अर्थात् वामभागवाला बायें और
ावाला दाहिने स्थित होकर शांतभावसे शब्द और चेष्टा करे तब शकुन-
नाम होता है और वह यात्रा करनेवालेका कार्य सिद्ध करते हैं ॥ ५२ ॥
कहते हैं कि एक जातिके, शान्त चेष्टावाले, शब्दरहित द्वारशकुन यात्रा
के दोनों ओर स्थित हों तो शुभ हैं ॥ ५३ ॥ जो एक शकुन यात्राकी
और दूसरा शकुन यात्रा करनेसे रोके तो उस शकुनकी विरोध संज्ञा हो
वह गमनकारीके लिये अधिक अशुभ करनेवाला होता है ॥ ५४ ॥ पहले
ाश करके फिर चला जाय तो सुखसे सिद्धि प्राप्त होती है, परन्तु प्रवेशमें
ादि) इससे विपरीत होनेपर कार्यकी सिद्धि होती है ॥ ५५ ॥ जो शकुन
यात्राकी आज्ञा दे और वही शकुन पीछे रोक ले तो गमन करने-

भयनिवेदिनः । आरम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तस्तद्भयङ्क
तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टादीप्ता यथाक्रमम् । धनसैन्यब
णांस्युर्भयङ्कराः ॥ ५८ ॥ जीमूतध्वनिदीप्तेषु भयं
तात् । उभयोः सन्ध्ययोर्दीप्ताः शस्त्रोद्भवभयङ्कराः ॥ ५
केशकपालेषु मृत्युबन्धवधप्रदाः । कण्टकीकाष्ठभस्मस
यासदुःखदाः ॥६०॥ अप्रसिद्धभयं वापि निःसाराश्मव
कुर्वन्ति शकुना दीप्ताः शान्ता याप्यफलास्तु ते ॥६१
सिद्धिदौ ज्ञेयौ निर्ह्रादाहारकारिणौ । स्थानाद्भुवन् व्रजे
त्वन्यथागमम् ॥६२॥ कलहः स्वरदीप्तेषु स्थानदीप्तेषु
मादौ स्वरं कृत्वा नीचं पश्चाच्च मोषकृत् ॥६३॥ एकस्थ
सप्ताहाद्ग्रामघातकृत् । पुरदेशनरेन्द्राणामृत्वयनवत्स

वालेकी शत्रुके हाथसे मृत्यु अथवा शस्त्रक्लेश और रोगका विषय हो
दीप्त दिशामें बाईं ओर स्थित हुए शकुन भयको प्रकाश करते
म्भमेंही दीप्त शकुन हो तो वह एक वर्षतक उस कार्यमें भय कर
तिथि, वायु, सूर्य, नक्षत्र, स्थान और चेष्टा करके दीप्त शकुन
सैन्य, बल, अंग, इष्ट और कर्मोंके लिये भयंकर होते हैं ॥ ५८ ॥ ज
लकी ध्वनिसे दीप्त हो तो वायुसे भय होता है और दोनों सन्ध्याअं
शस्त्रसे उत्पन्न हुआ भय करता है ॥ ५९ ॥ शकुन, चिता, केश
बैठा हो तो मृत्यु, बन्धन और वध करता है. कांटेदार वृक्ष, क
बैठा होनेसे क्लेश, श्रम और दुःख देता है ॥ ६० ॥ पूर्वोक्त समस
सारहीन पाषाणके ऊपर बैठे हों तो अप्रसिद्ध भय होता है परन
कहे हुए समस्त फलको थोड़ा करता है ॥ ६१ ॥ शब्दकारी अ
शकुन क्रमसे असिद्धिप्रद और सिद्धि देनेवाले जानने चाहियें, जो
अपने स्थानसे शकुन चला जाय तो यात्राको प्रगट करता है
फिर उसी स्थानपर आवे तो किसीके आगमनका निश्चय होता है ।
दीप्तशकुन क्लेशसूचक, स्थानदीप्त विग्रहसूचक, पहले ऊंचा शब्द क
शब्द शकुन करे तो यात्रा करनेवालेकी चोरी होती है ॥ ६३ ॥ शकु
हतक एक स्थानसे दीप्त होकर शब्दायमान हो तो ग्रामका नाश कर
एक स्थानमें दो वर्ष, छः मास या एक वर्षतक दीप्त होकर
क्रमानुसार पुर, देश और राजाओंका नाशकारी हो जाता

सर्वे दुर्भिक्षकर्तारः स्वजातिपिशिताशनाः। सर्पमूषकमार्जार
मविवर्जिताः ॥ ६५ ॥ परयोनिषु गच्छन्तो मैथुनं देशनाश
अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां चाजातिमैथुनात् ॥ ६६ ॥ बन्धघात
नि स्युः पादोरुमस्तकान्तिगैः। अप्शष्पपिशितान्नाद्यैर्वर्षमोष
द्याः ॥ ६७ ॥ क्रूरोग्रदोषदुष्टैश्च प्रधाननृपवृत्तकैः। चिरक
दीप्ताद्यास्वागमो दिक्षु तन्नृणाम् ॥ ६८ ॥ सद्रव्यो बल
स्यात्सद्रव्यस्यागमो भवेत्। द्युतिमान्विनतप्रेक्षी सौम्यो दा
त्तकृत् ॥ ६९ ॥ विदिक्स्थः शकुनो दीप्तो वामस्थेनानुवा
स्त्रियाः संग्रहणं प्राह तद्दिगाख्यातयोनितः ॥ ७० ॥ शान्त
मदीप्तेन विरुतो विजयावहः। दिङ्नरागमकारी वा दोषकृ
र्यये ॥ ७१ ॥ वामसव्यरुतो मध्यः प्राह स्वपरयोर्भयम्

सर्प, चूहा, बिडाल और मत्स्यके सिवाय शकुनही समस्त अपनी जातिका म
लगें तो दुर्भिक्षकारी होते हैं ॥ ६५ ॥ भिन्नयोनिमें (घोडी आदिमें) मनुष्य
क्रिया व खच्चरकी उत्पत्तिको छोडकर (खच्चर उत्पन्न होनेके लिये घोडी
होता है) और शकुन और जातिमें मैथुन करें तो देशका नाश हो
॥ ६६ ॥ पाद, उरु और मस्तकको अतिक्रमण करके शकुन चला जाय तो
घात और भयदान करता है, जल पीता हुआ शकुन दिखाई दे तो वर्षा
घास खाता हुआ दिखाई देनेसे चोरी कराता है, मांस खाता हुआ शर
करता है, अन्न खाता हुआ शकुन किसी बन्धुसे समागम कराता है ॥ ६
दीप्तादिशामें यह शकुन स्थित हो तो क्रमानुसार क्रूर, उग्र और दोष,
धूमितादिशामें स्थित हों तो प्रधान नृप और वृत्तक, शांतादिशामें हों
काल करके सहित पुरुषका आगमन, अंगारिणीमें यह शकुन स्थित हों
साथ वहांके मनुष्योंका आगमन सिद्ध होता है ॥ ६८ ॥ द्रव्ययुक्त और
शकुन होवे तो उस दिन द्रव्यसहित मनुष्यका आगम होता है. द्युतिमा
प्रेक्षी (विनत होकर दर्शनकारी) वा सौम्य हो तो दारुण व्यापारमें भय
॥ ६९ ॥ विदिशामें स्थित दीप्तशकुन बाईं ओरको जाकर अनुनादित (
हो तो उस दिशामें प्रसिद्ध जन्मवाले पुरुषसे स्त्रीकी प्राप्ति कहाती है
जिस दिशामें कोई शान्त शकुन हो वह शकुन यदि उस दिशासे पांचवीं
दिशामें दीप्तशकुन करके शब्दायमान हो तो विजयका देनेवाला होता
विपरीत हो तो उस दिशासे मनुष्यका आगमन करता है या दोषक
है ॥ ७१ ॥ वाम और दाहिने भागमें रुतक मध्यमें अर्थात् वामभाग

कथयन्त्येते सर्वे समविराविणः ॥ ७२ ॥ वृक्षाग्रमध्य
श्वरथिकागमः । दीर्घाब्जमुषिताग्रेषु नरनौशिबिकागम
शकटेन्द्रोन्नतस्थे च छायास्थे छत्रसंयुतः । एकत्रिपञ्चस
ह्यास्वन्तरासु च ॥ ७४ ॥ सुरपतिहुतवहयमनिर्ऋतिव
शङ्कराः । प्राच्यादीनां पतयो दिशः पुमांसोऽङ्गना वि
तरुतालीविदलाम्बरसलिलजशरचर्मपट्टरेखाः स्युः । द्व
भक्ते दिक्चक्रे तेषु कार्याणि ॥ ७६ ॥ व्यायामशिखि
लहाम्भोनिगडमन्त्रगोशब्दाः । वर्णाश्चरक्तपीतककृष्ण
णगा मिश्राः ॥ ७७ ॥ चिह्नं ध्वजो दग्धमथ श्मशा
पर्वतयज्ञघोषाः । एतेषु संयोगभयानि विन्द्यादन्यानि
विकल्पितानि ॥ ७८ ॥ स्त्रीणां विकल्पे बृहती कुम
विगन्धा त्वथ नीलवस्त्रा । कुस्त्री प्रदीव
च ताश्च संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युः ॥

उसके पीछे बोले तो अपने और परायेसे भय प्रकाश करते हैं औ
बराबर स्वर करें तो मरणका प्रकाश करते हैं ॥ ७२ ॥ वृक्षके ऊप
मूलमें जो शकुन बैठे हों तो क्रमानुसार गज, अश्व और रथपर चढे
आगमन होता है और लंबी वस्तुपर शकुन हो, कमलादि पर शकुन
अग्रपर शकुन हो तो नौका और पालकीपर चढे मनुष्य
होता है ॥ ७३ ॥ पूर्वा दिशामें या विदिशामें शकटके ऊँचे स्था
शकुन बैठा हो तो एक, तीन, पांच और एक सप्ताहमें छत्रसे यु
आगमन होता है ॥ ७४ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण,
और शंकर पूर्वादि आठ दिशाओंके यह आठ स्वामी हैं. उनमें सब
और विदिशा स्त्री हैं ॥ ७५ ॥ आठ दिशाओंका बत्तीस भेदसे भि
ताली, विदल, अम्बर, सलिलज, शर, चर्म और पट्टलेखा, व्य
निकूजित, क्लेश, अम्भ, निगड, मंत्र और गोशब्द, रक्त, पीत,
और कोणमें मिश्रवर्ण रचना और ध्वज, दग्ध, श्मशान, दरी, ज
और रोष यह सब चिह्न क्रमानुसार रक्खे फिर तिस करके इसमें
और स्थानका कल्पित भय प्रकाश करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ।
क्रमानुसार ईशानकोणमें बडी स्त्री और कुमारी, अंगहीन और दु
अग्निकोणमें, नीले कपडोंवाली स्त्री और बुरी स्त्री नैर्ऋतकोणमें लं

पृच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां मेषाव्ययानमखगोकुलसं
न्यग्रोधरक्ततरुरोध्रककीचकाख्याश्चूतद्रुमाः खदिरबिल्वनग
॥ ८० ॥ (इति सर्वशाकुने मिश्रकाध्यायः प्रथमः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

शाकुन-अन्तरचक्रम् ।

ऐन्द्र्यां दिशि शान्तायां विरुवन्नृपसंश्रितागमं वक्ति ।
पूजालाभं मणिरत्नद्रव्यसम्प्राप्तिम् ॥ १ ॥ तदनन्तरदिशि
कागमो भवेद्वाञ्छितार्थसिद्धिश्च । आयुधधनपूगफलागम
भवेद्भागे ॥ २ ॥ स्निग्धद्विजस्य सन्दर्शनं चतुर्थे तथाहित
कोणेऽनुजीविभिक्षुप्रदर्शनं कनकलोहाप्तिः ॥ ३ ॥ याम्येना
पुत्रदर्शनं सिद्धिरभिमतस्याप्तिः । परतः स्त्रीधर्माप्तिः सर्प

विधवा स्त्री वायव्यकोणमें, जिस दिशामें शकुन हो उसी दिशाकी स्त्रीसे सं
अथवा वह स्त्री चिन्ता उत्पन्न करती है ॥७९॥ फिर इस दिक्चक्रमें क्रमात्
चान्द्र, सुवर्ण, आतुर वा स्त्रियोंकी अथवा मेष, आवि, यान, यज्ञ, गोसम
बड, लालवर्णका लोध, पोला बांस, आमका वृक्ष, खदिर, बेल, अर्जुन
वृक्ष दिशाओंके हैं. (जिस दिशामें शकुन हो उस ओरके वृक्षके नीचे चां
दिका लाभ या हानि शकुनके अनुसार होती है) ॥८०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्

शान्ता पूर्वदिशामें शकुनि कूजन करे तो राजाके आश्रितका आग
लाभ और मणि रत्न द्रव्यकी प्राप्ति प्रगट करता है ॥१॥ पूर्वदिशाके अनन्त
क्षिणक्रमसे द्वितीय भाग हो उसमें शकुनि कूजन करे तो सुवर्ण (सोने)
मन होता है और मनोकामना सिद्ध होती है, उसके तीसरे भागमें शकुनि
आयुध, धन और पूगीफलकी प्राप्ति करता है ॥२॥ चौथे भागमें शकुनि
तो स्निग्धमूर्ति ब्राह्मण और अग्निहोत्रीका दर्शन होता है. अग्निकोणमें शकु
हो तो सेवक आदि और भिक्षुकका दर्शन हो और सुवर्ण व लोहेकी प्रा
शकुनसे होती है ॥ ३ ॥ दक्षिणादिशाके पहले भागमें शकुनि होनेसे रा

ब्धिरप्युक्ता ॥ ४ ॥ कोणाच्चतुर्थेखण्डे लब्धिर्द्रव्यस्य
यद्वा तद्वा फलमपि यात्रायां प्राप्नुयाद्याता ॥ ५ ॥
समदक्षिणेन शिखिमहिषकुक्कुटाप्तिश्च । याम्याद्द्वितं
णसङ्गः शुभं प्रीतिः ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्तसङ्ग
राद्याप्तिः।प्रव्रजितदर्शनं तत्परे च पक्वान्नफललब्धिः ॥
स्त्रीलाभस्तुरगालङ्कारदूतलेखाप्तिः । परतोऽस्य चर्मतं
चर्ममयलब्धिः ॥ ८ ॥ वानरभिक्षुश्रवणावलोकनं
यांशे । फलकुसुमदन्तघटितागमश्च कोणाच्चतुर्थां
वारुण्यामर्णवजातरत्नवैदूर्यमणिमयप्राप्तिः । परतोऽन
घचौरसङ्गः पिशितलब्धिः ॥१०॥ परतोऽपि दर्शनं
चन्दनागुरुप्राप्तिः । आयुधपुस्तकलब्धिस्तद्वृत्तिसम
॥ ११ ॥ वायव्ये फेनकचामरौर्णिकाप्तिः समेति

दर्शन, वाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति सिद्धि मिलती है, दूसरे भागमें शत्रु
और धर्मकी प्राप्ति और सरसों व जौका लाभ कहा है ॥ ४ ॥
खण्डमें शकुनि शब्द करे तो पहले नष्ट हुए द्रव्यका लाभ यात्राका
तोभी थोडा वहुत फल प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ दिनके समय शकुनि
हो तो यात्राकी सिद्धि और मोर, महिष व कुक्कुटका लाभ होर
दूसरे भागमें शकुनि हो तो चरणसंग, शुभ लाभ और प्रीतिलाभ ।
ऊपर शकुनि हो तो सिद्धि, कैवर्तका संग और मछली तीतर आदि
है, उससे पीछे हो तो संन्यासीका दर्शन, पका हुआ अन्न या फ
है ॥ ७ ॥ नैर्ऋतकोणमें शकुनिका शब्द हो तो स्त्रीकी प्रा
अलंकार, दूत और लिखी हुई वस्तुकी प्राप्ति हो. नैर्ऋतके आगले
हो तो चर्म, चामरका दर्शन और चमडेके द्रव्योंकी प्राप्ति होती है.
भागमें शकुनिका शब्द सुनाई आवे तो वानर, भिक्षुक और सं
होता है, इस कोणके चौथे भागमें दर्शन हो तो फल, कुसुम औ
हुई वस्तु आवे ॥ ८ ॥ ९ ॥ पश्चिम दिशामें शकुनिका शब्द हो तो
हुए रत्न, वैदूर्य और मणिमय द्रव्योंकी प्राप्ति होती है. पश्चिमके
शकुन हो तो भील, व्याध और चोरका संग हो और मांसकी प्राप्ति
उससे अगले भागमें दर्शन होनेसे वातरोगियोंका दर्शन और चन्द
प्राप्ति होती है. इससे अगले भागमें शकुनिका शब्द हो तो आ
इन चीजोंके बेचनेवालेका समागम होता है ॥ ११ ॥ वायव्य को

मृण्मयलाभोऽन्यस्मिन् वैतालिकडिण्डिभाण्डानाम् ।
वायव्याच्च तृतीये मित्रेण समागमो धनप्राप्तिः । वस्त्राश्
परमिष्टसुहृत्सम्प्रयोगश्च ॥ १२ ॥ दधितण्डुललाजानां ल
ग्दर्शनं च विप्रस्य । अर्थावाप्तिरनन्तरमुपगच्छति सा
॥ १४ ॥ वेश्याबटुदाससमागमः परे शुष्कपुष्पफल
अतः परं चित्रकरस्य दर्शनं वस्त्रसम्प्राप्तिः ॥ १५ ॥ ऐशा
लकोपसङ्क्रमो धान्यरत्नपशुलब्धिः । प्राक्प्रथमे वस्त्रा
गमश्चापि बन्धक्या ॥ १६ ॥ रजकेन समायोगो जलज
मश्च परतोऽतः । हस्त्युपजीविसमाजश्चास्माद्धनहस्ति
॥ १७ ॥ द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं दिक्चक्रं वास्तुबन्धनेऽप्युक्त
नाभिस्थैरन्तः फलानि नवधा विकल्प्यानि ॥ १८ ॥
बन्धुसुहृत्समागमस्तुष्टिरुत्तमा भवति । प्रागुक्तपट्टवस्त्रा

शब्द हो तो समुद्रफेन, चामर और अनेक वस्त्रोंकी प्राप्ति, कायस्थका सम
है. इससे अगले भागमें शकुन हो तो वैतालिक, डिंडि, भाण्ड और द्रव्
होती है ॥ १२ ॥ वायव्यके तीसरे भागमें शकुनिकी ध्वनि हो तो मि
धनकी प्राप्ति, इससे अगले भागमें शकुनिकी ध्वनि होवे तो वस्त्र और अ
और श्रेष्ठ, इष्ट, सुहृद् लोगोंके साथ मिलन हो जाता है ॥ १३ ॥
शकुनिकी ध्वनि हो तो दही, चावल, खीलें और ब्राह्मणका दर्शन होता
पहले भागमें शकुनिका दर्शन होनेसे अर्थ लाभ और बनियेके साथ स
है ॥१४॥ इससे अगले भागमें शकुनिका शब्द होवे तो वेश्या, ब्राह्मण
साथ समागम व सूखे हुए फूल फलकी प्राप्ति होती है. इससे अगले भ
निका दर्शन हो तो चित्रकारका दर्शन और वस्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ १
कोणमें शकुनिकी ध्वनि हो तो देवलगिरिके साथ मिलन, धान्य, रत्न
लाभ होता है, पूर्वके प्रथमभागमें शकुनिकी ध्वनि हो तो वस्त्रलाभ
(वेश्या) का समागम होता है ॥१६॥ इसके अगले भागमें शकुनिका
धोबीसे समागम, उससे उत्पन्न हुए द्रव्यका समागम होता है, इससे अ
शकुनिका शब्द हो तो हाथीसे जीविका करनेवालेके साथ समागम हो
धन व हस्तीकी प्राप्ति होवे ॥१७॥ दिक्चक्रके यह बत्तीस भाग हैं ये वास्
कहे हैं, इसके बीचमें आठ अरे और एक नाभि मानकर इनमें हुए
नौ प्रकारसे विचारने योग्य हैं. अब वे फल कहे जाते हैं ॥१८॥ नाभि
होवे तो बन्धु और सुहृद् लोगोंका समागम और उत्तम तुष्टि प्राप्त हो

नृपतिसंयोगः ॥ १९ ॥ आग्नेये कौसिकतक्षपरिकर्माश्व
लब्धिश्च तत्कृतानां द्रव्याणामश्वलब्धिर्वा ॥ २०
बुद्ध्वा नाभीभागं च दक्षिणे योऽरः । धार्मिकजनसंयो
द्धर्मलाभश्च ॥ २१ ॥ उस्राकीडककापालिकागमो
द्दिष्टः । वृषभस्य चात्र लब्धिर्माषकुलत्थाद्यमशनं
अपरस्यां दिशि योऽरस्तत्रासक्तिः कृषीवलैर्भवति । स
सारकाचफलमद्यलब्धिश्च ॥ २३ ॥ भारवहतक्षभिक्षु
मपि च वायुदिक्संस्थे । तिलककुसुमस्य लब्धि सना
मस्य ॥ २४ ॥ कौबेर्यां दिशि शकुनः शान्तायां
ख्याति । भागवतेन समागममाचष्टे पीतवस्त्रश्च ॥ २५
व्रतयुक्ता वनिता सन्दर्शनं समुपयाति । लब्धिश्च परि
योवस्त्रघण्टानाम् ॥ २६ ॥ याम्येऽष्टांशे पश्चाद्विषट
मध्यफला । सौम्येन च द्वितीये शेषेष्वतिशोभना या

शावाले अरेपर होनेसे लाल रेशमके वस्त्रकी प्राप्ति और राजासे समागम
आग्नेयकोणमें शकुन हो तो जुलाहा, खाती, कारीगर, घोडा और स
इन लोगोंके बनाये हुए द्रव्योंका लाभ अथवा अश्वलाभ होता है ॥
परिधि और चक्रके मध्यमको जानकर उसमें जो दक्षिण अरा हो उसप
तो धार्मिकजनोंसे मिलाप और धर्मका लाभ होता है ॥२१॥नैर्ऋतदिशा
गोक्रीडा करनेवाले और कापालिकसे समागम होता है, वृषभका ल
कुलथी आदिका भोजनभी इस शकुनसे मिलता है ॥ २२ ॥ पश्चिमदिश
शकुन हो तो खेतीहारोंसे समागम हो, समुद्रसे उत्पन्न हुए द्रव्य, सुरा
और मद्यका लाभ होता है ॥ २३ ॥ वायव्यकोणवाले अरेके ऊपर
भार उठानेवाले खाती वें भिक्षुक लोगोंका दर्शन हो और नाग व पुन्ना
होवे तिलकका पुष्पभी मिले ॥ २४ ॥ शान्ता व उत्तरदिशाके अरेपर
वित्तके लाभको प्रगट करता है और पीतांबर व भगवद्भक्तके समागमको
है ॥ २५ ॥ ईशानकोणके अरेपर शकुन हो तो व्रतवाली स्त्री दिखाई
शकुन काला लोहा, वस्त्र और घंटेका लाभभी प्रगट करता है ॥ २६
अष्टांशमें और पश्चिमके दूसरे, छठे, तीसरे, सातवें या आठवें अष्ट
हो तो यात्रा मध्यम फलकी देनेवाली है. उत्तरके दूसरे भागमें औ
यात्रा अति शुभ फलके देनेवाली है ॥ २७ ॥ नाभिके बीच

भ्युन्तरे तु नाभ्या शुभफलदा भवति षट्सु चारेषु। वायव्यनै-
तयोरुभयोः क्लेशावहा यात्रा ॥ २८ ॥ शान्तासु दिक्षु फलमि-
मुक्तं दीप्तास्वतोऽभिधास्यामि। ऐन्द्र्यां भयं नरेन्द्रात् समाग-
श्चैव शत्रुणाम् ॥ २९ ॥ तदनन्तरदिशि नाशः कनकस्य भयं
र्णकाराणाम्। अर्थक्षयस्तृतीये कलहः शस्त्रप्रकोपश्च ॥ ३० ॥
ग्निभयं च चतुर्थे भयमाग्नेये च भवति चौरेभ्यः। कोणादपि
तीये धनक्षयो नृपसुतविनाशः ॥ ३१ ॥ प्रमदागर्भविनाशस्तृती-
भागे भवेच्चतुर्थे च। हैरण्यककारुकयोःप्रध्वंसःशस्त्रकोपश्च ॥३२॥
थ पञ्चमे नृपभयं मारी मृतदर्शनं च वक्तव्यम्। षष्ठे तु भयं ज्ञेयं
न्धर्वाणां सडोंबानाम् ॥३३॥ धीवरशाकुनिकानां सप्तमभागे भयं
वति दीप्ते। भोजनविघात उक्तो निर्ग्रन्थभयं च तत्परतः ॥३४॥
लहो नैर्ऋतभागे रक्तस्रावोऽथ शस्त्रकोपश्च। अपराधे चर्मकृतं
नश्यते चर्मकारभयम् ॥ ३५ ॥ तदनन्तरे परिव्राट्क्षपणभयं

शकुन हो तो यात्रा शुभ फलदाई होती है. वायव्य और नैर्ऋत कोणमें औरके
र शकुन हो तो यात्रा क्लेशकी देनेवाली होती है ॥२८॥ यह समस्त फल शान्त
शाके कहे, अब दीप्तादि दिशाका विषय कहा जायगा. पूर्व दिशा दीप्त हो तो
जासे भय और शत्रुओंसे समागम होता है ॥ २८ ॥ पूर्वदिशाके अगले भागमें
कुन हो तो सुवर्ण नाश और स्वर्णकार (सुनार) लोगोंका भय होता है. पूर्वदिशाके
सरे भागमें शकुन हो तो धनका नाश क्लेश और शस्त्रकोप होता है॥३०॥पूर्वदिशाके
थे भागमें शकुन होतो अग्निभय और अग्नेयकोणमें चोरसे भय, इसी कोणके दूसरे
गमें शकुन हो तो धनक्षय और राजाके पुत्रका नाश हो जाता है ॥ ३१ ॥ आग्नेय
णके तीसरे भागमें शकुन हो तो स्त्रियोंके गर्भका नाश और चौथे भागमें शकुन
नेसे सुनार व कारीगरका नाश और शस्त्रकोप होता है ॥ ३२ ॥ इसकेही पंचम
गमें शकुन हो तो राजासे भय और मारीसे मृतक हुएका दर्शन होगा. छठें
गमें शकुन हो तो डोम और गन्धर्वोंका भय जाना जाता है ॥ ३३ ॥ पूर्वदिशाके
तवें भागमें दीप्त शकुन हो तो धीवर और चिडीमारोंसे भय होता है. आठवें
गमें शकुन होनेसे भोजनका नाश और मूर्खसे भय होता है ॥३४॥ नैर्ऋत कोणमें
कुन हो तो क्लेश, रुधिरका स्राव और शस्त्रकोप, पश्चिम दिशामें शकुन हो तो
र्मसे बनी वस्तुका नाश हो और चमारसे भय हो ॥ ३५ ॥ पश्चिम दिशाके दूसरे
गमें शकुन हो तो संन्यासी और बौद्ध भिक्षुकसे भय होवे, तीसरे भागमें शकुन

तत्परे त्वनशनभयम् । वृष्टिभयं वारुण्यां स्वतस्करा
॥ ३६ ॥ वायुग्रस्तविनाशः परे परे शस्त्रपुस्तवार्त्ताना
स्तकनाशः परे विषस्तेनवायुभयम् ॥ ३७ ॥ परतो
मित्रैः सह विग्रहश्च विज्ञेयः । तस्यासन्नेऽश्ववधो भय
धसः प्रोक्तम् ॥ ३८ ॥ गोहरणशस्त्रघातावुदक्परे
नाशौ । आसन्ने च श्वभयं व्रात्यद्विजदासगणिकान
ऐशानस्यासन्ने चित्राम्बरचित्रकृद्भयं प्रोक्तम् । ऐशा
दूषणमप्युत्तमस्त्रीणाम् ॥ ४० ॥ प्रोक्तस्यैवासन्ने दुःखोर
विनाशश्च । भयमूर्ध्वं रजकानां विज्ञेयं काञ्छिकानां
हस्त्यारोहभयं स्याद्विरदविनाशश्च मण्डलसमाप्तौ ।
दीप्ते पत्नीमरणं ध्रुवं पूर्वे ॥ ४२ ॥ शस्त्रानलप्रकोपाव

हो तो उपवासका भय, पश्चिमदिशामें दीप्त शकुन हो तो वृष्टिभय औ
भागमें शकुन हो तो कुत्ते और तस्करोंका भय होता है ॥ ३६ ॥
दिशामें शकुन हो तो वायुसे ग्रसे हुए लोगोंका नाश और उससे अ
तो शस्त्र, पुस्तक और दूतोंका नाश होता है. वायुकोणमें दीप्त शकुन
का नाश और उसके अगले भागमें शकुन हो तो विष, चोर और
हुआ भय उत्पन्न होता है ॥३७॥ उससे अगले भागमें शकुन हो तो
होता है. मित्रोंसे लडाई (झगडेका होना) जानना चाहिये इससे दूसरे
हो तो अश्ववध और पुरोहितका भय प्रकट करता है ॥ ३८ ॥ उत्त
शकुन हो तो गोहरण और शस्त्रका प्रहार होता है. तिससे अगले
होनेसे व्यापारका घात, धनका नाश होता है. उसके समीप भागमें
व्रात्य (संस्कारहीन) ब्राह्मण, दास, और रंडियोंके कुत्तेसे भय हो
ईशानकोणके समीपमें शकुन हो तो चित्र, अम्बर और चित्रकृत
इशानकोणमें दीप्त शकुन हो तो अग्निभय और उत्तम स्त्रीयोंका दूषण
है ॥४०॥ इस दिशाके समीप ही अगले भागमें शकुन हो तो दुः
और स्त्रीका नाश होता है. इससे अगले भागमें शकुन हो तो धोबी
भय जाने ॥४१॥ दिक्चक्रकी समाप्तिपर शकुन होनेसे हाथीके ऊपर चढने
हाथीका नाश होता है. मध्यमें पूर्वके ओरपर दीप्त शकुन होनेसे निश्चय स्त्री
है॥४२॥आग्नेयदिशाके मध्य दीप्त शकुन होनेसे शस्त्र और अग्निका कोप, घ

मरणशिल्पिभयम् । याम्ये धर्मविनाशः परेऽग्न्यवस्कन्दचौ
॥ ४३ ॥ अपरे तु कर्मिणां भयमथ कोणे चानिले खरोष्ट्र
अत्रैव मनुष्याणां विसूचिकाविषभयं भवति ॥ ४४ ॥ उद
प्रपीडा दिश्यैशान्यां तु चित्तसन्तापः । ग्रामीणगोपपीडा
नाभ्यां तथात्मवधः ॥ ४५ ॥ (इति सर्वशाकुनेऽन्तरचक्रं
ध्यायो द्वितीयः)

इति श्रीवराहमीहिरकृतौ बृहत्सं० सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

शाकुने—शकुनरुतम्.

शामाश्येनशशघ्नवंजुलशिखिश्रीकर्णचक्राह्वयाश्चाषाण्डी
अरीटकशुकध्वांक्षाः कपोतास्त्रयः । भारद्वाजकुलालकुक्कु
हारीतगृध्रौ कपिः फेण्टः कुक्कुटपूर्णकूटकाश्चोक्ता दिवा
॥ १ ॥ लोमाशिका पिङ्गलछिप्पिकाख्यौ वल्गुल्युलूकौ श
रात्रौ । सर्वे स्वकालोत्क्रमचारिणः स्युर्देशस्य नाशाय नृ

कारीगरोंका भय होता है. दक्षिणमें धर्मका नाश और इसमें अगले भाग
हो तो अग्नि, अवस्कन्द और धूर्तसे मृत्यु होवे ॥ ४३ ॥ पश्चिम दिशाके
शकुन हो तो कारीगरोंको भय, वायुकोणमें गधे व ऊंटोंका वध और
ष्यों को विसूचिका और विषसे भय होता है ॥ ४४ ॥ उत्तरदिशामें दीप्त
हो तो धनका नाश, ब्राह्मणोंको पीडा और ईशानकोणमें चित्तको सन्ताप
नाभिपर दीप्त शकुन होनेसे ग्रामीण, गोपगणोंको पीडा और यात्रा कर
मृत्यु होती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादव
पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥

श्यामा, बाज, शशघ्न, वंजुल, मोर,, श्रीकर्ण, चकवा, नीलकंठ, अंडीरव
तोता, काक, तीन प्रकारके कपोत, भारद्वाज, कुलाल, मुर्गा, गधा, हरे
बन्दर, फेंटपक्षी, कुक्कुट, करायिका और चटका, यह सब जीव दिनके
अर्थात् घूमनेवाले कहलाते हैं ॥ १ ॥ लोमडी, पिंगल, छिप्पिका पक्षी
उल्लू और शशक यह सब जीव रात्रिमें घूमते हैं. जो शकु
कालको लांघकर घूमें तो देशके नाशका कारण होता है या उस स

वा ॥ २ ॥ हयनरभुजगोष्ट्रद्वीपिसिंहर्क्षगोधावृकनकुलकु
गोव्याघ्रहंसाः । पृषतमृगशृगालश्वाविदाख्यान्यपुष्टा
बिडालः सारसः सूकरश्च ॥ ३ ॥ भषकूटपूरिकरबक
पूर्णकूटसंज्ञाः स्युः । नामान्युलूकचेटचाः पिङ्गलिक
हक्का ॥ ४ ॥ कपोतकी च श्यामा वंजुलकः कीर्त्यते र
छुच्छुन्दरी नृपसुता बालेयो गर्दभः प्रोक्तः ॥ ५ ॥ स्रोत
ष्येकपुत्रकः कलहकारिका च रला । भृङ्गारवच्च वाश
भूमौ द्व्यंगुलशरीरा ॥ ६ ॥ दुर्बलिको भाण्डीकः प्राच्या
प्रशस्तोऽसौ । छिक्कारो मृगजातिः कृकवाकुः कुक्कु
॥७॥ गर्ताकुक्कुटकस्य प्रथितं तु कुलालकुक्कुटो नाम
धिकेति संज्ञा विज्ञेया कुडचमत्स्यस्य ॥ ८ ॥ दिव
उक्तः क्रोडः स्यात्सूकरोऽथ गौरुस्रा । श्वा सारमेय उ
चटिका च सुकरिका ॥ ९ ॥ एवं देशे देशे तद्विद्भ्यः
नामानि । शकुनरुतज्ञानार्थं शास्त्रे सञ्चिन्त्य योज्यानि

ओंका नाश होता है ॥ २ ॥ घोडा, मनुष्य, सर्प, ऊंट, चीता, सिंह,
भेडिया, नेवला, हरिण, कुत्ता, बकरा, गौ, व्याघ्र, हंस, पृषत, मृग, ग
कोकिल, बिडाल, सारस और शूकर यह जीव दिनरात विचरण करते
यह उभयचर हैं ॥ ३ ॥ भष, कूटपूरि, करबक और करायिका इ
पूर्णकूट संज्ञा है और उल्लू, कोचरी, पिंगलिका, पेचिका और हक्का
जाते हैं ॥ ४ ॥ कपोतकी श्यामा नामसे और वंजुलपक्षी खदिरचंचुके न
जाता है, छुच्छंदरको नृपसुता और गधेको बालेय कहते हैं ॥ ५ ॥
स्रोतको एकपुत्रक और कलहकारिकाको रला कहते हैं; रलाका शरीर
लका होता है, रातमें पृथ्वीपर यह भृंगारके समान शब्द करती है।
देशवालोंके मतसे दुर्बलिका भाण्डीक नाम है, इसका दाहिने आना
है, छिक्करके शब्दसे मृगजाति और कृकवाकु कुक्कुटजाती कही ज
गर्ताकुक्कुटका नाम कुलालकुक्कुट है. गृहगोधिकाके नामसे कुड्यमत्स्य
को समझना चाहिये ॥ ८ ॥ क्रोड, दिव्य और धन्वन यह शूकरके ना
कहनेसे गौको समझना चाहिये, कूकरको सारमेय और चटकजाति
कहलाती है ॥ ९ ॥ इस प्रकार देशके रक्खे हुए नाम शकुनोंको जानक
शब्द जाननेके लिये भली भांतिसे सोच विचारकर शास्त्रमें मिलावे ॥

वंजुलकरुतं तित्तिडिति दीप्तमथ किलिकिलीति तत्पूर्णम्। श्ये
गृध्रकङ्काः प्रकृतेरन्यस्वरा दीप्ताः ॥ ११ ॥ यानासनशय्यानि
कपोतस्य पद्मविशनं वा। अशुभप्रदं नराणां जातिविभेदेन
ऽन्यः ॥ १२ ॥ आपाण्डुरस्य वर्षाच्चित्रकपोतस्य चैव षण्म
कुंकुमधूम्रस्य फलं सद्यः पाकं कपोतस्य ॥ १३ ॥ चि
शब्दः पूर्णः श्यामायाः शूलिशूलेति च धन्यः। चच्चेति च
स्यात्स्वप्रियप्रयोगाय चिक्चिगिति ॥ १४ ॥ हारीतस्य तु
गुग्गुः पूर्णोऽपरे प्रदीप्ताः स्युः। स्वरवैचित्र्यं सर्वं भारद्वाज्या
प्रोक्तम् ॥ १५ ॥ किष्किषिशब्दः पूर्णः करायिकायाः शुभ
कहेति। क्षेमाय केवलं करकरेति न त्वर्थसिद्धिकरः ॥
कोटुक्कीति च क्षेम्यः स्वरः कटुक्कीति वृष्टये तस्याः। अफलः
किलीति च दीप्तः खलु गुंकृतः शब्दः ॥ १७ ॥ शस्तं वामे

वंजुलका दीप्तशब्द 'तित्तिड' है, परन्तु 'किलिकिली' शब्द उसका पूर्ण
बाज तोता, गिद्ध और कंक इनका शब्द स्वभावसे विपरीत होनेपर दी
जाता है ॥ ११ ॥ कबूतरका वाहन, आसन, बिस्तर, घरपर बैठना या घर
करना मनुष्योंके लिये शुभदायी है, जातिभेदके हेतुसे कालका और प्रकारभी
जाता है ॥ १२ ॥ कुछ श्वेत रंगके कबूतरका फल एक वर्षमें, अनेक रंगके
कबरे कबूतरका फल छः मासमें और कुंकुम रंगके धूम्रवर्ण कबूतरका फल
होता है ॥ १३ ॥ श्यामाका 'चिचित' शब्द पूर्ण है. 'शूलिशूल' शब्द
है, 'चच्च' शब्द दीप्त है. और 'चिकाचिक' शब्द अपने प्यारेसे मिलनेका
होता है ॥ १४ ॥ हारीतका 'गुग्गु' शब्द पूर्ण है और दूसरे शब्द दीप्त
भारद्वाज पक्षीका सब प्रकार विचित्रस्वर शुभकारी कहा जाता है ॥
करायिकाका 'किषाकिषि' शब्द पूर्ण और 'कहकह' शब्द शुभकारी
'करकर' शब्द केवल कल्याणका कारण है, कार्यको सिद्ध नहीं करता ॥
इसका 'कोटुक्की' शब्द क्षेमकारी और 'कटुक्की' शब्द वृष्टिका कारण है
'कोटिकिली' शब्द विफल और 'गुंकृत' शब्द दीप्त होता है ॥ १७
और दिव्यकका दर्शन श्रेष्ठ होता है, परन्तु वह दिव्यक एक हाथ ऊँचा उ
तो कार्यकी सिद्धि जानना चाहिये. उसी वाम भागमें यात्रा करनेवालेसे भल

दिव्यकस्य सिद्धिर्ज्ञेया हस्तमात्रोच्छ्रितस्य । तस्मिन्नेव
शरीराद्धात्री वश्यं सागरान्ताभ्युपैति ॥ १८ ॥ फणिन
गमोऽरिसङ्गं कथयति बन्धवधात्ययं च यातुः । अथ
सव्यभागान् न स सिद्धयै कुशलो गमागमे च ॥ १९
मूर्धसु च वाजिगजोरगाणां राज्यप्रदः कुशलकृच्छुचि
भस्मास्थिकाष्ठतुषकेशतृणेषु दुःखं दृष्टः करोति खलु
ऽब्दमेकम् ॥ २० ॥ किलिकिलिकिलितित्तिरिस्वनः श
फलोऽन्यथापरः । शशको निशि वामपार्श्वगो वाश
निगद्यते ॥ २१ ॥ किलिकिलिविरुतं कपेः प्रदीप्तं न
दमुद्दिशन्ति यातुः । शुभमपि कथयन्ति चुग्लशब्दं
च कुलालकुक्कुटस्य ॥ २२ ॥ पूर्णाननः कृमिपतङ्गपि
श्चाषः प्रदक्षिणमुपैति नरस्य यस्य । स्वे स्वस्तिकं या
थवा यियासोस्तस्यार्थलाभमचिरात् सुमहत्करोति
चाषस्य काकेन विरुध्यतश्चेत् पराजयो दक्षिण
वधः प्रयातस्य तदा नरस्य विपर्यये तस्य जयः प्रति

हाथ ऊंचा दिव्यक होवे तो समुद्रतक पृथ्वी यात्रा करनेवालेके वश
॥ १८ ॥ सन्मुख सर्पका आना यात्राकारीके लिये शत्रुसे समाग
बन्धन, वध और नाशकोभी प्रकट करता है. अथवा वह सर्प बांई
यात्रा कुशलकारी और सिद्धकारी नहीं होती ॥ १९ ॥ अश्व, हंस
मस्तकपर पद्मका चिह्न शुभकारी है और शुचिशाद्वल (पवित्र घ
खेत) में बैठा हुआ खंजनपक्षी राज्य देनेवाला और कुशलकारी होत
हड्डी, काष्ठ, तुष, बाल और तृणोंपर खंजन बैठा हो तो दुष्ट होकर ए
देता है ॥ २० ॥ तीतरपक्षीका 'किलिकिलिकिली' शान्त स्वर कल्य
है और शशक रात्रिके समय बांई ओर आकर शब्द करे तो कल्याण
है ॥२१॥ वानरका ' किलिकिलि ' शब्द दीप्त है, यह यात्राकारीको
जनाता. परन्तु कुलालकुक्कुटका वानरके समान अर्थात् दीप्त ' चुग्ल
प्रगट करता है ॥२२॥ कीडे, पतंग या चींटी आदिको जो चोंचमें
नीलकंठ पक्षी जो मनुष्यकी प्रदक्षिणा करे या आकाशमें स्वस्तिक
यात्राकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको शीघ्र बहुतसे धनका लाभ होत
जो कागके साथ लडते २ दक्षिणभागमें गये हुए नीलकंठकी हार हं
उस समय यात्रा करनेवाले मनुष्यका वध प्रगट करता है, इससे

क्केति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे चाषः करोति विरुतं जयकृत्तदा स्यात्। क्रक्रेति तस्य विरुतं न शिवाय दीप्तं सन्दर्शनं शुभदमस्य सदैव यातुः॥ २५॥ अण्डीरकष्टीति रुतेन पूर्णष्टिट्टिट्टिशब्देन तु दीप्त उक्तः। फेण्टः शुभो दक्षिणभागसंस्थो न वाशिते तस्य कृतो विशेषः॥ २६॥ श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे कक्कक्केति शुभं प्रकीर्तिम्। मध्यं खलु चिक्कि चिकीति यच्छेषं सर्वमुशन्ति निष्फलम्॥ २७॥ दुर्बलेरपि चिरिलुचिरिल्विति प्रोक्तमिष्टफलदं हि वामतः। वामतश्च यदि दक्षिणं व्रजेत् कार्यसिद्धिमचिरेण यच्छति॥ २८॥ चिक्किचकित्वाशितमेव तु कृत्वा दक्षिणभागमुपैति च वामात्। क्षेमकृदेव न साधयतेऽर्थान् व्यत्ययगो वधबन्धभयाय॥ २९॥ क्रक्रेति च सारिका द्रुतं त्रेत्रे वाप्यभया विरौति या। सा वक्ति यियासतोऽचिराद्गात्रेभ्यः क्षतजस्य विस्रुतिम्॥ ३०॥ फेण्टकस्य वामतश्चिरिल्विति स्वनः। शोभनो निगद्यते प्रदीप्त उच्यतेऽपरः॥ ३१॥ श्रेष्ठं स्वरं स्थास्नुमुशन्ति वाममोङ्कारशब्देन

यात्राकारीकी जय होती है॥ २४॥ जो नीलकंठ बाईं ओर पूर्णकुटवत् 'केका' शब्द करे तो जयदायी होता है, परन्तु उसकी 'क्रक्र' ध्वनि जो दीप्त वह मंगलदायी नहीं है, तथापि उसका दर्शन सदाही यात्राकारीके लिये शुभदायी है॥ २५॥ अण्डीरक 'टि' शब्दसे पूर्ण और 'टिट्टिट्टि' शब्द करनेसे दीप्त कहा जाता है. फेन्ट (शृगाल) दाईं ओर होवे तो शुभदायी होता है, उसके शब्द करनेसे कोई विशेष फल नहीं होता॥२६॥ यात्राकारीके दाहिने श्रीकर्णका 'क क क' शब्द शुभकारी माना जाता है, 'चिक्कचिकि' शब्द मध्यम फली है. इस पक्षीके और सब शब्द निष्फल कहे हैं॥ २७॥ यात्राकारीके बाईं ओर भाण्डीक 'चिरिलु चिरुलु' शब्द करे तो इष्ट फलका देनेवाला कहा है. जो बांईं ओरसे दांईं ओर गमन करे तो शीघ्र कार्यकी सिद्धि होती है॥२८॥ भांडीक 'चिक्कचिकि' शब्द करके बायें भागसे दाहिने भागमें गमन करे तो क्षेमकारी होती है. परन्तु कार्यकी सिद्धि नहीं करता. इससे विपरीत होनेपर वध, बन्ध और भयका कारण होता है॥२९॥ जो मैना शीघ्र 'क्रक्र' शब्द या 'त्रेत्रे' करती है उसका नाम अभया है. वह मैना यह प्रगट करती है कि यात्रा करनेवालेके शरीरसे शीघ्र रुधिर निकलेगा॥३०॥ बाईं ओरसे 'चिरुलु इरिलु' ऐसा फेंटका शब्द शुभकारी कहा है और दूसरे शब्द दीप्त कहाते हैं॥३१॥ बाईं ओर स्थित हुआ गधेका शब्द यात्राकारीकी श्रेष्ठकामना करता है, ओंकार शब्दसे यात्रा

हितं च यातुः । अतः परं गर्दभनादितं यत् सर्वाश्रयं तत्प्र
दीप्तम् ॥ ३२ ॥ आकाररावी समृगः कुरङ्गः ओकाररावी पृ
पूर्णः । येऽन्ये स्वरास्ते कथिताः प्रदीप्ताः पूर्णाः शुभाः पापप
प्रदीप्ताः ॥ ३३ ॥ भीता रुवन्ति कुकुकुकिति ताम्रचूडास्त्य
रुतानि भयदान्यपराणि रात्रौ । स्वस्थैः स्वभावविरुतानि नि
वसाने ताराणि राष्ट्रपुरपार्थिववृद्धिदानि॥३४॥नानाविधानि
तानि हि छिप्पिकायास्तस्याः शुभाः कुलकुलुर्न शुभास्तु शे
यातुर्बिडालविरुतं न शुभं सदैव गोस्तु क्षुतं मरणमेव क
यातुः ॥ ३५ ॥ हुंहुंगुग्लुगिति प्रियामभिलषन् क्रोशत्यु
मुदा पूर्णः स्याद्गुरुलु प्रदीप्तमपि च ज्ञेयं सदा किस्किसि
विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्याः सकृद्वाशित दोषायैव
ट्टटेति न शुभाः शेषाश्च दीप्ताः स्वराः॥३६॥सारसकूजितमिष्ट
स्यात्तद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य । एकरुतं न शुभं यदि

करनेवालेका हित होता है. इसके सिवाय गधेके और सब प्रकारके शब्द दीप्त कहे
हैं॥३२॥ कुरंग (मृग) 'आ' कार शब्द करे, और पृषतमृग 'ओ' कार शब्द क
पूर्ण शब्द है इसके सिवाय और शब्द दीप्त हैं. समस्त पूर्ण शब्द शुभफलदायी
दीप्त पापफलदायी होता है॥३३॥ अरुणशिखा (मुरगे) भय पाकर 'कुकु-कुकु'
किया करते हैं, रात्रिकालमें इस शब्दको छोडकर और समस्त शब्द भयदायी है
रात्रि बीतनेके समय स्वस्थ होकर कुक्कुट स्वाभाविक शब्द करे तो राष्ट्र, पुर
पृथ्वीकी वृद्धि होती है ॥ ३४ ॥ छिप्पिकाका शब्द अनेक प्रकारका होता है.
'कुलकुलु' शब्दही शुभकारी है, किन्तु और शब्द शुभकारी नहीं है. बिल्लीके स
शब्द यात्रा करनेवालेके लिये शुभकारी नहीं है. गोजातिका छींक शब्द
करनेवालेके मरणको सूचित करता है ॥ ३५ ॥ उल्लू प्रियाका अभिलाष
आनन्दके साथ ' हुंहुंगुंग्लुक ' शब्द करता है. यह इसका पूर्ण शब्द है 'गु
शब्द और ' किस्किसि ' शब्द सदा प्रदीप्त है. जब एकवार उसका ' बल
शब्द हो तब क्लेशको जानना चाहिये. ' टट्टटा ' शब्द दोषकारी है. बाकी
शब्द दीप्त हैं और शुभदायी नहीं हैं ॥ ३६ ॥ सारसका जोडा जो एक साथ
शब्द करे वह शब्द इष्टफलदायक होता है. एक का शब्द अशुभ है, जो

ऱ्यादेकरुते प्रतिरौति चिरेण ॥ ३७ ॥ चिरिल्विरिल्विति स्वनैः शुभं करोति पिङ्गला। अतोऽपरे तु ये स्वराः प्रदीप्तसंज्ञितास्तु ते ॥ ३८ ॥ इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि कुशुकुशु चेत् कलहं प्रकरोति। अभिमतकार्यगतिं च यथा सा कथयति तं च विधिं कथयामि ॥ ३९ ॥ दिनान्तसन्ध्यासमये निवासमागम्य तस्याः प्रयतश्च वृक्षम्। देवान् समभ्यर्च्य पितामहादीन् नवाम्बरैस्तं च तरुं सुगन्धैः ॥ ४० ॥ एको निशीथेऽनलदिक्स्थतश्च दिव्येतरैस्तां शपथैर्नियोज्य। पृच्छेद्यथाचिन्तितमर्थमेवमनेन मन्त्रेण यथा शृणोति ॥ ४१ ॥ विद्धि भद्रे मया यत्त्वमिममर्थं प्रचोदिता। कल्याणि सर्ववचसां वेदित्री त्वं प्रकीर्त्यसे ॥ ४२ ॥ आपृच्छेऽद्य गमिष्यामि वेदितश्च पुनस्त्वहम्। प्रातरागम्य पृच्छे त्वामाग्नेयीं दिशमाश्रितः ॥ ४३ ॥ प्रचोदयाम्यहं यत्त्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि। स्वचेष्टितेन कल्याणि यथा वेद्मि निराकुलम् ॥ ४४ ॥ इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगायाश्चिरिल्विरिल्वीति रुतेऽर्थसिद्धिः। अत्याकुलत्वं दि-

---

शब्द करनेपर विलम्बमें प्रतिध्वनि हो तो भी शुभकारी नहीं है ॥ ३७ ॥ पिङ्गला 'चिरिल्लि इरिल्लि' शब्द करके शुभ प्रकाश करती है, इसके सिवाय और सब शब्दोंकी प्रदीप्त संज्ञा है ॥३८॥ पिंगलाका 'इसी' शब्द गमनको रोकता है. 'कुशुकुशु' शब्द क्लेश करता है. वह पिंगलिका जिस प्रकारसे अभिमत कार्यकी प्राप्तिको प्रकाश करती है, उस विधिको कहते हैं ॥३९॥ दिन बीतनेपर सांझके समय पवित्र होकर पिङ्गलाके निवासवृक्षके समीप जाय ब्रह्मादि देवताओंकी और उस वृक्षकी नये वस्त्र और सुगंधि द्रव्योंसे भली भांति पूजा करे ॥४०॥ फिर अर्द्धरात्रिके समय अकेला उस वृक्षके अग्निकोणमें खडा होकर देवतासंबंधी और लौकिक शपथ पिंगलाको दे इस मंत्रको पढकर अपना मनोरथ पिंगलासे पूछे. मंत्र ऐसे शब्दसे पढे जिससे पिंगला उसको सुन ले. मंत्र यह है ॥४१॥ "हे भद्रे! मुझ करके जो कहा गया, तिसका जैसा अर्थ हो सो कहो. क्योंकि हे कल्याणि! तुम सब वाक्योंके अर्थको जाननेवाली कही जाती हो परन्तु आज मैं पूछकर जाऊंगा प्रातःकालमें फिर आके अग्निकोणमें आश्रित होकर पूछूंगा, प्रश्नसे तुमको जो कुछ कहा, मेरे निकट अपनी चेष्टा करके इस प्रकारसे व्याख्या करना कि मैं आकुलरहित भावसे उसको जान सकूं" ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ वृक्षके ऊपर बैठी हुई पिंगलासे ऐसा कहनेपर जो वह पिंगला 'चिरिल्लि इरिल्लि' शब्द करे तो कार्य होता है. या 'कचाकुच' 'दिशिकार'

शिकारशब्दे कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा ॥ ४५ ॥ अवाक्प्रदाने विहितार्थसिद्धिः पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैरथान्यत । वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीचशाखास्थितायां वरमध्यनीच्यम् ॥ ४६ ॥ दिङ्मण्डलेऽभ्यन्तरबाह्यभागे फलानि विद्याद्गृहगोधिकायाः । छुच्छुन्दरी चिच्चिडिति प्रदीप्ता पूर्णा तु सा तित्तिडिति स्वनेन ॥ ४७ ॥
(इति सर्वशाकुने शकुनरुताध्यायस्तृतीयः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने-श्वचक्रम् ।

नृतुरगकरिकुम्भपर्याणसक्षीरवृक्षेष्टकासञ्चयच्छत्रशय्यासनोलूखलानि ध्वजं चामरं शाद्वलं पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वावमूत्र्याग्रतो याति यातुस्तदा कार्यसिद्धिर्भवेदार्द्रके गोमये मिष्टभोज्यागमः शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडो मोदकावाप्तिरेवाथवा । अथ

शब्द उच्चारण करे तो अत्यन्त व्याकुलता होती है ॥४५॥ वाग्दान न करे अर्थात् कुछ शब्द न करे तो अभीष्ट कार्य सिद्ध होता है. फिर पहले कहे हुए दिक्चक्रसे उसका फल निरूपण करे. उत्तम, मध्यम और नीच शाखापर बैठी हुई पिंगलाका अन्यरूप उत्तम, मध्यम और नीच फल कहा जा सकता है ॥ ४६ ॥ दिक्चक्रके दिङ्मण्डलके भीतर और बाहरमें छपकलीका फल होता है. छछून्दरका 'चिंचिड' शब्द प्रदीप्त और ' तित्तिड ' पूर्ण कहा जाता है ॥ ४७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

मनुष्य, अश्व, हस्ती, घडा, घोडे आदिकी छई, दुधारे वृक्ष, ईंटोंका ढेर, छत्र, सेज, आसन, उलूखल, ध्वज, चामर, शाद्वल (नाजका खेत) या फूलवाली जगहमें जब कुत्ते मूत्रत्याग करके आगे जाँय, तब गमनकारीके कार्यकी सिद्धी होती है अथवा इसी समय गीले गोबरके ऊपर मूत्रत्याग करके चलें तो मीठा भोजन मिलता है. सूखी वस्तुके ऊपर मूत्रत्याग करके यात्रा करनेवालेके आगे श्वान

षतरुकण्टकीकाष्ठपाषाणशुष्कद्रुमास्थिश्मशानानि मूत्र्यावह-
थवा यायिनोऽग्रेसरोऽनिष्टमाख्याति शय्याकुलालादिभाण्डा-
भुक्तान्यभिन्नानि वा मूत्रयन् कन्यकादोषकृद् भुज्यमानानि
दुष्टतां तद्गृहिण्यास्तथा स्यादुपानत्फलं गोस्तु सम्मूत्रणे वर्णजः
ङ्करः। गमनमुखमुपानहं सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात्तदा सिद्धये
ंसपूर्णाननेऽर्थाप्तिरार्द्रेण चास्था शुभं साग्न्यलातेन शुष्केण
ास्था गृहीतेन मृत्युः प्रशान्तोल्मुकेनाभिघातोऽथ पुंसः शिरोह-
तपादादिवक्त्रे भुवो ह्यागमो वस्त्रचीरादिभिर्व्यापदः केचिदाहुः
वस्त्रे शुभम्। प्रविशति तु गृहं सशुष्कास्थिवक्त्रे प्रधानस्य त-
स्मिन् वधः शृंखलाशीर्णवल्लीवरत्रादि वा बन्धनं चोपगृह्योपतिष्ठे-
दा स्यात्तदा बन्धनं लेढि पादौ विधुन्वन् स्वकर्णावुपर्याक्रमं-

---

ले तो गुड और लड्डूकी प्राप्ति होती है. जो कुत्ता विषतरु (कुचला आदि)
ंटेदार वृक्ष, काठ, पत्थर, सूखा हुआ वृक्ष, हड्डी और स्मशान इनपर मूत्र त्यागे
ौर फिर लौटकर यात्राकारीके आगे चले तो यात्राकारी मनुष्यका अनिष्ट प्रगट
रता है और जो नई व अभिन्न शय्या या कुम्हारके बर्त्तनपर मूत्र त्याग करे तो
न्याको दूषित करता है. जो यह शय्यादि व्यवहार की हुई तो यात्रा करनेवाली
रवालीको दोष होता है. खडाऊंका फलभी इस भांडफलके समान है. गोजातिके
पर कुत्ता मूत्र करके यात्रा करनेवालेके आगे चले तो वर्णसंकरकी उत्पत्ति करता
. जब कुत्ता जूतेको भली भांतिसे ग्रहण करके यात्रा करनेवालेके सामने आता है,
ब यात्राकारीको कार्यकी सिद्धि प्राप्त होती है. मांस मुखमें लेकर सन्मुख आवे तो
नकी प्राप्ति और हड्डी लेकर सन्मुख आनेसे शुभ होता है. जलती लकडी और
ूखी हड्डी ग्रहण करके सन्मुख आवे तो यात्राकारीकी मृत्यु होती है, जो कुत्ता
ुरुषका मस्तक, हस्त, पांव और शान्त यानी बुझा हुआ कोयला मुखमें
ेकर आवे तो पृथ्वीका लाभ होता है और वस्त्र चीरादि मुखमें लेकर आवे तो
ृत्यु प्रगट करता है. परन्तु कोई २ कहते हैं कि वस्त्र लेकर कुत्तेका आना शुभ है.
ूखी हड्डी मुखमें लेकर जो कुत्ता घरमें प्रवेश करे तो घरके प्रधान पुरुषकी मृत्यु
ोती है, जब जंजीर, कुछेक गीली बेल, हाथीके बांधनेकी रस्सी या बंधन ग्रहण
करके कुत्ता गृहमें आवे तो बन्धन होता है. यात्राके समय यात्रीका पांव चाटे, कान
टफटावे, ऊपर दौडे तो यात्रा करनेवालेको विघ्न होता है, शरीर खुजाना यात्राका

श्चापि विघाय यातुर्विरोधे विरोधस्तथा स्वाङ्गकण्डूयने
स्वपुंश्चोर्ध्वपादः सदा दोषकृत् ॥ १ ॥ सूर्योदयेऽर्काभिमुखो
ग्रामस्य मध्ये यदि सारमेयः । एको यदा वा बहवः समेताःशं
देशाधिपमन्यमाशु ॥ २ ॥ सूर्योन्मुखः श्वानलदिक्स्थितश्च
नलत्रासकरोऽचिरेण । मध्याह्नकालेऽनलमृत्युशंसी सशोणितः
स्कलहोऽपराह्णे ॥ ३ ॥ रुवन्दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले कृषीव
भयमाशु धत्ते । प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखस्तु धत्ते भयं मा
स्करोत्थम् ॥ ४ ॥ उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां
रणं च शास्ति । निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूष
गर्भपातान् ॥ ५ ॥ उच्चैःस्वराः स्युस्तृणकूटसंस्थाः प्रा
वेश्मोत्तमसंस्थिता वा । वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्राग
मृत्युं दहनं रुजश्च ॥ ६ ॥ प्रावृट्कालेऽवग्रहेऽम्भोऽव
प्रत्यावृत्ते रेचकैश्चाप्यभीक्ष्णम् । आधुन्वन्तो वा पिब
तोयं वृष्टिं कुर्वन्त्यन्तरे द्वादशाहात् ॥ ७ ॥ द्वारे शिरो न

विरोध करे; ऊपरको पांव करके सोवे तो सदा दोषकारी होता है ॥ १ ॥
अधिक कुत्ते इकट्ठे होकर गाँवके बीचमें सूर्योदयके समय सूर्यकी ओर मुख कर
तो शीघ्रही उस गांवका दूसरा जिमीनदार होता है ॥ २ ॥ सूर्यकी ओर मुख
अग्निकोणमें श्वान रोवें तो शीघ्रही अग्नि और चोरोंका त्रास होता है. मध्याह्नके
सूर्यकी ओरको मुख करके श्वानका रोना अग्निभय और मृत्युभय प्रगट क
मध्याह्नके पीछे सूर्यकी ओरको कुत्तेको रोनेसे वह क्लेश होता है जिसमें
बहाता है ॥ ३ ॥ सूर्यास्तमें सूर्यकी ओरको मुख करके श्वान रोवे तो किस
शीघ्र भय सूचित करता है, प्रदोषकालमें वायुकोणमें श्वान सूर्यकी ओरको मुख
रोवे तो वायु और चोरोंसे भय उत्पन्न होता है ॥४॥ आधी रातमें उत्तरकी ओ
करके श्वान शब्द करे तो ब्राह्मणोंको पीडा और गोहरणकी प्रार्थना करता है.
अन्तमें ईशानकोणकी ओर मुख करके श्वान रोवे तो कन्याको दूषण, अन
गर्भका गिरना प्रगट करता है ।५।जो कुत्ता वर्षाकालके समय तिनकोंके बने छ
वा उत्तम प्रासाद और गृहमें स्थित होकर ऊंचे स्वरसे शब्द करे तो तीव्र वृष्टि
करता है ॥ ६ ॥ प्रावृट्कालमें अनावृष्टि होनेपर कुत्ता जो जलमें स्नान कर
हुआ जलको रेचन करे अथवा कुछ कांपता रहकर जलपान सूचित करे तो १
पीछे जल वर्षता है. यहां लौटना शब्द करवटका बदलना सूचित करता है ।
द्वारमें मस्तक और बाहिरे शरीर रखकर घरकी मालिकनको देखकर जो

हिः शरीरं रोरूयते श्वा गृहिणीं विलोक्य। रोगप्रदः स्यादथ न्दिरान्तर्बहिर्मुखः शंसति बन्धकीं ताम् ॥ ८ ॥ कुडयमुत्किति वेश्मनो यदा तत्र खानकभयं भवेत्तदा। गोष्ठमुत्किरति ोग्रहं वदेद्धान्यलब्धिमपि धान्यभूमिषु ॥ ९ ॥ एकेनाक्ष्णा ाश्रुणा दीनदृष्टिर्मन्दाहारो दुःखकृत्तद्गृहस्य। गोभिः सार्धं क्रीडाणः सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चाभिधत्ते मुदं च ॥ १० ॥ वामं जिघ्रोनु वित्तागमाय स्त्रीभिः साकं विग्रहो दक्षिणं चेत्। ऊरुं वामं न्द्रियार्थोपभोगाः सव्यं जिघ्रेदिष्टमित्रैर्विरोधः ॥ ११ ॥ पादौ जिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रां प्राहार्थाप्तिं वाञ्छितां नीश्चलस्य। स्थानथस्योपानहौ चेद्विजिघ्रेत क्षिप्रं यात्रां सारमेयः करोति ॥ १२ ॥ भयोरपि जिघ्रणे हि वाह्वोर्विज्ञेयो रिपुचौरसम्प्रयोगः। अथ स्मनि गोपयीत भक्षान् मांसास्थीनि च शीघ्रमग्निकोपः ॥ १३ ॥ ामे भषित्वा च बहिः श्मशाने भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः। यियाततश्चाभिमुखो विगैति यदा तदा श्वा निरुणद्धि यात्राम् ॥ १४ ॥

ारंवार शब्द करे तो रोगदाई होता है, मन्दिरके भीतर रहकर बाहर मुख करके ब्द करे तो मालकिनको वन्ध्या करनेकी प्रार्थना करता है ॥ ८ ॥ जब घरकी ीवारकी लिपाईको श्वान खोदे तो उसमें खननकारीको भय होता है, गौओंके हनेके स्थानको खोदे तो गायकी चोरी होती है और उस जगहको खोदे कि हां धान्य होते हैं तो धान्यके लाभको प्रकाश करता है ॥ ९ ॥ जो कुत्तेकी एक ांख अश्रुपूर्ण और कम दृष्टिवाले हो और जो वह कुत्ता थोडा भोजन करे तो ह घरको दुःखकारी होता है, गौओंके साथ श्वानका खेलना सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य और आनंद प्रकाश करता है ॥१०॥ कुत्ता बाई जांघको सूंघे तो धनका लाभ, दाहिनी जांघको सूंघे तो स्त्रियोंके साथ विग्रह, बाई ऊरुको सूंघे तो इन्द्रियोंके लिये उपभोग और दाहिने ऊरुके सूंघनेसे अभीष्ट मित्रोंके साथ विरोध होता है ॥ ११ ॥ जो कुत्ता यात्रा करनेवालेके दोनों पांवोंको सूंघे तो अयात्रा होती है और न चलते हुए पुरुषके पांवको श्वान सूंघे तो वांछित अर्थकी प्राप्तिको प्रगट करता है और आसनके ऊपर बैठे हुएकी जूतियोंको सूंघे तो शीघ्र यात्राको प्रकाश करता है ॥ १२ ॥ दोनों बाहोंको वारंवारका सूंघना शत्रु और चोरभयको प्रकाश करता है. इसके उपरान्त कुत्ता भस्ममें मांस, हड्डी खानेकी चीजें छिपावे तो शीघ्र अग्निके कोपको प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥ पहले गांवमें शब्द करके फिर बाहर था श्मशानमें कुत्ता शब्द करे तो वहांके उत्तम पुरुषका नाश होता है. जब यात्रा

उकारवर्णेन हतेऽर्थसिद्धिरोकारवर्णेन च वामपार्श्वे । व्याक्षेप
रुतेन विद्यान्निषेधकृत सर्वरुतैश्च पश्चात्॥१५॥शंखेति चोच्चैश
मुहुर्यें रुवन्ति दण्डैरिव ताड्यमानाः । श्वानोऽभिधावन्ति च
लेन ते शून्यतां मृत्युभयं च कुर्युः॥१६॥प्रकाश्य दन्तान्यदि
सृक्किणी तदाशनं मिष्टमुशन्ति तद्विदः।यदाननं चावलिहेन्न स
प्रवृत्तभोज्येऽपितदान्नविघ्नकृत् ॥ १७ ॥ ग्रामस्य मध्ये य
पुरस्य भषन्ति संहत्य मुहुर्मुहुर्ये । क्लेशमाख्यान्ति तदी
श्वारण्यसंस्थो मृगवद्विचिन्त्यः ॥१८॥ वृक्षोपगे क्रोशति तो
स्याद्दिन्कीले सचिवस्य पीडा । वायोर्गृहे सस्यभयं गृहान्तः
पुरस्यैव च गोपुरस्थे ॥ १९ ॥ भयं शय्यासु तदी
याने भषन्तो भय दाश्च पश्चात् । अथापसव्या जनस
भयं भषन्तः कथयन्त्यरीणाम् ॥ २० ॥ (इति सर्वः
श्वचक्रं नामाध्यायश्चतुर्थः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥

करनेवालेके सन्मुख कुत्ता शब्द करे तो यात्राको रोकता है ॥ १४ ॥
वर्णवाले शब्दसे और बाईं ओर ओकार वर्णवाले शब्दका होना
सिद्धि औकार शब्दसे विलम्ब और पीछे किये हुए सब प्रकारके शब्दोंसे
प्रकार करता है ॥ १५ ॥ जो समस्त कुत्ते मानो दण्ड करके ताडित हो
शब्दके समान वारंवार ऊंचा शब्द करें और गोल बांधकर दौड़ें वे शून्यता,
भयको प्रगट करते हैं ॥ १६ ॥ जो कुत्ता दांत निकाले, अधरप्रान्तोंको
तो उसके फलको जाननेवाले मीठे भोजनकी आशा करते हैं, अधरप्रान्तोंके
मुखको भी चाटे, तब भोजनमें प्रवृत्त होनेपरभी अन्न विघ्नकारी हो जात
॥ १७ ॥ जो गांव या नगरमें कुत्ते मिलकर वारंवार शब्द करें तो नगर या
प्रभुका कष्ट प्रगट करते हैं. वनैले कुत्ते मृगके समान होनेसे विचारने योग्य
हैं ॥ १८ ॥ वृक्षके निकट श्वानके भोंकनेसे वर्षा होती है, इन्द्रकीलके निकट
नेसे मंत्रीको पीडा, गृहवायुकोणमें (अर्थात् वायुदिशामें) भोंकनेसे सस्यभय
है, नगरके द्वारपर भोंकनेसे पुरवासियोंको पीडा होती है ॥ १९ ॥ शय्याके
कुत्ता भोंके तो उसके अधिकारियोंको भय होता है. सवारीमें स्थित होकर
करनेसे भय, मनुष्योंके समीप बाईं ओर होकर शब्द करे तो शत्रु
भय प्रकाश करता है ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥

अथ नवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने—शिवारुतम् ।

श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन विशेष एषां शिशिरे मदा
हुहूरुतान्ते परतश्च टाटा पूर्णः स्वरोऽन्ये कथिताः प्रदीप्ताः ॥
लोमाशिकायाः खलु कक्कशब्दः पूर्णः स्वभावप्रभवः स तस्य
येऽन्ये स्वरास्ते प्रकृतेरपेताः सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः ।
पूर्वोदीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता । धूमिताभि
हन्ति स्वरदीप्ता दिगीश्वरान् ॥ ३ ॥ सर्वदिक्ष्वशुभा दीप्ता वि
षेणाह्न्यशोभना । पुरे सैन्येऽपसव्या च कष्टा सूर्योन्मुखी
॥ ४ ॥ याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति मृतवेदिका । धि
ग्दुष्कृतमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी ॥ ५ ॥ नैव दारुणत
सज्वालायाः प्रचक्षते । अर्काद्यनलवत्तस्या वक्त्रं लालास्वभा
॥ ६ ॥ अन्यप्रतिरुता याम्या सोद्बन्धमृतशंसिनी । वारु
रुता सैव शंसते सलिले मृतिम् ॥ ७ ॥ अक्षोभः श्रवणं

फलमें गीदड कुत्तेके समान है, विशेषता यह है कि शिशिर कालमें मदकी प्राप्ति होती है, हुहू, शब्दके पीछे 'टाटा' शब्द उनका पूर्ण शब्द है व समस्त स्वर प्रदीप्त कहे जाते हैं ॥१॥ लोमाशिका (शृगाली–लोमडी) का ' शब्द पूर्ण है और यही शब्द उसका स्वाभाविक शब्द है और जो स्वभावके विरुद्ध हैं, वे समस्त शब्दही दीप्त कहे जाते हैं। पूर्व और उत्तर स्थित हुई शृगालियें कल्याणकारी हैं. शान्ताभी सर्वत्र पूजिता है, धूमिता सन्मुख होकर शृगाली दीप्तस्वर करे तो दिशाओंके स्वामियोंका नाश होता ॥३॥ सर्व दिशाओंमें दीप्त स्वर अशुभकारी है, विशेष करके दिनमें अशु होता है और सेनाके पीछे और नगरमें दक्षिणमें स्थित सूर्यकी ओरको मु गीदडी कष्टदायी होती है ॥४॥ शिवागण "याहि" ऐसा शब्द करें तो अ 'टाटा' शब्द करनेसे मृतकको सूचित करती है 'धिकधिक' शब्द पापक और अग्निकी लपट जिस शिवाके मुखसे निकलती है वह शिवा देशका नाश है ॥ ५ ॥ कोई २ पंडित कहते हैं कि ज्वालायुक्त शिवाकी दारुणता नहीं देती. क्योंकि लालाके योगसे उसका मुख स्वभावसेही सूर्यादि या अग्निके दीप्यमान रहता है ॥ ६ ॥ जो शिवा दक्षिण दिशामें और शिवा करके अनु (पहले कोई और शिवा शब्द करे) होकर शब्द करे तो फांसीसे मृत्युका

धनप्राप्तिः प्रियागमः । क्षोभः प्रधानभेदश्च वाहनानां च
॥ ८ ॥ फलमासप्तमादेतदग्राह्यं परतो रुतम् । याम्यायां त
स्तं फलं षट्पञ्चमादृते ॥ ९ ॥ या रोमाञ्चं मनुष्याणां श
च वाजिनाम् । रावात्रासं च जनयेत्सा शिवा न शिवप्रदा
मौनं गता प्रतिरुते नरद्विरदवाजिनाम् । या शिवा सा शि
पुरे वा सम्प्रयच्छति ॥ ११ ॥ भेभेति शिवा भयङ्करी भोभ
पदमादिशेच्च सा । मृतिबन्धनिवेदिनी फिफ हूहू चात्महिता
स्वरे ॥ १२ ॥ शान्ता त्ववर्णात्परमौ रुवन्ती टाटामुदी
वाश्यमाना । टेटे च पूर्वं परतश्च थेथे तस्याः स्वतुष्टिप्रभ
तत ॥ १३ ॥ उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्य पूर्व पश्चात्क्रोशेत्क्रोष्टुव
रूपम् । या सा क्षेमं प्राह वित्तस्य चाप्तिं संयोगं वा
प्रियेण ॥ १४ ॥ (इति सर्वशाकुने शिवारुतं नाम पञ्चमोऽ

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९

करती है इस प्रकार पश्चिम दिशामें करे तो बन्धु आदिकी जलमें मृत्यु प्रका
है ॥ ७ ॥ अक्षोभ, इष्टश्रवण, धनप्राप्ति, प्रियागम क्षोभ, प्रधानसे भेद (द्वे
वाहनोंका सम्पद् यह समस्त फल रात्रिके सप्तम अर्ध प्रहरसे होते हैं. प
और पांचवेंके सिवाय दक्षिण दिशामें समस्त फल विपरीत होते हैं ॥ ८
शिवाके जिस शब्दसे मनुष्योंको रोमांच हो और आपही घोडे लीद और
रहें, उनको त्रास उत्पन्न करें तो वह शिवा मङ्गलदायी नहीं है ॥ १० ॥
हस्ती और घोडेके प्रतिशब्द करनेपर जो बोलती हुइ शिवा बन्द हो जाय
शिवा सेना और पुरमें भली भांतीसे मंगलदान करती है॥११॥ 'भेभा' श
नेसे शिवा भयङ्करी होती है. 'भोभो' शब्द करनेसे मृत्यु प्रगट करती है,
शब्द करे तो वह शिवा मृत्यु और बन्धनको प्रकाश करती है हूहू, शब्द
हित करती है ॥ १२ ॥ परन्तु शान्ता दिशामें स्थित हुई शिवा अवर्णके पी
शब्द करते करते फिर 'फिर 'टाटा' शब्द उच्चारण और 'टेटे' फिर
उच्चारण करे तो ये शब्द उसकी प्रसन्नताके हैं, यह शब्द शुभ हैं ॥१३॥ जो
पहले ऊंचा घोर वर्ण (अक्षर) उच्चारण करके फिर शृगालके समान शब्द
वह शिवा क्षेम, धनप्राप्ति और परदेश ये प्रियजनका समागम प्रकाश करती है

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद
स्तव्य पंडितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥ ९

अथैकनवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने–मृगचेष्टितम्.

सीमागता वन्यमृगा रुवन्तः स्थिता व्रजन्तोऽथ समापतन्तः ।
प्रत्यतीतैष्यभयानि दीप्ताः कुर्वन्ति शून्यं परितो भ्रमन्तः ॥१॥
ग्राम्यसत्त्वैरनुवाश्यमाना भयाय रोधाय भवन्ति वन्यैः । द्वा-
मपि प्रत्यनुवाशितास्ते बन्दिग्रहायैव मृगा भवन्ति ॥ २ ॥
वन्ये सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य रोधो वाच्यः सम्प्रविष्टे विनाशः ।
मृत्युः स्याद्भयं संस्थिते च गेहं याते बन्धनं सम्प्रदिष्टम् ॥३॥
(इति सर्वशाकुने मृगचेष्टितं नाम षष्ठोऽध्यायः)
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

अथ द्वानवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने–गवेङ्गितम्.

गावो दीनाः पार्थिवस्याशिवाय पादैर्भूमिं कुट्टयन्त्यश्च रोगान् ।
मृत्युं कुर्वन्त्यश्रुपूर्णायताक्ष्यः पत्युर्भीतास्तस्करानारुवन्त्यः ॥ १ ॥

जो बनैले मृग ग्रामकी सीमा (हद) में आय शब्द करें या भ्रमण करते हुए रहें अथवा भली भांतिसे चारों ओर दौडें तो भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भयका भय प्रकाशित करते हैं. और दीप्त शब्द युक्त होकर चारों ओर भ्रमण करें तो उस जगहको शून्य कर देते हैं ॥ १ ॥ उन मृगोंके पीछे ग्रामके जीव शब्द करें तो भयका कारण होता है. जो वनके जीव ग्रामके जीवोंके पीछे शब्द करें तो उससे नगरादि घिर जाते हैं. बनैले और ग्राम्य दोनोंही जीव एक दूसरेके पीछे शब्द करें तो उस नगरके मनुष्योंको शत्रु बन्दी करके ले जावें ॥२॥ बनैला जीव द्वारपर आकर खडा हो तो नगरको शत्रु घेरें, बनैला जीव भली भांतिसे घरके भीतर आ कर आवे तो पुरका नाश हो, गृहमें बनैला जीव क्यावे तो मृत्यु हो, घरमें रहे तो भय और घरमें आनेसे गृहके स्वामीका बन्धन होता है ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

जो गायें दीन हों तो वह राजाके अमंगल करनेका कारण होती हैं. गायें अपने पैरोंसे भूमिको कुरेदें तो रोग होता है. नेत्रोंमें आंसू भर रहे हों तो मृत्यु और

अकारणे क्रोशति चेदनथौं भयाय रात्रौ वृषभः शिवाय
निरुद्धा यदि मक्षिकाभिस्तदाशु वृष्टिं सरमात्मजैर्वा ॥२॥
च्छन्त्यो वेश्म बम्भारवेण संसेवन्त्यो गोष्ठवृद्ध्यै गवां गाः
र्द्राङ्ग्यो वा हृष्टरोमण्यः प्रहृष्टा धन्या गावः स्युर्महिष्योऽपि
॥ ३ ॥ (इति सर्वशाकुने गवेङ्गितं नाम सप्तमोऽध्यायः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्वानवतितमोऽध्यायः ॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने-अश्वचेष्टितम् ।

उत्सर्गे न शुभदमासनापरस्थं वामे च ज्वलनमतोऽपरं
स्तम् । सर्वाङ्गज्वलनमवृद्धिदं हयानां द्वे वर्षे दहनव
धूपनं वा ॥ १ ॥ अन्तःपुरं नाशमुपैति मेढ्रे कोशः
यात्युदरे प्रदीप्ते।पायौ च पुच्छे च पराजयः स्याद्वक्त्रोत्तमाङ्गज
जयश्च ॥ २ ॥ स्कन्धासनांसज्वलनं जयाय ब

भीत होकर बडा शब्द करें तो तस्करोंसे भय प्रगट करती हैं॥१॥ रात्रिमें गौक
कारणके शब्द करना भयका कारण होता है; परन्तु बैलका शब्द मंगलकारी
गायोंको मक्खियें या कुत्तोंके बच्चे बहुत ही घेरें तो शीघ्र वर्षा होती है ॥२॥ अ
गायें रम्भाशब्द करतेरअनेक गायोंके साथ घरमें आवें तो गोठकी वृद्धिका
होता है. गायोंके अंग जलसे भीग रहे हों अथवा रोमाञ्च हो रहा हो तो
शुभ और हार्षित कही जाती हैं ऐसी भैंसे भी फलदायक हैं ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
भाषाटीकायां द्वानवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

घोडोंके उत्सर्ग (विष्ठा) से ज्वलन (ज्योतिके साथ धुएँका निकल
घोडेके आसनके पश्चिमभागमें और वामभागमें हो तो अशुभ है और ज
तो शुभ है, घोडोंके सब अंगोंमें ज्वलनका होना घोडोंकी वृद्धिका कारण
होता.दो वर्षतक घोडोंके शरीरसे अग्निके कण या धुआं निकले तो भी क्षय
है ॥ १ ॥ अश्वका लिंग प्रदीप्त हो तो अन्तःपुरका नाश, पेटके प्रदीप्त
राजाके खजानेका नाश,गुदा और पूंछके प्रदीप्त होनेसे पराजय होती है.
मुख और शिर प्रदीप्त हो तो राजाकी जय होती है ॥ २ ॥ घोडेके स्कन्ध,
और अंस (स्कन्धोंके नीचे) में ज्वलन हो तो राजाको जय प्राप्त होती है.

पादज्वलनं प्रदिष्टम् ललाटवक्षोऽभिमुजेष धूमः पराभवाय ज
जयाय ॥ ३ ॥ नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपातनेत्रेषु रात्रौ ज
जयाय । पालाशताम्रासितकर्बुराणां नित्यं शुकाभस्य सि
चेष्टम् ॥ ४ ॥ प्रद्वेषो यवसाम्भवसां प्रपतनं स्वेदो निमित्ता
कम्पो वा वदनाच्च रक्तपतनं धूमस्य वा सम्भवः। अस्वप्नश्च
धिता निशि दिवा निद्रालसध्यानतासादोऽधोमुखता विचे
मिदं नेष्टं स्मृतं वाजिनाम् ॥ ५ ॥ आरोहणमन्यवाजिनां
णादियुतस्य वाजिनः । उपबाह्यतुरङ्गमस्य वा कल्यस्यैव
शोभना ॥ ६ ॥ क्रौञ्चवद्रिपुवधाय हेषितं ग्रीवया त्वचल
सोन्मुखम् । स्निग्धमुच्चमनुनादि हृष्टवद् ग्रासरुद्धवदनैश्च वा
॥ ७ ॥ पूर्णपात्रदधिविप्रदेवता गन्धपुष्पफलकाञ्चनादि वा ।
मिष्टमथवापरं भवेद्धेषतां यदि समीपतो जयः ॥ ८ ॥ भक्ष
खलिनाभिनन्दिनः पत्युरौपयिकनन्दिनोऽथवा । सव्यपार्श्वग
योथवा वाञ्छितार्थफलदास्तुरङ्गमाः ॥ ९ ॥ वामैश्च पादैभि

ज्वलनका होना स्वामीक बन्धनका कारण है. छाती, माथा, नेत्र और दोनं
ओंमें धूम होनेसे पराभवदायी और ज्वलन होनेसे जयदाई होता है ॥ ३ ॥
समय घोडेके नथने, प्रोथ, मस्तक, अश्रुपात (नेत्रोंके कोये) और नेत्रमें ज
होना जयका कारण है और पलाशवर्ण, ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण, कपूरवर्ण,
रंगका और श्वेतवर्ण ऐसे रंगवाले अश्वोंकी चेष्टा सदा जयदाई होती है
घोडोंका घास और पानीसे भली भांति द्वेष, विना कारणही पसीनेका
गिरना और कांपना, मुखसे लोहूका निकलना, धुएंकी उत्पत्तिका होना,
अनिद्रा और विरोधता, दिनमें नींदका आलस्य और ध्यान, सुखी और
मुख रखना ये चेष्टायें इष्टकारी नहीं हैं ॥ ५ ॥ कसे हुए घोडेके ऊपर दूसरे
चढना या गाडीमें जुतनेवाले या सजे हुए निरोग घोडेकी विपत्तिका हो
कारी नहीं है ॥ ६ ॥ क्रौञ्चपक्षीके समान गरदनको स्थिर रखकर ऊंचे मु
हुए घोडेका हिन हिनाना शत्रुके वधका कारण होता है. घोडोंका वदन
भर जावे, उनका हार्षितके समान स्निग्ध ऊंचा शब्दभी शत्रूके वधका कार
है ॥ ७ ॥ जो घोडा पूर्णपात्र, दही, विप्र देवता, गन्धद्रव्य, पुष्प, फल औ
नादिक समीप शब्द करे तो जयदाई होता है ॥ ८ ॥ भक्ष्य, पीनेके द्रव
लगामको प्रसन्न होकर ग्रहण करे अथवा स्वामीको जो भाता हो उसकं
आनन्दसे ग्रहण करे. दक्षिणपार्श्वकी ओर जिनकी दृष्टि हो ऐसे घोड

यन्तो महीं प्रवासाय भवन्ति भर्तुः । सन्ध्यासु दीप्ताम
हेषन्ति चेद्बन्धपराजयाय ॥ १० ॥ अतीव हेषः
बालान् निद्रारताश्च प्रवदन्ति यात्राम् । रोमत्यजो दीः
पांसून् ग्रसन्तश्च भयाय दृष्टाः ॥ ११ ॥ समुद्रवद्द
यिनः पदं समुत्क्षिप्य च दक्षिणं स्थिताः । जया
वाहनेष्विदं फलं यथासम्भवमादिशेद्बुधः ॥ १२ ।
क्षितिपतौ विनयोपपन्नो यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषः
वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं योऽश्वः स भर्तुरचिर
लक्ष्मीम् ॥ १३ ॥ मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति न ताडः
नुलोमयायी । अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शुभं न
ऽभिधत्ते ॥ १४ ॥ उक्तमिदं हयचेष्टितमत ऊर्ध्वं द
क्ष्यामि । तेषां तु दन्तकम्पनभङ्गम्लानादिचेष्टाभिः
(इति सर्वशाकुने अश्वचेष्टितं नामाध्यायोऽष्टमः)
इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां त्रिनवतितमोऽध्याय

फलको देते हैं ॥ ९ ॥ बांये पांवसे पृथ्वीको ताडन करनेवाले घोडे स
जानेका कारण होते हैं. सन्ध्याकालमें दीप्त दिशाकी ओर मुख कर
करें तो स्वामीका बन्धन होता है, पराजयकाभी कारण होता है ॥
बहुत हिनहिनावे, रोमोंको फुलावे और सोवे तो यात्राको सूचित क
लोमत्यागकारी गधेके समान दीन शब्द करे और धूरि भक्षण करता
भयका कारण है ॥ ११ ॥ समुद्र (पात्रविशेष) के समान दक्षिणप
करनेवाला या दाहिने पांव भली भांतिसे उठाकर खडे हुए घोडे
कारण होते हैं और वाहनोंके सम्बन्धमें भी पंडित लोग यथासम्भव य
हैं ॥ १२ ॥ राजाके चढनेपर जो घोंडा विनयसम्पन्न और यात्रा
ओरको यात्रा करनी हो उसी ओरको चले) होकर दूसरे घोडेके श
हिनहिनावे या मुखसे अपने दक्षिणपार्श्वको स्पर्श करे, वह घोडा
स्वामीको लक्ष्मी इकट्ठी कर देता है ॥ १३ ॥ विना मारेभी जो घोडा
और लीद कर रहे, टेढा चले, वृथा डरे, नेत्रोंमें उसके आंसू आ
अश्वपालका शुभ प्रकाश नहीं करता ॥ १४ ॥ घोडोंकी चेष्टाका विष
हाथियोंके दांत कांपना, दांत टूटना और मलीनादि चेष्टासे उनके फलाफल

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां त्रिनवतितमोऽध्याय

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः।

शाकुने—हस्तीङ्गितम्।

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम्। अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु। छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि ॥ २ ॥ प्रहरणसदृशेषु जयो नन्द्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः ॥ ३ ॥ स्त्रीरूपे स्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः। कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन ॥ ४ ॥ कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशत्वम्। गृध्रोलूकध्वांक्षश्येनाकारेषु जनमरकः ॥ ५ ॥ पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत्स्रुते रक्ते। कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥ ६ ॥ शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः। गलनम्लानफलानि च दन्तस्य समानि भङ्गेन ॥ ७ ॥

हाथीदांतके मूलमें जितने अंगुलका घेरा हो, मूलसे दूने परिमाणमें उतने अंगुल लम्बाईको छोडकर बाकी भागसे समस्त रचना करे परन्तु अनूपचर हाथीके लिये इससे कुछ अधिक और पहाडी हाथीके लिये इससे कुछ कम कल्पना करे ॥ १ ॥ हाथीदांतमें काटनेके समय श्रीवत्स, वर्द्धमान (मिट्टीका शिकोरा), छत्र, ध्वज और चमरके समान चिह्न दिखाई देनेसे आरोग्य, विजय, धनकी वृद्धि और सुख होते हैं ॥ २ ॥ शस्त्राकार चिह्न होनेसे जय, नंद्यावर्तनामक प्रासादके आकारका चिह्न होनेसे नष्ट हुए देशकी प्राप्ति और ढेलेके आकारका चिह्न होनेसे पहले प्राप्त देशकी सम्प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ स्त्रीरूप चिह्न होनेसे अपना नाश भृंगार (झारी) के समान चिह्न उठनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, घडेका चिह्न होनेसे रत्नकी प्राप्ति और दंडका चिह्न होनेसे यात्रामें विघ्न होता है ॥ ४ ॥ गिरगट, वानर या सर्पके समान चिह्न होनेसे दुर्भिक्ष व्याधि और शत्रुके वशमें पडना होता है. गिद्ध, उल्लू, काक और बाजके समान चिह्न होनेसे मनुष्योंमें मरी पडती है ॥ ५ ॥ हाथीदांतके काटनेपर पाश या कबन्धका चिह्न निकले तो राजाकी मृत्यु, रुधिर निकलनेसे मनुष्योंपर विपत्ति और काला, श्याव (पीला काला मिला हुआ), रूखा और दुर्गन्धयुक्त होनेसे अशुभकारी होता है ॥६॥ छेद दांतका बराबर हो. श्वेत, सुगन्धित या स्निग्ध हो तो शुभकारी होता है. हाथीका दांत गल जाय या मलीन हो जाय तो इसका

मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता देवदैत्यमनुजाः क्रमात्ततः
परिपेलवं फलं शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम् ॥ ८ ॥ द
मत्र दक्षिणे भूपदेशबलविद्रवप्रदम् । वामतः सुतपु
हन्ति साटविकदारनायकान् ॥ ९ ॥ आदिशेदुभय
पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम् । सौम्यलग्नतिथिभादिभि
तेऽशुभमतोऽन्यथा भवेत् ॥ १० ॥ क्षीरवृक्षफलपुष्पपा
तटविघट्टितेन वा । वामभध्यदरभङ्गखण्डनं शत्रुनाश
थापरम् ॥ ११ ॥ स्खलितगतिरकस्मात्त्रस्तकर्णोऽतिर्द
मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम् । द्रुतमुकुलितदृ
शीलो विलोमो भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक्छकृ
वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृ
त्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्त्रमुन्नाम्य चोच्चैः । कक्ष
जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा तत्कालं वा मदा

फल दांत फूटनेके समान जानना चाहिये ॥ ७ ॥ देवता, दैत्य और
हाथीदांतके मूल, मध्य और अग्र (नोक) में रहे हैं. उनके बडे, मध्य
कोमल फल, शीघ्र मध्य या चिरकाल सम्भव फल क्रम २ से कहता
दन्तभंगका फल कहा जाता है. देवता, दैत्य या मनुष्य अंशसे जो दाहि
जाय तो राजा, देश और सेनाका विद्रव उत्पन्न होता है. बायें भागमें
वनचारी और विदारकगणोंके साथ पुत्र पुरोहित और हस्तिपाल
का वध करता है ॥ ९ ॥ दोनों दांत टूट जायँ तो राजाके समस्त
विषय प्रगट करते हैं और लग्न, तिथि व नक्षत्रादि शुभ हों तो शुभ
और प्रकारका फल देनेसे अशुभ फल हानि करते हैं ॥१०॥ हाथीद
फल, फूल और वृक्षके ऊपर या नदीके तटपर विघटित हो बायें दां
भग्न या खंडित हो जाय तो शत्रुनाशकारी होता है. अन्यथा होनेसे
होता है ॥११॥ हाथीकी गति अचानक स्खलित (ठोकर) हो जाय
हिलनेसे बन्द हो जायँ, अति दीन होकर पृथ्वीपर शूंड डाल दे. मृदु
लम्बे स्वांस ले, चकित और मुकुलित दृष्टि होकर निद्रित हो जाय. टे
अहित भोजन करे, केवल रक्त या विष्ठा करे तो वह हाथी अपने स्वामी
है ॥ १२ ॥ हाथी अपनी इच्छासे वमई, स्थाणु (शाखाहीन वृक्ष)
(छोटे वृक्ष) और तरु मथन करते २ हर्षित दृष्टि कर मुख ऊंचे नं

रदं वेष्टयन्दक्षिणं वा ॥ १३ ॥ प्रवेशनं वारिणि वारणस्य नाशाय भवेन्नृपस्य । ग्राहं गृहीत्वोत्तरणं द्विपस्य तोयात् वृद्धिकरं नृभर्तुः ॥ १४ ॥ (इति सर्वशाकुने हस्तीङ्गितं ध्यायो नवमः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४

अथ पंचनवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने—काकचरित्रम् ।

प्राच्यानां दक्षिणतः शुभदः काकः करायिका वामा । तमन्यदेशेष्ववधिर्लोकप्रसिद्धचैव ॥ १४ ॥ वैशाखे निरुपह नीडः सुभिक्षशिवदाता । निन्दितकण्टकिशुष्केष्वसुभिक्ष तद्देशे ॥ २ ॥ नीडे प्राक्छाखायां शरदि भवेत्प्रथमवृष्टिरपर याम्योत्तरयोर्मध्या प्रधानवृष्टिस्तरोरुपरि ॥ ३ ॥ शिखि मण्डलवृष्टिर्नैर्ऋत्यां शारदस्य निष्पत्तिः । परिशेषयोःसुभि

गतिसे टेढावेढा चले और हौदा कसनेके समय दिनमें वारंवार जलविन्दु गर्जे या उसी कालमें मदयुक्त हो जावे, शूंडसे दाहिने दांतको लपेटे तो होता है ॥१३॥ हाथीको ग्राह पकडकर जलमें लेकर घुस जावे तो राजाकी कारण होता है और घडियालको ग्रहण करके हाथी जलमेंसे बाहर आ राजाकी भूमिवृद्धिका कारण होता है ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहि० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः।

पूर्वदेशके निवासियोंको कागका दाहिने होना शुभदायी है, वामभाग करायिकाका शुभ है. काकका बायें और करायिकाका दाहिने होना शुभ दिशाओंकी सीमा लोक प्रसिद्धिसे जाने ॥१॥ जो वैशाखके मासमें काक वृक्षके ऊपर घोंसला बनावे तो सुभिक्ष और मंगलदायी होता है, परन्तु और कांटेदार वृक्षपर घोंसला बनावे तो दुर्भिक्षका भय होता है ॥ २ ॥ कागका घोंसला पूर्व दिशामें स्थित शाखापर बना हो तो पश्चिम दि वर्षा होती है. दक्षिण और उत्तम दिशामें वृक्षके ऊपर घोंसला हो तो प्र होती है ॥ ३ ॥ अग्निकोणमें हो तो मण्डल वृष्टि, नैर्ऋत्य दिशामें हो तं

कसम्पत्तु वायव्ये ॥ ४ ॥ शरदर्भगुल्मवल्लीधान्यप्रासादगेहनिं
शून्यो भवति स देशश्चौरानावृष्टिरोगार्तः ॥ ५ ॥ द्वित्रिचतुः
त्वं सुभिक्षदं पञ्चभिर्नृपान्यत्वम् । अण्डावकिरणमेकाण्डता
तिश्च न शिवाय ॥६॥ चौरकवर्णैश्चौराश्चित्रैर्मृत्युः सितैश्च व
यम् । विकलैर्दुर्भिक्षभयं काकानां निर्दिशेच्छिशुभिः ॥७॥ अ
मित्तसंहतैर्ग्राममध्यगैः क्षुद्भयं प्रवाशद्भिः । क्रोधश्चक्राकारैरभि
तो वर्गवर्गस्थैः ॥८॥ अभयाश्च तुण्डपक्षैश्चरणविघातैर्जनानभि
वन्तः। कुर्वन्ति शत्रुवृद्धिं निशि विचरन्तो जनविनाशम्॥९॥स
खेभ्रमाद्भिः स्वभयं विपरीतमण्डलैश्च परात। अत्याकुलं भ्रमद्भि
तोद्भ्रामी भवति काकैः॥१०॥ऊर्ध्वमुखाश्चलपक्षाःपथि भयदाः क्षु
याय धान्यमुषः।सेनाङ्गस्था युद्धं परिमोषं चान्यभृतपक्षाः ॥ १

खेती अच्छी होती है, शेष दो दिशाओंमें हो तो सुभिक्ष और वायुकोणमें का
घोंसला हो तो चूहेभी बहुत होते हैं ॥४॥ शर, दर्भ, गुल्म, वल्ली, धान्य, प्र
और गृहके नीचेका घोंसला हो तो वह देश चोर अनावृष्टि और पीडित हं
देश शून्य हो जाता है ॥ ५ ॥ जो कागके २, ३, या ४ बच्चे हो तो सुभिक्षदायं
परन्तु पांच हों तो दूसरे राजाके अधिकारको प्रगट करते हैं और अंडोका
वा एक अंडा प्रसव करे तो मंगलदायी नहीं है ॥ ६ ॥ कागके बच्चोंका रंग
गंधद्रव्यके समान हो तो चोरभय होता है, त्रिवर्णके रंगसे मृत्यु, श्वेतवर्णसे अग्नि
और विकलतासे दुर्भिक्षभय होता है ॥७॥ जो काग विना कारण इकट्ठे हो ग
बडा शब्द करें तो दुर्भिक्षभय और चक्र बांधकर स्थित हों तो क्रोध और वर्ग
स्थित हों तो उपद्रव होता है ॥ ८ ॥ जो कौवे भयहीन होकर चोंच, पंख और पं
मनुष्योंको मारे तो शत्रुवृद्धि और रात्रिमें विचरण करनेसे जनविनाश हो ज
है ॥ ९ ॥ कौवे आकाशमें उडते हुए दक्षिणभागमें भ्रमण करते २ पश्चिम दिः
विपरीत मंडलमें जायँ तो अपनेको भय और अत्यन्त आकुल होकर भ्रमण करें
वातोद्भ्रमण होता है ॥ १० ॥ ऊपरको मुख उठाये पंखोंको फटफटाते
अन्नको चुरावें और मार्गमें स्थित रहें तो दुर्भिक्षभयका हेतु और भयदायी होता
सेनाके अंगोंपर कागका बैठना युद्ध करता है, कोकिलके समान कागोंके पंख अ
काले हों तो चोरी होती है ॥ ११ ॥ कौवे शय्याके ऊपर भस्म, हड्डी, केश

स्मास्थिकेशपत्राणि विन्यसन् पतिवधाय शय्यायाम्।मणिकुसु-
ाद्यवहनने सुतस्यजन्माङ्गनायाश्च॥१२॥पूर्णाननेऽर्थलाभः सिकता-
ान्यार्द्रमृत्कुसुमपूर्वैः।भयदो जनसंवासाद्यदि भाण्डान्यपनयेत्काकः
१३॥ वाहनशस्त्रोपानच्छत्रच्छायाङ्गकुट्टने मरणम्। तत्पूजायां
जा विष्ठाकरणेऽन्नसम्प्राप्तिः॥ १४॥ तद्द्रव्यमुपनयेत्तस्य
ब्धिरपहरति चेत्प्रणाशः स्यात्। पीतद्रव्ये कनकं वस्त्रं कार्पा-
ासके सिते रूप्यम्॥ १५॥ सक्षीरार्जुनवञ्जुलकूलद्वयपुलिनगा
वन्तश्च। प्रावृषि वृष्टिं दुर्दिनमनृतौ स्नाताश्च पांसुजलैः॥ १६॥
ारुणनादस्तरुकोटरोपगो वायसो महाभयदः। सलिलमवलोक्य
रुवन् वृष्टिकरोऽब्दानुरावी वा॥ १७॥ दीप्तोद्विग्नो विटपे विकु-
यन्वह्निकृद्धितपक्षः। रक्तद्रव्यं दग्धं तृणकाष्ठं वा गृहे विदधत्
१८॥ ऐन्द्र्यादिदिगवलोकी सूर्याभिमुखो रुवन् गृहे गृहिणः॥
ाजभयचोरबन्धनकलहाः स्युः पशुभयं चेति॥ १९॥ शान्ता-

त्र डाले तो पतिके वधका कारण होता है और मणि कुसुमादि डाले तो पुत्र
न्याका जन्म प्रगट करता है॥ १२॥ रेता, धान्य, गीली मिट्टी, फूल, फलादिसे
ख भरकर काक आवे तो धनका लाभ प्रगट करता है और जो काग मनुष्योंके
ासस्थानसे कुछ बर्त्तन उठा लावे तो भयदायी होता है॥१३॥ वाहन, शस्त्र, जूता
त्र, छाया और अंग इनको काक कूदे तो मरण होता है, इनकी पूजा करे तो पूजा
ोती है और ऊपर बीट करे तो अन्नका लाभ होता है॥ १४॥ जो द्रव्य कौवा
हींसे उठाकर ले आवे उसही द्रव्यका लाभ होता है और जो द्रव्य ले जाय
सका नाश होता है, पीत द्रव्यसे सुवर्ण और कपासके बने हुए श्वेत वस्त्रसे
ांदीका लाभ होता है या हानि होती है॥ १५॥ दुद्धे वृक्षपर, अर्जुन, वंजुल,
दीके दोनों किनारों और पुलिनमें बैठकर काकगण शब्द करे तो वृष्टि होती है
ौर ऋतुओंमें जलसे धूरीसे या स्नान करे तो दुर्दिन होता है॥ १६॥ वृक्षके
ोटरमें बैठकर काग दारुण शब्द करे तो महाभयदायी होता है, जलको अव-
ोकन करके शब्द करे वा मेघके समान शब्द करे तो वर्षाकारी होता है॥ १७॥
खोंको फटफटाता हुआ काग वृक्षपर बैठकर दीप्त और उद्विग्न हो अंगोंको
ूटे या लाल वस्तुको घरमें ले आवे या जले हुए तृणकाष्ठको रखावे तो अग्निका
य होता है॥ १८॥ गृहस्थोंके गृहमें पूर्वादि दिशाओंमें देखता हुआ सूर्यकी
ोर मुख करके काग शब्द करे तो गृहस्वामीको राजभय, चोरभय, बन्धन, कलह
ौर पशुजनित भय होता है॥ १९॥ शान्ता पूर्व दिशाको देखता हुआ जो काग

मैन्द्रीमवलोकयन् रुयाद्राजपुरुषमित्राप्तिः। भवति च सु
शाल्यन्नगुडाशनाप्तिश्च ॥ २० ॥ आग्नेय्यामनलाजीविक
रधातुलाभश्च। याम्ये माषकुलत्था भोज्यं गान्धर्विकैर्यो
नैर्ऋत्यां दूताश्चोपकरणदधितैलपललभोज्याप्तिः। वारु
सुरासवधान्यसमुद्ररत्नाप्तिः ॥ २२ ॥ मारुत्यां शस्त्रायु
ल्लीफलाशनाप्तिश्च। सौम्यायां परमान्नाशनं तुरंगा
॥ २३ ॥ ऐशान्यां सम्प्राप्तिर्घृतपूर्णानां भवेदनडुहश्च।
गृहपतेर्गृहपृष्ठसमाश्रिते भवति ॥ २४ ॥ गमने कण
क्षेमाय न कार्यसिद्धये भवति। अभिमुखमुपैति य
न्विनिवर्तयेद्यात्राम् ॥ २५ ॥ वामे वाशित्वादौ
श्वेऽनुवाशते यातुः। अर्थापहारकारी तद्विपरीतोऽर्थ
॥ २६ ॥ यदि वाम एव विरुयान्मुहुर्मुहुर्यायिनोऽनुलो

शब्द करे तो राजपुरुषकी प्राप्ति, सुवर्णका लाभ, शालिधान्य, अन्न
भोजन प्राप्त होता है ॥ २० ॥ शान्त आग्नेय कोणको देखता हुआ क
अग्निसे जीविका करनेवाले सुनार लुहारादि, युवती और उत्तम धा
होती है और दक्षिणदिशाको देखता हुआ काग बोले तो उडद व
भोजन और गान्धर्विक गानेवालेसे संयोग होता है ॥ २१ ॥ शान्त नै
देखता हुआ काग बोले तो दूत, उपकारण, दही, तेल, मांस, और भो
होती है. पश्चिम दिशामें इस प्रकार शब्द करनेसे मांस, सुरा, अ
और समुद्रके रत्नोंकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ वायुकोणमें इस प्रकारसे
तो शस्त्र, आयुध, कमल, लता, फल और भोजनकी प्राप्ति होती है.
दिशाको देखता हुआ काग बोले तो पायस भोजन, तुरङ्ग और वस्
होती है ॥ २३ ॥ शान्त ईशानकोणको देखता हुआ काक शब्द करे तो
और वृषकी प्राप्ति होती है. जो घरके पृष्ठपर बैठकर काग बोले तो यह
घरके स्वामीको होते हैं ॥ २४ ॥ यात्रा करनेके समय जो कानके बराब
तो कल्याणका कारण होता है, परन्तु कार्यकी सिद्धि नहीं होती.
सामने आकर काग किसी प्रकारका शब्द करे तो
लौटता है ॥ २५ ॥ पहले यात्राकारीके वामपार्श्वमें शब्द
दक्षिण भागमें काक शब्द करे तो धनको हरता है. इससे
तो धनकी प्राप्ति होती है ॥ २६ ॥ जो काग यात्रा करनेवालेके वामभ

य भवति सिद्धयै प्राच्यानां दक्षिणश्चैवम् ॥ २७ ॥ वामः
ोमगतिर्वाशन् गमनस्य विघ्नकृद्भवति । तत्रस्थस्यैव फलं
ति यद्वाञ्छितं गमने ॥ २८ ॥ दक्षिणविरुतं कृत्वा वामे वि-
थेप्सितावाप्तिः । प्रतिवाश्य पुरो यायाद् द्रुतमग्रेऽर्थागमोऽति-
॥ २९ ॥ प्रतिवाश्य पृष्ठतो दक्षिणेन यायाद्द्रुतं क्षतजक-
एकचरणोऽर्कमीक्षन् विरुवंश्च पुरो रुधिरहेतुः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा-
पादस्तुण्डेन लिखेद्यदा स्वपिच्छानि । परतो जनस्य महतो
भिधत्ते तदा बलिभुक् ॥३१॥ सस्योपेते क्षेत्रे विरुवति शान्ते
यभूलब्धिः । आकुलचेष्टो विरुवन् सीमान्ते क्लेशकृद्यातुः
॥ सुस्निग्धपत्रपल्लवकुसुमफलानम्रसुरभिमधुरेषु । सक्षीराव्रण-
तमनोज्ञवृक्षेषु चार्थकरः ॥ ३३ ॥ निष्पन्नसस्यशाद्वलभव-
ादहर्म्यहरितेषु । धान्योच्छ्रयमङ्गल्येषु चैव विरुवन्धनागमदः

२ वारंवार अनुलोम गतिसे गमन करे तो धनकी प्राप्ति होती है, पूर्वदिशाके
ियोंका दक्षिणमेंही इस प्रकारका फल होता है ॥ २७ ॥ काग शब्द करता
बाईं दिशामें स्थित हो प्रतिलोम गतिसे अर्थात् यात्रा करनेवालेके सन्मुख
तो यात्रामें विघ्न करके यह कहता है कि यात्राका वांछित फल घर बैठेही हो
॥ २८ ॥ पहले दाहिने शब्द करके फिर बांयें शब्द करे तो अभिष्ट फलकी
और शब्द करते शीघ्र यात्रा करनेवालेके आगे २ गमन करे तो बहुत धन
होता है ॥ २९ ॥ प्रति शब्द करके पीठसे दक्षिण दिशाकी ओर शीघ्र चला
अथवा अग्रभागमें एक चरणसे खडा रहकर सूर्यको देखते २ शब्द करे तो
करनेवालेके शरीरसे रुधिर निकलता है ॥ ३० ॥ जो काग एक पांवसे
रहकर सूर्यको देखता हुआ मुख (चोंच) से अपने पंखोंको कुरेदे तो आगेके
प्रधान मनुष्यके वधको प्रगट करता है ॥ ३१ ॥ धान्ययुक्त खेतकी शान्ता
में जो काग अच्छा शब्द करे तो धान्ययुक्त भूमिकी प्राप्ति होती है, व्याकुल
ाला होकर जो गांवकी सीमाके अन्तमें विशेष शब्द करे तो गमनकारीको
र होता है ॥ ३२ ॥ कोमलपत्ते, पल्लव, फूल और फलों करके नम्र हुए वा
धित अथवा मधुर वृक्षपर या दुधारे व्रणरहित, भली भांतिसे स्थित और
क वृक्षपर बैठकर शब्द करता हुआ काग कार्यको सिद्ध करता है ॥ ३३ ॥
हुए धान्य और नवीन तृणोंसे आच्छादित श्यामल खेत, प्रासाद, अटारी
हरे रंगके स्थानमें, धान्यके ऊँचे ढेरपर और मंगलकी वस्तुपर बैठकर काग

॥ ३४ ॥ गोपुच्छस्थे वल्मीकगेऽथवा दर्शनं भुजङ्ग
ज्वरो महिषगे विरुवति गुल्मे फलं स्वल्पम् ॥ ३५
ग्याघातस्तृणकूटे वामगेऽस्थिसंस्थे वा । ऊर्ध्वाग्निप्लु
च काके वधो भवति ॥ ३६ ॥ कण्टकिमिश्रे सौम्ये सि
भवति कलहश्च । कण्टकिनि भवति कलहो वल्लीपरिवे
॥ ३७ ॥ छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते
तश्च पृष्ठतो वा गोमयसंस्थे धनप्राप्तः ॥ ३८ ॥ मृतपुर
वस्थितोऽभिवाशन् करोति मृत्युभयम् । भञ्जन्नस्थि
यदि वाशत्यस्थिभङ्गाय ॥ ३९ ॥ रज्ज्वस्थिकाष्ठकण्ट
शिरोरुहानने रुवति । भुजगगददंष्ट्रितस्करशस्त्राग्निभ
मशः ॥ ४० ॥ सितकुसुमाशुचिमांसाननेऽर्थसिद्धिः
यातुः । धुन्वन् पक्षावूर्ध्वानने च विघ्नं मुहुः क्वणति
यदि शृंखलां वरत्रां वल्लीं वादाय वाशते बन्धः । पा

शब्द करे तो धनका आगम होता है ॥ ३४ ॥ गौकी पूंछ पर या
बैठा हुआ काग बोले तो सर्पका दर्शन होता है. महिषके ऊपर बैठक
तो ज्वर होता है, गुल्मपर बैठकर शब्द करे तो कम फल होता
तिनकोंके ढेरपर बैठा हुआ या हड्डीपर बैठा हुआ काग बाईं ओर ह
विघ्न डालता है, ऊपरसे अग्नि द्वारा जले हुए या बिजलीसे हत
ऊपर काग बैठकर बोले तो वध होता है ॥ ३६ ॥ काँटेदार उत्तम
बैठा हो तो कार्यकी सिद्धि कलहके साथ होती है, कांटेदार वृक्षपर बैठ
करे तो कलह होता है जिस वृक्षपर बेल लिपट रहा हो उसपर बैठकर
करे तो बन्धन होता है ॥ ३७ ॥ ऊपरसे छिन्न हुए स्थानमें बैठकर
यात्राकारीका अंग काटता है, सूखे वृक्षपर बैठकर शब्द करे तो क्लेश
या पीछे गोबरपर बैठकर शब्द करे तो धनकी प्राप्ति होती है ॥ ३
पुरुषके अंगपर या शरीर पर बैठकर काग शब्द करे तो मृत्युभय ह
चोंचसे हड्डीको तोडे तो हड्डीके टूटनेका कारण होता है ॥ ३९ ॥
काठ, कांटोंवाली वस्तु साररहित वस्तु और बालोंको मुखमें रखकर श
क्रमानुसार भुजंग, रोग, दाढवाले जीवोंका, चोर, शस्त्र और अग्निसे
भय यात्रा करनेवालोंको होता है ॥ ४० ॥ काग, श्वेत पुष्प और अ
मुखमें लेकर बोले तो यात्राकारीका अभीष्ट सिद्ध करता है और पंर
ऊपरको मुख करके वारंवार शब्द करे तो विघ्नकारी होता है ॥ ४
वरत्रा (हाथीकी कक्षरज्जु) या बेलको ग्रहण करके काग शब्द करे

रयं क्लिष्टापूर्वाध्विकयुतिश्च ॥ ४२ ॥ अन्योऽन्यभक्षसंक्रामितानने
ुष्टिरुत्तमा भवति । विज्ञेयः स्त्रीलाभो दम्पत्योर्वाशतोर्युगपत् ॥ ४३ ॥
ामदाशिरउपगतपूर्णकुम्भसंस्थेऽङ्गनार्थसम्प्राप्तिः । घटकुट्टने सुत-
वेपद्धटोपहननेऽन्नसम्प्राप्तिः ॥ ४४ ॥ स्कन्धावारादीनां निवेशस-
ाये रुवंश्चलत्पक्षः । सूचयतेऽन्यस्थानं निश्चलपक्षस्तु भयमात्रम्
। ४५ ॥ प्रविशद्भिः सैन्यादीन् सगृध्रकङ्कैर्विनामिषं ध्वांक्षैः । अवि-
द्धैस्तैः प्रीतिर्द्विषतां युद्धं विरुद्धैश्च ॥ ४६ ॥ बन्धः सूकरसंस्थे
ङ्काक्ते सूकरे द्विकेऽर्थाप्तिः । क्षेमं खरोष्ट्रसंस्थे केचित्प्राहुर्वधं तु
रे ॥ ४७ ॥ वाहनलाभोऽश्वगते विरुवत्यनुयायिनि क्षतजपातः ।
न्येऽप्यनुव्रजन्तो यातारं काकवद्विहगाः ॥ ४८ ॥ द्वात्रिंशत्प्रवि-
क्ते दिक्चक्रे यद्यथा समुद्दिष्टम् । तत्तत्तथा विधेयं गुणदोषफलं

ोता है. पत्थरपर बैठकर शब्द करनेसे भय और क्लेश होनेके अतिरिक्त अपूर्व
ात्रीके साथ मिलाप होता है ॥ ४२ ॥ जो दो काग एक दूसरेके मुखमें भोजन
ते हों तो यात्रा करनेवालेको उत्तम सन्तोष होता है. नर और मादा दोनों इकट्ठे
ोकर शब्द करें तो स्त्रीलाभको प्रगट करते हैं ॥ ४३ ॥ स्त्रीके शिरपर जलसे भरा
ुआ घडा रक्खा हो और उसपर काग बैठे तो स्त्री और धनकी प्राप्ति होती है.
ढेको चोंचसे कूटे तो पुत्रपर विपत्ति और घडेपर वीट कर दे तो अन्न प्राप्त होता
। ॥४४॥ पंख चलाता हुआ काग छावनी डालनेके समय शब्द करे तो और स्थानकी
ूचना करता है कि यहां नहीं और स्थानपर सेनाका ठहरना होगा, परन्तु अचल-
ंख काग शब्द करे तो केवल भय प्रगट करता है ॥४५॥ गिद्ध और कंकयुक्त काग-
ाण विना मांस लिये सेनादिमें प्रवेश करते२विना विरोधके हो तो शत्रुओंकी प्रस-
्नता और विरुद्ध हो तो युद्ध होता है॥४६॥ शूकरके ऊपर काग बैठा हो तो बन्धन
और कीचसे लिपटे हुए दो शूकरोंपर बैठा हो तो धनकी प्राप्ति होती है. गधे व ऊंट-
र बैठा हो तो मंगल होता है, कोई २ कहते हैं कि गधेपर बैठा हो तो यात्रा कर-
नेवालेकी मृत्यु होती है ॥४७ ॥ घोडेपर बैठकर काग शब्द करे तो सवारीकी प्राप्ति
और पीछे जाकर शब्द करे तो रुधिर गिरता है और यात्रा करनेवालेके पीछे२ और
क्षी शब्द करें तो उनका फलभी कागके समान जानना चाहिये ॥ ४८ ॥ ३२
ागमें बँटे हुए दिक्चक्रमें जिसमें जैसा फल कहा है, तिसमें वैसाही दोषगुणयुक्त

यियासूनाम् ॥ ४९ ॥ का इति काकस्य रुतं स्वा
निष्फलप्रोक्तम् । कव इति चात्मप्रीत्यै क इति रुते
प्तिः ॥ ५० ॥ कर इति कलहं कुरुकुरु च हर्षमथ क
भक्तम् । केके विरुतं कुकु वा धनलाभं यायिनः
खरेखरे पथिकागममाह कखाखेति यायिनो मृत्युम्
धिकमाखलखल सद्योऽभिवर्षाय ॥ ५२ ॥ काकेति
टीति चाहारदूषणं प्राह । प्रीतःशास्पदं कवकवेति ब
रिति ॥ ५३ ॥ करकौ विरुते वर्षं गुडत्रत्रासाय वडि
कलयेति च संयोगः शूद्रस्य ब्राह्मणैः साकम् ॥ ५
फलाप्तिः फलवाहिदर्शनं टडिति प्रहाराः स्युः । स्त्रील
गडिति गवां पुडिति पुष्पाणाम् ॥ ५५ ॥ युद्धाय
गुडु वह्निभयं कटेकटे कलहः । टाकुलि चिण्टचि
श्चेति दोषाय ॥ ५६ ॥ काकद्वयस्यापि समानमेत

फल फलता है ॥४९॥ अपने घोंसलेमें स्थित कागका 'का' शब्द
और 'कव' शब्द अपनी प्रीतिके लिये होता है और 'क' शब्द हो
और मित्रकी प्राप्ति होती है ॥५०॥ 'कर' शब्द क्लेश, 'कुरुकुरु' श
कट' शब्दसे दही खानेको मिलता है और 'केके' या 'कुकु' शब्द
काग धनका लाभ प्रगट करता है ॥ ५१ ॥ काग अपने घोंसलेमें
करे तो पथिकका आगमन, 'कखाखा' शब्द करे तो यात्राकारि
'खलखल' शब्द बोलनेसे उसी दिन वर्षा होती है. 'आ' शब्द काग
विघ्न करता है ॥५२॥ 'काका' शब्द बोले तो यात्राकारीका नाश,
आहारका दूषण 'कवकव' शब्दसे किसीके साथ प्रीति और 'कगा
होता है ॥ ५३ ॥ 'करकौ' शब्दसे वर्षा, 'गुड' शब्दसे त्रास, 'व
प्राप्ति और 'कलय' शब्द काग बोले तो ब्राह्मणके साथ शूद्रव
करता है ॥ ५४ ॥ 'फट्' शब्दसे फलकी प्राप्ति वा फलवाहक
'टट्' शब्दसे प्रहार, 'स्त्री' शब्दसे स्त्रीका लाभ 'गडिति' श
'पुडिति' शब्द काग बोले तो पुष्पोंका लाभ होता है ॥ ५
'टाकुटाकु' शब्द करे तो युद्धका कारण, 'गुडु' शब्दसे अग्नि
शब्दसे क्लेश होता है, 'और 'टाकुलि' 'चिन्टिचि' 'केकेके' अ
दोषकारी होता है ॥ ५६ ॥ रुत (शब्द) और चेष्टादि करके

ृताद्यैः । पतत्रिणोऽन्येऽपि यथैव काको वन्याः श्ववच्चोप-
गो ये ॥ ५७ ॥ स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो मेघकाले प्रचु-
वृष्ट्यै शेषकाले भयाय । मधु भवननिलीनं तत्करोत्याशु
मरणमपि निलीना मक्षिका मूर्ध्नि नीला ॥ ५८ ॥ विनिक्षि-
सलिलेऽण्डकानि पिपीलिका वृष्टिनिरोधमाहुः । तरुस्थलं
ायन्ति निम्नाद्यदा तदा ताः कथयन्ति वृष्टिम् ॥ ५९ ॥
ु मूलशकुनेऽन्तरजे तदह्नि विद्यात् फलं नियतमेवमिमे
्याः । प्रारंभयागसमयेषु तथा प्रवेशे ग्राह्यं क्षुतं न शुभदं
प्युशन्ति ॥ ६० ॥ शुभं दशापाकमविघ्नसिद्धिं मूलाभिर-
वा सहायान् । इष्टस्य संसिद्धिमनामयत्वं वदन्ति ते मान-
पस्य ॥ ६१ ॥ क्रोशादूर्ध्वं शकुनिविरुतं निष्फलं प्राहुरेके
ष्टे प्रथमशकुने मानयेत्पञ्च षट् च । प्राणायामान्नृपतिर-
ोऽशैव द्वितिये प्रत्यागच्छेत् स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः
॥ (इति सर्वशाकुने वायसरुतं नाम दशमोऽध्यायः)
श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

कागोंके लिये भी यह फल समान है और पक्षिगणभी कागके समान व
ेतने बनैले या गांवके दाढवाले जीव हैं तिनका फलभी श्वानके समान है
॥ वर्षाके समयमें जो स्थलचारी जीव जलमें प्रवेश करें और जलचारी जीव
आवें तो बहुत वर्षा होती है, परन्तु शेष कालमें भय होता है. जो मधु-
ां गृहमें शहतका छत्ता लगावें तो शीघ्र भवन शून्य हो जाता है. जो नीले
मक्खी शिरपर बैठे तो मृत्यु होती है ॥ ५८ ॥ जो चेंटियां अपने अपने
पानीमें डालें तो वर्षा रुक जाती है. जो अपने अंडोंको नीचेसे वृक्षपर ले
ो शीघ्र वर्षा होती है ॥ ५९ ॥ गमनादिकार्योंके आरम्भसमयमें सबसे पहले
ुन दिखलायी दिया है, उस कार्यके अन्ततक वही शकुन फल देगा; उस
बीचमें जो और शकुन दिखाई दे तो वह उस दिनही फल देगा. इस प्रकार
शकुनोंका विचार करना चाहिये. किसी कार्यके आरम्भमें या गृहप्रवेशा-
मयमें छींकका होना शुभ नहीं माना गया ॥६०॥ शकुन शास्त्रके जाननेवाले
ोग इस प्रकारसे शकुनको निरूपण करके सन्मान दाता राजाके लिये शुभ
क, विघ्नरहित सिद्धि, मूलस्थानकी रक्षा, सहाय, इष्टसिद्धि और निरोगिता
बको भली भांतिसे प्रकाशित करें ॥ ६१ ॥ कोई २ पंडित अर्थात् कश्यपादि
ोग कहते हैं कि एक कोश चले जानेके पीछे शकुनका शब्द होना निष्फल

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः ।

शाकुने–उत्तराध्यायः ।

दिग्देशचेष्टास्वरवासरर्क्षमुहूर्तहोराकरणोदयांशान् ।
रोन्मिश्रबलाबलं च बुद्ध्वा फलानि प्रवदेद्रुतज्ञः ॥ १ ॥
कथयन्ति संस्थितानामागामिस्थिरसंज्ञितं च कार्यमानृप
न्यदेशजातान्यविघातस्वजनादि चागमाख्यम् ॥२॥ उद्बद्ध
भोजनचौरवह्निवर्षोत्सवात्मजवधाःकलहो भयं चावर्गः रि
मुदयेन्दुयुते स्थिरर्क्षे विद्यात् स्थिरं चरगृहे च चरं यदुक्त
स्थिरप्रदेशोपलमन्दिरेषु सुरालये भूजलसन्निधौ च । ।

होता है, जो तिनमें सबसे पहला अशुभ शकुन हो तो पांच या छः प्राण
दूसरा अशकुन हो तो १६ प्राणायाम करे. तीसरा शकुनभी अशुभ हो त
करके अपने घरको लौट आवे ॥ ६२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुराद
स्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पंचनवतितमोऽध्य

शब्दको जाननेवाले पंडितलोग दिक्, चेष्टा, देश, स्वर, दिवस, नक्षत्र
होरा, करण, उदयांश, चिर, स्थिर, व्यात्मक इन सबके बलाबलको जान
फलोंको प्रकाश करे ॥ १ ॥ समस्त शकुन संस्थित (वर्तमान) के
आगामी (होनहार) और स्थिरसंज्ञावाले कार्यफलको करके प्रकाश करं
तिसमें नृप, दूत, चर और देशोंसे उत्पन्न हुए सबही वर्तमान हैं. यह
और आगमनामसे प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ संलग्न, संग्रहण, भोजन, चोर, अ
उत्सव, आत्मज, वध, क्लेश और भय यह सब स्थिर वर्ग हैं. स्थिरराशि
साथ हो वा उदित हो तो स्थिर कार्य स्थिर हो जाते हैं, जो चर कहाते
चरगृहमें निर्णीत होते हैं ॥ ३ ॥ निश्चलस्थान, पत्थर, मन्दिर, देवाल

१–व्याहृतिके साथ गायत्री और उसके उपरान्त " आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः
इतने मंत्रके नियमानुसार पूरक, कुम्भक और रेचकको प्राणायाम कहते हैं. पूरकसे चौगुना कुम्
रेचक इनका अनुलोम और विलोमही क्रम है ।

ग चराणि यानि चलप्रदेशादिषु चागमाय ॥ ४ ॥ आप्यो-
णदिग्जलेषु पक्षावसानेषु च ये प्रदीप्ताः । सर्वेऽपि ते
रा रुवन्तः शान्तोऽपि वृष्टिं कुरुतेऽम्बुचारी ॥ ५ ॥ आग्ने-
ग्नमुहूर्तदेशेष्वर्कप्रदीप्तोऽग्निभयाय रौति । विष्टयां यमर्क्षोद-
केषु निष्पत्रवल्लीषु च मोषकृत्स्यात् ॥ ६ ॥ ग्राम्यः प्रदीप्तः
ष्टिताभ्यामुग्रो रुवन् कण्टकिनि स्थितश्च । भौमर्क्षलग्ने यदि
च स्थितोऽभितश्चेत्कलहाय दृष्टः ॥ ७ ॥ लग्नेऽथवेन्दोर्भृ-
संस्थे विदिक्स्थितोऽधोवदनश्च रौति । दीप्तः स चेत्संग्रहणं
योन्या तया या विदिशि प्रदिष्टा ॥ ८ ॥ पुंराशिलग्ने
तिथौ च दिक्स्थः प्रदीप्तः शकुनो नराख्यः । वाच्यं तदा
नराणां मिश्रे भवेत्खण्डकसम्प्रयोगः ॥ ९ ॥ एवं रवेः क्षेत्र-
लग्ने लग्ने स्थिते वा स्वयमेव सूर्ये । दीप्तोऽभिदत्ते शकुनो
पुंसः प्रधानस्य हि कारणं तत् ॥ १० ॥ प्रारभ्यमाणेषु

लके निकट शकुन हो तो स्थिर कार्य और चलदेशमें हो तो चर कार्य करने
॥४॥ आप्य (जलचर नामके) लग्न, नक्षत्र, क्षण, दिक्में स्थित तथा जलके
और पक्षके अंतमें जो शकुन प्रदीप्त होते हैं, वे समस्त वृष्टिकारी होते हैं.
ी जीवका शान्त शब्द भी वृष्टि करता है ॥५॥ आग्नेय दिशामें लग्न, मुहूर्त
ामियुक्त देशमें शकुन सूर्यदीप्त होकर शब्द करे तो अग्निभयका कारण होता
करण, कुम्भ और मकरका उदय, कांटेदार वृक्ष और पत्ररहित बेलमें
जो शकुन शब्द करे तो चोरी होती है ॥६॥ कांटेदार वृक्षपर बैठे हुए गांवके
जो स्वर चेष्टा करके प्रदीप्त होकर शब्द करें और जो भौमराशि (मेष और
) लग्नमें नैर्ऋतदिशामें स्थित या अभिमुखी हो तो कलहका कारण दिखाई
॥७॥ कर्कलग्नमें अथवा वृष और तुलाके नवांशमें विदिक्स्थित होकर शकुन
ो मुख करके शब्द करे और वह शकुन दीप्त हो तो उस दिशामें जिस स्त्रीकी
कह आये हैं, उसहीके साथ मेल होता है ॥८॥ जब पुरुषराशि लग्नमें
ा तृतीया आदि विषम तिथि हो और उसमें दिक्स्थित प्रदीप्त नर शकुन
करे तब मनुष्योंका संग्रहण विषम कहा जा सकता है; पुरुषराशि आदि मिश्र
नपुंसकसे समागम होता है ॥९॥ इस प्रकारसे सूर्यका क्षेत्र (सिंह) नवांश
ग्नमें स्थित हो अथवा स्वयं सूर्यही उसमें स्थित हो तो उसके लिये प्रधान
का आगमन शकुन प्रकाश करते हैं ॥ १० ॥ समस्त प्रारम्भ किये कार्योंमें

च सर्वकार्येष्वर्कान्विताद्राद्गणयेद्धि लग्नम् । सम्पद्विपः
सम्पद्विपद्वापि तथैव वाच्या ॥ ११ ॥ काणेनाक्ष्
सूर्ये चन्द्रे लग्नाद्द्वादशे चेतरेण । लग्नस्थेऽर्के प
कुब्जः स्वर्क्षे श्रोत्रहीनो जडो वा ॥१२॥ क्रूरः षष्ठे
ग्राद्यस्मिन्राशौ तद्गृहाङ्गे व्रणः स्यात् । एवं प्रोक्तं र
काले चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन्विचिन्त्यम् ॥१३॥ द्व्यः
कोदये नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे । नाम्युग्ममपि
त्र्यक्षरं भवति चास्य पञ्चभिः ॥ १४ ॥ काद्यास्तु
शुक्रसौम्यजीवार्कजानां क्रमशः प्रदिष्टाः । वर्णाष्टकं र
रश्मे रवेरकारात्क्रमशः स्वराः स्युः ॥ १५ ॥ नामानि
कुमारविष्णुशक्रेन्द्रपत्नीचतुराननानाम् । तुल्यानि
मशो विचिन्त्य क्रियादिवर्णैर्घटयेत् स्वबुद्ध्या।

सूर्ययुक्त राशिसे लग्न गिनें; क्रमानुसार (१ । २ क्रमसे) सम्पत् औ
गिनती करके सम्पत् अथवा विपत् कहना चाहिये ॥ ११ ॥ तिस
बारहवां सूर्य हो (शकुन करके तिसके साथ मिले वह) दाहिनी अ
लग्नसे बारहवें चन्द्रमा हो तो बाईं आंखसे काना हो, लग्नके सूर्यके
हो तो अन्धा और सिंहराशिमें स्थित हुए सूर्यके ऊपर जो पापके
कुबडा, बहरा और जड होगा ॥१२॥ तिस कालकी लग्नसे छठे स्
देखा हुआ पापग्रह (वा मंगल) हो, अथवा जो राशि पापग्रहसे दे
युक्त हो तो उसके अंगोंगा विभाग करनेपर उस राशिमें जो अंग
उसी अंगमें व्रणहोगा इसी प्रकारसे जन्मकालीन समस्त फल जो मैंने
हैं, इस स्थानमें उन सबका विचार करना चाहिये ॥१३॥ चरलग्न उ
होवे तो योज्य पुरुषका नाम दो अक्षरका है, स्थिरमें चार अक्षरका
नाम होता है ॥१४॥ या पांच पञ्चक (पांच अक्षरवाले) वर्ग, क्रमसे मं
बृहस्पति और शनिके हैं, यकार आदि आठ अक्षर चन्द्रमाके हैं अ
१६ वर्ण सूर्यके हैं ॥१५॥ सूर्य और चन्द्रादि सात ग्रहके अधीनमें
अग्नि, जल, कार्तिक, विष्णु, इन्द्र, शची और ब्रह्मा सि
प्रयोजनीय पदार्थका नाम जानना हो तो इन सब देवताओंके नाम
परन्तु पहले कहे अक्षरविन्यासके अनुसार दो अक्षरवाले, तीन अ
इत्यादि समस्त तिन २ देवताओंके अनुसार करके अपनी बुद्धिसे जान

। तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः । अतीव
ति चन्द्रभौमज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम् ॥ १७ ॥ (इति
त्तराध्यायः)
ते श्रीवराहमि० बृहत्सं० षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

पाकविचारः ।

शाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः । आ दर्श-
पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण ॥ १ ॥ षड्भिः सितस्य मासै-
शनैः सुरद्विषोऽब्दाधात । वर्षात्सूर्यग्रहणे सद्यः स्यात्त्वाष्ट्र-
क्यो ः ॥ २ ॥ त्रिभिरेव धूमकेतोर्मासः श्वेतस्य सप्तरात्रान्ते।
त्परिवेषेन्द्रचापसन्ध्याभ्रसूचीनाम् ॥ ३ ॥ शीतोष्णविप-
फलपुष्पमकालजं दिशां दाहः । स्थिरचरयोरन्यत्वं प्रसूति-
तेश्च षण्मासात् ॥४॥ अक्रियमाणककरणं भूकम्पोऽनुरसवो

, मंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, रवि और शनिकी अवस्थाके अनुसार शकु-
हे हुए मनुष्य क्रमानुसार दूध पीता हुआ बालक, बालक, व्रतस्थित (कौमार)
ध्य, वृद्ध और अत्यन्त वृद्ध अवस्थावाला होता है ॥ १७ ॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वा-
-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांषण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥
इति सर्वशाकुन समाप्तम् ।

िका फल एक पक्षमें, चन्द्रमाका एक मासमें, मंगलका वक्रके अनुसार दिनोंमें,
फल उदय रहनेतक और बृहस्पतिका फल एक वर्षमें पकता है ॥ १ ॥
। फल छः मासमें, शनिका एक वर्षमें सुरद्वेषी, (राहु) (चन्द्रग्रहण) का
वर्षमें, सूर्यग्रहणका एक वर्षमें, त्वष्टा नामक ग्रहका फल और तामस कील-
फल शीघ्र होता है ॥ २ ॥ धूमकेतुका फल तीन मासमें, श्वेत धूमकेतुका
ात्रियोंमें, पौष (परिवेष), इन्द्रधनुष, सन्ध्या और अभ्रसूचीका फल ७ दिन
ाह)में होता है ॥ ३ ॥ शीत उष्णमें विपर्यय (जाडेमें गरमी और गरमीमें
ा पडना), अकालमें उत्पन्न हुए फल फूलादि, दिग्दाह, स्थिर और चरका
व (स्थिरपदार्थ चले, अस्थिर न चले), दिग्दाह और प्रसूति विकृतिका
ः मासमें होता है ॥ ४ ॥ अक्रियमाणक कार्यका करना (जो कभी नहीं

दुरिष्टं च । शोषश्चाशोष्याणां स्रोतोऽन्यत्वं च वर्षार्धात्
स्तम्भकुसूलार्चानां जल्पितरुदितप्रकम्पितस्वेदाः।मासत्रयेण
हेन्द्रचापनिर्घातपाकाश्च ॥ ६ ॥ कीटाखुमक्षिकोरगबाहुल्य
विहङ्गमरुतं च । लोष्ठस्य चाप्सु तरणं त्रिभिरेव विपच्यते
॥ ७ ॥ प्रसवः सुनामरण्ये वन्यानां ग्रामसम्प्रवेशश्च । मधु
तोरणेन्द्रध्वजाश्च वर्षात् समाधिकाद्वा ॥ ८ ॥ गोमायुगृ
दशाहिकाः सद्य एव तूर्यरवः । आकुष्टं पक्षफलं वल्मीको
च भुवः ॥ ९ ॥ अहुताशप्रज्वलनं घृततैलवसादिवर्षणं
सद्यः परिपच्यन्ते मासेऽध्यर्धे च जनवादः ॥१०॥ छत्रचि
हुतवहबीजानां सप्तभिर्भवति पक्षैः । छत्रस्य तोरणस्य च को
सात् फलं प्राहुः ॥११॥ अत्यन्तविरुद्धानां स्नेहः शब्दश्च
भूतानाम् । मार्जारनकुलयोर्मूषकेण सङ्गश्च मासेन ॥

किया तिसका करना वा अनिच्छासे करना अथवा हठात् करना) भू
अनुत्सव, अनिष्टका होना, नहीं सूखनेवाले सरोवर आदिका सूख जा
आदि प्रवाहोंका उलटा बहना इन बातोंका फल छः मासमें होता है ॥ ५
मिट्टी आदिकी बनाई कुटिया, पूजाकी प्रतिमा, रुदित, प्रकम्पित और स्वे
कलह, इन्द्रधनुष और उपद्रव इनका फल तीन मासमें पकता है ॥ ६
चूहे, मक्खियें और सर्पोंकी बहुतायत, मृग व पक्षियोंके शब्द, हवाका
अथवा जलमें ढेलेका तरना इन सबका फल तीन मासमें पकता है ॥ ७
कुत्तोंका प्रसव, बनैले जीवोंका गांवमें घुस आना, शहतके छत्तका लगना
व इन्द्रध्वजमें किसी प्रकारका उत्पात होना इन सबका फल एक वर्षमें य
कुछ अधिक समयमें होता है ॥ ८ ॥ शृंगाल और गिद्धसमूहका फल दश
विना बजाये तुरहीके बजनेका फल शीघ्रही पकता है. शाप (बददुआ
और भूमिके फटनेका फल एक पक्षमें जाना जा सकता है ॥ ९ ॥ विना
अग्निका जलना और घी, तेल व चर्वी आदि वर्षनेका फल शीघ्र पाक
होता है और जनापवाद (अफवाह) का फल डेढमासमें पकता है ॥१०
चिति, थंभ, अग्नि और बोये हुए बीजोंका पाक सात पक्षमें होता है,
कहते हैं कि छत्र और तोरणका फल एक महीनेमें प्रगट होता है ॥ ११ ।
न्त वैर करनेवाले जीवोंका परस्पर स्नेह, आकाशमें प्राणियोंका शब्द और
व नेवलेका चूहेके साथ मेल इनै बातोंका फल एक मासमें होता है ॥

र्वपुरं मासाद्रसवैकृत्यं हिरण्यविकृतिश्च । ध्वजवेश्मपांसुधू-
कुला दिशश्चापि मासफलाः ॥ १३ ॥ नवकैकाष्टदशकैकषट्
त्रिकसंख्यमासपाकानि।नक्षत्राण्यश्विनिपूर्वकाणि सद्यः फला-
षा । १४॥ पित्र्यान्मासः षट् षट् त्रयोऽर्धमष्टौ च त्रिषडेकैकाः।
चतुष्केऽषाढे सद्यः पाकाभिजितारा ॥ १५ ॥ सप्ताष्टावध्यर्धं
त्रयः पञ्च चैव मासाः स्युः । श्रवणादीनां पाको नक्षत्राणां
संख्यम् ॥ १६ ॥ निगदितसमये न दृश्यते चेदधिकारं
गुणे प्रपच्यते तत् । यदि न कनकरत्नगोप्रदानैरुपशमितं विधि-
द्विजैश्च शान्त्या ॥ १७ ॥

श्रीवराहमि०बृहत्सं०पाकाध्यायो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

नक्षत्रगुणः ।

शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्तुपञ्चवसुपक्षाः।विषयैक-

र्वनगरका दिखाई देना, रसमें विकार, सुवर्णमें विकार इनका फल एक मासमें है और समस्त दिशायें ध्वज, आलय, धूरी और धूमसे ढक जाय तो इनका एक मासमें होता है ॥१३॥ अश्विनीसे लेकर पुष्यतक नक्षत्रोंमें उपद्रवका फल नौ, एक, अठारह, एक, एक, छः, तीन और तीन मासके पीछे पाकको प्राप्त है, आश्लेषाके तारेमें कुछ उत्पात हो तो शीघ्रही फल होता है ॥ १४ ॥ माघसे मूलतकके नक्षत्रोंमें कुछ उपद्रव हो तो क्रम २ से एक छः छः, तीन, अर्ध, आठ, छः, एक और एक मासमें इनका फल पकता है, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढाका चार मासमें और अभिजित्के तारेका फल शीघ्र होता है ॥ १५ ॥ श्रवणादि ोंका फल क्रमसे सात, आठ, अध्यर्द्ध (साढे तीन दिन), तीन, तनि और पांच में पाकको प्राप्त होता है ॥१६॥ जो कहे हुए समयमें फल दिखाई न दे तो दूने समयमें अधिक प्राप्त होता है, परन्तु सुवर्ण रत्न और गोदानादि शान्तिसे णों करके जो विधिपूर्वक उपशामित न हो, तबही दूने समयमें फलका पाक ॥१७॥

श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-व्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

शिखि (३), गुण (३), रस (६), इन्द्रिय (५), अनल (३), शशी (१), विषय गुण (३), ऋतु (६), पञ्च (५), वसु (८), पक्ष (२), विषय (५), एक (१)

चन्द्रभूतार्णवाग्निरुद्राश्विवसुदनाः॥१॥ भूतशतपक्षवस
तारकामानम् । क्रमशोऽश्विन्यादीनां कालस्ताराप्र
नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिव
व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥३॥ अश्वियमदहनकमलज
दितिजीवफणिपितरः । योन्यर्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनः
॥ ४ ॥ शक्रो निर्ऋतिस्तोयं विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरु
दोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥ ५ ॥ त्रीण्
रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात् । अभिषेकशां
बीजध्रुवारम्भान् ॥ ६ ॥ मूलशिवशक्रभुजगाधिप
तेषु सिद्ध्यन्ति । अभिघातमन्त्रवेतालबन्धवधभेद
उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनाशशाठ्येषु।योज्य
दहनशस्त्रघातादिषु च सिद्ध्यै॥८॥लघु हस्ताश्विनिपु
ज्ञानभूषणकलासु । शिल्पौषधयानादिषु सिद्धि

चन्द्र (१), भूत (१४), अर्णव (४), अग्नि (३), रुद्र (११), अ
दहन (३) भूत (१४) शत (१००), पक्ष (२) वसु (८) और ब
परिणाम है अर्थात् अश्विनी आदि नक्षत्रोंके यह योगतारे हैं.अश्वि
फल क्रमसे तारोंके प्रमाणके अनुसार होगा॥१॥॥२॥विवाहमें नक्ष
उतने वर्षोंमें फलता है कि जितने तारे होते हैं. जितने तारे हों उ
या और व्याधिका नाश कहा जाता है ॥३॥ अश्विनीकुमार,
चन्द्रमा, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितृगण, योनि, अ
पवन, इन्द्राग्नि, मित्र, ॥४॥ इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्व, विरञ्चि,
अजपाद, अहिर्बुध्न्य और पूषा यह क्रमानुसार अश्विनी आदि
हैं ॥५॥ उनमें रोहिणी व उत्तरा ध्रुवसंज्ञक हैं, ध्रुवगणमें अभिषे
नगर, धर्म, बीज और ध्रुवकार्यका आरम्भ करना उचित है ॥
और ज्येष्ठा, आश्लेषा इन नक्षत्रोंके स्वामी तीक्ष्ण हैं इनमें अभि
वेताल, बन्ध, वध और भेदसम्बन्धी कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥
और मघा ये पांच नक्षत्र उग्रगण हैं, ये नक्षत्र उजाडना, ना
करना, बन्धन, विष, दहन और शस्त्रघात आदिकी सिद्धिके लि
हस्त, अश्विनी और पुष्प यह तिन नक्षत्र लघु गणवाले हैं, इनमें

ष्ठानि ॥ ९ ॥ मृदुवर्गस्त्वनुराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे ।
तविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥ १० ॥ हौतभुजं
शाखं मृदुतिक्ष्णं तद्धिमिश्रफलकारि । श्रवणात्रयमादित्यानि
चरकर्मणि हितानि ॥ ११ ॥ हस्तात्रयं मृगशिरः श्रवणात्र
पूषाश्विशक्रगुरुभानानि पुनर्वसुश्च । क्षौरे तु कर्मणि हिताः
क्षणे वा युक्तानि चोडुपतिना शुभतारया च ॥१२॥ न स्ना
त्रगमनोत्सुकभूषितानामभ्यङ्गभुक्तरणकालनिरासनानाम् । स
निशोः कुजयमार्कदिने च रिक्ते क्षौरं हितं न नवमेऽह्नि न
विष्टचाम् ॥ १३ ॥ नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते च विवाहकाले
सूतके च । बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म
॥ १४ ॥ हस्तो मूलं श्रवणा पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः ।
ज्ञितेषु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥१५॥ सावित्रपो
निलमैत्रतिष्ये त्वाष्ट्रे तथा चोडुगणाधिपर्क्षे । संस्कारदीक्षाव्रत

भूषण और कला, शिल्प, औषधि व यानादि कार्यकी सिद्धि होती है
अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिरा यह चार नक्षत्र मृदु वर्ग हैं, यह नक्ष
सुरतविधि, वस्त्र, भूषण, मंगल, गीत और मित्रविषयमें हितकारी होते हैं ॥
विशाखा और कृत्तिका नक्षत्र मृदु तीक्ष्ण गण हैं इनका फल मिश्रित हो
श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाती इन पांच नक्षत्रोंमें चरकर्म हि
होता है ॥ ११ ॥ हस्त, चित्रा और स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा और
भिषा, रेवती, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुष्य और पुनर्वसु, ये नक्षत्र कर्म करनेवाले
तारा और शुभ चन्द्रमासे युक्त हों तो इनके उदयमें और कार्य हितकारी हैं
॥ १२ ॥ स्नान कर चुका हो, जानेकी इच्छा किये हो, भूषित हो, तैलाभ्यंग
हो, भोजन कर चुका हो, युद्धके समय, बिना आसनके और सन्ध्या और
कालमें, मंगल, शनि और इतवारके दिन, रिक्ता तिथिमें, नववें दिन और
करणमें क्षौर कर्म नहीं कराना चाहिये ॥ १३ ॥ राजाओंकी आज्ञासे, ब्राह्म
सम्मतिसे, विवाहकालमें मृत और सूतक जनित अशौचके अन्तमें, बँधे हुए
के मोचन अर्थात् छूटनेमें, यज्ञादिकी दीक्षामें क्षौर कर्म सब नक्षत्रोंमें करा
चाहिये ॥ १४ ॥ हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुष्य इन सब
त्रोंकी पुरुष संज्ञा है, इनमें पुरुषसंज्ञक कामोंका करना शुभ है ॥ १५ ॥
रेवती, स्वाती, अनुराधा, पुष्य, चित्रा और मृगशिरा नक्षत्रमें, चन्द्रवार-

लादि कुर्याद्गुरौ शुक्रबुधेन्दुयुक्ते ॥ १६ ॥ लाभे त
समेते पापैर्विहीने शुभराशिलग्ने । वेध्यौ तु कर्णौ
तिष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु ॥ १७ ॥ शुद्धैर्द्वादशकेन्द्र
स्त्रिषष्ठायगैर्लग्ने केन्द्रगतेऽथवा सुरगुरौ दैत्येन्द्रपू
सर्वारम्भफलप्रसिद्धिरुदये राशौ च कर्तुः शुभे सम्रा
च भवनं कार्यं प्रवेशोऽपि वा ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० नक्षत्रगुणो नामाष्टनवतितमोऽध

अथ नवनवतितमोऽध्यायः ।

तिथि-करणगुणः ।

कमलजविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुज
सवितृमन्मथकलयो विश्वे च तिथिपतयः ॥ १ ॥

बृहस्पति, शुक्रवारमें संस्कार, दीक्षा, व्रत और मेखला आदि क
॥ १६ ॥ लग्नसे तीसरे और ग्यारहवें स्थानमें अशुभ ग्रह हों, रा
ग्रहके क्षेत्रमें हो, लग्न और राशिमें पापग्रह न हो, अथवा
अर्थात् धन और मीन लग्न होनेपर, पुष्य, मृगशिर, चित्रा, श
नक्षत्रमें कर्णछेदन करना चाहिये ॥ १७ ॥ लग्नसे बारहवें, केन्द्र
। ७ । १० । और अष्टम शुद्ध हो, पापग्रह तीसरे छठे और ग्या
बृहस्पति और शुक्र लग्न या केन्द्रमें हों, कर्त्ता अर्थात् कर्म
(जन्मराशि) उदित (लग्न) हो, अथवा ग्राम्य राशि (मिथुन
वृश्चिक, कुम्भ) और स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम
समस्त कार्योंका आरम्भ करनाही शुभकारी होता है और इसमें
प्रवेश शुभदायी है ॥ १८ ॥

इतिश्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमु
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामष्टनवतितमो

ब्रह्मा, विधाता, हरि, यम, शशांक, षडानन, इन्द्र, वसु, सर्प,
मन्मथ और कालि यह समस्त देवता प्रतिपदादि तिथियोंके क्रमा
॥१॥ अमावस्याके स्वामी पितृगण हैं. स्वामियोंकी संज्ञाके समा
तिथियोंमें साधन करना चाहिये वह समस्त तिथि नन्दा, भद्र

कार्याः। नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णा च तास्त्रिविधाः ॥ यत्त्र कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्त कार्यम्। करणमुहूर्ते तत् सिद्धिकरं देवतासदृशम् ॥ ३ ॥ बवबालवकौवतैतिलाख्य वणिजविष्टिसंज्ञानाम्। पतयः स्युरिन्द्रकमलजामित्रार्यमभू सयमाः ॥ ४ ॥ कृष्णचतुर्दश्यर्धाद् ध्रुवाणि शकुनिश्च नागम्। किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृषफणिमारुताः पतयः कुर्याद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि धर्मक्रिया द्विजहितानि बालवाख्ये। सम्प्रीतिमित्रवरणानि च कौलवे स्युः सौभाग्य यगृहाणि च तैतिलाख्ये ॥६॥ कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे वा ध्रुवकार्मवणिग्युतयः। नहि विष्टिकृतं विदधाति शुभं परघा षादिषु सिद्धिकरम् ॥ ७ ॥ कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मू मन्त्रास्तथा गोकार्याणि चतुष्पदे द्विजपितॄनुद्दिश्य राज्यानि नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः किंस्तुघ्ने शु ष्टपुष्टिकरणं मङ्गलयासिद्धिक्रियाः ॥ ८ ॥

इतिश्रीवराहमि० बृहत्सं० तिथिकरणगुणो नामैकोनशततमोऽध्यायः॥

और पूर्णा भेदसे तीन प्रकारकी हैं ॥ २ ॥ जिस नक्षत्रमें जो कर्म करना वह कार्य उस नक्षत्रके देवताकी तिथिमें करना उचित है और कारण या मुहू उसी देवताके समान कर्म हो तो सिद्धिकारी होता है. जैसे रोहिणी नक्षत्र प्रतिपदा तिथि ॥ ३ बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर वणिज और विष्टि कारणोंके स्वामी क्रमसे इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, भूमि, श्री और यम हैं कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके शेषार्धसे शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न या स्थिर करण हैं, यह ध्रुव अर्थात् निश्चल हैं और इनके स्वामी क्रमसे कलि. सर्प और पवन हैं ॥ ५ ॥ बव, करणमें शुभ चर स्थिर और पौष्टिककर्म चाहिये, बालव नामक करणमें धर्मक्रिया और ब्राह्मणोंके हितकारी कार्य चाहिये, कौलव करणमें भलीभांतिसे प्रीति, मित्र और समस्त वरण और नामक करणमें सौभाग्य, संश्रय और गृह संकल्पादि कार्य करने चाहिये गर करणमें खेती, बीज, गृह और आश्रय जातकार्य और वाणिज करणमें संयोग और ध्रुव कार्य करने चाहिये, विष्टि करण शुभ फल नहीं देता, परन्तु घात और विष आदि प्रयोग करनेमें सिद्धकारी होता है ॥ ७ ॥ शकुनिमें प औषधादि मूल और मंत्रोंका ग्रहण करना, चतुष्पदमें गोकार्य, द्विज और पितृ

अथ शततमोऽध्यायः ।

वैवाहिकनक्षत्र-लग्नम् ।

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघाहस्तस्वातिषु षष्ठत लिमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः । सप्ताष्टान्त्यबहिः शुभैरुडुपतावेका शद्वित्रिगे क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥ १ दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते चारानुकूले रवौ चन्द्रे चार्ककुजा शुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः । त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिति विष्टिं च रिक्तां तिथिं क्रूराहायनचैत्रपौषविरहेलग्नांशके मानुषे॥२

इतिश्रीवराह० बृहत्सं० विवाहनक्षत्रलग्ननिर्णयोनामशततमोऽध्यायः॥ १००

उद्देशसे किया राज्य करना कर्तव्य है. नागमें स्थावर, दारुण कर्म, हरण अ दुर्भाग्यजनित कर्म करने चाहिये. किंस्तुघ्नमें शुभ, इष्ट, पुष्टिकरण और मंग कार्योंकी सिद्धि करनेवाली क्रियाका उचित है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-स्तव्य--पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० नवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर, मूल, अ राधा, मघा, हस्त और स्वाती नक्षत्रमें, कन्या, तुला और मिथुन लग्न उदित हो पर, इसी लग्नके सातवें, आठवें और बारहवें भिन्न स्थानमें शुभ ग्रह बैठे हों, विवा लग्नके दूसरे तीसरे या ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा हो, पापग्रह इस लग्नके तीस ग्यारहवें, छठे आठवें स्थानमें हों और षष्ठ शुक्र और आठवेंमें मंगल न हो तो उ दिन विवाह हो सकता है ॥१॥ दंपत्ति अर्थात् वर कन्या इन दोनोंकी जन्मरा परस्पर दूसरी, नववीं और आठवीं न होनेसे अर्थात् मेलक विचारमें द्विर्द्वादश, न पंचम, वा षडष्टक मेलक न हो, दोनोंका रविवार शुक्र अर्थात् गोचरशुक्र होने चन्द्र, रवि, शनि, मंगल और शुक्रके साथ युक्त न हो, अथवा दो पापग्रहों बीचमें न होवे, व्यतिपात और वैधृति भिन्न योगमें, विष्टिभिन्न करणमें, रिक्ताभि तिथिमें, शुभ ग्रहके वारमें उत्तरायणमें, चैत्र और पौष मासके सिवाय व दूस निन्दनीय लग्नमें मनुष्यराशि (मिथुन, कन्या, तुला) का नवांश हो तो विवाह होना श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

अथैकशततमोऽध्यायः ।

नक्षत्रजातकम् ।

प्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च । कृतनि-
सत्यारुग् दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥ १ ॥ बहुभुक् परदाररः
तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः । रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियंवदः
रसुरूपश्च ॥ २ ॥ चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे
गी । शठगर्वितचण्डकृतघ्नहिंस्रः पापश्च रौद्रर्क्षे ॥ ३ ॥ दान्तः
ी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक् पिपासुश्च । अल्पेन च सन्तुष्टः
र्वसौ जायते मनुजः ॥ ४ ॥ शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी
संश्रितः पुष्ये । शठसर्वभक्षपापः कृतघ्नधूर्तश्च भौजङ्गे ॥५॥
भृत्यधनो भोगी सुरः पितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये । प्रियवाग्दाता
ेमानटनो नृपसेवको भाग्ये ॥ ६ ॥ सुभगो विद्याप्तधनो भोगी
भाग् द्वितीयफल्गुन्याम् । उत्साही धृष्टः पानपोऽघृणी तस्करो

जिस मनुष्यका जन्म अश्विनी नक्षत्रमें हो वह प्रियभूषण, सुरूपवान्, सौभाग्य,
र और मतिमान् होता है, भरणीमें जन्मनेवाला कृतनिश्चय, सत्यवादी रोगहीन
र और सुखी होता है॥१॥ कृत्तिकामें जन्म लेनेसे मनुष्य बहुत भोजन करनेवाला
ई स्त्रीमें रत, तेजस्वी, विख्यात होता है और रोहिणीमें जन्म लेनेसे सत्यवादी,
त्र, प्रिय वचन कहनेवाला, स्थित और सुन्दर होता है ॥ २ ॥ मृगशिर नक्षत्रमें
ा लेनेसे चंचल,चतुर,भीरु, दक्ष, उत्साही, धनी और भोगी होता है. आर्द्रा नक्षत्रमें
ा लेनेसे शठ, गर्वित, कृतघ्न,हिंसक और पापरत होता है ॥ ३ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें
ा मनुष्यका जन्म हो वह दमगुणयुक्त, सुखी, सुशील, दुष्टबुद्धि, रोगी, तृषासे
डित और थोडेहीमें संतोषी होता है ॥४॥ पुष्य नक्षत्रमें जन्म ग्रहण करनेसे मनुष्य
न्तवाला, सुभग, पंडित धनी और धर्ममें स्थित होता है. आश्लेषानक्षत्रमें जन्म
ण करनेसे शठ, सब कुछ खानेवाला,पापी, कृतघ्न और धूर्त होता है ॥ ५ ॥ मघा
त्रमें जन्म ग्रहण करनेसे बहुतसे सेवकवाला, बहुत धनवाला, भोगी, देव पितरका
त और महा उद्यमी होता है.पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें प्रियवादी, दाता, द्युतिमान्,भ्रम-
ारी और राजाका सेवक होता है॥६॥उत्तराफाल्गुनीमें जन्म ग्रहण करनेसे मनुष्य
ाग, विद्याधनसे आय करनेवाला,भोगी और सुखी होता है.हस्तमें जन्म ग्रहण

हस्ते ॥ ७ ॥ चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति नि
याम् । दान्तो वणिक्कृपालुः प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ ॥
ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान् वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु । आ
विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु ॥ ९ ॥ ज्येष्ठासु न बहु
सन्तुष्टो धर्मकृत प्रचुरकोपः । मूले मानी धनवान् सुखी न
स्थिरो भोगी ॥ १० ॥ इष्टानन्दकलत्रो वीरो दृढसौहृदश्च उ
देवे । वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ॥ ११ ॥ श्री
ञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः । दाताढ्यशूरग
प्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ॥ १२ ॥ स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा स
सिकः शतभिषक्षु दुर्ग्राह्यः । भद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनपटुरद
च ॥ १३ ॥ वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीया
सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरःशुचिरर्थवान् पौष्णे ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० नक्षत्रजातकं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०

करनेसे उत्साही, ढीठ, पानकारी, घृणारहित और तस्कर होता है ॥ ७ ॥ चित्रा नक्ष
जन्म लेनेवाला पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र, मालाधारी, श्रेष्ठ नेत्र और सुन्दर अंगव
होता है. स्वातीमें दान्त, वणिक्, कृपालु, प्रिय वचन कहनेवाला और धार्मिक हो
॥ ८ ॥ विशाखा नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला मनुष्य ईर्षा करनेवाला, लोभी, द्युति
वचन कहनेमें चतुर और कलहकारी होता है. अनुराधामें जन्म लेनेसे विदेशव
भूखका न सहनेवाला और भ्रमणशील होता है ॥ ९ ॥ ज्येष्ठा नक्षत्रमें जन्म
वाला सन्तुष्ट, धर्मकारी, महाक्रोधी, मित्रोंसे रहित होता है. मूल नक्षत्रमें ज
हुआ पुरुष मानी, धनवान्, सुखी, अहिंसक, स्थिर और भोगी होता है ॥ १
पूर्वाषाढा नक्षत्रमें जन्म हो तो इष्टके अनुरूप आनन्द और स्त्रीसे युक्त, वीर
स्थिर स्नेहवाला होता है और उत्तराषाढामें उत्पन्न हुआ पुरुष विनीत, धार्मि
बहुत मित्रवाला, कृतज्ञ और सुभग होता है ॥ ११ ॥ श्रवण नक्षत्रमें उत
हुआ पुरुष श्रीमान्, श्रुतवान्, उदार स्त्रीवाला, धनी, विख्यात होता है, धनि
उत्पन्न हुआ पुरुष धनका लोभी, दाता, धनवान्, शूर और गीतप्रिय होता
॥ १२ ॥ शतभिषा नक्षत्रमें जन्म हो तो स्पष्ट बोलनेवाला, व्यसनी, शत्रुघात
साहसी, दुर्ग्राह्य (दुःखसे आराधन करनेके योग्य) होता है. पूर्वाभाद्रपदामें उ
हुआ पुरुष उद्विग्न, स्त्रीजित (जिसका धन स्त्री जीत ले), दक्ष और अद
होता है ॥ १३ ॥ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ मनुष्य वक्ता (व्याख्

अथ द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

राशिविभागः ।

अश्विन्योऽथ भरण्यो बहुलपादेश्च कीर्त्यते मेषः । वृषभे
लाशेषं रोहिण्यर्धं च मृगशिरसः ॥ १ ॥ मृगशिरसोऽर्धं रा
र्वसोश्चांशकत्रयं मिथुनम् । पादश्च पुनर्वसोःसतिष्योऽश्लेषा च
टकः ॥ २ ॥ सिंहोऽथ मघा पूर्वा च फल्गुनी पाद उत्तरा
तत्परिशेषो हस्तश्चित्राद्यर्धं च कन्याख्यः ॥ ३ ॥ तौलिनि
न्त्यार्धं स्वातिः पादत्रयं विशाखायाः । अलिनि विशाखाप
थानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥ ४ ॥ मूलमषाढा पूर्वा प्रथमश्चाप
शको धन्वी । मकरस्तत्परिशेषं श्रवणः पूर्वं धनिष्ठार्धम् ।
कुम्भोऽन्त्यधनिष्ठार्धं शतभिषगंशत्रयं च पूर्वायाः । भाद्र
शेषं तथोत्तरा रेवती च झषः ॥ ६ ॥ अश्विनीपित्र्यमूलाद्य
सिंहहयादयः । विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम् ।

इति श्रीवराह० बृहत्सं० राशिप्रविभागो नामद्व्युत्तरशततमोऽध्यायः॥

देनेवाले), सुखी, संतानयुक्त, शत्रुओंको जीतनेवाला और धार्मिक होता
नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वाङ्गसुन्दर, शूर, पवित्र और धनवान् होता है

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा
पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ।

अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाके प्रथम पादसे मेषराशि, कृत्तिकाके
पाद, रोहिणी और मृगशिराके दो पाद वृष राशि है ॥ १ ॥ मृगशिराके
पाद, आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन पादसे मिथुन और पुनर्वसुके शेष एक
पुष्य और आश्लेषासे कर्क राशि कहाती है ॥ २ ॥ फिर सिंह राशि मघ
फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथम पादतक और उत्तराफाल्गुनीके
अंश हस्त और चित्राका प्रथमार्द्ध कन्या राशिके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३
चित्राका अपरार्द्ध, स्वाति और विशाखाके तीन पाद और वृश्चिकमें वि
एक पाद और अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र विराजमान है ॥ ४ ॥ मूल,
और उत्तराषाढाके प्रथम पादसे धन राशि और मकर राशि उत्तराषाढ
पाद श्रवण और धनिष्ठाका पूर्वार्द्ध है ॥ ५ ॥ धनिष्ठाका अपरार्ध शत
पूर्वाभाद्रपदाके पूर्व त्रिपादमें कुम्भराशि और पूर्वाभाद्रपदाके शेष पाद, उ
पदा और रेवतीसे मीन राशि होती है ॥ ६ ॥ (इसका संक्षेप) अश्विनी,

अथ त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ।

विवाहपटलः ।

मृतौ करोति दिनकृद्विधवां कुजश्च राहुर्विपन्नत दरिद्राम् । शुक्रःशशाङ्कतनयश्च गुरुश्च साध्वीमायुःक्ष विभावरीशः ॥ १ ॥ कुर्वन्ति भास्करशनैश्चरराहुभौ खमतुलं नियतं द्वितीये । वित्तेश्वरीमविधवां गुरुशुक्र प्रभूततनयां कुरुते शशाङ्कः ॥ २ ॥ सूर्येन्दुभौम स्तृतीये कुर्युः सदा बहुसुतां धनभागिनीं च । कः रसुतः सुभगां करोति मृत्युं ददाति नियमात् खलु ॥ ३ ॥ स्वल्पं पयःस्रवति सूर्यसुते चतुर्थे दौर्भाग्य कुरुते शशी च । राहुः सपत्न्यमपि च क्षिति दद्याद्भृगुः सुरगुरुश्चबुधश्चसौख्यम् ॥ ४ ॥ नष्ट कुजौ खलु पञ्चमस्थौ चन्द्रात्मजो बहुसुतां गुरु

मूलनक्षत्रके आदिमें ही क्रमानुसार मेष, सिंह और धन राशि आरम्भ विषम नक्षत्र अर्थात् तीसरे २ नक्षत्रकी पादवृद्धिकरके समाप्त होते हैं

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुर पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां व्यधिकशततमोऽध्या

जिस समय स्त्रियोंका विवाह होता है, उस समयकी लग्नमें सूर्य तो वह नारी विधवा होती है. लग्नमें राहु हो तो सन्तानको विपत्ति कन्या दरिद्र हो. शुक्र, बुध या बृहस्पति हो तो साध्वी और विवा हो तो आयुका क्षय होता है ॥१॥ विवाहलग्नकी दूसरी राशिमें सूर्य, मंगल हो तो निरन्तर अत्यन्त दरिद्र करता है, बृहस्पति, बुध वा पतियुक्त और धनवती होती है और विवाहलग्नके दूसरे स्थानमें च स्त्रीको अत्यन्त सन्तानवती करता है ॥ २ ॥ विवाहलग्नके तीसरे चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति होनेसे स्त्री सदा बहुत सन्तानवाली होती है. शनैश्चर दूसरे स्थानमें होनेसे सुभगा होती है और राहुके कन्याकी मृत्यु होती है ॥ ३ ॥ जो विवाहलग्नके चौथे स्थानमें श स्त्रीके स्तनोंमें साधारण दूध निकलता है. सूर्य या चन्द्रमा हों तं होती है. राहु हो तो कन्या सौतवाली होती है, मंगल हो तो अल्प बुध, बृहस्पति या शुक्र हो तो सुखी होती है ॥ ४ ॥ विवाहलग्नके

हुर्ददाति मरणं शनिरुग्ररोगं कन्याप्रसूतिमचिरात् कुरुते शशाङ्कः
५ ॥ षष्ठाश्रिताः शनिदिवाकरराहुजीवाः कुर्युः कुजश्च सुभगां
शुरेषु भक्ताम् । चन्द्रः करोति विधवामुशना दरिद्रामृद्धां शशा-
तनयः कलहप्रियां च ॥ ६ ॥ सौरारजीवबुधराहुरवीन्दुशुक्राः
र्युः प्रसह्य खलु सप्तमराशिसंस्थाः । वैधव्यबन्धनवधक्षयमर्थ-
ाशं व्याधिप्रवासमरणानि यथाक्रमेण ॥ ७ ॥ स्थानेऽष्टमे गुरु-
धौ नियतं वियोगं मृत्युं शशी भृगुसुतस्य तथैव राहुः । सूर्यः
रोत्यविधवां सरुजं महीजः सूर्यात्मजो धनवतीं पतिवल्लभां च
८ ॥ धर्मे स्थिता भृगुदिवाकरभूमिपुत्रा जीवश्च धर्मनिरतां
शिजस्त्वरोगाम् । राहुश्च सूर्यतनयश्च करोति वन्ध्यां कन्याप्र-
तिमटनं कुरुते शशाङ्कः ॥९॥ राहुर्नभस्तलगतो विधवां करोति
पे रतां दिनकरश्च शनैश्चरश्च । मृत्युं कुजोऽर्थरहितां कुलटां च
न्द्रः शेषा ग्रहा धनवतीं सुभगां च कुर्युः ॥ १० ॥ आये रवि-

रवि या मंगल हों तो उसकी सन्तान जीवित नहीं रहती. बुध, बृहस्पति, शुक्र
तो अत्यन्त पुत्रवती होती है. राहु होनेसे मृत्यु, शनिसे उग्र रोग, चन्द्र हो तो
ोको शीघ्र कन्याकी जननी करता है ॥ ५ ॥ जो विवाहकी लग्नके छठे स्थानमें
नि, रवि, राहु, बृहस्पति या मंगल हो तो सुन्दरी और श्वशुरमें भक्ति रखनेवाली
ोती है. चन्द्रमा होनेसे विधवा और शुक्र होनेसे दरिद्रा होती है और बुध छठे
थानमें हो तो स्त्री धनवती और कलहकारिणी होती है ॥ ६ ॥ विवाहलग्नके सातवें
थानमें शनि,मंगल,बुध, बृहस्पति, राहु,सूर्य, चन्द्रमा या शुक्र हो तो स्त्री ग्रहोंके क्रम
लसे विधवा, बन्धन, वध, क्षय, धननाश,व्याधि, प्रवास और मरणको पाती है ॥७॥
िवाहलग्नके आठवें स्थानमें बुध और बृहस्पति हो तो सदा पतिसे वियोग रहता
, चंद्रमा शुक्र या राहु होनेसे मृत्यु होती है, सूर्यके होनेसे स्त्री पतियुक्त होती है,
गल हो तो रोगी और शनि हो तो धनवती और पतिकी प्यारी होती है ॥ ८ ॥
ो विवाहलग्नके नववें स्थानमें शुक्र, सूर्य, मंगल या बृहस्पति हो तो वह स्त्री
ार्मिका होती है, बुध हो तो रोगरहित, राहु और शनिके होनेसे बांझ होती है,
न्द्रमा हो तो कन्याकी माता और घूमने (फिरने) वाली होती है ॥ ९ ॥ जो
ाहु किसी स्त्रीकी विवाहलग्नसे दशमें स्थानमें हो तो वह स्त्री विधवा होती है. रवि
ॏ शनि हो तो पापमें रत होती है. मंगल हो तो मृत्यु, चन्द्रमा हो तो दरिद्रा,
ुलटा और इनके अतिरिक्त जो और ग्रह दशमस्थानमें हों तो धनवती और सुभगा

बहुसुतां धनिनीं शशाङ्कः पुत्रान्वितां क्षितिसुतो रविजो
चाम् । आयुष्मतीं सुरगुरुः शशिजः समृद्धां राहुः करो
भृगुरर्थयुक्ताम् ॥ ११ ॥ अन्ते गुरुर्धनवतीं दिनकृद्दरिद्र
धनव्ययकरीं कुलटां च राहुःसाध्वीं भृगुः शशिसुतो ब
पानप्रसक्तहृदयां रविजः कुजश्च ॥ १२ ॥ गोपैर्यष्ट्याहत
पुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुल
रोग्यसौभाग्यकर्त्री । तस्मिन् काले न चर्क्षं न च तिथिक
लग्नं न योगः ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरिता
गोरजस्तु ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० विवाहपटलं नाम त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः

होती है ॥ १० ॥ जिस स्त्रीकी विवाहलग्नके ग्यारहवें सूर्य हो तो वह अत्यन्त पु
है. चन्द्रमा हो तो धनवती, मंगल हो तो पुत्रवती और शनि होवे तो धनवाल
विवाहलग्नके ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो तो आयुष्मती कन्या होवे. बुध
द्धिवती होती है. राहु हो तो पतियुक्त और शुक्रके होनेसे धनयुक्त होती है
जिस कन्याकी विवाहकालीन लग्नके बारहवें स्थानमें बृहस्पति विद्यमान
धनवाली होती है, सूर्य हो तो दरिद्रा होती है, चन्द्रमा हो तो धनकी खर्च
राहु हो तो कुलटा, शुक्र हो तो साध्वी, बुध हो तो अत्यन्त पुत्र पौ
शनि या मंगल हो तो उसका हृदय पानमें आसक्त रहता है ॥ १२ ॥ दि
भागमें जब ग्वाले लकडीसे हांकते २ गायोंको घरमें लौटा लाते हैं उस
ग्वालोंकी लकडीसे ताडित हुई गायोंके खुर करके दलित हो आकाशमार्ग
उडती है उसे गोधूलि कहते हैं. इस गोधूलिमें जिन सुन्दरियोंका विवाह
अत्यन्त धनवती, पुत्रवती आरोग्ययुक्त और सौभाग्यशालिनी होती हैं. गोध
नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, योग किसीका भी विचार नहीं किया जाता
प्रसिद्धि ऐसी है कि, गोधूलि उठकर पुरुषोंकी पापराशिका नाश करती

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादा
बादनिवासिपंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटी० त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

---

१ गोरजो धान्यधूलिश्च पुत्रस्यालिंगने रजः । विप्रपादरजो राजन् हन्ति दारु
महाभारते ।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

गोचरफलम्.

प्रायेण सूत्रेण विनाशकृतानि प्रकाशरन्ध्राणि चिर
रत्नानि शास्त्राणि च योजितानि नवैर्गुणैर्भूषयितुं क्षमाणि
प्रायेण गोचरो व्यवहार्योऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि । नान
मुखचपलत्वं क्षमन्त्वार्याः ॥ २ ॥ माण्डव्यगिरं श्रुत्वा
रोचतेऽथवा नैतम् । साध्वी तथा न पुंसां प्रिया यथा स
चपला ॥ ३ ॥ सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्य
जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ । सौम्यः

जिन प्राचीन रत्नोंके छिद्र प्रकाशित हुए हैं, जो वह भी विना सू
किये जायँ अर्थात् सुन्दर धातु आदि करके बांधे जायँ ऐसा होनेसे वह
नवीन २ गुणोंसे भूषित करनेमें समर्थ होते हैं, तैसेही प्रकाशित
शास्त्रभी विना सूत्रके निबद्ध होनेपर नये २ गुणों करके बहुधा शो
समर्थ होते हैं इस कारण ग्रहगणोंका गोचरफल अत्यन्त व्यवहृत हो
अनेक प्रकारके वृत्त (छन्द) करके उस समस्त गोचरफलको प्रकाि
अतएव आर्य पंडितगण मेरे ' मुखचपलत्व ' के प्रधान चापल्यको क्ष
इस ग्रन्थमें अनेक प्रकारके छन्द प्रकाशित करूंगा. परन्तु तिनके सू
होंगे) ॥ १ ॥ २ ॥ जिन्होंने माण्डव्य ऋषिके वाक्य सुने हैं, हमारे
अच्छे न लगेंगे, अथवा इस बातका कहनाभी उचित नहीं कारण
पुरुषोंको ' जघनचपला ' चञ्चल नितम्बवाली स्त्री प्यारी होती है
साध्वी स्त्री प्यारी नहीं होती ॥ ३ ॥ (जन्मराशि अर्थात् जन्मकालमें
राशिमें हो, उस स्थानसे गोचरका विचार करना चाहिये,) जो जन
छठे, तीसरे या दशवें स्थानमें हो, जो चन्द्रमा तीसरे, दशवें, छठे, प
स्थानमें हो, जो गुरु सातवें, नववें, दूसरे या पांचवें हो. जो शनि औ
या छठे स्थानमें हो, बुध दूसरे, चौथे, छठे, आठवें या दशवें स्थानमें हो
कोई ग्रह ग्यारहवें हो तो वह शुभदायी होते हैं और शुक्र जो सातवें,

१ इस अध्यायके मध्य (' ') इस चिह्नमें जो शब्द हों उसको छन्दका नाम
अर्थात् श्लोक उसी छन्दसे बनाया है, ऐसे लघुगुरुविन्यासयुक्त होनेपरही वह छन्द होगा
अध्यायमें नामयुक्त हैं तिनकी गति और गणोंके साथ लघुगुरुविन्यास इस अध्यायकी
जायगा।

तुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः शुक्रः सप्तमषड्
शार्दूलवत्त्रासकृत् ॥ ४ ॥ जन्मन्यायासदोऽर्कः क्षपय
कोष्ठरोगाध्वदाता चित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति च न
हृच्छुजं च । स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदाकल्य
रोगान्धत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगवि
पीडाः स्युः पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगादिजनि
हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकांश्च नुदति । अ
मस्थो जठरगदभयं दैन्यं च कुरुते रुक्कासौ चाष्टम
सुवदना नस्वापि वनिता ॥ ६ ॥ रवावापद्दैन्यं र्
चित्तचेष्टाविरोधो जयं प्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसि
जयं स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं सु
भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम् ॥ ७ ॥ शशी जन्म
यनाच्छादनकरो द्वितीये मानार्थौ ग्लपयति सविघ्न
तृतीये वस्त्रस्त्रीधननिचयसौख्यानि लभते चतुर्थेऽविश

स्थानमें हो तो 'शार्दूल' के समान (शार्दूलविक्रीडित) त्रासकारी ह
गोचरके बीच यदि जन्मराशिमें हो तो खेद, वित्तका नाश, उदररो
भ्रमण होता है. दूसरे स्थानमें सूर्य हो तो धनका नाश, असुख, धोख
होता है, तीसरे स्थानमें सूर्य हो तो स्थानकी प्राप्ति, धनसंचय, हर्ष,
शत्रुका नाश होता है. चौथे स्थानमें सूर्य हो तो रोग और 'स्रग्ध
और पृथ्वीके भोग करनेमें विघ्न करता है ॥ ५ ॥ पांचवें स्थानमें सूर्य
प्रकारके रोगोंसे और शत्रुसे पीडा होती है, छठे स्थानमें हो तो रोग
शत्रुका नाश होता है, सातवें स्थानमें हो तो मार्गभ्रमण, उदररोग औ
है, आठवें स्थानमें हो तो रोग और खांसी होती है और अपनी स्त्री
नहीं रहती अर्थात् अपनेसे मुख टेढा रखती है ॥ ६ ॥ नववें स्थान
आपत्ति, दीनता, रोग और धनकी चेष्टामें विरोध होता है, दशम स
तो अत्यन्त जय और कामकी सिद्धि होती है,ग्यारहवें स्थानमें हो तो '
(सदाचार) सुव्यवहारकी चेष्टा होती है, बारहवें स्थानमें सूर्य हो तो दु
है ॥ ७ ॥ जन्मका चन्द्रमा हो तो अन्न, उत्तम शय्या और ओढनेक
दूसरा चन्द्रमा हो तो मान और धनकी ग्लानि और विघ्न करता है,
हो तो वस्त्र, स्त्री,धनसमूह और सुखलाभ होता है, चौथा चन्द्रमा हो त

रिणि भुजङ्गेन सदृशः ॥ ८ ॥ दैन्यं व्याधिं शुचमपि शर्श
मार्गविघ्नं षष्टे वित्तं जनयति सुखं शत्रुरोगक्षयं च । या
शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं मन्दाक्रान्ते फणिनि हिमगो
भीर्न कस्य ॥ ९ ॥ नवमगृहगो बन्धोद्वेगश्रमोदररोगकृ
वने चाज्ञा कर्मप्रसिद्धिकरः सदा । उपचयसुहृत्संयोगार्थप्र
पान्त्यगो वृषभचरितान्दोषानन्ते करोति हि सव्ययान् ॥
कुजेऽभिघातः प्रथमे द्वितीये नरेन्द्रपीडा कलहारिदोषैः ।
पित्तानलरोगचौरैरुपेन्द्रवज्रप्रतिमोऽपि यः स्यात् ॥ ११
यगश्चौरकुमारकेभ्यो भौमः सकाशात् फलमादधाति ।
माज्ञां धनमौर्णिकानि धात्वाकराख्यानि किलापराणि ॥
भवति धरणिजे चतुर्थगे ज्वरजठरगदासृगुद्भवः । कुपुरुषज
सङ्गमात् प्रसभमपि करोति चाशुभम् ॥ १३ ॥ रिपुगद
यानि पञ्चमे तनयकृताश्च शुचो महीसुते । द्युतिरपि नार

मोरवाले पर्वतपर जैसे सर्पका अविश्वास है, वैसा ही अविश्वास होता है
पांचवा चन्द्रमा हो तो दीनता, व्याधि, शोक और मार्गका विघ्न उत्पन्न
छठा चन्द्रमा हो तो धन, सुख देता और शत्रु व रोगका क्षय करता
चन्द्रमा हो तो यान, मान, शयन, अशन और धनका लाभ होता है, आ
हो तो सर्पद्वारा 'मन्दाक्रांता' अर्थात् थोडे दबाये हुए सर्पसे स
होता है ॥ ९ ॥ नवम चन्द्रमा हो तो बन्धन, उद्वेग, श्रम और उदररोग
दशवाँ हो तो आज्ञा और कर्मकी सिद्धि करता है, उपान्तगत (एका
हो तो वृद्धि, मित्रके संयोगसे हुआ आनन्द और अन्तस्थित (बारहव
व्यययुक्त 'वृषभचरित' (मत्त बैलकी भांति) समस्त दोष करता है
जन्ममें मंगल हो तो उपद्रव, दूसरा हो तो क्लेश, शत्रु और दोषसे राज
जो 'उपेन्द्रवज्र' के समानभी अर्थात् बडा कठोरभी हो तो भी अत्यंत
लसे उत्पन्न हुए रोगोंसे और चोरों करके अत्यन्त पीडित होता है ॥ ११
मंगल हो तो चोर और कुमारोंसे यह सब फल होते हैं, यथा प्रदीप्ति आ
धन, ऊनवस्त्र, धातु और खानसे पैदा हुए द्रव्य व आर सब द्रव्योंका
है. यह 'उपजाति' छंद है ॥ १२ ॥ चौथा मंगल हो तो ज्वर और
असृगुद्भव (रक्तोद्भव) पीडा होती है और बलपूर्वक कुपुरुषके संगमसे

भवेत् स्थिरा शिरसि कपेरिव मालतीकृता ॥ १
लहैर्विवर्जितः सकनकविद्रुमताम्रकागमः । रिपु
किमपरवक्रविकारमीक्षते ॥ १५ ॥ कलत्रकल
कृत्व सप्तमे क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षयितवित्तमानोऽष्ट
संस्थिते परिभवार्थनाशादिभिर्विलम्बितगतिर्भवत
॥ १६ ॥ दशमगृहगते समं महीजे विविधनाप्तिरु
जनपदमुपरि स्थितश्च भुङ्क्ते वनमिव षट्चर
॥ १७ ॥ नानाव्ययैर्द्वादशगेमहीसुते सन्ताप्यतेऽन
स्त्रीकोपपित्तैश्चसनेत्रवेदनैर्योऽपीन्द्रवंशाभिजनेन
दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैर्बन्धनैः सकलहैश्च स
शशिसुते पथि गच्छन्न स्वागतेऽपि कुशलं न
परिभवो धनगते धनलब्धिः सहजगे शशिसुते
तिशत्रुभयशङ्कितचितो द्रुतपदं व्रजति दुश्चार

(अशुभ) करता है ॥ १२ ॥ पांचवां मंगल हो तो लोक
कोपसे भय और पुत्रकृत शोक प्राप्त होता है और उसकी
स्थित हुई ' मालती ' की फूलमालाके समान सदा स्थिर नह
मंगल हो तो संसारमें शत्रुभयहीन, कलहरहित होता है और
लाभ होता है और उसको क्या ' अपर-वक्त्र ' (पराये मुख
पड़ता है ? ॥ १५ ॥ सातवें मंगल पडा हो तो स्त्रीके साथ क्ले
रोग देता है, आठवां मंगल हो तो मनुष्य टपकते हुए रुधिर
खर्च करनेवाला होता है, नववां मंगल हो तो लोकमें अनादर
बलहीन देहवाला और धातुक्षय करके ' विलम्बगति ' (मन
॥ १६ ॥ दशवें मंगल हो तो मनुष्यको विविध प्रकारके
ग्यारहवें होनेसे जयकी प्राप्ति होती है और वह 'पुष्पिताग्र'(
ताग्रवनमें भ्रमरके समान ऊंचे पदपर स्थित होकर दे
॥ १७ ॥ बारहवें मंगल हो तो मनुष्य अनेक प्रकारके खर्च
अनर्थोंसे सन्तापित होता है और वह पुरुष ' इंद्रवंश ' (
उत्पन्न हुआ) का कहकर गर्वित हो और वह स्त्रीकोप,
होता है ॥ १८ ॥ जन्मस्थानमें बुध हो तो मनुष्य चुगुलखोरों करके
और कलहद्वारा सब कुछ खो देता है और मार्गमें गम
(सुखागत) विषयमें भी कुशल श्रवण नहीं कर सकता ॥ १९ ॥ द्रु

चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो धनागमो भवति च शीतरश्मिजे । सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहो निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम् ॥ २१ ॥ सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः । मृत्युस्थे सुतजयवस्त्रवित्तलाभो नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षणीयम् ॥ २२ ॥ विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुहा धनदश्च । सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद्गृहदोऽथ कुथास्तरणं च ॥ २३ ॥ धनसुखसुतयोषिन्मित्रवाह्याप्तितुष्टिस्तुहिनकिरणपुत्र लाभगे मृष्टवाक्यः । रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम् ॥ २४ ॥ जीवे जन्मन्यपगतधनधीः स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः । प्राप्यार्थेऽर्थान् व्यरिरपि कुरुते कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम् ॥ २५ ॥ स्थानभ्रंशात्कार्यविघाताच्च तृतीये नैकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे । जीवे शान्ति पीडि-

---

और धनका लाभ होता है, तीसरे स्थानमें बुध हो तो मित्रकी प्राप्ति होती है.परन्तु वह राजा और शत्रुके भयसे शंकित चित्त हो अपने बुरे चरित्रके हेतुसे 'द्रुतपद' से (शीघ्रतासे गमन) करता है ॥२०॥ बुध चौथे स्थानमें हो तो स्वजन और कुटुम्बकी वृद्धि और धनागम होता है. पांचवां बुध हो तो पुत्र और स्त्रीके साथ लडाई होती है और लोकमें 'रुचिरा' (सुन्दरी स्त्री) से भोग नहीं करता ॥ २१ ॥ बुध छठा हो तो सौभाग्य,विजय और उन्नतिको करता है. सातावां बुध हो तो अत्यन्त क्लेश और विकलता होती है,आठवां बुध हो तो सुत, जय, वस्त्र और धनका लाभ होनेके सिवाय बुद्धि 'प्रहर्षणी' (हर्ष देनेवाली) निपुणता प्राप्त होती है ॥ २२ ॥ नववां बुध हो तो विघ्नकारी, दशवां हो तो शत्रुका नाश धन और दांत (हाथीदांत) के बने हुए गृहमें चित्रकम्बलमय आस्तरण (बिछौने) से युक्त शय्यापर प्रमदायुक्त शयन-विधान करता है. यह 'दोधकछंद' है ॥ २३ ॥ ग्यारहवें बुध हो तो धन, सुख सुत, स्त्री, मित्र और वाहनकी प्राप्तिसे संतोष और शुद्धवाक्यकी प्राप्ति होती है, बारहवां बुध हो तो मनुष्य शत्रुहार और रोगसे पीडित होकर 'मालिनी' (माला धारण करनेवाली स्त्री) के संयोगका सुख नहीं भोग सकता है ॥ २४ ॥ जन्मका बृहस्पति हो तो मनुष्यकी बुद्धि और धनका नाश, स्थानभ्रष्ट और बहुतसे क्लेशोंसे क्लेशित होकर रहता है, दूसरी राशिमें गुरु हो तो मनुष्य लोकमें शत्रुहीन हो धनलाभ करता है और रमणीय भार्याके मुखपद्म अर्थात् मुखरूपी कमलमें 'भ्रमरविलसित' की (भ्रमरके तुल्य विलास) नांई विलास करता है ॥ २५ ॥ तीसरा बृहस्पति हो तो मनुष्य स्थानसे चलायमान होता है, उसके कार्योंमें विघ्न

तच्चित्तश्च स विन्देनैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥
यति च तनयभवनमुपगतः परिजनशुभसुतकरितुरग
नकपुरगृहयुवतिवसनकृन्मणिगुणनिकरकृदपि विबुधगु
न सखीवदनं तिलकोज्ज्वलं न भवनं शिखिकोवि
हरिणप्लुतशावविचित्रितं रिपुगते मनसः सुखदं
त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं धनमशनं कुसुमान्युपव
यति सप्तमराशिमुपेतो ललितपदां च गिरं धिषणा
बन्धं व्याधिं चाष्टमे शोकमुग्रं मार्गक्लेशं मृत्युतुल्य
नैपुण्याज्ञापुत्रकर्मार्थसिद्धिं धर्मे जीवः शालिनीनां
॥ ३० ॥ स्थानकल्यधनहा दशर्क्षगस्तत्प्रदो भव
गुरुः । द्वादशेऽध्वनि विलोमदुःखभाग्याति यद्या
द्धतः ॥ ३१ ॥ प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः स्मरोपक

पड़ता है, चौथे बृहस्पति हो तो मनुष्य बन्धुजनोंकरके उत्पन्न हु
क्लेशोंसे पीडितचित्त हो क्या ग्राममें क्या 'मत्तमयूर' युक्त वनमें, व
भोग नहीं कर सकता ॥२६॥ बृहस्पति पांचवां हो तो मनुष्यको
पुत्र, हस्ती, अश्व और बैलका लाभ होता है और सुवर्णयुक्त पुर,
और 'मणिगुणनिकर' (मणिके समान गुणोंको) प्राप्त करता है॥
हो तो सखीका वदन तिलकसे उज्ज्वल नहीं होता, समस्त भवन
लोंके शब्दसे शब्दायमान नहीं होते और 'हरिणप्लुत' शाव अथ
मृगछौना भी हो तो भी वह विचित्रभवन उस मनुष्यके मनमें
नहीं होता अर्थात् उसका गृह वनसा हो जाता है॥२८॥ सातवें बृह
रतिभोग, धन, भोजन, फूल, सवारी और बुद्धियुक्त 'ललितपदा'
वाक्य उत्पन्न करता है ॥२९॥ आठवां बृहस्पति हो तो उस मनु
है. व्याधि, उग्रशोक, मार्गक्लेश व मृत्युके समान रोग उसको
नवम बृहस्पति हो तो निपुणता, आज्ञा, पुत्र, कर्म, धन
'शालिनी' (सुन्दरी) का लाभ होता है ॥ ३० ॥
स्थानमें हो तो मनुष्यके स्थान, कल्याण और धनका
ग्यारहवें हो तो इन सबको देते हैं और बारहवें स्थानमें हो
'रथोद्धत' रथपरभी चढकर जाय तोभी मार्गमें उसको प्रतिकू
॥ ३१ ॥ मनुष्यकी जन्मराशिके पहले स्थानमें शुक्र हो तो

मनोज्ञगन्धकुसुमाम्बरैरुचयम् । शयनगृहासनयुतस्य चानुकु
समदविलासिनीमुखसरोजषट्चरणताम् ॥ ३२ ॥ शुक्रे द्वितीय
प्रसवार्थधान्यभूपालसन्नतिकुटुम्बहितान्यवाप्य । संसेवते कु
रत्नविभूषितश्च कामं वसन्ततिलकद्युतिमूर्द्धजोऽपि ॥३३॥ आ
र्थमानास्यपदभूतिवस्त्रशत्रुक्षयान् दैत्यगुरुस्तृतीये । धत्ते चतु
सुहृत्समाजं रुद्रेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम् ॥ ३४ ॥ जनयति
पञ्चमसंस्थो गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम् । सुतधनलब्धि मित्र
याननवसितत्वं चारिबलेषु ॥ ३५ ॥ षष्ठे भृगुः परिभवरोगता
स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमेऽशुभम् । यातोऽष्टमं भवनपरिच्छद
लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः ॥ ३६ ॥ नवमे तु धर्मवनि
सुखभाग्यभृगुजेऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत् । दशमेऽवमानकलह
यमात् प्रमिताक्षराण्यपि वदन् लभते ॥ ३७ ॥ उपान्त्यगो भ

पुष्प, वस्त्रादि कामदेवके उपकरणको बढाते हैं और शयन, गृह, आसन व
युक्त उस पुरुषको मदमाती 'विलासिनी' स्त्रियोंके मुखरूपी कमलमें भ्रमर
अनुकरण यह शुक्रग्रह करता है ॥ ३२ ॥ दूसरा शुक्र हो तो पुत्र,
धान्य, राजमान्य, कुटुम्ब और समस्त हित प्राप्त करके संसारमें 'वसन्त-ति
वसन्तकालके तिलकपुष्पकी शोभाके समान शोभायमान केशोंवाला होकर
कुसुम व रत्नोंसे भूषित हो भली भांतिसे कामदेवता सेवन करता है ॥
तीसरे स्थानमें शुक्र हो तो आज्ञा, धन, मान, सपत्ति, पुत्र, वस्त्र और शत्रुक्ष
लाभ होता है. चौथे शुक्र हो तो मित्रोंसे मिलाप और रुद्र वा 'इन्द्रवज्र'
इद्रके वज्रकी शक्ति करता है ॥ ३४ ॥ शुक्र पांचवें स्थानमें हो तो मनु
बहुत संतुष्ट करता है, बन्धुजनकी प्राप्ति, पुत्र और धनका लाभ, मित्र व सह
मिलना और शत्रुबलसे 'अनवसित' पन (असमाप्तता) करता है ॥
छठे शुक्र हों तो मनुष्यको पराभव, रोग और सन्ताप देते हैं. सातवें हो तो
हेतुसे अशुभ देते हैं और आठवें स्थानमें हो तो मनुष्यको भवन और पोशा
" और वह मनुष्य 'लक्ष्मीवती' (धनभाग्यशालिनी) स्त्रीको पाता है ॥
नववां शुक्र हो तो लोकमें धर्म और स्त्रीका सुखका भोगी होकर धन और व
प्राप्त करता है, दशवें शुक्र हों तो अपमान और कलहका नियम कहते
'प्रमिताक्षर' साधारण भाषण प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥ शुक्र ग्यारहवें
मित्र, धन, और गन्धदान करते हैं. बारहवें हो तो मनुष्यको धन

सुतः सुहृद्धनान्नगन्धदः । धनाम्बरागमोऽन्त्यगे स्थि
गमः ॥ ३८ ॥ प्रथमे रविजे विषवह्निहतः स्वजनैर्वि
न्धवधः । परदेशमुपेत्य सुहृद्भवनो विमुखार्थसुतो
॥ ३९ ॥ चारवशाद्द्वितीयगृहगे दिनकरतनये रूपसु
नुर्विगतमदबलः।अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु
वंशपत्रपतितं न बहु न च चिरम् ॥ ४० ॥ सूर्यसुते
धनानि लभते दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषाश्वकुञ्जरखरान्गृह
रव्यममितं गदव्युपरमं भीरुरपि प्रशास्त्यधिरिपूंश्च
॥४१॥चतुर्थं गृहं सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते सुहृद्वित्तभार्यादिवि
भवत्यस्य सर्वत्र चासाधुदुष्टं भुजङ्गप्रयातानुकारं च ।
सुतधनपरिहीनःपञ्चमस्थे प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे। वि
षष्ठयाते पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥ ४३ ॥ ग

वस्त्रका लाभ होता है, परन्तु 'स्थिर' हो (अधिक दिन रहे) त
नहीं होता ॥ ३८ ॥ मनुष्यके जन्मकालीन चन्द्रमाके अधिष्ठान
स्थानमें शनि स्थित हो तो वह मनुष्य विष और अग्निसे हत होता
उसका वियोग होता है, बन्धनयुक्त और वध होता है, पराये देश
साथ वास करके सुत (पुत्र) और धनमें स्पृहाहीन हो भी 'सु
कके समान होकर भ्रमण करता है ॥ ३९ ॥ शनैश्चर गातिके
दूसरे गृहमें हो तो संसारमें रूप और सुखसे हीन शरीर व मद अ
हीन होता है. यद्यपि और गुणसे वह पुरुष किसी समयमें
करता है वहभी तिस कालमें 'वंशपत्रपतित' बांसके पत्ते
जलके समान थोडे समयतक स्थित रहता है ॥ ४० ॥ श
हो तो बहुत धन, दास, परिच्छद, ऊंट, भैंस, घोडे, हाथी अ
लाभ होता है. घर, ऐश्वर्य और बहुत सुखलाभ करके
है और स्वयं डरपोक होनेपरभी शत्रुओंको 'धीरललित' (शूरचरि
करता है ॥ ४१ ॥ चौथा शनैश्चर हो तो मनुष्य मित्र, धन और
वार्जित होता है और उसका चित्त सदा असाधु दुष्ट और 'भुजङ्ग
कारी अर्थात् सांपकी चालके समान कुटिल होता है ॥ ४२ ॥ शनै
तो मनुष्य पुत्र और धनहीन और बहुतसे क्लेशसे युक्त होता है. छ
तो शत्रु और रोगहीन होकर स्त्रीके मुखमें 'श्रीपुट' अधरपान कर
शनैश्चर सातवें स्थानमें हो तो मनुष्य मार्गमें गमन करता फिरता

सप्तमे चाष्टमे च हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः। तद्वद्धर्मस्
हृद्रोगबन्धैधर्मोऽप्युच्छिद्येद्वैश्वदेवीक्रियाद्यः ॥ ४४ ॥ कर्मप्र
शमेऽर्थक्षयश्च विद्याकीर्त्योः परिहाणिश्च सौरे। तैक्ष्ण्यं लाभे
षार्थलाभा अन्ते प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥४५॥ अपि
मपेक्ष्य च पात्रं शुभकृद्विदधात्यनुरूपम्। न मघो बहुकं कु
विसृजत्यपि मेघवितानः॥४६॥ रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः कनक
कुलकुसुमैर्दिवाकरभूजौ भक्त्या पूज्याविन्दुर्धेन्वा सितकुसुम
मधुरैः सितश्च मदप्रदैः। कृष्णद्रव्यैः सौरिः सौम्यो मणिरजत
ककुसुमैर्गुरुः परिपीतकैः प्रीतैः पीडा न स्यादुच्चाद्यदि पतति
यदि वा भुजङ्गविजृंभितम् ॥ ४७ ॥ शमयोद्गतामशुभदृ

तो स्त्रीपुत्रहीन और दीनके समान चेष्टा करता है. नवमां हो तो शत्रुता,
और बन्धनसे 'वैश्वदेवी' (धर्मकार्यविशेष) आदि कार्य सम्पन्न समस्त धर्मकार्य
करता है ॥४४॥ दशवां शनि हो तो मनुष्यको कर्मकी प्राप्ति, धनक्षय और
कीर्तिकी हानि होती है. ग्यारहवां शनि हो तो मनुष्यको अत्यन्त लाभ, परस्
धनका लाभ होता है. बारहवें स्थानमें शनि हो तो शोकसागरकी 'ऊ
(तरंगें) प्राप्त होती हैं ॥४५॥ जिस प्रकार मेघसमूह वसन्तकालके समय कुडव
काठका पात्र जिसमें पावभर अन्न आ सकता है) बहुत जल वर्षण नहीं कर
तैसेही यह ग्रह (शनि) शुभकारी होनेपरभी काल और पात्रकी अपेक्षा करके
फल विधान करता है ॥४६॥ सूर्य और मंगलकी शान्तिके लिये पूजा करनी
लाल रंगके फूल, गन्ध, तांबा, सुवर्ण; वृष मौलसिरीके फूल इन सबसे भक्ति
पूजा करे गोदान श्वेत फूल, चांदी और मधुर द्रव्यसे चन्द्रमाको और श्वेत
और मदप्रद (पुष्टिकर) द्रव्य करके शुक्रकी पूजा करे. शनैश्चरको काले प
बुधको मणि, चांदी और तिलकके फूलोंसे और बृहस्पतिकी पीले द्रव्योंसे
साथ पूजा करे. जब ग्रह पूजासे प्रसन्न हो जाते हैं तब यदि ऊंचेसे गिरे
भुजङ्गविजृम्भित' (सर्पके विस्तारित ग्राससे) प्रवेश करे तो भी उस मनुष्य
नहीं होती ॥४७॥ जिस प्रकार अशुभ दृष्टिके 'उद्गता' (उपस्थित) होनेपर
और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उसको शान्त किया जाता है, वैसे ही शानि
दान, दम, गुण सुजनका भाषण, सुजनोंके समागमसे समस्त गोचरजनित

विबुधविप्रपूजया। शान्तिजपनियमदानदमैः सुजनाभिभाषणसमागमैस्तथा ॥ ४८ ॥ रविभौमौ पूर्वार्धे शशिसौरौ कथयतोऽन्त्यगौ राशेः। सदसल्लक्षणमार्या गीत्युपगीत्योर्यथासंख्यम् ॥ ४९ ॥ अदौ यादृक् सौम्यः पश्चादपि तादृशो भवति। उपगीतेर्मात्राणां गणवत्सत्सम्प्रयोगो वा ॥ ५० आर्याणामपि कुरुते विनाशमन्तर्गुरुर्विषमसंस्थः। गण इव षष्ठे दृष्टश्च सर्वं लघुतां गतो नयति ॥ ५१ ॥ अशुभनिरीक्षितः शुफलो बलिना बलवानशुफलप्रदश्च शुभदृग्विषयोपगतः।अशुभशुभावहि स्वफलयोर्व्रजतःसमतामिदमपि गीतकं च खलु नर्कुटकं च यथा ॥५२॥नीचेऽरिभेऽस्तेचारिदृष्टस्य सर्वंवृथा यत्परिकीर्तितम्। पुरतोऽन्धस्येव भामिन्याःसविलासकटाक्षनिरीक्ष-

---

नाश किया जा सकता है ॥ ४८ ॥ आर्यावृत्तके अन्तर्गत 'गीति' और 'उपगीति' नामक दो आर्या हैं जैसे आर्या लक्षणका पूर्वार्द्ध और परार्द्ध बराबर होता है, वैसे ही सूर्य, मंगल, चन्द्रमा और शनिग्रह गोचरमें राशीके पूर्वार्द्ध (राशिप्रवेश) और राशिके परार्द्धमें (राशित्यागकालमें) गोचर फल देते हैं॥४९॥ आर्यालक्षणके 'उपगीति' नामक भेदके मात्रा विन्यासका गणसंख्यान जिस प्रकार पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें समभावापन्न अर्थात् दोनों स्थानोंमें बराबर फल देता है, वैसे ही बुधग्रह राशिके पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें बराबर फल देता है ॥५०॥ आर्यावृत्तके मध्यमें मध्यगुरु गण विषम गणमें पतित हो तो वह गण जैसे आर्याछंदका नाश करता है और वह गण (मध्यगुरु गण) जो छठे स्थानमें गिरनेसे जैसे उसको सर्वलघुत्व (चारलघु) प्राप्ति कराता है, वैसेही गुरु (बृहस्पति) विषमराशिमें जानेपर 'आर्य' गणोंके बीचमेंभी नाश फैलाता है, परन्तु गणदेवताके समान, जन्म राशिका छठा स्थान बृहस्पतिसे देखा जाय या आक्रान्त हो तो मनुष्योंको सर्वलघुत्व (गौरवहीन) सबमें प्राप्ति कराता है ॥५१॥ जैसे 'नर्कुटक'[1] गीत सदाही समान है, वैसे ही जन्मकालीन अशुभ फलदायी या शुभ फलदायी ग्रह जो क्रमानुसार बलवान् शुभ ग्रह या, अशुभ ग्रहोंसे देखे जायँ तो भी वह शुभ या अशुभ होनेपरभी परस्पर बराबर (सम) फल देते हैं ॥५२॥ अन्धेके निकट कामिनीका स-'विलास' कटाक्षका देखना जैसे निष्फल होता है वैसे ही नीचस्थान, शत्रुक्षेत्र या अस्तंगत ग्रहके ऊपर जो शत्रुग्रहकी दृष्टि हो तो

---

१ संस्कृत और प्राकृतभाषामें जिस गानका वाक्य समान होता है वह नर्कुटक है.

णम्॥९३॥सूर्यसुतोऽर्कफलसमश्चन्द्रसुतश्छन्दतः समनुयाति।
स्कंधक मार्यगीतिर्वैतालीयं च मागधी गाथार्याम्॥९४॥सौरो
शिमरागात्त सविकारो लब्धवृद्धिरधिकतरम्। पित्तवदाचरति
पथ्यकृतां न तु तथार्याणाम् ॥ ९५ ॥ यादृशेन ग्रहेणेन्दुर्युत
दृग्भवेत्सोऽपि।मनोवृत्तिसमायोगाद्विकार इव वक्रस्य॥९६॥
सर्वपादेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः। यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वल्लघुतां
दुःस्थितैः॥९७॥प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्तबाह्ये व्यवस्थितः। स
गुरुतां लोके यदा स्युःसुस्थिताः ग्रहाः ॥९८॥ प्रारब्धमसुस्थि
हैर्यत् कर्मात्मविवृद्धयेऽबुधैः। विनिहन्ति तदेव कर्म तान् वै
यमिवायथाकृतम् ॥ ९९ ॥ सौस्थित्यमवेक्ष्य यो ग्रहेभ्यः
प्रक्रमणं करोति राजा। अणुनापि स पौरुषेण वृत्तस्यौपच्छ
कस्य याति पारम्॥६०॥ उपचयभवनोपयातस्य भानोर्दिने

समस्त फल वृथा होता है ॥ ९३ ॥ जैसे छन्दशास्त्रमें स्कन्धकछन्द आर्या
अनुगमन करता है वा मागधी जैसे वैतालीय छन्दका अनुसरण करता है
गाथाछन्द जैसे आर्या छन्दका अनुसरण करता है, तैसेही सूर्यका पु
सूर्यका अनुगमन करता है और चन्द्रमाका पुत्र बुध चन्द्रके अनुसार फ
है ॥ ९४ ॥ शनैश्चर सूर्यकी किरणोंके रंगके हेतु विकारयुक्त और अधिक
कर मनुष्योंके लिये पित्तके समान आचरण करता है, परन्तु 'पथ्य'
कारी आर्यलोगोंको (साधुपुरुषोंको) वैसा फल नहीं देता ॥ ९५ ॥ जैसे
वृत्तीके अनुसार 'वक्त्र' मुखका विकार होता है, वैसेही ग्रह जैसे चन्द्रम
मिलते हैं, गोचरमें तैसाही फल करते हैं ॥ ९६ ॥ 'श्लोक' के सर्व
पांचवां अक्षर और दूसरे व चौथे पादका सातवां अक्षर जैसे लघु होता है
ग्रहगण अशुभ स्थानोंमें स्थित हों तो मनुष्य लघुताको प्राप्त होता है
जो स्वभावसे ही लघु माने गये हैं, सोही जैसे वृत्तके बाहरे (पादान्तमें
प्राप्त होता है, तैसे ही ग्रहत सुस्थित हो तो मनुष्य सब जगह गुरुताको
है ॥ ९८ ॥ समस्त ग्रह अशुभ हो तो अनसमझ लोग जो कर्म अपनी
लिये आरंभ करते हैं, अयथाकृत 'वैतालीय' वेतालसम्बन्धी कार्यके स
कर्म उनकाही नाश करता है ॥ ९९ ॥ ग्रहोंका शुभ स्थानमें स्थित होन
उस कालमें जो राजा प्रक्रमण (आक्रमण) करता है, वह थोडे पौरुषव
तोभी 'औपच्छन्दासिक' (अनुरोधके सहित) व्यापारका पराया धन पाता

१ संस्कृतमें जो आर्यागीति है, प्राकृतमें वही स्कन्धका है, ऐसे ही संस्कृतमें जो वैतालीय वही मागधी है और आर्याको प्राकृतमें गाथा कहते हैं।

द्धेमताम्राश्वकाष्ठास्थिचमौर्णिकाद्रिद्रुमत्वग्नखव्यालचौरं
क्रूरराजोपसेवाभिषेकौषधक्षौमपण्यादिगोपालकांतारवैद्य
दाताभिविख्यातशूराहवश्लाघ्ययाज्याग्नि कार्याणि सिध
ते वा रवौ। शिशिरकिरणवासरे तस्यवाप्युद्गमेकेन्द्रसंस्थे
शंखमुक्ताब्जरूप्याम्बुयज्ञेक्षुभोज्याङ्गनाक्षीरसुस्निग्धवृक्ष
न्यद्रवद्रव्यविप्राश्वशीतक्रियाशृङ्गिकृष्यादिसेनाधिपाक्रं
भाग्यनक्तञ्चरश्लेष्मिकद्रव्यमातङ्गपुष्पाम्बरारम्भसिद्धिर्भ
तनयदिनेप्रसिध्यन्ति धात्वाकरादिनि सर्वाणि कार्याणि
ग्निप्रवालायुधक्रौर्यचौर्याभिघाताटवीदुर्गसेनाधिकारास्त
ष्पद्रुमारक्तमन्यच्चतिक्तकटुद्रव्यकूटाहिपाशार्जितस्वाङ्कु
क्छाक्यभिक्षुक्षपावृत्तिकौशेयशाठ्यानि सिध्यन्ति द

उपचय (त्रि, लाभ, रिपु, कर्म) में गये वा लग्नके सूर्यके दिनके
सुवर्ण, ताम्र, अश्व, काष्ठ, अस्थि, चर्म, और्णिक (पशमीना)
त्वचा, नखून, व्याल, चोर, अटवी, क्रूरकर्म, राजसेवा, अभिषेक, अं
(असलीका वस्त्र), पुण्यादिद्रव्य (खरीदने बेचनेकी वस्तु), गो
मार्ग, वैद्योचित कार्य, पाषाणकूट, सत्कुलज कर्म, विख्यात शूरका
श्लाघ्यपद (संग्राममें स्तुतिके योग्य), यज्ञ और समस्त अग्निकार्य ।
सोमवारमें चन्द्रमाका उद्गम हो तो अथवा वह केन्द्रमें स्थित हो
भूषण, शंख, मुक्ता, पद्म, चांदी, जल, यज्ञ, ईख, भोजन, अंगना,
वृक्ष, क्षुप (अखरोट आदिके वृक्ष), अनूपधान्य (जलप्रायदेश), द्र
चित कार्य, अश्वक्रिया, शीतक्रिया, शृंगिद्वारा कर्षणीय कार्य (खे
सेनापतिका कार्य, आक्रन्द, राजकार्य, सौभाग्य, निशाचरका कार्य,
वाले द्रव्य, मातंगपुष्प और वस्त्रका आरम्भ सिद्ध होता है. मंग
आकारादिका सर्व प्रकार कार्य भली भांतिसे सिद्ध होता है और
प्रवाल (मूंगा), आयुध, क्रूरपन, चोरी, उपद्रव. अटवी (वन) के
कार्य, सेनाधिकारकार्य और समस्त लाल फूलके वृक्ष व लालरंगके व
द्रव्यका कूट (मरिचादि), सर्प और फांसीसे कमाया हुआ धन है
ऐसे कुमार वैद्य शाक्य (बुद्ध) का और भिक्षुक (संन्यासी) का
वृत्ति करनेवाले, रेशमके वस्त्रके समस्त कार्य, शठता और दम्भके का
हैं. बुधकी लग्नमें या बुधके दिन हरितमणि, पृथ्वी और सुगन्धित

रेतमणिमहीसुगन्धीनि वस्त्राणि साधारणं नाटकं शास्त्रविज्ञान-
ाव्यानि सर्वाः कला युक्तयो मन्त्रधातुक्रियावादनैपुण्यपण्यव्रता
ागदूतास्तथायुष्यमायानृतस्नानह्रस्वानि दीर्घाणि मध्यानि च
छन्दतश्चण्डवृष्टिप्रपातानुकारीणि कार्याणि सिध्यन्ति सौम्यस्य
ग्रेऽह्नि वा ॥ ६१ ॥ सुरगुरुदिवसे कनकं रजतं तुरगाः करिणो
षभा भिषगोषधयः। द्विजपितृसुरकार्यपुरःस्थितधर्मनिवारणचा-
रभूषणभूपतयः। विबुधभवनधर्मसमाश्रयमङ्गलशास्त्रमनोज्ञबलप्र-
त्यगिरः। व्रतहवनधनानि च सिद्धिकराणि तथा रुचिराणि च
र्णकदण्डकवत् ॥ ६२ ॥ भृगुसुतदिवसे च चित्रवस्त्रवृष्यवेश्यका-
मनीविलासहासयौवनोपभोगरम्यभमयः। स्फटिकरजतमन्मथो-
चारवाहनेक्षुशारदप्रकारगोवणिक्कृषीवलौषधाम्बुजानि च। सवि-
सुतदिने च कारयेन्महिष्यजोष्ट्रकृष्णलोहदासवृद्धनीचकर्मपक्षि-
ौरपाक्षिकान्। च्युतविनयविशीर्णभाण्डहस्त्यपेक्षविघ्नकारणानि
ान्यथा न साधयेत् समुद्रगोऽप्यपां कणम् ॥ ६३ ॥ विपुलामपि

ार्य साधारण नाटक, विज्ञान, शास्त्र, काव्य, समस्त कला युक्ति, मंत्रकार्य धातु-
ार्य, झगडा, निपुणता, पुण्य, चण्डवृष्टिप्रपात (अर्थात् अत्यन्त वृष्टिपातका) व्रत,
ोग, दूत, आयुष्करकार्य, माया, झूंठ, स्नान, ह्रस्व, दीर्घ, छन्द और समस्त अनु-
रणकारी कार्य सिद्ध होते हैं ॥६१॥ बृहस्पतिवारको सुवर्ण, चांदी, घोडा, हाथी,
षभ, वैद्य व औषध समस्त कार्य, ब्राह्मण, पितृ, देवगण, पुरवासी, धर्म-निषेध,
ामर, भूषण और राजाके कार्य, देवालय, धर्मसमाश्रय कार्य, मंगलकारी शास्त्र,
नमाने बल, देवकार्य और सत्यवाक्य, व्रत, होम और धनसम्बन्धी रुचिके कार्य
र्णदण्डक' वर्णसे मनोहर दंडके समान अर्थात् वर्णयुक्त लकडी जैसे मनोहर होती
, तैसे यह कार्य सिद्ध होते हैं ॥६२॥ शुक्रवारको वस्त्रोंका चीतना, वीर्यकारी
ौषधियोंका बनाना, वेश्या कामिनीका विलास, हास्य यौवनके भोगनेको रमणीक
ूमि, स्फटिक और चांदीके मन्मथसम्बन्धी द्रव्य, वाहन, ईख, शारद प्रकार अर्थात्
ारदऋतुमें उत्पन्न हुए. धान्यादि, गो, वणिक, किसान, औषधि व जलसम्बन्धी कार्य
सिद्ध होते हैं. शनिवारको भैंस, छाग, ऊंट, काला लोहा, दास और वृद्धसम्बन्धी
ीच कर्म, पक्षी चोर और पाशके व्यवहारका कार्य और विनयच्युति, टूटा हुआ
ात्र, हाथीकी अपेक्षा रखनेवाले कार्य और समस्त विघ्नकारी कार्य सिद्ध होते हैं.
अन्यथा 'समुद्रग, (समुद्रभाण्ड) समुद्रमें गये हुए जलकणके समान सिद्ध नहीं
होते ॥६३॥ छन्दोंका प्रस्तार अत्यन्त 'विपुल' अर्थात् विस्तारवाला है उसमें उत्तम

बुद्धा छन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत् । श्रुतिसुख
ममाह वराहमिहिरोऽतः ॥ ६४ ॥

इतिश्रीवराह० बृ० ग्रहगोचराध्यायो नाम चतुरधिकशततमोऽध्[1]

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।

नक्षत्रपुरुषव्रतम् ।

पादौ मूलं जंघे च रोहिणी तथाश्विन्यः । ऊरू
मथ गुह्य फल्गुनीयुग्मम् ॥ १ ॥ कटिरपि च कृत्तिका पार्श्
भवंति भद्रपदाः । कुक्षिस्था रेवत्यो विज्ञेयमुरोऽनुर
पृष्ठं विधिधनिष्ठां भुजौ विशाखां स्मृतौ करौ हस्तः
पुनर्वसुराश्लेषासंज्ञिताश्च नखाः ॥ ३ ॥ ग्रीवा ज्येष्ठा श्
पुष्यो मुखं द्विजाः स्वातिः । हसितं शतभिषगथ
मृगशिरो नेत्रे ॥ ४ ॥ चित्राललाटसंस्था शिरो भरण्यः शि
नक्षत्रपुरुषकोऽयंकर्तव्योरूपमिच्छद्भिः ॥ ५ ॥ चैत्रस्य बहुल

ज्ञान अर्थात् प्रस्तार भली भांति जाना रहनेमें यह कार्य अर्थात् छन्द
हो सकता है. इसी कारण वराहमिहिरने यह श्रवणसुखकारी वृत्तसंग्रह

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरा
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुरधिकशततमो

नक्षत्रपुरुषके दोनों पांव मूल नक्षत्र, दोनों जांघ रोहिणी और
ऊरु पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा, गुह्यदेश उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफ
कृत्तिका उन पुरुषकी कमर, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वाभाद्रपदा दो
कोख और अनुराधाको छाती जानना चाहिये ॥ २ ॥ धनिष्ठाको
विशाखाको दोनों भुजा और हस्तको दोनों कर जानना चाहिये
हाथकी उँगलियें और हाथके नख आश्लेषा हैं ॥ ३ ॥ ज्येष्ठाको
श्रवण दोनों कान, पुष्य नक्षत्र मुख, स्वाति नक्षत्र दन्त, शतभिषा
मघा नासिका और मृगशिरा नेत्र हैं ॥ ४ ॥ चित्रा उनका कपाल,
और आर्द्रा उनके शिरके बाल हैं. सुंदरताके अभिलाषी मनुष्यों
नक्षत्रपुरुषको इस प्रकारसे गठन करे ॥ ५ ॥ चैत्रमासकी कृष्ण

---

[1] इतः प्रभृति ग्रन्थपरिसमाप्तिं यावदध्यायद्वयं कचिदादर्शेषु न दृश्यते टीकाकृता भ
स्वतं न वा व्याख्यातम् ।

लसंयुते चन्द्रे। उपवासःकर्तव्योविष्णुं सम्पूज्य धिष्ण्यं च॥६॥
श्राद्धते समाप्ते घृतचूर्णं सुवर्णयुतम्। विप्राय कालविदुषे सरत्न-
स्त्रं स्वशक्त्या वा॥ ७॥ अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः सहगुडैर्विप्रान्
मभ्यर्चयेद्द्यात्तेषु तथैव वस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः। पादर्क्षा-
भृति क्रमादुपवसन्नङ्गर्क्षनामस्वपि कुर्यात्केशवपूजनं स्वविधिना
ष्ण्यस्य पूजां तथा॥ ८॥ प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः क्षपाक-
स्यः सितचारुदन्तः। गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी
मरतुल्यमूर्तिः॥ ९॥ शरदमलचूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी सरोज-
लनेत्रा। रुचिरदशना सुकर्णा भ्रमरोदरसन्निभैः केशैः॥ १०॥
रकोकिलसमवाणी ताम्रोष्ठी पद्मपत्रकरचरणा। स्तनभारानत-
ध्या प्रदक्षिणावर्तया नाभ्या॥ ११॥ कदलीकाण्डनिभोरूः
श्रोणी वरकुकुन्दरा सुभगा। सुश्लिष्टांगुलिपादा भवति प्रमदा

न्द्रमा मूल नक्षत्रसे युक्त हो तब विष्णु और सब नक्षत्रोंकी पूजा करके उपवास
रना चाहिये॥ ६॥ जब व्रत समाप्त हो जाय तब अपनी शक्तिके अनुसार
मयकी विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको सुवर्णयुक्त घृतपूर्ण पात्र रत्नयुक्त वस्त्रके
थ दान करे॥ ७॥ लावण्यप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला पुरुष दूध और घृतसे
क्त अन्न और गुणको दान करके ब्राह्मणोंको पूजे और इसी प्रकारसे उनको
ांदीके वस्त्र दान करे और नक्षत्रपुरुषके पांवके नक्षत्रसे आरम्भ करके क्रमानुसार
ास २ में उपवास करके उसके अंगवाले सब नक्षत्रोंमें अपनी विधिके अनुसार
ष्णु और उस नक्षत्रकी पूजा करे॥ ८॥ इस पूजाके करनेसे मनुष्य लम्बी
ाहोंवाला, चौडा दृढ छातीवाला, चन्द्रमाके समान वदन, मनोहर श्वेत रंगके दांत,
जेन्द्रके समान चाल, कमलदलके समान बडे नेत्र और कामदेवके समान मूर्ति
ारण करके स्त्रीके चित्तको हरण कर सकता है॥ ९॥ स्त्रियां इस व्रतको करें तो
ारत्कालके निर्मल पूर्ण चन्द्रमाकी द्युतिके समान द्युतिमान् मुख, कमलदलके
मान बडे नेत्रवाली, सुन्दर दांत, शोभायमान कर्ण, मस्तकपर भ्रमरके उदरके
मान काले केशवाली॥ १०॥ नरकोकिलके समान मीठीवाणी बोलनेवाली
ांबेके समान अधरोंकी लालीसे युक्त, कमलपत्रके समान कोमल हाथवाली,
ऐसेही पांवोंसे युक्त, स्तनोंके बोझसे कुछएक मध्यमें झुकी हुई, गहरी और गोल
नाभिवाली॥ ११॥ केलेके खंभके समान ऊरुवाली, सुन्दर नितम्बवाली, नित-
म्बके सुन्दर कूप हैं जिसके सुभग और सुश्लिष्ट उंगलियोंदार जिसके पांव होते
हैं॥ १२॥ जितने दिनतक नक्षत्रमाला अपनी दीप्तिसे इस लोकको शोभायमान

मनुष्यो वा ॥ १२ ॥ यावन्नक्षत्रमाला विचरति गगने भू
भासा तावन्नक्षत्रभूतो विचरति सह तैर्ब्रह्मणोऽह्नोऽवशेषम् ।
चक्रवर्ती भवति हि मतिमांस्तत्क्षणाच्चापि भूयः संसारे ज
भवति नरपतिर्ब्राह्मणो वा धनाढ्यः ॥ १३ ॥ मृगशीर्षाद्य
वनारायणमाधवाः सगोविन्दाः । विष्णुमधुसूदनाख्यौ ि
वामनश्चैव ॥ १४ ॥ श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च
भश्च । दामोदर इत्येते मासाः प्रोक्ता यथासंख्यम् ॥ १५
नाम समुपोषितो नरो द्वादशीषु विधिवत् प्रकीर्तयन्
समभिपूज्य तत्पदं याति यत्र नहि जन्मजं भयम् ॥ १

इति श्रीवराहमिहिरकृता० बृहत्संहितायां नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः ।

उपसंहारः ।

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाथ मया ।
स्यालोककरः शास्त्रशशाङ्कः समुत्क्षिप्तः ॥ १ ॥ पूर्वाचा
नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम् । तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं

करती हुई आकाशमें विचरण करती है, वह उतने दिनतक अर्थात् कल्प
तक नक्षत्र होकर इस व्रतका करनेवाला पुरुष आकाशमें विचरण करता
मतिमान् दूसरे कल्पके आरम्भमें चक्रवर्ती राजा होता है ॥ १३ ॥ मृ
(अगहन आदि) समस्त मासोंमें क्रमानुसार केशव, नारायण, माधव,
विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन ॥ १४ ॥ श्रीधर, हृषीकेश, पद्मन
दामोदर इन समस्त नामोंसे विष्णुजीकी पूजा करे ॥ १५ ॥ जो मनुष्य
दिन विधिवत् उपवास करके महीनेके नामका (जिस मासमें विष्णुजं
नाम हो) कीर्त्तन करते २ केशवकी पूजा करे तो वह उनका पद (के
को प्राप्त होता है. उस पदके प्राप्त कर लेनेसे फिर जन्मनेका भय नहीं रहता

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादव
पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।

मैंने बुद्धिरूप मंदरपर्वतद्वारा ज्योतिषशास्त्ररूप समुद्रको भली भाँतिसे म
संसारमें प्रकाश करनेवाला शास्त्ररूपी चन्द्रमा निकाला है ॥ १ ॥ मैंने इ

सुजनाः॥२॥अथवा भृशमाप सुजनः प्रथयतिदोषार्णवाद्गुणं
नीचस्तद्विपरीतः प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम् ॥३॥ दुर्जनहुत
काव्यसुवर्णविशुद्धमायाति। श्रावयितव्यं तस्माद्दुष्टजनस्य प्र
॥४॥ ग्रन्थस्य यत् प्रचरतोऽस्य विनाशमेति लेख्याद्बहुश्रुतसु
गमक्रमेण। यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा कार्यं तदत्र
परिहृत्य रागम्॥५॥ दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसा
नेदम्। शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः॥६॥इत्युपसं

शास्त्रोपनयः पूर्वं सांवत्सरसूत्रमर्कचारश्च। शशिराहुभौ
गुरुसितमन्दशिखिग्रहाणां च ॥ १ ॥ चारश्चागस्त्यमुनेः
णांच कूर्मयोगश्च। नक्षत्राणांव्यूहोग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च
ग्रहशशियोगः सम्यग्गृहवर्षफलं ग्रहाणां चाशृंगाटसंहि
मेघानां गर्भधारणं चैव ॥ २ ॥ धारणवर्षणरोहिणिवायव्य
भाद्रपदयोगाः। क्षणवृष्टिःकुसुमलताःसन्ध्याचिह्नं दिशां दा

बनानेमें पूर्वकालीन आचार्यलोगोंके ग्रंथोंको छोडा नहीं है, वरन ज्योति
सब शास्त्रोंको देखकर यह ग्रंथ बनाया है, हे सुजनगण ! इच्छाके साथ श
यत्न प्रगट कीजिये ॥२॥ या सुजन पुरुष तो दोषरूप समुद्रमें साधारणस
देखते हैं तो उसकी अत्यन्त सुख्याति करते हैं, परंतु नीच आदमियोंका
इससे विपरीत है, यही साधु और असाधुके स्वभावका लक्षण है ॥ ३ ॥
सुवर्ण दुर्जनरूप अग्निसे तपाये जानेपर ही शुद्धिको प्राप्त होता है, इसी
यह ग्रंथ यत्नके साथ दुर्जन मनुष्योंको श्रवण कराना उचित है ॥४॥ इस
न्मुख ग्रंथमें लिखनेके दोषसे जो अंग रह जाय सो पढे हुएके मुखसे भ
जानकर शुद्ध कर लें अथवा इस ग्रंथमें मैंने जो सामान्यभी कुकृत (प्रमाद
हुआ भ्रम) किया है, हे विद्वद्वर्ग ! तिसपर कुछ ध्यान न देकर इस ग्रंथमें
प्रगट कीजिये ॥ ५ ॥ सूर्यभगवान्, मुनिगण और गुरुजीके चरणोंमें प्रण
प्रसन्नमतिवाला होकर मैंने इस शास्त्रका संग्रह किया है. इस समय (अब
चार्योंको नमस्कार करता हू ॥ ६ ॥ इति उपसंहार ।

पहले शास्त्रोपनयन, फिर संवत्सरसूत्र, सूर्य, चन्द्र, राहु, मंगल, बुध, इ
और केतु इन ग्रहोंका चार (भ्रमण), अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मयो
त्रोंको व्यूह, ग्रहभक्ति, ग्रहविमर्दन, ग्रहशशियोग, ग्रहवर्षफल, गृहशृङ्गाटक
गर्भ, गर्भधारण, वर्षण, रोहिणी, स्वाती, आषाढी और भाद्रपदयोग,
कुसुमलता, सन्ध्या, दिग्दाह, भूमिका कांपना, उल्का और परिवेषके लक्षण,

भूकम्पोल्कापरिवेषलक्षणं शक्रचापखपुरं च । प्रतिसूर्यौ
सस्यद्रव्यार्घकाण्डं च ॥ ५ ॥ इन्द्रध्वजनीराजनखञ्जनको
र्हिचित्रं च । पुष्याभिषेकपट्टप्रमाणमसिलक्षणं वास्तु ॥ ६
कार्गलमारामिकममरालयलक्षणं कुशिललेपः । प्रतिमा व
सुरभवनानां प्रतिष्ठा च ॥ ७ ॥ चिह्नं गवामथ शुनां कुक्कु
जपुरुषचिह्नं च । पञ्चमनुष्यविभागः स्त्रीचिह्नं वस्त्रविच्छेदः ।
चामरदण्डपरीक्षा स्त्रीस्तोत्रंचापि सुभगकरणं च । कान्दर्पिका
नपुंस्त्रीकाध्यायशयनविधिः ॥ ९ ॥ वज्रपरीक्षा मौक्तिकलक्ष
पद्मरागमरकतयोः । दीपस्य लक्षणं दन्तधावनं शाकुनं
॥ १० ॥ अन्तरचक्रं विरुतं श्वचेष्टितं विरुतमथ शिवा
चरितं मृगाश्वकरिणां वायसविद्योत्तरं च ततः ॥ ११ ॥ पाके
त्रगुणास्तिथिकरणगुणाःसधिष्ण्यजन्मगुणाः । गोचरस्तथा
कथितो नक्षत्रपुरुषश्च ॥ १२ ॥ शतमिदमध्यायानामनुपरि
क्रमादनुक्रान्तम् । अथ श्लोकसहस्राण्याबद्धा न्यूनचत्वारि
इति ग्रंथानुक्रमणिका ॥ इति श्रीवराहमि०बृहत्सं०उपसंहारे
षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ इति वाराहीसं० सम

गन्धर्वनगर, प्रतिसूर्य, निर्घात, सस्यकाण्ड, द्रव्यकाण्ड, अर्घकाण्ड, इ
नीराजन, खञ्जनलक्षण, उत्पात, मयूरचित्रक, पुष्पाभिषेक, पट्टप्रमाण, अ
वास्तुलक्षण, उदकार्गल, आराम, देवालयलक्षण, वज्रलेप, प्रतिमालक्षण, व
देवता और देवालयोंकी प्रतिष्ठा, गौ, कुत्ते, कछुए, बकरे, पुरुष, पंचम
स्त्रीवस्त्रच्छेद, चामरदंड और भद्रका लक्षण, स्त्रीप्रशंसा, सुभगकरण, का
अनुलेपन, स्त्री और पुरुषसंयोग, शय्यालक्षण, वज्रपरीक्षा, मौक्तिकलक्षण,
लक्षण, मरकतलक्षण, दीपलक्षण, दन्तधावन, शाकुनमिश्रण, अन्तरचक्र,
विरुत, कुक्कुटचेष्टित, मृगचरित, अश्वचरित, हस्तिचरित, वायसविद्या, उत्त
पाक, नक्षत्रगुण, तिथि और करणगुण, नक्षत्रजातक, ग्रहोंका गोचरफ
नक्षत्र-पुरुषव्रत यह सब विषय इसमें कहे गये हैं. इस ग्रन्थमें एक शत अ
जो परिपाटीके क्रमसे लिखे हैं, सब अध्यायोंमें क्रमसे सर्व समेत (प्रायः
कम हजार श्लोक लिखे हैं. [वातचक्र रजोलक्षण आदि इस प्रकार छः अ
अनुक्रमणिकाके हैं सो उपरोक्त हिसाबमें नहीं लगाये हैं]॥ १-१३॥इतिग्रंथानुक्र

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाब
-स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांषडधिकशततमोऽध्यायः

इति भाषाटीकासहिता वाराहीसंहिता समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

पौषमास पावन परम, दिवसनाथको वार ।
शुक्ला सुभग त्रयोदशी, तिथि जानो निरधार ॥ १
उन्नीससौ बावन वरष, विक्रमसंवत मान ।
कियो ग्रंथ भाषा ललित, अपनावहु जन जान ॥
सब शुभदायक श्रेष्ठ अति, सेठ शिरोमणि धीर ।
अति उदार अनुपम चरित, जपत सदा रघुवीर ॥
कृष्णदास-सुत वैश्यवर, गंगाविष्णु महान ।
तिन आज्ञासों हौं करी, टीका अतिसुखदान ॥ ४
सर्व सत्व या ग्रंथके, दिये यंत्रपति हाथ ।
याहि कोउ छापै नहीं, कहुं नाय निज माथ ॥ ५
गौरीपति गिरिजासुवन, चरणकमल हिय लाय ।
कृष्णप्रफुल्ल वदन पदम, वार वार शिर नाय ॥ ६
विनवत हौं गुनियन निकट, अजहुँ बहोरि बहोरि
भूल चूक होइ हैं बहुत, दीजो मोहिं न खोरि ॥ ७
पितु माताको नाय शिर, ज्येष्ठ भ्रात शिर नाय ।
विनय यही मो दासकी, सुरति बिसर जिन जाय
दीनदयालपुरा शुभग, नगर मुरादाबाद ।
वसत रामगंगा निकट, हौं बलदेव प्रसाद ॥ ९ ॥

१०४ अध्यायका परिशिष्ट ।

छन्दोविज्ञान.

भली भांतिसे लघुगुरुविन्यास करनेका नाम छन्द है । छंद दो प्रकार और पद्य । जिसके चार चरण हों वह पद्य और इससे भिन्न गद्य है । जाति नामक दो प्रकारके पद्य हैं । जिसमें अक्षरोंकी संख्या नियत हो और जो मात्रासे घटित हो वह जाति है । वृत्त तीन प्रकारके हैं—सम, अर्धसम । जिसके चारों चरणोंमें बराबर अक्षर हों, वही समवृत्त है, जिस और तीसरा चरण और दूसरा व चौथा चरण समान हो, वही अर्द्धसम जिसके चारों चरण अलग २ हों उसको ही विषमवृत्त कहते हैं ।

गुरु-आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः यह वर्ण हैं; इन और संयुक्त वर्णका पूर्ववर्ण गुरु और पादान्त वर्ण विकल्पसे गुरु

लघु-गुरुभिन्न वर्ण ही लघु वा ह्रस्व है ।

यति-जीभका विश्राम अर्थात् थामनेका-स्थान यति है ।

मात्रा-ह्रस्वर्ण एकमात्र, गुरुवर्ण द्विमात्र और प्लुतवर्ण त्रिमात्र

गण-वृत्तमें जो गण होता है सो तीन २ वर्णोंमें होता है, ज होता है सो चार २ मात्राका होता है । यथा,-तीन गुरुसे मगण नगण होता है । भ-आदिगुरु; य-आदिलघु, ज-मध्यगुरु, र-मध्य गुरु, त-अन्त्यलघु, ग-एकगुरु और ल-एक लघु । हम गुरु चि लघु चिह्न (१) देकर बतावेंगे ।

यथा,-म २२२; न-१११-; भ २११; य-१२२; ज-१२१; ११२; त-२२१, ग-२ और ल-१ ।

इन गणोंमें म, स, ज, भ यह चार अर्थात् सर्वगुरु, अन्त्यगुरु, आदिगुरु, यह चार हैं । और सर्वलघु = सर्वसमेत यह पांच आते हैं । परन्तु पहले जैसे प्रत्येक गण ३ अक्षरोंसे हुआ है, सो होगा, बस इतनाही भेद है । तिनके चिह्न क्रमानुसार यथा-

(मात्रावृत्त होनेसे) (२२) (११२) (१२१) (२११)

ग्रन्थकारने क्रमशःजो छन्द लिखे हैं श्लोकांक देकर अब उनके लक्ष

२-३ । इस अध्यायमें-पहले छन्दका नाम कहनेमें ग्रन्थकार क्षमन्त्वार्याः" यह कहकर 'मुखचपला' आर्याका नाम लिखा पहले आर्याके लक्षणही कहे जाते हैं ।

आर्या-जिस छन्दमें सब ५७ मात्रा अर्थात् १४। सवा चौदह ग है । तिसके प्रथमार्द्धमें ३० मात्रा (७॥ गण) हों और द्वितीयार्द्ध परन्तु साढे सात गण हों । (इस गणके गिननेसे द्वितीयार्द्धका छ अर्थात् एकलघुही षष्ठ गण होगा) ।

आर्यामें अयुग्मगण १ । ३ । ५ । ७ मध्यगुरु (ज) नहीं इच्छाके अनुसार होंगे, परंतु प्रथमार्द्धमें, छठा गण (ज) मध्यगु सर्व लघु हो सकता है ।

आर्याके नौ भेद हैं । १ पथ्या, २ विपुला, ३ चपला, ४ मुख चपला, ६ गीति, ७ उपगीति, ८ उद्गीति, ९ आर्यागीति ।

पथ्या-जिसके प्रथमार्द्ध और द्वितीयार्द्धके मध्य ३ गणोंमें पाद हो वही पथ्या है ।

विपुला-जिसके मध्य तीन गणोंमें पाद हो और यति न हो वही विपुला है।

चपला-जिसके दोनों अर्द्धोंमें द्वितीय और चतुर्थगण (ज) गुरु मध्यमें हो ही चपला है।

मुखचपला-चपलाके लक्षणसे युक्त प्रथमार्द्ध होनेसे मुखचपला आर्या होती है।

जघनचपला-दूसरा अर्द्ध चपलाके लक्षणसे युक्त होनेपर जघनचपला आर्या ोती है।

गीति-आर्याके आधे अर्द्धके तुल्य द्वितीयार्द्ध होनेसे गीति आर्या होती है।

उपगीति-आर्याके अंतार्द्धके तुल्य प्रथमार्द्ध होनेसे उपगीति होती है।

उद्गीति-जिस आर्याका द्वितीयार्द्धके तुल्य प्रथमार्द्ध और प्रथमार्द्धके तुल्य तीयार्द्ध हो अर्थात् प्रथमार्द्धमें २७ मात्रा और द्वितीयार्द्धमें ३० मात्रा होती उद्गीति है।

आर्यागीति-जिसके पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें आठवाँ गण चतुर्मात्र होता अर्थात् ३२ मात्रा करके ६४ मात्रामें पूर्ण हो सो ही आर्यागीति है।

४ शार्दूलविक्रीडित,-म स ज स त त ग-१२, ७ यति । २ २ २, १ १ २, २ १, १ १ २, २ २ १, २ २ १, २।

५ स्रग्धरा;-म र भ न य य य-७, ७, ७ यति।

६ सुवदना, भ र भ न य भ ल ग--७, ७, ६ यति।

७ सुवृत्ता वा मेघविस्फूर्जिता,-य म न स र र ग, ६, ६, ७ यति।

८ शिखरिणी,-य म न स भ ल ग-६, ११ यति।

९ मन्दाक्रांता,-म भ न त त ग ग-६, ७ यति।

१० वृषभचरित वा हरिणी,-न स म र स ल ग-६, ४, ७ यति।

११; १२ उपेन्द्रवज्रा,-ज त ज ग ग।

१३ प्रसभ,-न न र ल ग-इसका दूसरा नाम भद्रिका है।

१४ मालती,-न ज ज र।

१५ अपरवक्त्र,-१। ३ चरणमें-न न र ल ग, २। ४ पादमें न ज ज र।

१६ विलम्बितगति,-ज स ज स य ल ग-८, ९ यति। इसका दूसरा नाम पृथ्वी है।

७ पुष्पिताग्रा,-१ पादमें न न र ज, २। ४ पादमें न ज ज र ग।

८ इंद्रवंशा,-त त ज र।

९ स्वागता,-र न भ ग ग।

० द्रुतपद,-न भ भ र। इसका दूसरा नाम द्रुतविलम्बित है।

२१ रुचिरा,–ज भ स ज ग–४, ९ यति ।

२२ प्रहर्षिणी,–म न ज र त–३, १० यति ।

२३ दोधक,–भ भ भ ग ग ।

२४ मालिनी,–न न म य य–८, ७ यति

२५ भ्रमरविलसित,–म ग न न ग ।

२६ मत्तमयूर,–म त य स ग–४, ९ यति ।

२७ मणिगुणनिकर,–न न न न न–८, ७ यति ।

२८ हरिणप्लुता,–यह द्रुतविलम्बितके समान है. परन्तु चरणका सबसे पहला अक्षर हीन होना चाहिये ।

२९ ललितपदा,–न ज ज य । इसका दूसरा नाम तामरस

३० शालिनी,–म त त ग–४, ७ यति ।

३१ रथोद्धता,–र न र ल ग ।

३२ विलासिनी,–न ज भ ज ल ग ।

३३ वसन्ततिलक,–त भ ज ज ग ग–कालिदासके मतसे ।

३४ अनवसित–न य भ ग ग ।

३५ लक्ष्मीवती,–त भ स ज ग ।

३६ प्रमिताक्षरा–स ज स स ।

३७ स्थिर,–ज ल ग । इसका दूसरा नाम प्रमाणिका है ।

३८ तोटक,–स स स स. । कालिदासके मतसे ९ । ३ यति

३९ वंशपत्रपतित,–भ र न भ न ल ग–१०, ७ यति ।

४० धीरललित,–भ र न र न ग ।

४१ भुजङ्गप्रयात,–य य य य ।

४२ श्रीपुट,–न न म य–८, ४ यति ।

४३ वैश्वदेवी,–म म य य–५, ७ यति ।

४४ ऊर्मिमाला,–भ भ त ग ग । इसका दूसरा नाम वातोर्मि

४५ मेघवितान,–स स स ग ।

४६ भुजङ्गविजृम्भित,–म म त न न न र स ल ग–८, १

४७ उद्गता,–प्रथम पादमें स ज स ल, दूसरे पादमें न स भ न ज ल ग, चतुर्थ पादमें–स ज स ज ग । (यही विषमवृ

५२ नर्कुटक,–न ज भ ज ज ल ग–७, १० यति । दू

५३ विलास–उपजाति,–अलौकिक प्रयोग । जिसके च छन्द नहीं होता सोही उपजाति है ।

५६ वक्त्र,-जिसके प्रत्येक चरणमें आठ अक्षर हों, आदिके अक्षरसे लेकर नगण और सगण न हों और अक्षरके पीछे यगण हो, और (अक्षरका नियम नहीं) सोही वक्त्र है।

५९ वैतालीय,-यही मात्रावृत्त है। जिसके प्रथम और तीसरे पादमें १४ चौदह मात्रा और द्वितीय और चतुर्थ पादमें १६ मात्रा होती हैं, यही वैतालीय है। परन्तु इसमें विशेषता यह है कि इसकी मात्रामें केवल लघु या केवल गुरु होकर मिश्र होंगी और समस्त युग्म मात्रा पराश्रिता नहीं होंगी, अर्थात् ३।५।७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण होकर पूर्वमात्राकी गुरु न करेंगी और इसके चरणके पीछे लघु और गगण अवश्य ही रखना चाहिये।

६० औपच्छन्दसिक;-वैतालीय छन्दके पीछे एक अधिक गुरुवर्ण लगा देनेसे औपच्छन्दासिक नामक वृत्त होता है

६१ चण्डवृष्टिप्रयात, (दण्डकभेद) २७ अक्षरका रहना दंडकका साधारण नियम है, तिसमें दो नगण और उसके पीछे सात रगण होतें हैं। इस प्रकार गण रखनेके पीछे इच्छाके अनुसार रगण रखनेसे भी चण्डवृष्टिप्रयात दंडक होगा इसमें कितने अक्षर हों, इसका कोई नियम नहीं है (इस श्लोकके प्रत्येक चरणमें १०२ अक्षर हैं। दंडक एक प्रकारका इच्छानुसारी छन्द है।

६२ वर्णदंडका,-न न भ भ भ भ भ भ भ ग।

६३ समुद्रदण्डक,-न न र ज र ज र ज र ज र ल ग।

अब छन्दोविचिति अर्थात् प्रस्तारका विषय संक्षेपसे कहा जाता है।

प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्व्यादिलगाक्रिया, संख्या और अध्वयोग, यह छः छन्दकी मूल हैं।

१ प्रस्तार-क्रमानुसार लघु और गुरु वर्णके विन्याससे छन्दवृद्धि करनेका नाम प्रस्तार है अर्थात् यह बतलाना कि प्रति चरणमें कितने अक्षर हों, किंतु लघुगुरुके रखनेसे उतने अक्षरोंका चरण छन्द कितने प्रकारका हो सकता है, यह ज्ञान जिससे होके हो उसका ही नाम प्रस्तार है।

उसका नियम यह है कि चरणमें जितने अक्षर हों पहले उतने ही गुरु चिह्न लिखे २ हों। तदुपरान्त पहले जो गुरु हो, तिसके नीचे एक लघुचिह्न रक्खे और उपर गुरु वा लघु जिसके पीछे जो है, सबको ठीक वैसेही रक्खे। फिर उससे नीचेकी पंक्तिमें एक लघु चिह्न दे, फिर ऊपरके समान चिह्न देने चाहिये। ऐसे ही दिये हुए लघु चिह्नके पहले वर्ण न हो (जिसके नीचे चिह्न हो उसके पहले) जितने गुरु चिह्न ऊपरके भागमें थे, उतने गुरुचिह्न देने चाहिये। इसके उपरांत फिर

प्रथम गुरुके नीचे ऐसे ही लघुचिन्ह देकर ऐसे ही परवर्ती चिन्ह
जबतक समस्त लघुचिन्ह न रक्खे जाँय, तबतक इसी प्रकार
तदुपरांत जितने प्रकार हुए हैं, उतनेही भेद होंगे । यथा;-

त्र्यक्षरपाद-छंद तीन गुरुचिन्ह ·२२२। इसके पहले गुरुके
देकर पादको उचित रीतिसे सब चिन्ह लगाओ । १२२ । इ
(२ के) नीचे एक लघु रखकर पीछेके ऊपरके समान स्थाप
प्रथम स्थान खाली है, इसके लिये उसके स्थानमें एक गुरु र
प्रकारके सर्व लघुचिह्न होनेतक साधन करो । यथा :-

१ म-२२२-म गण
२ य-१२२-य गण
३ य-२१२- र गण
४ थं-११२-स गण
५ म-२२१-त गण
६ ष्ठ-१२१-ज गण
७ म-२११-भ गण
८ म-१११-न गण

इस प्रकार प्रस्तार काटकर छंदभेद जानना हो तो भूल
सम्भावना है, उसका सहज उपाय यह है कि जितने अक्षरवाल
प्रथम अक्षरसे उत्तरोत्तर दूने २ अंक उसके ऊपर रक्खे, उस
दूना करनेसे जो हो उतने प्रकारके भेद हों । यथा,-त्र्यक्षर
अंक चार है । इसको दूना करनेसे आठ हुए कारण त्र्यक्षरवृ
भेद होंगे । परन्तु कितने गुरु वा लघुयुक्त कितने भेद होंगे, य
भास्कराचार्यकृत लीलावतीके " एकाद्येकोत्तरा अंका व्यस्ता भ
इत्यादि नियमके अनुसार अंक करके जाने । अत्यंत विस्तार
स्तका यहाँपर वर्णन नहीं किया । और मेरु, खण्डमेरु वा पता
ज्ञान होता है, किंतु-सो भी अत्यन्त विस्तृत है, इस कारण ना

२ नष्ट-जो कोई पूछे कि इतने अक्षरयुक्त चरण छन्दके इत
किस प्रकार लघुगुरु विशिष्ट हुए, जिसके द्वारा उसका उत्तर ज
नष्ट है ।

इसका नियम यथा,--जितनी संख्या कहे, वह अंक सम २
१० इत्यादि हो, तो प्रथम एक लघुचिन्ह रक्खे । फिर इस
वह भी सम हो तो फिर लघु, तिसके आधे अंक सम हों तो भ

विषम अर्थात् १।३।५।७ इत्यादि हों तो गुरुचिह्न रक्खें। फिर इन विषम अंकमें १ योग मिलाकर उसका आधा करे, वहभी जो विषम हो तो गुरु, और सम हो तो लघुचिह्न रक्खे। जबतक चरणके परिणामके अक्षर पूर्ण न हों, तबतकही ऐसा करे.

यथा,–त्र्यक्षरावृत्तिकी ४ र्थ संख्या कैसी है, इस समय ४ सम अंक, इसलिये लघु, चारके आधे २ यहभी सम है, और एक लघु है। दोका आधा १ यह विषम है। बस १ गुरु हुआ। इस प्रकार १ १ २ यह हुआ। यही त्र्यक्षरावृत्तिका चौथा भेद है और जो कोई कहे कि सातवां किस प्रकारका है ? तब ७ अयुग्म, इस कारण एक गुरु; उसमें १ मिलानेसे ८ होते हैं, उसका आधा ४ सम हुआ, इस लिये १ लघु, उसका आधा दो सम हुआ, इस कारण और एक लघु, यह सातवां भेद हुआ–२११.

उद्दिष्ट–जो कोई कहे कि इस प्रकार लघुगुरुयुक्त चरण इतने संख्याके अक्षरयुक्त चरणछन्दके कितने भेद हैं ? जिसके द्वारा वह संख्या जानी जाती है सोही उद्दिष्ट है। इसका नियम यही है उस छन्दके चरणमें जितने अक्षर हैं, उसके ऊपरही उत्तरोत्तर दूने २ अंक रक्खे। उसके उपरान्त उन नीचेके समस्त लघु चिह्नोंके ऊपर जितने अंक हैं सबको जोडे। फिर उस समष्टिमें एक मिलाकर जो कुछ हो उस छन्दके उतने संख्याके प्रस्तारमें ऐसे लघुगुरुचिह्न मिलेंगे।

यथा–त्र्यक्षरावृत्ति १ १ २ इस प्रकारके छन्दका कितना प्रस्तार है ? इसके प्रथमसे लेकर दुगुने अंक १ २ ४ इत्यादि रक्खे। फिर पहले दो लघुके ऊपरवाले अंकोंके जोडनेसे ३ होते हैं, उसमें एक मिलानेसे ४ होते हैं इसलिये जाना गया कि, वह त्र्यक्षरावृत्तिका ४ र्थ भेद है, इत्यादि।

एकद्व्यादिलगक्रिया, संख्या और अध्वयोग और मात्राप्रस्तार, मात्रामेरु, मेरु, खण्डमेरु और पताका आदि छन्दःशास्त्रका विचित्रतायुक्त वृत्तान्त समझना हो तो समस्त छन्दःशास्त्रका अनुवाद करना पडे और इस अनुवादकी वेदपाठियोंको अत्यन्त आवश्यकता है, सर्व साधारणको विशेष आवश्यकता नहीं। बस यह समझकर और विस्तारके भयसे यहांपर अधिक लिखना उचित नहीं समझा।

—बलदेवप्रसाद मिश्र.

॥ श्रीः ॥

नवीन संस्करण



शास्त्रामृत पिपासुओ !

भारतवर्षके समस्त शास्त्रोंमें ज्योतिषशास्त्र बड़ा अत्यद्भुत श
के आधारपर अखिल संसारके विद्वान् भूत भविष्य और वर्तमा
दूसरे शब्दोंमें हम यह भी कह सकते हैं कि, संस्कृत साहित्य भंड
एक ऐसा अनुपम जाज्वल्यमान हीरा है कि, जिसके प्रकाशमें ह
महर्षियोंने तपोवनोंके पावन कुटीरोंमें बैठकर न केवल अपने
तथा आत्मप्रकाशमय बनाया अपितु सर्व विश्वको कृतार्थ
कर देनेकेलियेभी कोई कसर उठा न रखी । यद्यपि ज्योतिष
ही ऐसा परमरोचक चमत्कृतिपूर्ण और अखिल जनमन आकर्ष
अति दुरूह गंभीर शास्त्र सागरके अन्तस्तलको छान डालनेका
कोही प्राप्त है । सेतुके तैयार होजानेपर तो सब सेना समुद्र पार
सेतु बांधनाही तो काम था ।

यहां यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, आदिकालमें
सृष्टिके आरंभमें वेदको चतुर्धा विभक्त किया, तदनुसार उसके
रचना हुई । यथा—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त छन्दस् अ
कहना न होगा कि इनमें प्रत्यक्ष चमत्कारी होनेके कारण सर्व
यह प्रस्तुतशास्त्रही शिरोमणि माना गया (प्रत्यक्षं ज्योतिषं शा

तथाच "यथा शिखा मयूराणां, नागानां मणयो य
तद्वद्वेदांग शास्त्राणां, ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

खेदका विषय है कि वर्तमान कालीन हीन परिस्थितके का
विद्याका यथोचित आदर नहीं हो रहा है । यद्यपि हमारे साहि
वारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र, पं. कन्हैयालालजी मिश्र, पं. श्य
पं. ईश्वरीप्रसादजी पाण्डेय आदि महानुभाव विद्वानोंने अपने अ
इस अगम्य रत्नाकर के दुष्प्राप्य रत्नोंको टीकाओं और व्याख
तथा सुगम्य बना दिया । जिनके अध्ययनसे उन प्राचीन ग्रन
सकता है ।

इसी उद्देश्य को लेकर श्रीयुत विद्वद्वर श्रीवराह मिहिराचार्य० प्रणीत "वाराही-
हेता" की बड़ीही सरल चित्ताकर्षणी टीका ज्योतिषशास्त्रके ज्ञाता पूज्य पितृव्य
बलदेवप्रसादजी मिश्रकी यशस्वी लेखनी द्वारा हुई। यों तो मिश्रजी के विविध
यक अनेक ग्रन्थोंका निर्माण और अनुवाद विख्यात है ही, परन्तु प्रस्तुत
तकमें आपका बड़ा परिश्रम हुआ है। आपने बड़ी खोजके साथ ज्योतिषशास्त्रका
हास, श्रीवराह मिहिराचार्य के जीवन के साथ साथ उनसे संबंधित जगत् प्रसिद्ध
वीर विक्रमादित्य संबंधी परमोज्वल वैचित्र्योंका भी दिग्दर्शन कराया है,
नको आज २००९ वर्ष व्यतीत होते हैं।

यद्यपि वराहमिहिराचार्य प्रणीत दैवज्ञवल्लभ, बृहज्जातक, मयूरचित्रक, लघुजातक
दि और भी अनेक ग्रन्थ हैं, परन्तु उन सब में "वाराही संहिता" प्रधान है।
विषयमें सफल अनुवादकने पर्याप्तरूपसे लिखा है।

बड़ी प्रतीक्षाके पश्चात् समयानुसार इस ग्रन्थका यह नवीन संस्करण आपके
क्ष उपस्थित है। आशा है अन्य संस्करणोंके समान इस संस्करण को भी आप
पना कर लेखक और प्रकाशकके परिश्रमको सुफलित बनायेंगे।

बम्बई-प्रवास
माघ शु० ५ वसन्तपंचमी
२० जनवरी १९५३

ज्योतिरागमभक्त, कात्यायनकुमार-
जगदीशप्रसाद मिश्र
मुरादाबाद.

